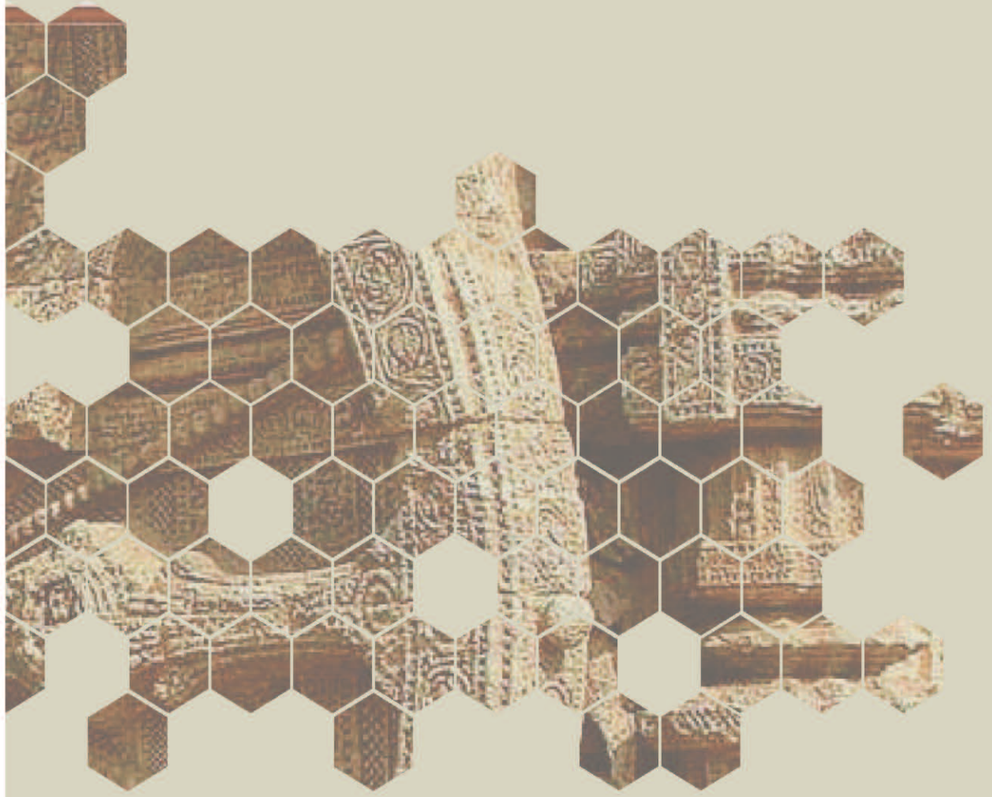

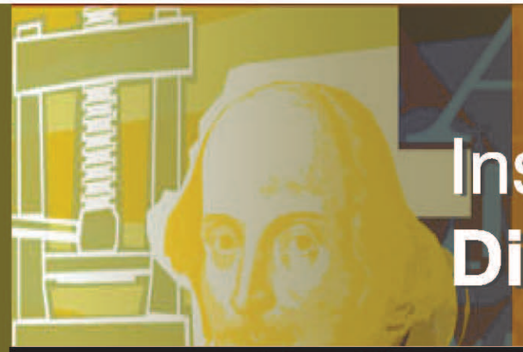

Institute of Open and Distance Education

Faculty of Arts

Rural and Urban Sociology

Rural and urban sociology

3BA5

Dr. C.V. Raman University
Kargi Road, Kota, BILASPUR, (C. G.),
Ph. : +07753-253801, +07753-253872
E-mail : info@cvru.ac.in | Website : www.cvru.ac.in

DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY
Chhattisgarh, Bilaspur
A STATUTORY UNIVERSITY UNDER SECTION 2(F) OF THE UGC ACT

3BA5
ग्रामीण एवं शहरी समाजशास्त्र

3BA5, Rural and urban sociology

Edition: March 2024

Compiled, reviewed and edited by Subject Expert team of University

1. Dr. Richa Yadav

(Professor, Dr. C. V. Raman University)

2. Dr. Reena Tiwari

(Associate Professor, Dr. C. V. Raman University)

Warning:

All rights reserved, No part of this publication may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the publisher.

Published by:

Dr. C.V. Raman University

Kargi Road, Kota, Bilaspur, (C. G.),

Ph. +07753-253801, 07753-253872

E-mail: info@cvru.ac.in

Website: www.cvru.ac.in

यूनिट - I

1. ग्रामीण समाजशास्त्र- अर्थ, परिभाषा, विषय-वस्तु, क्षेत्र 01
(Rural Sociology- Meaning, Definition, Subject- Matter, Scope)

2. नगरीय समाजशास्त्र- अर्थ, परिभाषा, विषय-वस्तु, क्षेत्र 11
(Urban Sociology- Meaning, Definition, Subject- Matter, Scope)

3. ग्रामीण समाजशास्त्र एवं नगरीय समाजशास्त्र का महत्व 16
(Importance of Rural Sociology and Urban Sociology)

यूनिट - II

4. प्रवर्जन-अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएँ ग्रामीण समाज से प्रवर्जन- कारण एवं प्रभाव 26
(Migration - Meaning, Definition and Characteristics Migration from Rural Society-causes and Consequences)

5. ग्रामीण भारत में जजमानी व्यवस्था - अर्थ, विशेषताएँ एवं परिवर्तन 40
(Jajmani System in Rural India - Meaning, Characteristics and Changes)

6. भारत में कृषि संबंध 48
(Agrarian Relations in India)

यूनिट - III

7. ग्रामीण नेतृत्व - अर्थ, विशेषताएँ एवं उभरते प्रतिमान 64
(Rural Leadership - Meaning, Characteristics and Emerging Patterns)

8. प्रभावशाली जाति एवं ग्रामीण भारत में गुटवाद 72
(Dominant Caste and Factionalism in Rural India)

9. पंचायती राज संस्था- लक्ष्य, कार्य एवं संगठन 84
(Panchayati Raj Institution - Aims, Functions and Organization)

यूनिट - IV

10. नगरीय प्रवर्जन - अर्थ, विशेषताएँ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व 102
(Urban Migration - Meaning, Characteristics, Nature, Scope and Importance)

11. नगरीय विकास से संबंधित मुद्दे- बसाहट एवं मलिन बस्तियाँ 114
(Issues Related to Urban Development - Settlement and Slums)

12. नगरीय स्थानीय स्वशासन 141
(Urban Local Administration)

यूनिट - V

13. नगरीय विकास- बाजार, प्रौद्योगिकी एवं परिवर्तन 148
(Urban Development - Market, Technology and Change)

14. नगरीय जीवन में परिवर्तन- जाति, वर्ग एवं शक्ति के परिवर्तित आयाम 178
(Changes in Urban Life - Changing Dimensions of Caste, Class and Power)

15. भारत में नगरीय अध्ययन 220
(Urban Studies in India)

●●●

1

ग्रामीण समाजशास्त्र - अर्थ, परिभाषा, विषय-वस्तु, क्षेत्र
(RURAL SOCIOLOGY - MEANING, DEFINITION, SUBJECT-MATTER, SCOPE)

ग्रामीण समाजशास्त्र की अवधारणा
(The Concept of Rural Sociology)

सन् 1838 ई. में फ्रांसीसी विचारक **आगस्त काम्टे** ने जिस सामाजिक भौतिकशास्त्र (Social Physics) को समाजशास्त्र (Sociology) का नाम दिया था, वह अपने 160 वर्षों के संक्षिप्त जीवन-काल में अनेक शाखाओं-प्रशाखाओं के रूप में विकसित हो गया है। ग्रामीण समाजशास्त्र, ग्रामीण मानव जीवन के विभिन्न दशाओं के पहलुओं के अध्ययन की मूलभूत आवश्यकता के परिणामस्वरूप विकसित हुआ है। जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह शास्त्र गाँव या ग्रामीण जीवन का समाजशास्त्र है। सरल शब्दों में हम इसे समाजशास्त्र की उस शाखा के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जिसके अन्तर्गत ग्रामीण समाज का अध्ययन किया जाता है। ग्रामीण समाज सामान्य सम्बन्धों पर आधारित न होकर विशिष्ट प्रकार के सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्राम जीवन अनेक पहलुओं में बंटा हुआ होता है और ये सभी पहलू मिलकर समस्त ग्रामीण जीवन की संरचना का निर्माण करते हैं।

ग्रामीण समाजशास्त्र दो शब्दों के योग से बना है- ग्रामीण + समाजशास्त्र। जैसा कि लिखा जा चुका है कि समाजशास्त्र सामाजिक जीवन और घटनाओं का विज्ञान है। ग्रामीण समाजशास्त्र को ग्रामीण सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने वाला विज्ञान कहकर सम्बोधित किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण सामाजिक संरचना, ग्रामीण सामाजिक सम्बन्ध, ग्रामीण सामाजिक संगठन और ग्रामीण सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

ग्रामीण समाजशास्त्र की परिभाषा
(Definition of Rural Sociology)

उपर्युक्त विवेचन में ग्रामीण समाजशास्त्र के अर्थ को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। यहाँ ग्रामीण समाजशास्त्र के विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई ग्रामीण समाजशास्त्र की परिभाषाएँ प्रस्तुत हैं–

(1) **नेल्सन–** "ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु विभिन्न प्रकार के समूहों का वर्णन और विश्लेषण है जो ग्रामीण पर्यावरण में स्थित हैं।"

नेल्सन ने ग्रामीण समाजशास्त्र की जो परिभाषा दी है जिसमें निम्नलिखित तथ्यों का समावेश किया गया है–

(i) ग्रामीण समाजशास्त्र का सम्बन्ध ग्रामीण पर्यावरण से है।

(ii) ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण समुदाय में पाये जाने वाले विभिन्न प्रकार के समूहों का वर्णन करना है।

(iii) इन समूहों की व्याख्या करना तथा इस व्याख्या के आधार पर इन समूहों के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का निर्धारण करना।

(2) चैपिन– "ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जनसंख्या, ग्रामीण सामाजिक संगठन और ग्रामीण समाज में हो रही सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है।"

चैपिन ने ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-सामग्री के अन्तर्गत निम्नलिखित तथ्यों की ओर विशेष जोर दिया है–

(i) ग्रामीण जनसंख्या। (ii) ग्रामीण सामाजिक संगठन।

(iii) सामाजिक प्रक्रिया।

NOTES

(3) सैंडर्सन– "ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में जीवन का समाजशास्त्र है।"

सैंडर्सन ने ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु में निम्न दो तथ्यों को सम्मिलित किया है–

(i) ग्रामीण पर्यावरण। (ii) ग्रामीण जीवन।

(4) देसाई– "ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज का विज्ञान है।"

(5) शीम्स– "ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र कृषि पर आश्रित अथवा इससे जीविका निर्वाह करने वाले मनुष्यों के संगठन का अध्ययन है।"

(6) जिलेट– "हम ग्रामीण समाजशास्त्र को उस शाखा के रूप में विचार कर सकते हैं जिसमें ग्रामीण समुदायों का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है जिससे उनकी दशाओं और प्रवृत्तियों का ज्ञान हो और उनकी प्रगति के सिद्धान्तों का निर्माण हो सके।"

जिलेट ने ग्रामीण समाजशास्त्र की विवेचना करते हुए इसे निम्नलिखित भागों में विभाजित करके समझाने का प्रयास किया है–

(i) ग्रामीण समाजशास्त्र की एक शाखा है।

(ii) इस शाखा के अन्तर्गत ग्रामीण समुदायों का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है।

(iii) इस अध्ययन के द्वारा ग्रामीण समुदायों की दशाओं और उनकी प्रवृत्तियों के बारे में ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

(iv) इस ज्ञान का उद्देश्य ग्रामीण समुदायों की प्रगति के सिद्धान्तों के निर्माण से है।

(7) बट्रैण्ड– "ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में मनुष्यों के सम्बन्धों का अध्ययन है।"

इस परिभाषा में निम्न दो तथ्य सम्मिलित किए गये हैं–

(i) ग्रामीण पर्यावरण।

(ii) ग्रामीण सामाजिक सम्बन्ध।

(8) स्मिथ– "ऐसे समाजशास्त्रीय तथ्य एवं सिद्धान्त जो ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन से निकलते हैं, ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत कहे जा सकते हैं।"

स्मिथ ने ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-सामग्री के अन्तर्गत निम्न बातें बताई हैं–

(i) सामाजिक सम्बन्ध।

(ii) इन सामाजिक सम्बन्धों में पाये जाने वाले तथ्य एवं सिद्धान्तों की खोज।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सामाजिक समस्याओं, घटनाओं एवं प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।

विषय-वस्तु के सम्बन्ध में मत भिन्नताएँ
(Differences of Opinion in Relation to Subject-Matter)

ज्ञान का कोई भी क्षेत्र हो, मतभिन्नताओं का होना अनिवार्य है। यही बात ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में भी लागू होती है। इसका कारण यह है कि ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक नई शाखा है। नई शाखा होने के कारण भी अभी इसका पूर्ण विकास नहीं हुआ है और विद्वान इस क्षेत्र में निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। विषय-वस्तु को लेकर विद्वानों में जो मत भिन्नताएँ हैं, उसके कुछ अपने कारण हैं। संक्षेप में ये कारण निम्नलिखित हैं–

1. क्या ग्रामीण जीवन को नगरीय जीवन से अलग करके समझा जा सकता है? इस दृष्टि से क्या ग्रामीण समाजशास्त्र के साथ ही नगरीय समाजशास्त्र को भी सम्मिलित करना इसकी विषय-वस्तु का निर्धारण किया जाना चाहिए।

2. क्या ग्रामीण समाजशास्त्र को एक तुलनात्मक विज्ञान बनाकर नगरीय समाजशास्त्र की अवधारणाओं को भी इसमें सम्मिलित किया जाना चाहिए।

3. इस सम्बन्ध में आज दो शब्दों का प्रचलन है– ग्रामीणीकरण (Ruralization) और नगरीकरण (Urbanization) ये दोनों प्रक्रियाएँ अन्तःसम्बन्धित हैं। क्या ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-सामग्री में इन दोनों अन्तःक्रियाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

NOTES

4. ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के सम्बन्ध में एक और तथ्य महत्वपूर्ण है। ग्रामीण समाज विशुद्ध (Pure) सामाजिक विज्ञान है या व्यवहारिक (Applied) सामाजिक विज्ञान। इस दृष्टि से भी ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के निर्धारण में मत भिन्नताएँ हैं।

5. आज परिवर्तन की गति अत्यन्त तीव्र है। इस परिवर्तन का समाज पर चहुँमुखी प्रभाव है और ग्रामीण समाज भी इससे अछूता नहीं है। क्या इसकी विषय सामग्री का निर्धारण परिवर्तित परिवेश के संदर्भ में किया जाना चाहिए या नहीं।

ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु और समाजशास्त्री
(Subject-Matter of Rural Sociology and Sociologists)

किसी भी विषय पर विद्वानों के मतों में भिन्नताओं का होना नितान्त स्वाभाविक है। किन्तु उसका तात्पर्य यह नहीं है कि इन भिन्नताओं के कारण ग्रामीण समाजशास्त्र की कोई विषय-वस्तु नहीं है। अनेक विद्वानों ने ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय वस्तु का निर्धारण किया है। इनमें से कुछ प्रमुख विद्वानों के विचार निम्नलिखित हैं–

1. ए.आर. देसाई– डॉ. ए.आर. देसाई ने ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-सामग्री के अन्तर्गत निम्न तत्वों को सम्मिलित किया है–

(a) ग्रामीण सामाजिक संगठन (Rural Social Organization),

(b) ग्रामीण सामाजिक संरचना (Rural Social Structure),

(c) ग्रामीण विकास की प्रवृत्तियाँ (Trends of Rural Development).

(2) टी.एल. स्मिथ– टी.एल. स्मिथ ने ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-सामग्री को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है–

(a) ग्रामीण सामाजिक सम्बन्ध (Rural Social Relations)

(b) ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों के तथ्यों और सिद्धान्तों की खोज (Investigation of Facts and Theories of Rural Social Relations)

इसमें जनसंख्या (Population), ग्रामीण सामाजिक संगठन (Rural Social Organizations) ग्रामीण संरचना (Rural Structure), ग्रामीण संस्थाएँ (Rural Institutions) तथा ग्रामीण सामाजिक प्रक्रियाओं (Rural Social Institutions) को सम्मिलित किया जा सकता है।

(3) लौरी नेल्सन– लौरी नेल्सन ने ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु में निम्न तीन तत्वों को सम्मिलित किया है–

(a) ग्रामीण सामाजिक जीवन (Rural Social Life),

(b) ग्रामीण सामाजिक जीवन (Rural Community Life), और

(c) मानव जीवन के विविध आयाम (Different aspects of Human Life)।

(4) बट्रैण्ड– बट्रैण्ड ने ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री के अन्तर्गत निम्न दो तत्वों को सम्मिलित किया है–

(a) ग्रामीण पर्यावरण (Rural Environment), और

(b) ग्रामीण सामाजिक सम्बन्ध (Rural Social Relations)।

NOTES

ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री
(Subject-Matter of Rural Sociology)

विषय (Subject) और सामग्री (Matter) इन दो शब्दों से विषय-सामग्री शब्द बना है। ज्ञान की अनेक शाखाएँ (Branches) होती हैं। इन शाखाओं को विषय कहा जाता है। उदाहरण के लिए सामाजिक विज्ञानों की अनेक शाखाएँ हैं– समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र और मनोविज्ञान आदि। ज्ञान के विकास के साथ इन विज्ञानों की शाखाओं (Branches) में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। 1838 में आगस्त काम्टे ने पहली बार समाजशास्त्र (Sociology) शब्द का प्रयोग किया था। इसके बाद समाजशास्त्र का निरन्तर विकास होता गया और समाजशास्त्र अनेक शाखाओं और उपशाखाओं में विभाजित होता गया। भारत में एक विज्ञान के रूप में प्रारम्भ हुआ। उस समय समाजशास्त्र की केवल एक ही शाखा थी। धीरे-धीरे समाजशास्त्र अनेक शाखाओं में विभाजित होता गया। जैसे ग्रामीण समाजशास्त्र, नगरीय समाजशास्त्र, औद्योगिक समाजशास्त्र और जनजातियों का समाजशास्त्र आदि। आज समाजशास्त्र अनेक शाखाओं और उपशाखाओं में विभाजित है।

जब समाजशास्त्र की अन्य शाखाएँ नहीं थीं तो समाजशास्त्र की सभी शाखाओं का समग्र अध्ययन किया जाता था, अर्थात् एक साथ ही सभी शाखाओं का अध्ययन एक विषय के रूप में किया जाता है। ज्ञान के विस्तार के साथ यह संभव नहीं हो सका कि समाजशास्त्र की सभी शाखाओं का अध्ययन एक साथ किया जाये। इसलिए यह आवश्यक हो गया कि समाजशास्त्र की अलग-अलग शाखाओं का अध्ययन एक साथ किया जाये। ऐसी स्थिति में ग्रामीण समाजशास्त्र को एक अलग विषय के रूप में प्रतिस्थापित किया गया।

समाजशास्त्र की विषय सामग्री क्या हो? इस सम्बन्ध में विद्वानों की ग्रामीण समाजशास्त्र की परिभाषाओं और विषय सामग्री के सम्बन्ध में व्यक्त किए गए विचारों को ध्यान में रखते हुए समग्र रूप से ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. ग्रामीण जीवन (Rural Life)– ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु का मौलिक तत्व है- ग्रामीण जीवन। आज समाज पूर्णतया दो भागों में विभाजित हो चुका है और ग्रामीण समाजशास्त्र भी समाजशास्त्र की एक विकसित शाखा के रूप में अपना स्थान बना चुका है। ग्रामीण जीवन ग्रामीण समाजशास्त्र की आत्मा है।

2. ग्रामीण संरचना (Rural Structure)– ग्रामीण संरचना ग्रामीण समाजशास्त्र का आधार है। इसके अन्तर्गत ग्रामीण बसाहट (Rural settlement) को सम्मिलित किया जाता है। ग्रामीण बसाहट के आधार बिन्दु क्या हैं। ग्रामीण बसाहट के लिए भौतिक पर्यावरण कहाँ तक उत्तरदायी है। ग्रामीण बसाहट के अन्तर्गत गाँव की भौतिक संरचना आवास व्यवस्था गली और सड़क, सार्वजनिक स्थान, पेयजल तथा अन्य भौतिक तत्वों को सम्मिलित किया जा सकता है।

3. ग्रामीण संगठन (Rural Organizations)– ग्रामीण सामाजिक संगठन ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्वपूर्ण अध्ययन का विषय वस्तु है। ग्रामीण सामाजिक संगठन के अन्तर्गत ग्रामीण जीवन के जिन संगठनों का अध्ययन किया जाता है, उनमें महत्वपूर्ण हैं-

(a) पद (Status),
(b) सत्ता (Authority)
(c) सोपानक्रम (Hierarchy),
(d) जजमानी व्यवस्था (Jajmani System),
(e) परिवार (Family),
(f) विवाह व्यवस्था (Marriage System),
(g) जाति व्यवस्था (Caste System),
(h) नातेदारी (Kinship),
(i) वर्ग व्यवस्था (Class System),
(j) शिक्षा (Education),
(k) पंचायत (Panchayat),
(l) धर्म (Religion), आदि।

ग्रामीण जीवन में इन सामाजिक संगठनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण जीवन के इन सभी व्यवस्थाएँ ग्रामीण जीवन को एक सूत्र में बाँधती हैं। तथा इन्हीं के आधार पर ग्रामीण जीवन संचालित होता है। इसके अतिरिक्त गाँवों में प्रभु जातियाँ (Dominent castes) की भी अहम भूमिका होती है। ये प्रभुजातियाँ ग्रामीण सामाजिक संगठन को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार सामाजिक संगठन ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु का महत्वपूर्ण अंग हैं।

4. ग्रामीण समूह (Rural Groups)— ग्रामीण जीवन में समूहों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मनुष्य सामाजिक प्राणी हैं और उसकी सामाजिकता का आधार ये समूह हैं, जो व्यक्ति को एक सूत्र में बाँटते हैं। सामान्यतया समूह दो प्रकार के होते हैं—

(a) प्राथमिक समूह (Primary Groups), और

(b) द्वितीयक समूह (Secondary Groups)।

NOTES

ग्रामीण जीवन में सामाजिक समूहों का प्राथमिक भाग ही महत्वपूर्ण होता है। इन प्राथमिक समूहों में परिवार, पड़ोस, मित्रता, खेल के मैदान, मनोरंजन के साधन, आदि महत्वपूर्ण होते हैं। इसके अतिरिक्त धार्मिक जीवन, सांस्कृतिक धरोहर, आर्थिक और राजनैतिक समूह भी होते हैं, जो ग्रामीण जीवन को प्रभावित करते हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के अन्तर्गत इन समूहों के अध्ययन को भी सम्मिलित किया जाता है।

5. सामाजिक विधान (Social Legislation)— सामाजिक नियंत्रण (Social control) किसी भी समाज की धुरी होती है। नियंत्रण के अभाव में न कोई समाज जिन्दा रहा है और न ही जिन्दा रहेगा। ग्रामीण जीवन को नियंत्रित करने के प्रमुख दो साधन हैं—

(a) औपचारिक नियंत्रण (Formal control), और

(b) अनौपचारिक नियंत्रण (Informal control)।

ग्रामीण जीवन अनौपचारिक सामाजिक नियंत्रण का महत्वपूर्ण भाग होता है। इन अनौपचारिक नियंत्रण के साधनों में जनरीतियाँ (Folkways), रूढ़ियाँ (Mores), प्रथाएँ (Customs), परम्पराएँ (Traditions), सामाजिक संहिताएँ (Social Codes) की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। कानून (Law) भी सामाजिक नियंत्रण का साधन है, किन्तु ग्रामीण जीवन अपनी प्रथाओं और परम्पराओं से अधिक नियंत्रित होता है और ग्रामीण जीवन की समस्याओं का समाधान अनौपचारिक नियंत्रण के साधनों से होता है। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के अन्तर्गत सामाजिक विधानों के इन्हीं प्रकारों और कार्यों के अध्ययन को महत्व दिया जाता है।

(6) सामाजिक प्रक्रियाएँ (Social Processes)— सामाजिक प्रक्रियाओं को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(a) सहयोगी सामाजिक प्रक्रियाएँ (Associative Social Processes), और

(b) असहयोगी सामाजिक प्रक्रियाएँ (Dissociative Social Processes)।

ग्रामीण जीवन सहयोगी सामाजिक प्रक्रियाओं का आधार है। सहयोग (Co-operation) और आत्मसात् (Assimilation) ग्रामीण जीवन का आधार है। ग्रामीणजन जहाँ एक दूसरे के सहयोग के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं वहीं दूसरी ओर उनमें आत्मसात् की प्रवृत्ति भी अधिक होती है। ऐसा नहीं है कि ग्रामीण जीवन में केवल सहयोगी प्रक्रियाएँ ही गतिशील रहती हैं। अनेक अवसर ऐसे भी आते हैं कि असहयोग की स्थिति भी निर्मित हो जाती है और यहाँ तक कि यह स्थिति संघर्ष (Conflict) में परिणित हो जाती है। किन्तु ग्रामीण जन इन असहयोगी प्रक्रियाओं को भी सहयोग के माध्यम से सुलझा लेते हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के अन्तर्गत इन प्रक्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

7. ग्रामीण समस्याएँ (Rural Problems)— कभी ऐसा कहा जाता है कि भारतीय गाँव स्वर्ग की कल्पना को साकार करते हैं। वहाँ किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं थी। जीवन धन धान्य से परिपूर्ण था और वहाँ घी दूध की नदियाँ बहती थीं। किन्तु ऐसी स्थिति स्थायी नहीं रह सकी। विदेशी आक्रमणों और विदेशी शासकों के कारण ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याओं का विकास हुआ है। आज भारतीय ग्रामीण जीवन में जो प्रमुख समस्याएँ हैं, इन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(a) ग्रामीण गरीबी (Rural Poverty),

(b) ग्रामीण ऋणग्रस्तता (Rural Indebtedness),

(c) कृषि की समस्याएँ (Agricultural Problems),

(d) ग्रामीण बेरोजगारी (Rural Unemployment),

NOTES

(e) ग्रामीण अशिक्षा (Rural Illiteracy),

(f) ग्रामीण प्रवास (Rural Migration),

(g) ग्रामीण अशान्ति (Rural Unrest), आदि।

इसके अतिरिक्त अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जो ग्रामीण जीवन में व्याप्त हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के अन्तर्गत इन्हीं सामाजिक समस्याओं का अध्ययन करना है।

8. ग्रामीण जनसंख्या (Rural Population)— जनसंख्या किसी भी समाज के मानव संसाधन का सबसे बड़ा स्रोत है। ग्रामीण समाज अशिक्षित और अन्धविश्वासी होने के कारण जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि के कारण ग्रामीण जनसंख्या का सन्तुलन प्रभावित हो रहा है। इसके साथ ही जनसंख्या में शिशु मृत्युदर, स्त्रियों की मृत्यु, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव और बीमारियाँ, वृद्धजनों की समस्याएँ और पीढ़ी अन्तराल आदि की जनसंख्यात्मक समस्याएँ बढ़ती जा रही हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के अन्तर्गत इन्हीं जनसंख्यात्मक समस्याओं और इसकी बनावट का अध्ययन किया जाता है।

9. ग्रामीण परिवर्तन (Rural Changes)— परिवर्तन प्रकृति का नियम है। यह सार्वभौमिक है और बहुआयामी है। परिवर्तन निरन्तर होता रहा है, हो रहा है और होता रहेगा। हर देश और हर काल इससे प्रभावित हुआ है और इसकी दिशा में अन्तर रहा है। कोई समाज तीव्रता से परिवर्तित होता है, तो किसी समाज के परिवर्तन की गति धीमी रहती है। जब परिवर्तन होता है, तो इसका सीधा प्रभाव समाज और जीवन के विविध पहलुओं पर पड़ता है। ग्रामीण समाज की सामाजिक जीवन का एक अंग होने के कारण यह परिवर्तन से कैसे अछूता रह सकता है। भारतीय ग्रामीण जीवन भी परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजर रहा है। ग्रामीण जीवन में परिवर्तन की जो प्रक्रियाएँ चल रही हैं, परिवर्तन के जो कारण हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(a) भारतीय स्वाधीनता और संवैधानिक प्रावधान
(Indian Independence and Constitutional Provisions),

(b) औद्योगीकरण तथा नगरीकरण (Industrialization and Urbanization),

(c) प्रजातंत्र और सत्ता का विकेन्द्रीकरण (Democracy and Decentralization of Power),

(d) धर्म निरपेक्षता और धर्म निरपेक्षीकरण (Secularism and Secularization),

(e) पश्चिम का प्रभाव और पश्चिमीकरण (Impact of West and Westernization),

(f) आधुनिकता और आधुनिकीकरण (Modernism and Modernization),

(g) संस्कृतिकरण और परसंस्कृतिग्रहण (Culturization and Acculturation),

(h) ग्रामीण विकास एवं पुनर्निर्माण योजनाएँ
(Rural Development and Schemes of Reconstruction),

(i) आर्थिक सुधार- उदारीकरण और वैश्वीकरण
(Economic Reforms- Liberalization and Globalization)।

उपर्युक्त सभी प्रक्रियाएँ गाँवों में परिवर्तन के लिए जिम्मेदार हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के अन्तर्गत इन सभी प्रक्रियाओं, इनसे होने वाले परिवर्तनों और प्रभावों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

10. ग्रामीण विकास (Rural Development)— भारतीय गाँव कभी विकसित थे। कालान्तर में ग्रामीण जीवन की निरन्तर उपेक्षा होती रही। इन उपेक्षाओं के कारण गाँवों का धीरे-धीरे पतन हो गया और ग्रामीण जीवन अनेक समस्याओं से ग्रस्त हो गया। इन समस्याओं के समाधान के लिए ग्रामीण जीवन का विकास अनिवार्य था। इस दृष्टि से अनेक विकास योजनाओं का सूत्रपात हुआ। इन विकास योजनाओं में कुछ का विवरण इस प्रकार है—

(a) सामुदायिक विकास योजनाएँ (Community Development Schemes),

(b) सहकारिताएँ (Co-operatives),

(c) पंचायती राज (Panchayati Raj),

(d) निर्धनता उन्मूलन (Poverty Eradication),

(e) कृषि में सुधार (Agricultural Reforms),

(f) ग्रामीण रोजगार (Rural Employment)।

इन योजनाओं के द्वारा भारतीय ग्रामीण जीवन के पुनर्निर्माण (Reconstruction) के प्रयास किए गए हैं। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के अन्तर्गत इन सभी योजनाओं का मूल्यांकन, इनकी सफलता-असफलता तथा सुझावों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

NOTES

11. ग्राम-नगर अन्तर्सम्बन्ध (Rural-Urban Inter-relation)— आज ग्रामीण और नगरीय जीवन के अन्तर्सम्बन्धों की प्रक्रिया अत्यन्त ही तीव्र है। अन्तर्सम्बन्धों की इस प्रक्रिया के कारण गाँवों पर प्रभाव पड़ रहा है। यह गाँव से नगर की ओर तथा नगर से गाँवों की ओर दोतरफा है। ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु के अन्तर्गत इन अन्तर्सम्बन्धों का अध्ययन किए जाने की आवश्यकता है।

ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र
(Scope of Rural Sociology)

ग्रामीण समाजशास्त्र की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर दृष्टिपात करने से भली प्रकार स्पष्ट होता है कि यह एक नवीन विज्ञान है। यह ग्राम्य जीवन की समस्याओं, घटनाओं एवं प्रक्रियाओं का वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने वाला शास्त्र है। हाल ही में विकसित होने के कारण इसकी विषय-सामग्री एवं क्षेत्र के संबंध में विद्वान एकमत नहीं हैं। विशेष रूप से भारतवर्ष, जो कि गाँवों का देश है और जहाँ की अधिकांश जनता गाँवों में निवास करती है, इस शास्त्र का महत्व अत्यंत ही प्राथमिक है। ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के संबंध में **लौरी नेल्सन** ने अपना मत दिया है। उनका कहना है कि इस विषय-क्षेत्र को **तीन पहलुओं** में देखा जा सकता है— "यह केवल सामुदायिक जीवन के क्षेत्रों में और उपक्षेत्रों के समझे गए समतल रूप का केवल चित्र वर्णन मात्र नहीं समझाता वरन् यह समूचे विश्व के ढाँचे में पाये गये असंख्य प्रकार के समूहों का भी वर्णन करता है। दूसरे रूप में यह उन सभी कार्यों का वर्णन करता है जो ग्रामीण मानव के सामूहिक जीवन को बनाते हैं। इस प्रकार से यह एक विस्तृत शास्त्र है - उतना ही विस्तृत है जैसे कि सामूहिक जीवन के विभिन्न रूप विस्तृत हैं। यह केवल विस्तृत ही नहीं, वरन् व्यापक भी है। यह केवल समाज के उस रूप का, जैसा कि वह पूर्ण विभाग में प्रतीत होता है, उनका वर्णन और विश्लेषण करके ही संतुष्ट नहीं हो सकता, अपितु इसको तो काल और दूरी का भी ध्यान में रखना है, जो यह स्वीकार करता है कि समाज जैसा कि वह अब है, एक दीर्घकालिक सांस्कृतिक परिवर्तन और संचय का परिणाम है। अन्य शब्दों में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक समुदाय का इतिहास होता है और वह अधिकांश उद्विकासीय प्रक्रिया की देन है। ग्रामीण समाजशास्त्र के विद्यार्थी को अपनी विषय-सामग्री से सम्बन्धित एक काल-चित्र रखना चाहिए। ऐसा काल-चित्र उस शक्ति-ज्ञान के आन्तरिक और बाह्य दोनों ही रूपों का जिन्होंने भूतकाल में वर्तमान सामाजिक घटनाओं को आकार रूप देने में मदद दी थी, ढँक लेता है। इस प्रकार यह शास्त्र एक और मुख्य रूप से व्यापकता रखता है।

तीसरी बात जो इस संबंध में पाई जाती है, वह है "**गहनता**"। यदि हमको मानव जाति के सामाजिक जीवन को पूर्णतया समझना है तो हमको व्यक्ति विशेष की प्रकृति से भी अधिक उसकी आवश्यकताएँ, उसके लक्ष्य, उद्देश्य, उसके भाव तथा अन्य वे सभी धूर्तताएँ और छल, जो सभी मुख्य और बदलते व्यवहार के रूप हैं, को समझना होगा। वह क्या है जो व्यक्तियों और समूहों में प्रत्युत्तर के विभिन्न रूपों को उत्पन्न करता है? काल और स्थान के कारण प्रत्युत्तरों में कैसे और क्यों अन्तर आ जाता है? जनरीतियाँ और रूढ़ियाँ कैसे परिवर्तित हो जाती हैं? उदाहरण— भोजन की एक आदत को बदलना और पुरानी के स्थान पर नई का प्रत्यास्थापन करना। मूल्य की व्यवस्था कैसे रूपान्तरित होती है और किस प्रकार ये अन्तर्निहित पारस्परिक क्रियाओं की प्रतिक्रियाएँ नापी और वर्णित की जाती हैं? ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो तीसरे परिणाम के ज्ञान के चारों ओर छाये रहते हैं।"

क्षेत्र का सीधा अर्थ है— सीमाएँ (Boundary)। प्रत्येक विषय की अपनी सीमाएँ होती हैं। सीमा निर्धारण का उद्देश्य उस विषय की अध्ययन सामग्री को परिभाषित करना है। ज्ञान के अनेक क्षेत्र हैं। ये क्षेत्र आपस में अन्तःसम्बन्धित (Interrelated) हैं। इस अन्तःसम्बन्धिता के कारण यह निर्धारित करना कठिन हो जाता है कि किस विषय में क्या पढ़ा जाये और क्या न पढ़ा जाये। इस दृष्टि से प्रत्येक विज्ञान अपनी सीमाओं का निर्धारण करते हैं और उन्हीं सीमाओं के अन्तर्गत अपने विषय का अध्ययन करते हैं।

NOTES

ग्रामीण समाजशास्त्र समाजशास्त्र की एक शाखा है। इस शाखा का उद्देश्य ग्रामीण जीवन का अध्ययन करना है। यहाँ मौलिक प्रश्न यह है कि ग्रामीण जीवन इतना विशाल और विस्तृत है कि ग्रामीण समाजशास्त्र में कितना अध्ययन किया जाये और कितने को छोड़ दिया जाये। इस बात को ध्यान में रखकर विद्वानों ने ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र का निर्धारण किया है, जो इस प्रकार है–

(1) ग्रामीण ढाँचे का अध्ययन (Study of Rural Structure)– ग्रामीण समाजशास्त्र उन कारकों का अध्ययन प्रमुख रूप से करता है, जो कि सामाजिक ढाँचे के निर्माण में अपना महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। सामाजिक प्रथाएँ, परम्पराएँ, रूढ़ियाँ एवं सामाजिक नियम सभी इसके अध्ययन के अन्तर्गत आते हैं। वास्तव में ग्रामीण समाज का ढाँचा अपनी कुछ मौलिकताओं पर आधारित होता है। इन सबका अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत होता है।

(2) ग्रामीण सामाजिक संगठन का अध्ययन (Study of Rural Social Organisation)– ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत ग्राम्य समाजों में पाये जाने वाले संगठन भी हैं। इन संगठनों के लिए उत्तरदायी अनेक संस्थाएँ हैं। इन संस्थाओं में परिवार की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त विवाह, धर्म आदि का भी अपना महत्व है। इन विभिन्न संस्थाओं से सम्बन्धित ग्रामीण जीवन का संगठन इस शास्त्र के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

(3) ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन (Study of Rural Problems)– ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समस्याओं का भी अध्ययन करता है। ग्रामीण जीवन की अपनी निराली समस्याएँ होती हैं। इन समस्याओं में निरक्षरता, बेरोजगारी, अस्पृश्यता, अन्धविश्वास, मुकदमेबाजी, अज्ञानता आदि अनेक ऐसी समस्याएँ हैं जिनका क्रमबद्ध अध्ययन होना आवश्यक है। इस प्रकार से स्पष्ट है कि ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित होने के कारण इन समस्याओं का अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है।

(4) ग्रामीण और नगरीय विभेद– ग्रामीण समाजशास्त्र तुलनात्मक रूप से ग्रामीण और नगरीय जीवन का अध्ययन करता है। ग्राम्य जीवन के वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति हेतु नगरीकरण की कल्पना को सामने रखना होगा अन्यथा इस शास्त्र के क्षेत्र का निर्धारण अपूर्ण रह जायेगा।

(5) ग्रामीण समुदाय का अध्ययन (Study of Rural Community)– ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समुदाय का भी अध्ययन करता है। **सैंडरसन** ने लिखा है– "एक ग्रामीण समुदाय में स्थानीय क्षेत्र के लोगों की अन्तःक्रिया तथा उनकी संस्थाएँ सम्मिलित हैं, जिसमें वह खेतों के चारों ओर बिखरी हुई झोपड़ियों तथा ग्रामों में रहता है। जो उनकी सामान्य क्रियाओं का केन्द्र है।"[1]

इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समुदाय के प्रत्येक अंग का अध्ययन करता है।

(6) ग्रामीण धर्म का अध्ययन (Study of Rural Religion)– ग्रामीण समाजशास्त्र धर्म का भी अध्ययन करता है। वास्तव में ग्रामीण जीवन में धर्म की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है जो इस विषय के क्षेत्र के अन्तर्गत सम्मिलित है।

(7) ग्रामीण पुनर्निर्माण (Rural Reconstruction)– वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत पुनर्निर्माण से सम्बन्धित कार्यक्रमों का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के रूप में सामुदायिक विकास योजना, राष्ट्रीय विस्तार खण्ड-सहकारी आन्दोलन, ग्राम पंचायत आदि इसके अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर संक्षेप में हम कह सकते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज में रहने वाले मनुष्यों के समस्त पहलुओं का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन करता है। साथ ही ग्रामीण समाज में व्याप्त समस्याओं आदि को दूर करने का उपाय बताता है।

ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-वस्तु की सीमायें
(Limitations of Subject-Matter of Rural Sociology)

यद्यपि यह शास्त्र ग्रामीण सामाजिक जीवन के प्रत्येक अंगों का अध्ययन करता है, साथ ही नव-निर्माण की ओर मार्गदर्शित भी करता है। इन सबके बावजूद भी इस शास्त्र की सीमाएँ निम्न हैं–

(1) यह शास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में प्रभावित मानवीय व्यवहारों का अध्ययन करता है। इसका अध्ययन क्षेत्र ग्रामीण समाज तक ही सीमित है। मानव समाज के अन्य अंगों का अध्ययन करने में यह विज्ञान समर्थ नहीं है।

(2) यह विज्ञान समस्याओं या घटनाओं का व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन करता है तो इसे हम सुधारशास्त्र नहीं कह सकते, क्योंकि यह विज्ञान सुधारशास्त्र के प्रमुख तत्वों का उल्लेख नहीं करता है।

(3) ग्रामीण समाजशास्त्र नैतिक शास्त्र नहीं है। फिर भी यह नैतिक आदर्शों की ओर संकेत करता है, लेकिन ये सामाजिक व सामुदायिक कल्याण तक ही सीमित हैं। नैतिक आधार के अन्य पक्ष की ओर यह विज्ञान चुप है।

NOTES

वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र का आधार ग्रामीणता है। ग्रामीण पर्यावरण में स्थित ग्रामीणता से प्रभावित मानव समुदाय का अध्ययन इस शास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। इसके अतिरिक्त अनेक ऐसे मानव समुदाय हैं जिसका अध्ययन इस शास्त्र के अन्तर्गत नहीं किया जा सकता है।

मौलिक मतैक्य
(Fundamental Unity)

ग्रामीण समाजशास्त्र की परिभाषा, विस्तार तथा उद्देश्य में और ग्रामीण समाज को इस अथवा उस अंश पर अधिक बल दिए जाने तथा उसके अध्ययन की सीमा निर्धारित करने में संबंध व्यापक विचार वैभिन्य होने पर भी उनमें अनेक विषयों पर मौलिक मतैक्य विद्यमान है।

(1) सभी ग्रामीणशास्त्री यह मानते हैं कि समुदाय का सामाजिक जीवन दो विशिष्ट ग्रामीण तथा नगरीय भागों में विभक्त है। यद्यपि ये भाग अन्तः क्रियायी हैं, तथापि एक-दूसरे से पर्याप्त रूप से अलग हैं।

(2) वे सब इस विचार को मानते हैं कि ग्रामीण पर्यावरण में पोषित सामाजिक जीवन ऐसे लक्षण तथा प्रकृतियाँ प्रदर्शित करता है जो उसे नगरीय पर्यावरण में पोषित सामाजिक जीवन से अलग करती हैं।

(3) वे सर्वसम्मति से इस बात को घोषित करते हैं कि ग्रामीण समाजशास्त्र का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण सामाजिक संगठन, उसकी संरचना, कार्य तथा उसके विकास की प्रवृत्तियों का वैज्ञानिक, व्यवस्थित तथा व्यापक अध्ययन करना है और इस प्रकार के अध्ययन के आधार पर उसके विकास के नियमों को खोज निकालना है। जबकि प्रत्येक विज्ञान का (चाहे वह सामाजिक हो अथवा प्राकृतिक) उद्देश्य, प्रकृति अथवा समाज के क्षेत्र में अब तक छिपे हुए आधारभूत कार्य, जैसा कि वे सर्वसम्मति से घोषित करते हैं, **''ग्रामीण समाज के विकास के नियमों को ढूँढ़ निकालना ही है।''**

परीक्षाओं के लिये महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examination)

(A) निबंधात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. ग्रामीण समाजशास्त्र की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
   Explain the concept of Rural Sociology.
2. ग्रामीण समाजशास्त्र की परिभाषाओं की विवेचना कीजिए।
   Discuss the definitions of Rural Sociology.
3. ग्रामीण समाजशास्त्र की परिभाषा दीजिए।
   Write the definition of Rural Sociology.
4. 'ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय-सामग्री ग्रामीण जीवन है।' समझाइये।
   'The subject-matter of Rural Sociology is Rural Life.' Explain.
5. ग्रामीण समाजवाद की विषय-सामग्री और सीमाओं की विवेचना कीजिये।
   Discuss the subject-matter and limitations of Rural Sociology.
6. 'ग्रामीण समाजशास्त्र महत्वपूर्ण सामाजिक विज्ञान है।' समझाइये।
   'Rural Sociology is important Social Science.' Explain.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–
Write short note on following–

1. ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ।
   Meaning of Rural Sociology.

2. ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र पर मौलिक मतैक्य।
Fundamental unity on subject-matter of Rural Sociology.

3. भारत गाँवों का देश है।
India is a country of villages.

NOTES

(C) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. किसने कहा- 'अनादि काल से ग्राम भारतीय सामाजिक राजतंत्र की आधारभूत एवं महत्वपूर्ण इकाई रहता चला आया है।'

(अ) ए.आर. देसाई (ब) नेल्सन (स) एम.एन. श्रीनिवास (द) एस.सी. दुबे।

2. किसने कहा– 'अभी थोड़े समय से पूर्व तक के मनुष्य की कहानी अधिकतर ग्रामीण मनुष्य की कहानी है।'

(अ) नेल्सन (ब) एस.सी. दुबे (स) ए.आर. देसाई (द) सैन्डर्सन।

3. किसने कहा– 'ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण समाज का विज्ञान है।'

(अ) ए.आर. देसाई (ब) सैंडर्सन (स) स्मिथ (द) बट्रैण्ड

4. 2001 की जनगणना के अनुसार कितने प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है?

(अ) 70.2 (ब) 71.2 (स) 72.2 (द) 73.2

5. ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री को निम्न तीन भागों में किस समाजशास्त्री ने विभाजित किया है–

(i) ग्रामीण सामाजिक संगठन (ii) ग्रामीण सामाजिक संरचना
(iii) ग्रामीण विकास की प्रवृत्तियाँ

(अ) बट्रैण्ड (ब) नेल्सन (स) ए.आर. देसाई (द) स्मिथ।

6. ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय सामग्री को निम्न दो भागों में किस समाजशास्त्री ने विभाजित किया है–

(i) ग्रामीण पर्यावरण (ii) ग्रामीण सामाजिक सम्बन्ध

(अ) ए.आर. देसाई (ब) बट्रैण्ड (स) नेल्सन (द) एम.एन. श्रीनिवास।

उत्तर– 1. (द), 2. (अ), 3. (अ), 4. (स), 5. (स), 6. (अ)

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

2

नगरीय समाजशास्त्र - अर्थ, परिभाषा, विषय-वस्तु, क्षेत्र

(URBAN SOCIOLOGY - MEANING, DEFINITION, SUBJECT-MATTER, SCOPE)

1838 में ऑगस्ट कॉम्टे द्वारा पहली बार प्रयुक्त शब्द "सोसियालॉजी" (Sociology) आज अत्यन्त ही लोकप्रिय एवं व्यापक हो गया है। एक विषय का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। विश्व के हर देश में अत्यन्त ही रुचि के साथ इस विषय में अध्ययन और अध्यापन तथा शोध हो रहा है। आज का युग विशेषीकरण (Specialization) का है। इसका प्रभाव समाजशास्त्र पर भी पड़ा है इसके चलते समाजशास्त्र की अनेक शाखाओं की उत्पत्ति हुई है नगरीय समाजशास्त्र उनमें से प्रमुख है। नगरीय समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत नगरीय जीवन और समाज का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है।

समकालीन विश्व में सभ्यता का स्वरूप नगरीय होता जा रहा है। दूसरे शब्दों में आधुनिक सभ्यता नगरीय सभ्यता का पर्याय जैसा हो गयी है। सही तथ्य तो यह है कि नगरीयता का फैलाव एक जीवन शैली के रूप में हुआ है। अतः नगरीय जीवन की विशेषतायें छोटे-छोटे कस्बों और गाँवों में तीव्र गति से फैल रही हैं। यह एक वैश्विक परिघटना के रूप में उभरी है तथा एक प्रक्रिया का रूप धारण कर चुकी है। यह प्रक्रिया विश्व के सभी देशों एवं संभागों में क्रियाशील है। यही कारण है कि नगरीय समाजशास्त्र वैश्विक स्तर पर एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में उभरा है इसीलिये नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययन में विद्वानों की रुचि दिनोंदिन बढ़ती जा रही है।

नगरीय समाजविज्ञान की परिभाषा
(Definition of Urban Sociology)

अत्यंत ही संक्षेप में वह विज्ञान जिसमें नगरों का अध्ययन किया जाता है, नगरीय समाजशास्त्र के नाम से जाना जाता है। इस शास्त्र की मुख्य विषय वस्तु है नगरीय पर्यावरण में पाये जाने वाले सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करना। इसके अन्तर्गत नगरीय जीवन का क्रमबद्ध और व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। विभिन्न समाजशास्त्रियों और विद्वानों ने नगरीय समाजविज्ञान की जो परिभाषाएँ दी हैं, वह निम्नलिखित हैः-

1. **बर्गेलः-** नगरीय समाजविज्ञान पर्यावरण का व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का विशेष अध्ययन है।

जीवन चाहे ग्रामीण हो या नगरीय, पर्यावरण से यह अवश्य ही प्रभावित होता है। जब नगरीय जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को व्यवस्थित रूप से जानकारी के योग्य बना दिया जाता है तो इसे नगरीय समाजविज्ञान के नाम से जाना जाता है।

'नगरीय समाजशास्त्र सामाजिक क्रियाओं, सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक संस्थाओं पर नगरीय जीवन के प्रभाव का और नगरीय जीवन के ढंग पर आधारित और उससे विकसित सभ्यता के प्रकारों की विवेचना करता है।

2. **नेल्स एंडरसनः-** मुख्य रूप से ग्रामीण तथा नगरीय, दो प्रकार के सामुदायिक समाजशास्त्र हैं और प्रत्येक को उसके अनुशासन से जाना जाता है। ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र ग्रामीण समाज है, जबकि नगरीय समाजशास्त्र का सम्बन्ध कस्बों तथा नगरों से है।

3. **हाबहाउसः-** नगरीय समाजशास्त्र नगर के जीवन और समस्याओं का विशिष्ट अध्ययन है।

4. **इरिक्सनः-** एक समाजवैज्ञानिक के रूप में वह (नगरीय समाजशास्त्री) उस सम्पूर्ण जटिल परिस्थिति एवं उन अन्तःसम्बन्धों में रुचि रखता है, जो नगरीय सामाजिक जीवन का निर्माण करता है। वह किसी एक पक्ष में नहीं बल्कि नगरीय सामाजिक संसार के प्रत्येक अंग की विवेचना करता है।

बर्गेल ने इस परिभाषा में नगरीय जीवन की अवधारणा को विस्तृत करने का प्रयास किया है। उसकी परिभाषा में मुख्य दो तत्व हैः-

NOTES

(a) नगरीय समाजविज्ञान की परिभाषा के अंतर्गत निम्न तीन तत्वों का अध्ययन किया जाता है:

(i) सामाजिक क्रियायें,

(ii) सामाजिक सम्बन्ध और

(iii) सामाजिक संस्थायें।

(b) (i) सभ्यताओं के प्रकारों (विविध सभ्यताओं) से उत्पन्न प्रभाव।

(ii) शहरी जीवन पद्धति (नगरीयता)।

5. **एण्डरसन:–** नगरीय समाजशास्त्र कस्बों तथा नगरों के जीवन एवं समाज से सम्बन्धित है। एण्डरसन ने इस परिभाषा में नगरीय समाजविज्ञान के क्षेत्र निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित किया है:

(a) नगरीय समाजविज्ञान का सम्बन्ध मात्र नगर और कस्बों से है, तथा

(b) नगरीय समाजविज्ञान इन नगरों और कस्बों में निवास करने वाले व्यक्तियों के समाज और जीवन का अध्ययन है।

6. **लॉरी नेल्सन:–** "नगरीय समाजविज्ञान, नगरीय पर्यावरण में मनुष्यों के तथा नगरीय समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन है।"

नेल्सन की परिभाषा में नगरीय, समाजविज्ञान के अन्तर्गत निम्नलिखित दो तत्वों को सम्मिलित किया गया है:

(a) नगरीय समाजविज्ञान, नगरीय पर्यावरण के अध्ययन से सम्बन्धित है, और

(b) इस पर्यावरण में निवास करने वाले मनुष्यों तथा समूहों के पारस्परिक सम्बन्धों का अध्ययन नगरीय समाजविज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

हाब हाउस के शब्दों में "नगरीय समाजशास्त्र जीवन और समस्याओं का विशिष्ट अध्ययन है।"

नगरीय समाजशास्त्र की विषय-वस्तु
(Subject Matter of Urban Sociology)

प्रत्येक ज्ञान की शाखा की अपनी विषय-वस्तु होती है। विषय-वस्तु का सीधा तात्पर्य है क्या पढ़ा जाये और क्या न पड़ा जाये। नगरीय समाजशास्त्र की विषय-वस्तु को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) **परिचयात्मक विषय-वस्तु** (Introductory Subject-Matter)- इस शीर्षक के अन्तर्गत नगरीय समाजशास्त्र की विषय-वस्तु में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जाता है-

(a) **नगरीय पारिस्थितिकी की शास्त्र** (Urban Ecology)- इस शीर्षक के अन्तर्गत नगरीय समाज की परिस्थितियों को सम्मिलित किया जाता है। ये नगरीय परिस्थितियाँ हैं- नगरीय समुदाय की रचना, नगरीय समुदाय का स्वरूप, नगरीय सामाजिक और सांस्कृतिक व्यवस्था आदि।

(b) **नगरीय स्वरूपशास्त्र** (Urban Morphology) - जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है उसके अन्तर्गत नगरीय स्वरूप के विविध पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। नगरीय जीवन के ये स्वरूप सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन के विविध क्षेत्रों से संबंधित होते हैं।

(c) **नगरीय मनोविज्ञान** (Urban Psychology) - इस शीर्षक के अन्तर्गत नगरीय जीवन पद्धति का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। इसमें नगरीय जीवन के मानव व्यवहारों का भी अध्ययन किया जाता है।

(2) **विश्लेषणात्मक विषय-वस्तु** (Analytical Subject-Matter)- नगरीय समाजशास्त्र की विषय-वस्तु का दूसरा भाग विश्लेषण से सम्बन्धित है। इसमें नगर से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं को विश्लेषण के आधार पर समझने का प्रयास किया जाता है। इस शीर्षक के अन्तर्गत जिन बातों को सम्मिलित किया जाता है, वे इस प्रकार हैं:

(a) **नगर** (The City)- इसमें नगर के सभी पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। उदाहरण के लिए नगर क्या है? नगरों की उत्पत्ति और विकास कैसे हुआ? वे कौन से कारण हैं, जो नगरों की उत्पत्ति और विकास के

लिए उत्तरदायी हैं। इसके अन्तर्गत नगर का पर्यावरण, नगर की संस्कृति व्यवसाय, जनसंख्या तथा इसकी विविधता, आदि अवधारणाओं को सम्मिलित किया जाता है।

(b) **समुदाय** (Community) - प्रत्येक समुदाय की अपनी विशेषताएँ होती हैं। नगरीय समुदाय की भी अपनी विशेषताएँ हैं। इन विशेषताओं का विश्लेषण नगरीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। साथ ही नगरीय समुदाय की अवधारणा को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया जाता है।

NOTES

(c) **नगरीकरण** (Urbanization) - नगरीय समाजशास्त्र की विश्लेषणात्मक विषय-वस्तु के अन्तर्गत नगरीकरण का भी अध्ययन किया जाता है। इसके अन्तर्गत नगरीकरण की अवधारणा, इसके कारण और परिणामों का अध्ययन किया जाता हे। इसमें नगरीय समाज के व्यक्तियों के व्यवहार, उनकी आदतों, रहन-सहन के ढंगों, सोच तथा मानसिकता, आदि को सम्मिलित किया जाता है। नगरीकरण के कारण नगरवाद के ढंगों, सोच तथा मानसिकता आदि को सम्मिलित किया जाता है। नगरीकरण के कारण नगरवाद (Urbanism) का विकास हुआ है। नगरीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत इन तथ्यों का भी अध्ययन किया जाता है।

(3) **सुधारात्मक विषय-वस्तु** (Reformative Subject-matter) - इसके अन्तर्गत निम्न विषय-वस्तु को सम्मिलित किया जाता है:

(a) **नगरीय व्याधिकी** (Urban Pathology)- आज नगरीय जीवन अनेक समस्याओं से ग्रस्त है। इन समस्याओं के कारण नगरों की जिन्दगी नारकीय होती जा रही है। नगरीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत इन समस्याओं का अध्ययन किया जाता है तथा इन समस्याओं के समाधान के उपाय खोजे जाते हैं। प्रमुख नगरीय व्याधियां हैं- बाल अपराध, अपराध, श्वेतपोश अपराध, भिक्षावृत्ति, वेश्यवृत्ति, मद्यपान, सामाजिक, पारिवारिक, व्यक्तिगत, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय विघटन, आदि।

(b) **नगरीय योजनाएँ** (Urban Plans) - पुनर्निर्माण (Reconstruction) का कार्य भी नगरीय समाजशास्त्र के अन्तर्गत किया जाता है। इससे नगरीय समस्याओं के समाधान में मदद मिलती है।

नगरीय समाजशास्त्र का क्षेत्र
(Scope of Urban Sociology)

नगरीय समाजविज्ञान नगरीय पर्यावरण में पाये जाने वाले समस्त सम्बन्धों और घटनाओं का अध्ययन है, जिसमें नगरीय जनसंख्या, नगरों की उत्पत्ति, विकास और प्रकार, नगरीय विवाह और परिवार, नगरीय आर्थिक संस्थाएँ, व्यवसाय और उत्पादन के ढंग सम्मिलित हैं। संक्षेप में, नगर का अध्ययन करना नगरीय समाजविज्ञान का मुख्य उद्देश्य है। यह एक अत्यंत ही विस्तृत विज्ञान है और इसके अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत नगरीय सामाजिक जीवन के समस्त पहलू आ जाते हैं। इस प्रकार नगरीय समाजविज्ञान अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक विज्ञान है। यह नगरीय समाज के केवल वर्तमान स्वरूप के अध्ययन से सम्बन्धित नहीं है, अपितु उसके भूत और भविष्य का भी अध्ययन करता है।

यह विज्ञान मानव ज्ञान की अत्यन्त ही गहन शाखा है यदि हम आधुनिक मानव जीवन को समझना चाहते हैं तो नगरीय समाजविज्ञान का ज्ञान अनिवार्य है। यह समय और परिस्थितियों का भी अध्ययन करता है और साथ ही उन कारकों का भी जो वर्तमान समय और परिस्थिति को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं:

पार्क और बर्जेस ने नगरीय समाजविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत निम्नलिखित तीन तथ्यों को सम्मिलित किया है:

1. **परिस्थितिशास्त्र** (Ecology)— नगरीय परिस्थितिशास्त्र के अन्तर्गत उन भौगोलिक और प्राकृतिक परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है जो नगरों में पायी जाती हैं। प्रत्येक नगर कुछ विशिष्ट परिस्थितियों से जुड़े हुए होते हैं। इन परिस्थितियों का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? पार्क और बर्जेस ने परिस्थितिशास्त्र को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है:

(a) मानव परिस्थितिशास्त्र (Human Ecology), और

(b) सामाजिक परिस्थितिशास्त्र (Social Ecology)।

पार्क और बर्जेस ने नगरीय जीवन के समाजशास्त्रीय अध्ययन अमेरिका के शिकागो नामक नगर में किये थे। ऐरिक्सन ने लिखा है कि "शिकागो अध्ययन प्राथमिक रूप से परिस्थितिशास्त्रीय थे"।

NOTES

2. **सामाजिक संगठन** (Social Organisation)— नगरीय समाजविज्ञान गहन रूप से नगरीय सामाजिक संगठन से सम्बन्धित है। नगरीय सामाजिक संगठन के अन्तर्गत प्राथमिक और द्वितीयक समूहों तथा अनेक संस्थाओं को सम्मिलित किया जाता है, उदाहरण के लिए- परिवार, आर्थिक संस्थाएँ, मनोरंजनात्मक संस्थाएँ तथा राजनैतिक संस्थाएँ आदि। विभिन्न वर्ग और सामाजिक संस्थाओं को भी नगरीय समाजविज्ञान के अध्ययन क्षेत्र के अन्तर्गत किया जाता है।

3. **सामाजिक विघटन** (Social Disorganisation)— नगरीय जीवन अनेक तनावों, चिंताओं और सामाजिक समस्याओं से परिपूर्ण होता है। इनके परिणामस्वरूप नगरीय जीवन के अनेक विघटन मूलक स्थितियाँ निर्मित हो जाती हैं, इसीलिए नागरिक जीवन से उत्पन्न सामाजिक विघटन के अध्ययन पर बल दिया जाता है। नगरीय समाजविज्ञान में जिन प्रमुख विघटनकारी समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, वह प्रमुख इस प्रकार है -

आत्महत्या, गुंडागर्दी, हिंसा, अपराध, बाल-अपराध, मद्यपान, वेश्वावृत्ति इत्यादि।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि नगरीय समाजविज्ञान नगरीय जीवन और घटनाओं से सम्बन्धित है। नगरीय सामाजिक घटनाएँ अनन्त हैं, इन्हें विशिष्ट वर्गों में बाँटकर नहीं रखा जा सकता है। इसलिए नगरीय समाजविज्ञान के क्षेत्र को भी स्पष्ट रूप से परिभाषित करना कठिन है। सामान्य तौर से नगरीय समाजविज्ञान के क्षेत्र के अन्तर्गत जिन प्रमुख तथ्यों का अध्ययन किया जाता है उन तथ्यों का निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है:

(1) **नगरीय समुदाय** (Urban Community)— नगरीय समाजविज्ञान को नगरीय समुदाय का अध्ययन कहकर सम्बोधित किया जा सकता है, अर्थात् इस ज्ञान के अन्तर्गत नगरीय सामुदायिक जीवन के समस्त पहलुओं का अध्ययन किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत नगरीय संरचना और इसके कार्यात्मक सम्बन्धों की विवेचना भी की जाती है।

(2) **नगरीय सामाजिक संगठन** (Urban Social Organisations)— नगरीय समाजविज्ञान के अन्तर्गत नगरीय समाज के समस्त संगठनात्मक पहलुओं का अध्ययन किया जाता है। परिवार, विवाह, गोत्र और वंश परम्परा आदि ऐसे अनेक तत्व हैं जिनका नगरीय सामाजिक संगठन के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है। यहाँ प्राथमिक संगठनों की अपेक्षा द्वैतीयक संगठन अत्यधिक क्रियाशील और प्रभावशाली होते हैं। नगरीय जीवन की अधिकतर संस्थाएँ और संगठन द्वैतीयक समूहों पर आधारित होते हैं। नगरीय सामाजिक संगठन का आधार नगरीय परिवार भी है।

(3) **सामाजिक संरचना** (Social Structure)— नगरीय समाजविज्ञान नगरीय सामाजिक संरचना का भी अध्यन करता है। इसके अन्तर्गत उन समस्त कारकों और परिस्थितियों का अध्ययन किया जाता है कि नगरीय संरचना का निर्माण करते हैं। इसके अन्तर्गत इस बात का भी अध्ययन किया जाता है कि सामाजिक संरचनाएँ किन मौलिकताओं पर आधारित होती हैं।

(4) **आर्थिक जीवन** (Economic Life)— नगरीय जीवन भौतिकता का केन्द्र होता है, इसलिए वहाँ आर्थिक, क्रियाओं को सर्वाधिक प्राथमिकता दी जाती है। इस शास्त्र के अन्तर्गत नगरीय आर्थिक संस्थाओं का अध्ययन किया जाता है। नगरीय जीवन में अर्थव्यवस्था का आधार उद्योग होते हैं। इन व्यवसायों का नगरीय जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

(5) **राजनैतिक जीवन** (Political Life)— नगरीय जीवन राजनैतिक दृष्टि से अत्यधिक जागरूक होता है, इसलिए नगरीय समाजविज्ञान के अन्तर्गत राजनैतिक संस्थाओं को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। नगरीय जीवन में विभिन्न प्रकार की राजनैतिक संस्थाएँ और मतमतान्तर वाले व्यक्ति होते हैं। नगरीय राजनैतिक जीवन वर्ग विभिन्नि प्रकार के संगठनों पर आधारित रहता है।

(6) **धार्मिक जीवन** (Religious Life)— विद्वानों की यह धारणा है कि नगरों में धर्म को विशेष महत्व नहीं दिया जाता है। यह सही है कि ग्रामीण जीवन की अपेक्षा नगरीय जीवन धार्मिक अत्यधिक नास्तिक होता है किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नगरों में धर्म को महत्व नहीं दिया जाता है। नगरीय जीवन भी धर्म प्रधान होता है, किन्तु वहाँ धर्म परायणता धर्म निरपेक्षता के अधीन होते है। नगरीय जीवन में धर्म का परम्परागत स्वरूप नहीं होता है। वहाँ धर्म को एक शक्ति के रूप में स्वीकार किया जाता है।

(7) **सामाजिक प्रक्रियाएँ** (Social Processess)— व्यक्ति के जीवन में सामाजिक प्रक्रियाओं की सर्वाधिक भूमिका महत्वपूर्ण होती है। नगरीय जीवन में यद्यपि सहयोगी प्रक्रियाएँ भी होती हैं, किन्तु इनकी अपेक्षा सहयोगी या विभेदीकरण करने वाली प्रक्रियाओं का स्थान महत्वपूर्ण होता है। इन प्रक्रियाओं का नगरीय पर्यावरण के साथ अध्ययन किया जाता है।

(8) **सामाजिक परिवर्तन** (Social Change)— परिवर्तन एक निरंतर प्रक्रिया है। सामाजिक उद्विकास और प्रगति परिवर्तन पर ही आधारित है। परिवर्तन की यह प्रक्रिया सभी जगह पायी जाती है, किन्तु नगरीय जीवन में परिवर्तन की यह गति अत्यन्त तीव्र होती है। नगरीय समाजविज्ञान के अन्तर्गत उन परिवर्तनकारी तत्वों का अध्ययन किया जाता है जो नगरीय जीवन को प्रभावित करते हैं तथा अनेक समस्याओं को जन्म देते हैं। आधुनिक परिवर्तनशील युग में इसीलिए सामाजिक परिवर्तनों को अत्यधिक महत्व दिया जाता है।

NOTES

उपर्युक्त विवेचना से ऐसा स्पष्ट होता है कि नगरीय समाजविज्ञान नगरीय समाज के समस्त पक्षों के अध्ययन से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में इसके द्वारा नगरीय पर्यावरण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करने का प्रयास किया जाता है। एरिक्सन ने नगरीय समाजविज्ञान के क्षेत्र की विवेचना करते हुए लिखा है कि 'एक समाज वैज्ञानिक के रूप में समस्त जटिल परिस्थितियों एवं उन समस्त अन्तः क्रियाओं में रुचि रखता है, जो नगरीय सामाजिक जीवन का निर्माण करते हैं। वह किसी एक पक्ष नहीं, बल्कि नागरिक सामाजिक संसार के समस्त पहलुओं का विवेचन करता है।''

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examination)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. नगरीय समाजशास्त्र की अवधारणा की विवेचना कीजिए।
   Discuss the concept of Urban Sociology.
2. नगरीय समाजशास्त्र की व्याख्या कीजिए। इसका क्षेत्र लिखिए।
   Define Urban Sociology. Write its scope.
3. नगरीय समाजशास्त्र नगरों का अध्ययन है। इस कथन की विवेचना करते हुए नगरीय समाजशास्त्र की विषय-वस्तु लिखिए।
   Urban Sociology is the study of cities. Write the subject-matter of Urban Sociology by describing the above statement.
4. नगरीय समाजशास्त्र पर्यावरण का व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का विशेष अध्ययन है।
   The Urban Sociology is a special study of the influence of environment on man.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. नगरीय समाजशास्त्र को समझाइए।
   Explain Urban Sociology.
2. नगरीय समाजशास्त्र की विषय-वस्तु क्या है?
   What is subject-matter of Urban Sociology.

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

(C) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. किसने कहा 'नगरीय समाजशास्त्र पर्यावरण का व्यक्ति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन है।
   (अ) रसेल (ब) बर्गेल (स) इरिक्सन (द) एण्डरसन
2. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत कितना है-
   (अ) 26.8 (ब) 27.8 (स) 28.8 (द) 29.8
3. नगरीय समाजशास्त्र की विषय-वस्तु नहीं है।
   (अ) नगर (ब) नगरीकरण (स) नगरवाद (द) गांव

उत्तर- 1. (ब), 2. (ब), 3. (द)

●●●

NOTES

3

ग्रामीण समाजशास्त्र एवं नगरीय समाजशास्त्र का महत्व
(IMPORTANCE OF RURAL SOCIOLOGY AND URBAN SOCIOLOGY)

ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व
(Importance of Rural Sociology)

ग्रामीण समाजशास्त्र के महत्व से तात्पर्य है कि इसका अध्ययन क्यों किया जाता है। इस विषय के अध्ययन से व्यक्ति और समाज को क्या लाभ है? समाज में इस विषय की क्या उपयोगिता है। व्यक्ति और समाज के सम्बन्धों के अध्ययन में ग्रामीण समाजशास्त्र की क्या उपयोगिता है? समाज विज्ञान के होते हुए भी ग्रामीण समाजशास्त्र की क्या आवश्यकता है? इन सभी प्रश्नों के उत्तर में ग्रामीण समाजशास्त्र की उपयोगिता निहित है। वास्तव में ग्रामीण समाज का क्रमबद्ध अध्ययन है तथा इसके ज्ञान की सहायता से ग्रामीण सम्बन्धों की व्यवस्थित व्याख्या की जा सकती है। व्यक्ति और समाज दोनों अन्तःसम्बन्धित हैं। समाज के अभाव में वह नहीं रह सकता है। ग्रामीण समाज का ही अभिन्न है। ग्रामीण समाजशास्त्र के अंतर्गत ग्रामीण सम्बन्धों, ग्रामीण व्यवस्था, ग्रामीण प्रगति एवं ग्रामीणों के व्यक्तित्व का ही व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है। अतः इस विज्ञान की उपयोगिता सहज रूप में की जा सकती है।

आधुनिक युग में ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व निम्न कारणों से है–

(1) मानव सम्बन्धों का विज्ञान– ग्रामीण समाजशास्त्र के अन्तर्गत मानव सम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। ग्रामीण समाज में मनुष्यों के सम्बन्ध प्राथमिक होते हैं। ऐसा कोई भी विज्ञान नहीं होता है जो इन प्राथमिक सम्बन्धों का व्यवस्थित अध्ययन करे। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सम्बन्धों का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन करता है। इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व सर्वोपरि है।

(2) ग्रामीण जनसंख्या का अध्ययन– वास्तव में भारतवर्ष एक ग्राम-प्रधान देश है। समस्त समाज ही हजारों वर्षों से ग्रामीण रहा है। जैसा कि **लौरी नेल्सन** ने लिखा है, "अभी थोड़े समय से पूर्व तक के मनुष्य की कहानी अधिकतर ग्रामीण मनुष्य की कहानी है।"

यही नहीं, अधिकतर जनता आज भी गाँवों में निवास करती है। गाँवों की प्रगति क्यों जरूरी है? उनके विकास के लिए कैसी व्यवस्था बनाई जाए? गाँवों में रहने वाले लोगों के जीवन-स्तर को कैसे बढ़ाया जाए? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो ग्रामीण-व्यवस्था एवं प्रगति से सम्बन्धित हैं। इन सबका अध्ययन ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण परिवेश में करता है तथा ग्रामीण विकास से सम्बन्धित योजनाओं को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व सर्वाधिक है।

(3) ग्रामीण जीवन का सम्पूर्ण ज्ञान– ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन का महत्व इस दृष्टि से भी है कि सम्पूर्ण ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में ज्ञान कराता है। ग्राम्य जीवन के विभिन्न पहलुओं एवं घटनाओं तथा घटनाओं का अध्ययन इस विषय के क्षेत्र के अन्तर्गत आता है, जिसकी जानकारी इस शास्त्र के माध्यम से लोगों को प्राप्त होती है।

(4) ग्राम सुधार– ग्रामीण समाजशास्त्र ग्राम सुधार से सम्बन्धित योजनाओं की रूपरेखा तैयार करता है जिसे कि निम्न रूप में समझा जा सकता है:

(i) **ग्रामीण इकाइयों का संगठन**– भारतवर्ष में ग्राम इकाई है। गाँवों की व्यवस्था को बनाये रखने के लिए इनका संगठन किया जाता है। जैसा कि **डॉ. देसाई** लिखते हैं- "ग्राम ग्रामीण समाज की इकाई है। यह वह रंगमंच है जहाँ पर कि ग्रामीण जीवन-राशि एवं कार्यों को स्वयं के द्वारा उन्मूलित किया जाता है। प्रत्येक सामाजिक पर्यावरण की भाँति ग्राम भी एक ऐतिहासिक श्रेणी है।"

इस सम्बन्ध में **एस.सी. दुबे** के विचार भी उल्लेखनीय हैं- "अनादि काल से ग्राम भारतीय सामाजिक राजतंत्र की आधारभूत एवं महत्वपूर्ण इकाई रहता चला आया है।"

ग्रामीण समाजशास्त्र ग्राम सुधार के लिए एक इकाई के रूप में उनके संगठनात्मक पक्ष पर विशेष जोर देता है। जिससे कि सुधार की योजनाएँ सफल हो सकें और ग्रामों का विकास हो सके।

(ii) **आर्थिक स्तर को उच्च करना**– ग्रामीण समाजों में प्रायः यह देखा जाता है कि आर्थिक दृष्टि से लोग सम्पन्न नहीं होते। इसका एकमात्र कारण उनके विचार एवं कार्य-पद्धतियाँ हैं। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र उनके प्रत्येक परिस्थिति का अध्ययन कर उनके विचारों एवं कार्य-पद्धतियों में परिवर्तन लाता है और उनके आर्थिक स्तर को बढ़ाने में मदद करता है। इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व और अधिक बढ़ जाता है।

(iii) **कृषि उत्पादन में वैज्ञानिक व्यवस्था एवं सुधार लाना**– गाँवों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। अभी तक इस देश में कृषि कार्य अवैज्ञानिक ढंग से होता रहा है जिसके कारण उत्पादन भी कम मात्रा में होता रहा है, लेकिन ग्रामीण समाजशास्त्र ग्राम-सुधार की योजनाओं के अन्तर्गत कृषि-यंत्रों, रासायनिक खादों के प्रयोग पर विशेष बल देता है जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि होगी और गाँव उन्नति की ओर अग्रसित होंगे। इस दृष्टि से भी ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व और भी अधिक है।

(iv) **व्याधिशास्त्रीय सामाजिक समस्याओं का समाधान**– प्रायः ग्रामीण समाज में अनेक व्याधिकीय समस्याएँ होती हैं जैसे- रूढ़िवादिता, अन्धविश्वास एवं अन्य सामाजिक कुरीतियाँ जो समाज के लिए बीमारी हैं। इन व्याधिकीय समस्याओं के कारण समाज प्रगति के पथ पर नहीं जा सकता है। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र ग्राम-सुधार की योजनाओं के अन्तर्गत इन समस्याओं का इलाज करता है।

(v) **शिक्षा**– अधिकांशतः गाँवों में रहने वाले लोग अशिक्षित होते हैं। अतः यह विज्ञान उनके शिक्षित होने के लिए स्कूलों आदि की रूप-रेखा प्रस्तुत करता है। शासन उनके द्वारा बताये हुए रास्ते पर चलता है अर्थात् उनके शिक्षा की व्यवस्था के लिए स्कूल एवं शिक्षक की व्यवस्था करता है।

(vi) **विकास योजना**– ग्रामीण समाजशास्त्र ग्राम-सुधार से सम्बन्धित अनेक विकास की योजनाओं को प्रस्तुत करता है जिसे अमल में लाने से ग्रामीण समाज का विकास होता है।

(5) औद्योगिक क्षेत्र में ग्राम को सहयोग प्रदान करना– प्रायः यह देखने को मिलता है कि किसी स्थान विशेष में यदि कच्चा माल पर्याप्त रूप में मिलता है, तो उस स्थान विशेष में औद्योगिक संस्थाओं का विकास हो जाता है। औद्योगिक संस्थाओं का विकास हो जाने के कारण वहाँ के लोगों को वित्तीय सहायता दी जाती है, क्योंकि कृषि-कार्य करने के लिए भूमि उपयुक्त नहीं होती तथापि यहाँ पर औद्योगिक आवास की व्यवस्था भी करनी पड़ती है। ग्रामीण समाजशास्त्री उनके विकास और प्रगति के लिए अनेक योजनाओं का निर्माण करता है जिससे कि उनका विकास हो सके।

(6) कृषि-प्रधान देशों में सर्वाधिक महत्व– ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व उस देश में सर्वाधिक रूप से है जो कृषि-प्रधान देश है। कृषि-व्यवसाय से ही सम्बन्धित अनेक प्रदर्शनियों एवं मेलों का आयोजन किया जाता है। कृषि तकनीक का कृषि-क्षेत्र में प्रयोग हेतु नवीन वैज्ञानिक यंत्रों एवं खादों के प्रति रुचि पैदा करना जिससे वे उसे अपना सके और अधिक से अधिक उत्पादन किया जा सके। उत्पादन के अतिरिक्त अन्य छोटे-मोटे कार्यों को रोकने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है जिससे उसकी स्थिति में सुधार आये और रहन-सहन का स्तर भी उठ सके। इसके अतिरिक्त कृषि व्यवसाय से सम्बन्धित ग्राम-सुधार की अनेक योजनाएँ निर्मित की जाती हैं जो कि ग्रामीणों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं।

(7) समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से महत्व– ग्रामीण समाजशास्त्र का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से भी महत्व है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की ही शाखा है। इस दृष्टिकोण से ग्रामीण समाज में पाये जाने वाले अन्तर्सम्बन्धी प्रक्रियाओं और अन्तःक्रियाओं का यह अध्ययन करता है। यह अध्ययन नवीन वैज्ञानिक पद्धतियों के माध्यम से किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप समाजशास्त्र के क्षेत्र में और अधिक वृद्धि हुई है। अतः निम्न आधारों पर इसके महत्व को भली प्रकार से समझा जा सकता है–

(i) **वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित**– ग्रामीण समस्याओं, घटनाओं एवं अन्तःक्रियात्मक सम्बन्धों का अध्ययन वैज्ञानिक पद्धति के माध्यम से किया जाता है। यह अध्ययन क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित होता है जो कि समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विशेष महत्व रखता है।

(ii) **समाजशास्त्रीय समस्याओं का समाधान**– विकास की प्रारम्भिक अवस्था में समाज विज्ञान में समस्याओं का मोठे तौर पर अध्ययन किया जाता था। उदाहरण के रूप में पारिवारिक विघटन या आदिवासी समस्याएँ

NOTES

आदि। लेकिन आज के युग में यह प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है। इसके स्थान पर समस्या का अध्ययन अति सूक्ष्म रूप में किया जाता है। जैसे– पारिवारिक विघटन में आवारापन की भूमिका। इन समस्याओं का सिर्फ अध्ययन नहीं किया जाता वरन् प्रमुख सामाजिक समस्याओं को दूर करने के लिए उपाय भी बताये जाते हैं जिन्हें प्रयोग में लाने से समस्याओं का समाधान सम्भव होता है।

NOTES

(iii) **समाजशास्त्र का विशिष्ट एवं प्रमुख अंग**– ग्रामीण समाजशास्त्र, समाजशास्त्र की एक शाखा मानी जाती है जो ग्रामीण परिस्थितियों में समस्याओं और घटनाओं का अध्ययन करता है।

(iv) **विशिष्ट पर्यावरण में रहने वाले समुदाय का अध्ययन**– ग्रामीण समाजशास्त्र ऐसे पर्यावरण में रहने वाले समुदाय का भी अध्ययन करता है जो सभ्यता से आज भी दूर है। ऐसे समुदायों का अध्ययन एक पर्यावरण विशेष में उसके विभिन्न पक्षों का व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन करता है। इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र का समाजशास्त्रीय दृष्टि से भी महत्व है।

भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व
(Importance of Rural Sociology in India)

भारत एक ग्राम-प्रधान देश है। भारत को देखना है तो गाँवों में जाकर देखो जहाँ पर वह आबाद है। वास्तव में भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है, तो ऐसी स्थिति में ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व भारत के लिए तो सर्वोपरि है। अतः भारतवर्ष में ग्रामीण समाजशास्त्र के महत्व को निम्न रूप में समझ सकते हैं–

(1) समस्त समाज ग्रामीण है– भारतवर्ष में ग्रामीण समाजशास्त्र की आवश्यकता इसलिए है कि भारतीय जनसंख्या का लगभग 74.3% भाग गाँव में रहता है। अर्थात् जहाँ वर्ष 1951 में 82.7% ग्रामीण अंचलों में रहने वाली आबादी थी, वहीं वर्ष 1991 में 74.3% रह गयी। विकास की दृष्टि से गाँव अभी बहुत पीछे हैं। गाँवों में रहने वाले लोग अन्धविश्वासी, अशिक्षित, अकर्मण्य एवं सामाजिक कुरीतियों से घिरे हैं। अतः इन समस्त समस्याओं को दूर करने के लिए सहज रूप में ही ग्रामीण समाजशास्त्र की आवश्यकता स्वीकार की जा सकती है।

(2) वर्तमान समाज का अधिकतर ग्रामीण होना– वास्तव में भारतीय ग्रामीण समाज दरिद्रता का सूचक है। कृषि-प्रधान देश होते हुए भी लोग अन्नाभाव में भूखे मरते हैं। इसका मात्र कारण यह है कि हल, बैल और बीज वही पुराने रूप में ही हैं। जैसे कि **डॉ. देसाई** लिखते हैं- "भारतीय ग्रामीण जीवन वास्तविक विपत्ति, सामाजिक पतन, सांस्कृतिक पिछड़ेपन और इन सबसे अधिक सबके ऊपर छाये हुए संकट-काल का एक दृश्य प्रदान करता है।"

इस स्थिति को दूर करने के लिए हमें ग्रामीण समाजशास्त्र की अत्यधिक आवश्यकता है।

(3) भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत ग्राम– सचमुच में भारतीय संस्कृति के मूल स्रोत ग्राम ही हैं। अतः भारतीय संस्कृति एवं समाज को पूर्ण रूप से समझने के लिए ग्राम को समझना जरूरी है। इस प्रकार से स्पष्ट होता है कि ग्रामीण समाजशास्त्र भारत के लिए विशेष महत्व रखता है।

(4) सामाजिक विकास के लिए समाज का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है– ज्ञान के अभाव में हम ग्रामीण समस्याओं को नहीं सुलझा सकते और न ही ग्रामीण विकास से सम्बन्धित कोई योजना ही सफल हो सकती है। इस उद्देश्य की पूर्ति ग्रामीण समाजशास्त्र करने में सक्षम है। अतः इस विज्ञान की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।

(5) ग्रामीण समाजशास्त्र भारतीय ग्रामीण ढाँचे के विघटित रूप को संगठित करने में सक्षम– प्रायः यह देखने को मिलता है कि भारतीय ग्राम समाज विघटन की स्थिति से होकर गुजरता है। इसका मात्र कारण समाज में असन्तुलन की स्थिति का पैदा हो जाना है। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र सन्तुलन बनाये रखने की क्षमता रखता है।

(6) ग्रामीण क्षेत्र नागरिक जनसंख्या के स्रोत हैं– अपनी जीविका की तलाश में लोग गाँव से नगर की ओर आते हैं अतः नगरों में जनसंख्या की अधिकता हो गई है। भारतवर्ष में जितने भी नगर हैं वहाँ पर गाँवों से ही लोग आकर आबाद हुए हैं। आखिरकार गाँवों से लोग नगर की ओर क्यों गये? कौन-सी ऐसी परिस्थिति थी जिसने नगर में जाने को मजबूर किया आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जिनका ठोस उत्तर ग्रामीण समाजशास्त्री परिस्थितियों को ध्यान में रखकर दिया जा सकता है। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र ऐसी परिस्थितियों का भी अध्ययन करता

है जिन परिस्थितियों के कारण व्यक्ति नगर की ओर आकर्षित होता है। इस प्रकार अध्ययन कर उसका समाधान भी प्रस्तुत है।

(7) सामाजिक जीवन में ग्रामों का अधिक महत्व है– सहयोग सामाजिक जीवन का प्राण कहा जा सकता है। सहयोग और प्रेम जैसी भावना गाँवों में अधिक देखने को मिलती है अपेक्षाकृत नगरीय समाज के। ग्रामीण समाजशास्त्र समाज की व्यवस्था को बनाये रखने के लिए प्रेम, कर्त्तव्य, सहयोग और सहानुभूति को जागृत करता है।

(8) भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र की आवश्यकता– वास्तव में ग्रामीण समाजशास्त्र ग्रामीण सामाजिक समस्याओं, घटनाओं एवं प्रक्रियाओं का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित अध्ययन करने में अन्य विद्वानों की अपेक्षा अधिक सफल है क्योंकि इसका वास्तविक अध्ययन ग्रामीण परिस्थिति में ही रहकर किया जा सकता है। ग्रामीण समाजशास्त्र जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, यह ग्रामीण समुदाय को समाज का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। यह विघटनकारी तत्वों का अध्ययन कर ग्रामीण समाज को संगठित करने में अपनी सहमति प्रदान करता है। अतः भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था एवं प्रगति के लिए ग्रामीण समाजशास्त्र की अत्यधिक आवश्यकता है।

(9) विशेष अध्ययन सम्भव– भारतीय ग्रामीण समाज का अध्ययन करने के लिए हमें कुछ विशेष प्रकार का अध्ययन करना पड़ेगा। जैसे– ग्रामीण परिवार का अध्ययन अथवा जाति-प्रथा का अध्ययन आदि। चूँकि जाति-प्रथा का अध्ययन भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र की सहायता से किया जा सकता है।

(10) भारतीय ग्रामीण समाज का अन्य विभागों में महत्व– ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व केवल ग्रामीण समस्याओं एवं घटनाओं तक ही सीमित नहीं है वरन् शासकीय विभागों में भी इसका महत्व सर्वोपरि है। ये प्रमुख विभाग निम्न हैं–

(i) योजना विभाग।
(ii) सामुदायिक विकास।
(iii) पंचायत एवं समाज कल्याण।
(iv) श्रम कल्याण विभाग।
(v) हरिजन एवं वन्य जातीय कल्याण विभाग।
(vi) भूदान एवं ग्रामदान आन्दोलन।
(vii) ग्रामीण पुनर्निर्माण की अन्य शाखाएँ।
(viii) समाज कल्याण बोर्ड।
(ix) रेलवे कल्याण विभाग।
(x) सहकारिता।
(xi) ग्राम स्वास्थ्य।
(xii) शिक्षा।

उपर्युक्त वर्णित भागों में ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व और भी अधिक है। ग्रामीण विकास से सम्बन्धित जितने भी विभाग हैं, उनमें इस विषय के विशेषज्ञ को प्राथमिकता दी जाती है। अतः ग्रामीण समाजशास्त्र के महत्व भारतवर्ष के लिए सबसे अधिक हैं।

नगरीय समाजशास्त्र का महत्व
(Importance of Urban Sociology)

नगरीय समाजविज्ञान के अध्ययन से क्या लाभ है? समाज और राष्ट्र की दृष्टि से इस विषय की क्या उपयोगिता है? व्यक्ति और समाज तथा सामाजिक सम्बन्धों के अध्ययन में नगरीय समाजविज्ञान की क्या आवश्यकता है? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर में नगरीय समाजविज्ञान का महत्व समाहित है। यह विज्ञान नगरीय समाज का व्यवस्थित, क्रमबद्ध और वैज्ञानिक अध्ययन है। नगरीय समाजविज्ञान सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्थित व्याख्या है। सदियों पहले अरस्तु ने लिखा था कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति में सामाजिकता के विकास के लिए समाज अनिवार्य इकाई है। नगरीय समाज सम्पर्ण समाज का एक भाग है। आधुनिक युग में नगरीय समाज में अत्यधिक जटिलता का विकास होता जा रहा है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप नगरीकरण में शीघ्रता से वृद्धि होती जा रही है। इस दृष्टि से नगरीय समाजविज्ञान का अध्ययन और भी महत्वपूर्ण है। नगरीय जीवन आधुनिक सभ्यता और संस्कृति का एक अंग होता जा रहा है। नगर फैशन के भी प्रतीक हो गये हैं। सामान्य धारणा के अनुसार गाँव परम्परा और रूढ़ियों के केन्द्र मात्र बनकर रह गये हैं। ग्रामीण जीवन में सुरक्षा और सुविधाओं के अभाव के कारण भी नगर आकर्षण के केन्द्र बनते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में यह आवश्यक हो जाता है कि नगरीय जीवन के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त किया जाये। नगरीय समाजविज्ञान ही मानव ज्ञान की एक ऐसी शाखा है, जिसमें नगरीय जीवन का व्यवस्थित और वैज्ञानिक अध्ययन किया जा सकता है।

NOTES

NOTES

निम्न कारणों से नगरीय समाजविज्ञान का महत्व अत्यधिक है-

1. **मानव ज्ञान की एक शाखा** (A Branch of Human Knowledge) : नगरीय समाजविज्ञान का मानव ज्ञान की एक शाखा के रूप में अत्यधिक महत्व है। समाज में मानव ज्ञान से सम्बन्धित अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ हैं। ज्ञान की यह विभिन्न शाखाएँ सम्बन्धित क्षेत्रों के अध्ययन तक सीमित हैं। नगरीय समाजविज्ञान मानव ज्ञान की एक ऐसी शाखा है, जो नगरीय परिस्थितियों के संदर्भ में व्यक्ति और समाज का अध्ययन करती है। इसकी सहायता से हमें नगरीय जीवन की जटिलताओं को समझाने में मदद मिलती है। नगरीय समाजविज्ञान की सहायता से हम नगरीय जीवन को सफलता की ओर ले जा सकते हैं।

2. **नगरीय समाज का वैज्ञानिक अध्ययन** (Scientific Study of Urban Society) : नगरीय समाजविज्ञान के अध्ययन का दूसरा महत्व नगरीय समाज के वैज्ञानिक अध्ययन से है। यह सम्पूर्ण नगरीय जीवन का चित्र प्रस्तुत करता है। अनेक सामाजिक समूह और संस्थाएँ होती हैं, जो नगरीय समाज की संरचना (Structure) का निर्माण करते हैं। इन विभिन्न संस्थाओं और समूहों का नगरीय सामाजिक जीवन में क्या योगदान है? इसका ज्ञान भी हमें नगरीय समाजविज्ञान के अध्ययन के द्वारा प्राप्त होता जाता है, संकीर्णता समाप्त होती जाती है। नगरीय समाज में निवास करने वाले व्यक्तियों के विचार और दृष्टिकोण वृहद् होते हैं। इस प्रकार नगरीय जीवन के बारे में व्यवस्थित ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से भी नगरीय समाज विज्ञान का महत्व है।

3. **नगरीय समाज की समस्याओं को सुलझने में सहायक** (Helpful in Solving the Problems of Urban Society) : नगरीय समाज जटिल होता है। यहाँ सामाजिक समस्याओं की संख्या अधिक है और इनकी प्रकृति अत्यन्त जटिल है। नगरीय समाज की समस्याओं को सुलझाने के लिए इनकी प्रकृति की जटिलता और कारणों का ज्ञान अनिवार्य है। इसका व्यवस्थित और वैज्ञानिक ज्ञान नगरीय समाजविज्ञान के द्वारा प्राप्त होता है, क्योंकि नगरीय समाजविज्ञान में नगरीय समाज की परिस्थितियों से सम्बन्धित समस्याओं, उनकी प्रकृति और उपचार के साधनों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार नगरीय समाजविज्ञान का महत्व नगरीय समाज में व्याप्त सामाजिक समस्याओं को समझाने और इन समस्याओं को सुलझाने की दृष्टि से भी है।

4. **नगरवाद और उसका आकर्षण** (Urbanism and its Attraction) : नगरवाद नगरीय जीवन की एक विशिष्ट प्रणाली है। इसका तात्पर्य नगरीय जीवन की दशा से है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप नगरवाद को प्रोत्साहन मिलता है। बर्थ ने लिखा है कि "नगरवाद अब सामान्यतः जीवन के एक माध्यम से रूप में स्वीकार किया जाता है।"

आधुनिक युग में नगरवाद फैशन के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है। नगरों में आवास की प्रवृत्ति अत्यन्त ही प्रबल है। इसमें जनसंख्या का आकार (Size of Population) बढ़ा है और विविधतापूर्ण हुआ है। एक ही स्थान पर अनेक धर्म, सम्प्रदाय, विश्वास और विचारधाराओं के व्यक्ति निवास करते हैं। आवास की समस्या के परिणामस्वरूप गन्दी बस्तियों का विकास हुआ है। व्यक्ति इन गन्दी बस्तियों में निवास करने के कारण अनेक स्वास्थ्यमूलक और मानसिक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति समाज के साथ सन्तुलन स्थापित करने में असमर्थ रहते हैं। इससे समस्याएँ और भी जटिल हो जाती हैं। इन समस्याओं को समाप्त करने और नगरीय समाज को व्यवस्थित बनाने की दृष्टि से भी नगरीय समाजविज्ञान का अत्यंत ही महत्व है।

5. **सामाजिक अन्तःक्रियाओं का ज्ञान** (Knowledge of Social Interactions) : व्यक्ति के सामाजिक जीवन में अन्तःक्रियाओं का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। अन्तःक्रियाओं के ज्ञान के द्वारा समाज में सरलता से एकीकरण की व्यवस्था की जा सकती है। सामाजिक जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान सहयोग, अनुकूल और आत्मसात् के द्वारा किया जा सकता है। इतिहासकारों का विचार है कि इतिहास स्वयं को दोहराता है (History repeats itself)। आज की दुनिया अनेक युद्धों और क्रांतियों के परिणामों को भुगत रही है और तीसरे विश्व युद्ध की तैयारी कर रही है। इसका कारण - सामाजिक समस्याओं का अंतःक्रियाओं के माध्यम से सुलझाया न जा सकता है। नगरीय जीवन की समस्याओं के मूल में यही अन्तःक्रियाएँ होती है। नगरीय समाजविज्ञान का महत्व इसलिए है कि इसकी सहायता से हमें नगरीय अन्तः क्रियाओं के बारे में ज्ञान होता है।

6. **सामाजिक पुनर्निर्माण में सहायक** (Helpful in Social Reconstruction) : समस्याओं से ग्रस्त प्रत्येक समाज को पुनर्निर्माण की आवश्यकता होती है। पुनर्निर्माण वह आधार है जिसके द्वारा सामाजिक समस्याओं का निदान करके समाज को सन्तुलित और व्यवस्थित बनाया जाता है। मौलिक प्रश्न यह है कि पुनर्निर्माण का

आधार क्या हो? सामाजिक पुनर्निर्माण का आधार उसी समाज में व्याप्त सिद्धांतों पर आधारित होना चाहिए। ऐसा करने से सामाजिक पुनर्निर्माण में सहायता मिलती है। जैसा कि लिखा जा चुका है कि नगरीय समाज का विघटन होता जा रहा है। नगरीय समाज को पुनः संगठित करने के लिए पुनर्निर्माण आवश्यक है। नगरीय समाजविज्ञान मानव ज्ञान की वह शाखा है, जिसमें नगरीय समाज में पुनर्निर्माण की विवेचना की जाती है। इसलिए नगरीय समाज के पुनर्निर्माण के लिए नगरीय समाजविज्ञान का ज्ञान आवश्यक है।

NOTES

7. **आर्थिक समस्याओं का निवारण** (Eradication of Economic Problems) : नगरीय जीवन में अनेक प्रकार की समस्याएँ होती हैं। इन समस्याओं में बेरोजगारी, निर्धनता, आवास की समस्या, आर्थिक असंतुलन की समस्या आदि प्रमुख हैं। अतः इससे सम्बन्धित अनेक समस्याओं को अपने आप ही उद्‌भव हो जाता है। इन समस्याओं का समाधान करना नगरीय जीवन और समाज के लिए आवश्यक है। नगरीय समाजविज्ञान के ज्ञान की सहायता से अनेक आर्थिक समस्याओं का निदान किया जा सकता है।

8. **सामाजिक विघटन के प्रति जागरूकता** (Consciousness about Social Disorganization): समाज में जब इनकी संरचना अपने कार्यात्मक संतुलन को खो देती है तो वह समाज विघटित होने लगता है। व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामुदायिक विघटन मिलकर सम्पूर्ण समाज को ही विघटित कर देते हैं। नगरीय परिवारों में विघटन की प्रक्रिया गतिशील रहती है। आत्महत्या, वेश्यावृत्ति, मद्यपान, जुआ, अपराध और बाल अपराध मिलकर व्यक्तिगत विघटन की आधारशिला तैयार करते हैं। व्यक्तिगत और पारिवारिक विघटन मिलकर अपने आप ही समुदाय को विघटित कर देते हैं। समाज में विघटन के अनेक कारणों में जागरूकता की कमी प्रमुख कारण है। इसका कारण यह है कि विघटन का कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं होता है। नगरीय समाजविज्ञान उपर्युक्त सभी समस्याओं का गम्भीरता के साथ वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। साथ ही, सामाजिक विघटन के प्रति जागरूकता का विकास भी करता है। इस जागरूकता के कारण व्यक्तियों में विघटन के कारणों की जानकारी प्राप्त होती है और वह इन कारणों के निवारण का भी प्रयास करते हैं। इससे सामाजिक विघटन को कम करने की दृष्टि से भी नगरीय समाजविज्ञान का ज्ञान उपर्युक्त है।

9. **नगरीय नियोजन में सहायक** (Helpful in Town Planning) : वर्तमान शताब्दी में नगरीय नियोजन को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है। आधुनिक युग में नगर अनेकानेक समस्याओं से ग्रस्त हैं, इसलिए भी इनके नियोजन की आवश्यकता है। नगर के नियोजन के लिए मास्टर प्लान की आवश्यकता होती है। अतः नगरों का नियोजन आधुनिक सभ्य समाज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। आज नगरीकरण और औद्योगीकरण में तीव्रता से वृद्धि होती जा रही है। इस वृद्धि को व्यवस्थित करने के लिए नियोजन अनिवार्य है। नियोजन के अभाव में अनेक समस्याओं का जन्म और विकास होता है। नगरीय समाजविज्ञान में नगर नियोजन का विशेष अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन की दृष्टि से भी नगरीय समाजविज्ञान का अत्यधिक महत्व है।

10. **नगरीय विकास में सहायक** (Helpful in Town Development) : नगरीय नियोजन का मूल उद्देश्य नगरीय विकास करना होता है, उदाहरणार्थ- ऐसे कार्यक्रमों को संचालित और निर्देशित करना, जिनकी सहायता से नगरीय समुदाय के विकास को गति प्रदान की जा सके। ऐसा करने के लिए नगरीय समाजविज्ञान का ज्ञान महत्वपूर्ण है। इसका कारण यह है कि नगरीय विकास और उन्नति करना ही नगरीय समाजविज्ञान के मूल में है। नगरीय समाजविज्ञान के अन्तर्गत नगरीय सामाजिक जीवन का सर्वांगीण अध्ययन किया जाता है। यही कारण है कि आधुनिक युग में नगरीय समाजविज्ञान के महत्व में वृद्धि होती जा रही हे। यदि गम्भीरता से विचार किया जाये तो नगरीय समाजविज्ञान के ज्ञान के अभाव में सामाजिक संगठन का पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यही कारण है कि सभी देशों में नगरीय समाजविज्ञान की महत्ता को स्वीकार किया जाता है।

भारत में नगरीय समाजविज्ञान का महत्व
(Importance of Urban Sociology in India)

इससे पहले नगरीय समाजविज्ञान के महत्व की विवेचना की गयी है। यह विवेचना सभी देशों में समान रूप से लागू होती है और इसके द्वारा विश्व में नगरीय समाजविज्ञान के महत्व का ज्ञान होता है। नगरीय समाजविज्ञान के उपर्युक्त महत्वपूर्ण तत्व भारतवर्ष पर भी लागू होता है और इनकी सहायता से भारत की नगरीय समस्याओं के निराकरण में सहायता मिलती है। प्रत्येक देश का वातावरण दूसरे देश से भिन्न होता है। इस भिन्नता के कारण सामाजिक संरचना (Social Structure) और इसके कार्यों (Functions) में भिन्नता का होना नितान्त स्वाभाविक है।

NOTES

सदियों की गुलामी के पश्चात् अभी 57 वर्ष पूर्व भार 1947 में स्वतंत्र हुआ। गुलामी के काल में भारत सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ गया था। इसका कारण यह था कि भारत को अपने अनेक कार्यों के लिए दूसरों का मुँह ताकना पड़ता था। इसका परिणाम हुआ कि न केवल नगरीय जीवन में अपितु सम्पूर्ण समाज में समस्याओं की बाढ़ आ गयी थी, जो आज भी निरंतर बढ़ती जा रही हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश का प्रगति करनी थी अतः इन समस्याओं के प्रति देशवासियों में जागरूकता का संचार हुआ है।

इसमें कोई मतभेद नहीं है कि भारत गाँवों का देश है। प्रारम्भिक काल से ही यहाँ गाँवों की प्रधानता रही है। आज जब संसार के पाश्चात्य देशों में जहाँ औद्योगिक क्रांति का बोलबाला है, वहाँ भारत के 27 प्रतिशत व्यक्ति ही नगरों में निवास करते हैं, जो कि कुल जनसंख्या का तीन चौथाई से अधिक है। भारत में यदि हम ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या का विश्लेषण करें तो पायेंगे कि नगरीय जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। निम्न तालिका में 1901 से 2001 तक की ग्रामीण और नगरीय जनंसख्या का प्रतिशत दिया गया है।

वर्ष	ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत	नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत
1901	89.20	10.80
1911	89.70	10.30
1921	88.80	11.20
1931	88.00	12.00
1941	86.10	13.90
1951	82.70	17.30
1961	82.00	18.00
1971	80.10	19.90
1981	76.70	23.30
1991	74.30	25.70
2001	72.20	27.80
2011	68.84	31.16

उपर्युक्त तालिका में जो आँकड़े दिये गये हैं, उससे स्पष्ट होता है कि भारत में ग्रामीण जनसंख्या में निरन्तर कमी होती जा रही है और इसके साथ ही साथ नगरीय जनसंख्या में वृद्धि होती जा रही है। भारत में 1901 में नगरीय जनसंख्या का अनुपात 11 प्रतिशत था, जो 2001 में बढ़कर 27 प्रतिशत हो गया। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारत में नगरीय जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि होती जा रही है। सन् 1901 में भारत की कुल जनसंख्या 23.84 करोड़ थी, जो बढ़कर 2001 में 102.01 करोड़ हो गयी है। 1991-2001 में जनसंख्या में 21.34 प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारत में जितनी ही तीव्रता के साथ जनसंख्या बढ़ती जा रही है, नगरीकरण की प्रक्रिया भी उतनी ही तीव्र है। जब भारत में नगरीय जनसंख्या बढ़ेगी तो इसका परिणाम यह होगा कि नगरीय समस्याएँ बढ़ेंगी और इन समस्याओं के बढ़ने के फलस्वरूप नगरीय समाजविज्ञान के महत्व में वृद्धि का होना नितान्त स्वाभाविक है।

स्वतंत्रता के बाद देश में उद्योगों का तीव्र विकास हुआ इस औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) का प्रभाव भारत पर पड़ा है। औद्योगिक विकास का अवश्यंभावी परिणाम औद्योगीकरण (Industrialization) के रूप में होता है। औद्योगीकरण वह प्रक्रिया है, जिससे एक स्थान पर विशाल उद्योगों की स्थापना हो जाती है और वहाँ विशाल जनसंख्या निवास करने लगती है। यह विशाल जनसंख्या विभिन्न जातियों, वर्ग, क्षेत्रों, धर्मों और सम्प्रदायों से सम्बन्धित होती है। इसका परिणाम यह होता है कि अनेक धार्मिक क्षेत्रीय और साम्प्रदायिक और अन्य समस्याओं का विकास हो जाता है। आवास की समस्या उग्र हो जाती है। श्रमिकों की समस्याएँ अपने आप विकसित हो जाती हैं। यन्त्रीकरण (Mechanisation), विवेकीकरण (Rationalization) और स्वचालन के कारण अनेक समस्याएँ जन्म लेती हैं। समाज की व्यवस्था और प्रगति के लिए इन समस्याओं का समाधान आवश्यक है। समस्याओं का समाधान तभी होगा जबकि इनके सम्बन्ध में व्यवस्थित ज्ञान होगा। नगरीय समाजविज्ञान मानव ज्ञान की ऐसी शाखा है जिसमें औद्योगीकरण और उसकी समस्याओं का विस्तृत अध्ययन किया जाता है तथा इन समस्याओं के समाधान का प्रयास किया जाता है। इस दृष्टि से भी भारत में नगरीय समाजविज्ञान का महत्व है।

भारत में नगरीय समाजविज्ञान का महत्व व्याधिशास्त्रीय समस्याओं (Pathological Problems) के समाधान की दृष्टि से भी है। नगरों में अनेक ऐसी समस्याओं का विकास होता जा रहा है जिससे नगरीय समाज में अनेक बीमारियों से ग्रस्त व्यक्ति के समान जर्जर प्रतीत होता है। इन समस्याओं में अपराध और बाल अपराध, नियोजित हिंसा, नैतिक पतन, भ्रष्टाचार, मद्यपान, वेश्यावृत्ति, जुआ और व्यापारिक मनोरंजन प्रमुख हैं। भारत के किसी भी नगर में इन समस्याओं को देखा जा सकता है। इन समस्याओं के कारण नगरीय समाज का विघटन होता जा रहा है। इस विघटन को रोकने की दृष्टि से भी भारत में नगरीय समाजविज्ञान का महत्व है।

नगरीय समाजविज्ञान के अध्ययन के द्वारा नगरीय नियोजन (Town Planning) में भी सहायता मिल सकती है। भारत तीव्रता से औद्योगीकरण और नगरीकरण की ओर अग्रसर हो रहा है। यह नगरीकरण की प्रक्रिया योजनाबद्ध नहीं है। यही कारण है कि अनेक समस्याओं का विकास होता जा रहा है। नगरों का विकास यदि योजनाबद्ध होता है, तो अनेक नागरिक समस्याओं का समाधान स्वयंमेव हो जाता है। नगरीकरण नियोजित ढंग से हो, इसके लिए आवश्यक है कि नगर नियोजन के बारे में वैज्ञानिक ज्ञान हो। नगरीय समाजविज्ञान ज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत नगरों की उत्पत्ति, विकास, नगरीकरण की प्रक्रिया, इसके दुष्परिणामों और इन समस्याओं के समाधान की व्याख्या की जाती है। नगरीय नियोजन के बारे में उचित और वास्तविक ज्ञान प्रदान किया जाता है। इससे भारत में नगरीय समाजविज्ञान के अध्ययन का महत्व है।

भारतीय पंचवर्षीय योजनाएँ देश की बहुमुखी विकास योजनाएँ हैं। इसकी सहायता से समाज में नियोजित विकास किया जा सकता है। इन योजनाओं का क्षेत्र सम्पूर्ण मानव समाज है। इन योजनाओं की सफलता पर ही भारत का विकास और प्रगति आधारित है। भारतीय पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता इस बात पर आधारित है कि भारतीय समाज और संस्कृति के बारे में व्यावहारिक ज्ञान हो। नगरीय समाजविज्ञान का अध्ययन करके हम भारतीय जीवन और पद्धतियों के बारे में व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करते हैं एवं इससे पंचवर्षीय योजनाओं की सफलता में योगदान दे सकते हैं। इस दृष्टि से भी भारत में नगरीय समाजविज्ञान का महत्व है।

भारत में बेरोजगारी (Unemployment) की समस्या भी अत्यन्त ही गम्भीर है तथा निरंतर गम्भीर होती जा रही है। इस दृष्टि से नगरीय समाजविज्ञान नागरिकों को व्यवसायों के चुनाव में भी मदद करता है। नगरीय समाजविज्ञान का अध्ययन करके ये अपने व्यावसायिक कर्तव्य का भी आसानी से निर्वाह कर सकते हैं।

भारत में ज्ञान की एक शाखा (Branch of Knowledge) के रूप में नगरीय समाजविज्ञान का महत्व है। ज्ञान चाहे किसी प्रकार का हो, वह उपयोगी होता है तथा इसकी सहायता से अनेक समस्याओं का समाधान करने में मदद मिलती है। नगरीय समाजविज्ञान नगरीय समाज के बारे में ज्ञान प्राप्त करने वाली शाखा है। इस दृष्टि से नगरीय समाजविज्ञान का अत्यन्त ही महत्व है।

गाँवों और नगरों में मौलिक अन्तर सरलता और जटिलता का है। इसका कारण यह है नगरीय जीवन में व्यक्तियों के मूल्य और आदर्श, मान्यताएँ और व्यवहार के तरीके, सोच और रहन-सहन के स्तर तथा उसकी मानसिकता में अनेक जटिलताएँ दिखाई दे रही हैं। समूहवाद के स्थान पर व्यक्तिवाद नगरीय जीवन की विशेषता है। मौलिक आवरण कुछ इस प्रकार हावी है कि व्यक्ति के जीवन में सांस्कृतिक विलम्ब की स्थिति का विकास होता जा रहा है। नगरीय जीवन के इन परिवर्तित प्रतिमानों का अध्ययन करने के लिए नगरीय समाजशास्त्र का महत्व है। निम्न बिन्दुओं के आधार पर नगरीय समाजशास्त्र के महत्व को और भी स्पष्ट किया जा सकता है।

भारत में तीव्र गति से नगरीकरण हो रहा है। नगरीकरण के दुष्परिणामों में प्रमुख निम्नलिखित हैं:

1. आवास और गंदी बस्तियाँ,
2. सामाजिक विघटन,
   - A. अपराध तथा बाल अपराध,
   - B. वेश्यावृत्ति,
   - C. मद्यपान,
   - D. बेरोजगारी तथा भिक्षावृत्ति,
3. अवैयक्तिक सम्बन्ध,
4. तनाव तथा मानसिक बीमारियाँ,
5. व्यावसायिक मनोरंजन।

NOTES

कोई भी समाज इन दुष्परिणामों से आँखें बन्द नहीं कर सकता है। भारतीय समाज का नगरीय जीवन आज समस्याओं से जूझ रहा है। इन समस्याओं के वैज्ञानिक समाधान के लिए नगरीय समाजशास्त्र का ज्ञान अनिवार्य है। भारत शताब्दियों की गुलामी के बाद 15 अगस्त, 1947 को आजाद हुआ है। हमें आजादी तो मिली, किन्तु हमारी गुलाम मानसिकता में आज तक कोई परिवर्तन नहीं आया और यही कारण है नगरीय जीवन में समस्याओं में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। एन्डरसन तथा हाबहाउस ने अपने विचार व्यक्ति करते हुए लिखा है कि 'सामान्य ज्ञान के कटु तथ्यों के प्रकाश में यह आशा की जाती है कि नगरीय समाजशास्त्र नगरीय जीवन और समस्याओं का विशिष्ट विज्ञान होगा, जो ग्रामीण समाजशास्त्र की तुलना में समाजशास्त्र की एक अत्यधिक विकसित शाखा होगी।' कुछ इसी प्रकार के विचार बर्गेल ने भी व्यक्ति किए हैं- 'इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए नगरीय समाजशास्त्र को आधुनिक नगरीकृत समाजविज्ञान के रूप में माना जा सकता है। इसका उद्देश्य अपने युग में विश्लेषण से प्राप्त सामान्य सामाजिक सिद्धान्तों का निर्माण करना होगा।'

इस प्रकार भारत में नगरीय समाजशास्त्र के महत्व के तीन पहलुओं की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है:—

1. नगरीय जीवन और समाज का ज्ञान,
2. नगरीय समस्याओं का विश्लेषण,
3. नगरीय नियोजन।

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. ग्रामीण समाजशास्त्र का महत्व लिखिए।
   Write importance of Rural sociology.
2. नगरीय समाजशास्त्र का क्षेत्र नगरीय समाज का अध्ययन है। समझाइये।
   The Scope of Urban Sociology is the study of Urban Society. Explain.
3. नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययन के महत्व को लिखिए।
   Write the Importance of studying Urban Sociology.
4. भारत में नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययन के महत्व को लिखिए।
   Write the Importance of studying Urban Sociology in India.
5. भारत में नगरीकरण की विवेचना करते हुए इसके अध्ययन के महत्व को लिखिए।
   Write importance of Urban Sociology describing Urbanization in India.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer-Type Questions)

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
Write a short note on following–

(अ) परिस्थितिशास्त्र
Ecology.

(आ) भारत में नगरीकरण
Urbanization in India.

(इ) नगरीय समुदाय
Urban Community.

(ई) नगरीय समाज की समस्याएँ
Problems of Urban Society.

(उ) ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ
Meaning of Rural Sociology.

(C) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. किसने कहा 'शिकागो अध्ययन प्राथमिक रूप से परिस्थितिशास्त्रीय थे'।

   (अ) इरिक्सन (ब) नेल्सन (स) स्मिथ (द) एस.सी. दुबे

2. 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत कितना था?

   (अ) 25.78 (ब) 26.78 (स) 27.78 (द) 28.78

3. किसने कहा- अनादि काल से ग्राम भारतीय सामाजिक राजतंत्र की आधारभूत एवं महत्वपूर्ण इकाई रहता चला आया है।

   (अ) ए.आर. देसाई (ब) नेल्सन (स) एम.एन. श्रीनिवास (द) एस.सी. दुबे

4. किसने कहा- 'अभी थोड़े समय से पूर्व तक के मनुष्य की कहानी अधिकतर ग्रामीण मनुष्य की कहानी है।'

   (अ) नेल्सन (ब) एस.सी. दुबे (स) ए.आर. देसाई (द) सैन्डर्सन

उत्तर- 1. (अ), 2. (स), 3. (द), 4. (अ)।

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

4

प्रवर्जन (प्रवास)-अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएँ, ग्रामीण समाज से प्रवर्जन-कारण एवं प्रभाव

(MIGRATION-MEANING, DEFINITIONS AND CHARACTERISTICS MIGRATION FROM RURAL SOCIETY-CAUSES & CONSEQUENCES)

आदिकाल से मानव घुमन्तू (Nomadic) प्रवृत्ति का रहा है तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमता रहा है। यदि मानव समाज के उद्विकास (Evolution) का अध्ययन किया जाए तो उपर्युक्त कथन का अपने आप प्रमाणीकरण हो जाएगा। आखेट और पशुपालन की अवस्थाओं में मानव अपने शिकार तथा पशुओं के चारे और पानी के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को भटकता रहता था। इन अवस्थाओं के बाद कृषि की अवस्था में जीवन में कुछ स्थायित्व अवश्य आया किन्तु प्रवास की अखिल धारा नहीं रुकी। झूम खेती (Shitling Cultivation) की प्रवृत्ति के कारण मानव प्रतिवर्ष एक स्थान से दूसरे स्थान की तलाश खेती के लिए करता रहा। पशुओं के चारे और पानी के कारण भी उसे स्थायित्व नहीं मिला। कालान्तर में औद्योगिक युग (Industrial Age) आया और इस युग ने तो मानव की प्रवासी प्रवृत्ति को काफी प्रोत्साहित किया। आज प्रवास व्यक्ति की आदत का अभिन्न अंग हो गया है। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना व्यक्ति की आदत में शुमार होता जा रहा है। खासकर नगरीय समाजों में इस प्रकार की प्रवृत्ति का ज्यादा ही विकास हुआ है। आज व्यवसाय तथा बेहतर जीवन की तलाश में गांवों से नगरों की ओर पलायन तेजी से हुआ है। इससे जहाँ आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है, वहीं अनेक सामाजिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं का जन्म और विकास हुआ है।

प्रवर्जन सम्बन्धी शब्दावली
(Terminology Relating to Migration)

प्रवर्जन के संदर्भ में प्रयुक्त होने वाली प्रमुख शब्दावलियाँ इस प्रकार हैं-

1. **आन्तरिक प्रवास** (Internal Migration) - एक देश के विभिन्न भागों में जनसंख्या के पारस्परिक प्रवास को आन्तरिक प्रवास कहा जाता है। यह दो प्रकार का होता है-

(a) अन्तःप्रवास (In-migration),

(b) बाह्य प्रवास (Out-migration)

2. **अप्रवास** (Immigration)- एक देश से अन्य दूसरे देश में होने वाले प्रवास को अप्रवास कहते हैं।

3. **उत्प्रवास** (Imigration) - दूसरे देश को जाने वाले प्रवास को उत्प्रवास कहते हैं।

4. **प्रवास अन्तराल** (Migration Interval) - किसी एक देश से दूसरे देश में दोनों प्रवास के मध्य समय को प्रवास अन्तराल कहते हैं।

5. **प्रवास प्रवाह** (Migration Stream) - किसी उद्भव के सामान्य क्षेत्र से किसी निश्चित अन्तराल पर प्रवास के आने तथा जाने को प्रवास प्रवाह कहा जाता है।

6. **शुद्ध प्रवास** (Net Migration) - अन्तः प्रवास तथा बाह्य प्रवास के अन्तर को शुद्ध प्रवास कहा जाता है।

7. **सकल प्रवास** (Gross Migration) - जनसंख्या की सम्पूर्ण गतिशीलता को सकल प्रवास कहा जाता है।

8. **प्रवास क्षमता** (Efficiency of Migration) - सकल एवं शुद्ध प्रवास के मध्य अन्तर सम्बन्ध को प्रवास क्षमता कहा जाता है।

प्रवास सम्बन्धी अध्ययन
(Studies Relating Migration)

प्रवास के सम्बन्ध में जो महत्वपूर्ण शोधकार्य तथा अध्ययन किए गए हैं, उनका विवरण इस प्रकार है-

1. Zelinsky - ' The Hypothesis of the Mobility Transition', Geographical Review, Vol. 61, 1969.
2. Smith, T.L. - 'Fundamental of Population Study'. New York, 1960.
3. Mehta, S. - 'Spatial Mobility in India : Evolving Patterns, Emerging Issues and Implication', 'Population Geography'. Vol. 12, No. 122, 1990.
4. Bogue, J.J. and K.C. Zachariah, 'Urbanization and Migration in India' 1962.
5. Bose, A. - 'Migration Streams in India', 1974 Tata Mcgraw Hill, New Delhi.
6. Davis, K. - 'The Population of India and Pakistan', 1951.
7. Gosal, G.S. and Krishna, G. - 'Patterns of Internal Migration in India', 1973.
8. Green Wook, M.I., - 'An Analysis of the Determinents of Internal Labour Mobility in India' 1971.
9. Rao, G.D. - 'Inter-State Migration in India' 1973.
10. Mehrotra, G.K. - 'Birth Place Migration in India' 1974.
11. Gill, M.S. - 'Patterns of Migration in An Under developed Tract' 1981.
12. Skeldon, R. - Migration Pattern in India, During the 1970s 1986'.
13. Pachal, T.K. - 'Internal Migration in India, Pattern Implications and Policies' 1980.
14. Smita & Chandra, R.C. - 'Migration Pattern in India', 1991.

NOTES

प्रवास की अवधारणा
(Concept of Migration)

जनांकिकीय परिवर्तन अथवा जनसंख्या में होने वाले प्रमुख परिवर्तन निम्नलिखित तीन है :

(a) प्रजनन, (b) मृत्यु क्रम एवं (c) प्रवास।

हावले ने लिखा है कि - 'सभ्य पुरुष वे हैं, जिनके पास अधिक मात्रा में गतिशीलता है।'[1] यदि इसे इस प्रकार कहा जाये कि प्रवास ही संसार की जनसंख्या के विकास का मूल है, तो अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा। संसार के इतिहास की सारी घटनाएँ प्रवास का ही परिणाम हैं। अमेरिका की उन्नति का सारा इतिहास योरोपीय प्रवास का ही परिणाम है।

जनसंख्या की गतिशीलता के दो परिणाम होते हैं :

(i) अन्य स्थानों से किसी स्थान पर आने की प्रक्रिया को अन्तर्गमन (Immigration) कहा जाता है। इस अन्तर्गमन के कारण जो व्यक्ति बाहर से आते हैं, उन्हें आगन्तुक (Immigrants) कहा जाता है।

(ii) इसके विपरीत एक स्थान से बाहर जाने की क्रिया को बहिर्गमन (Emigration) कहा जाता है तथा जो व्यक्ति बाहर जाते हैं, उन्हें बहिर्गन्तुक (Emigrants) कहा जाता है।

प्रवास में अन्तर्गमन एवं बहिर्गमन दोनों सम्मिलित हैं। इस प्रकार अन्तर्गमन एवं बहिर्गमन सापेक्ष अवधारणाएँ हैं। इन दोनों अवधारणाओं में जो अन्तर है, वह मात्र दृष्टिकोण का है। जो व्यक्ति दूसरे स्थान से आकर एक स्थान में बसता है, वह कहीं से प्रवासित होता है। अतः एक स्थान का अन्तर्गमन दूसरे स्थान का बहिर्गमन होता है।

प्रवास की परिभाषा
(Definition of Migrations)

(1) **डेविड हीर** : 'अपने स्वाभाविक निवास से अलग होना प्रवास है।'

(2) **बर्गेस** : 'प्रवास मानव जनसंख्या में स्थानान्तरण के लिए प्रयुक्त नाम है।'

(3) **डॉ. एस.सी.दुबे** : 'प्रवास सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा जनसंख्या का अन्तर्गमन तथा बहिर्गमन होता है।'

इस प्रकार 'प्रवास वह प्रक्रिया है जो जनसंख्या को एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर की गतिशीलता को रेखांकित करती है'।

NOTES

प्रवास के प्रकार
(Types of Migrations)

किंग्सले डेविस (Kingsley Davis) के प्रवास के प्रमुख प्रकारों को निम्नलिखित 5 भागों में विभाजित किया है-

(a) **विजय के लिए प्रवास** : इस प्रकार का मुख्य उद्देश्य विजय प्राप्त करना होता है। विजय प्राप्ति के उद्देश्य से एक स्थान से दूसरे स्थन के लिए प्रवास किया जाता है तथा विजय प्राप्त करने के बाद उस स्थान पर स्थायी रूप से बस जाया जाता है।

(b) **विवशतापूर्वक प्रवास** : यह प्रवास का वह स्वरूप है, जिसे व्यक्ति विवशतापूर्वक (Displacement) स्वीकार करता है। आक्रमण के भय से अथवा प्राकृतिक शक्तियों के डर से इस प्रकार के प्रवास किए जाते हैं।

(c) **बलपूर्वक प्रवास** : यह प्रवास जबर्दस्ती कराया जाता है। अनेक व्यक्तियों तथा संस्थाओं द्वारा श्रमिकों को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाए जाते हैं। उदाहरण के लिए अमेरिकनों द्वारा नीग्रो लोगों को ले जाना।

(d) **स्वतन्त्र प्रवास** : यह प्रवास व्यक्ति की स्वतन्त्र दशा का परिणाम होता है। आज भारत में अनेक डाक्टर, प्रोफेसर, वैज्ञानिक तथा अन्य व्यक्ति नौकरी, व्यापार, आदि के लिए अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया, आदि देशों की ओर प्रवास कर रहे हैं।

(e) **नियंत्रित प्रवास** : यह वह प्रवास है, जिस पर नियंत्रण लगाया जाता है, प्रवास के लिए रोका जाता है। कनाडा और आस्ट्रेलिया द्वारा काले लोगों पर प्रवेश से नियंत्रण इस प्रकार का है।

पीटरसन (Peterson) ने अपनी पुस्तक जनसंख्या (Population) में प्रवास के प्रकारों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है।

(i) **आदिकालीन घुमन्तू प्रवास** (Primitive Wondering Migration) : इस प्रकार के प्रवास का सम्बन्ध आदिकाल से है। आदिकाल में मानव फलफूल और मांस की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान को घूमते रहते थे। इस प्रकार के प्रवास को आदि कालीन घुमन्तू के नाम से जाना जाता है।

(ii) **आदिकालीन पर्यटन प्रवास** (Primitive Ranging Migration) : इस प्रकार के प्रवास का सम्बन्ध भी मानव के आदिकालीन जीवन से है। इस प्रवास की मौलिक विशेषता यह है कि यह व्यक्तिगत न होकर सामूहिक होता था। पूरा का पूरा समूह एक स्थान से दूसरे स्थान के लिए प्रवास करता था। उदाहरण के लिए मछली पकड़ने के लिए किया जाने वाला प्रवास।

(iii) **जमीन से उड़ान** (Flight from Land) : इसका तात्पर्य है भूमि से स्थानान्तरित (Shift) होना। एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को चले जाना। कृषि कार्य के लिए एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान के लिए प्रवास करना।

(iv) **विवशतापूर्वक प्रवास** (Displacement Migration) : जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, इस प्रकार का प्रवास विवश होकर किया जाता है। विजय के कारण अथवा शक्ति के भय के कारण जब कोई समुदाय अपने स्थायी स्थान को छोड़कर अन्य स्थान के लिए प्रवास करता है।

(v) **सामूहिक प्रवास** (Mass Migration) : यह प्रवास एक समूह द्वारा किया जाता है। इस प्रकार का प्रवास जीवन-यापन की श्रेष्ठ सुविधाओं की प्राप्ति के लिए किया जाता है। साथ ही ऐसा प्रवास किसी प्राकृतिक अथवा अन्य विपदाओं से रक्षा के लिए भी किया जाता है।

(vi) **स्वतंत्र व्यक्तिगत प्रवास** (Free Individual Migration) : इस प्रकार का प्रवास सामूहिक न होकर व्यक्तिगत होता है। साथ ही यह प्रवास व्यक्ति की रक्षा पर होता है। इस प्रकार का प्रवास संसार के प्रायः सभी देशों में होता रहता है। भारत से ही अनेक व्यक्ति दूसरे देशों को जाते रहते हैं।

(vii) **कुली व्यापार प्रवास** (Collie Trade Migration) : इस प्रकार का प्रवास कुली कार्य (मजदूरी) करने के लिए किया जाता है। अनेक मजदूर कार्य के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रवास करते रहते हैं।

(viii) **दास व्यापार प्रवास** (Slave Trade Migration) : इस प्रकार के प्रवास का प्रमुख उद्देश्य व्यापार है। व्यापार की दृष्टि से जब व्यक्तियों को दास बनाकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाया जाता है, तो इसे दास व्यापार प्रवास के नाम से जाना जाता है। अमेरिका में असंख्य नीग्रो लोगों को व्यापार के उद्देश्य से दास बनाकर ले जाया गया।

(ix) **नवीन बंदोबस्त (New Settlement)** : अनेक स्थानों पर नए गाँव और शहर बसते रहते हैं। इन नई बस्तियों को आबाद करने के लिए अनेक व्यक्ति इन नई बस्तियों में आकर बसते जाते हैं।

NOTES

प्रवास के सामान्य प्रकार
(General Types of Migration)

सुविधा की दृष्टि से प्रवास को मोटे तौर पर निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) **आन्तरिक प्रवास** (Internal Migration) : एक राष्ट्र की सीमा के अन्दर एक स्थान से दूसरे स्थान पर व्यक्तियों के जाने तथा वापस आने की प्रक्रिया को आन्तरिक प्रवास के नाम से जाना जाता है। उदाहरण के लिए, भारत के विभिन्न प्रान्तों की जनसंख्या का एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त की ओर जाना। सुविधा की दृष्टि से आन्तरिक प्रवास को निम्नलिखित चार भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(a) गाँवों से नगरों की ओर प्रवास,

(b) एक ग्राम से दूसरे ग्राम की ओर प्रवास,

(c) एक नगर से दूसरे नगर की ओर प्रवास,

(d) नगर से गाँव की ओर प्रवास।

(2) **अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास** (International Migration) : प्रवास का दूसरा स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय है। अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास उसे कहा जाता है जब कोई व्यक्ति या समूह एक राजनैतिक-राष्ट्रीय सीमा को पार कर दूसरी राजनैतिक-राष्ट्रीय सीमा में प्रवेश करता है। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास दो देशों के नियमों के अधीन ही संभव है।

प्रवास सांख्यिकी के स्त्रोत
(Sources of Migration Statistics)

मौलिक प्रश्न यह है कि प्रवास से सम्बन्धित आँकड़ों का स्त्रोत क्या है? वह कौन सा माध्यम है, जिसके द्वारा प्रवास से सम्बन्धित आँकड़ों का ज्ञान होता है। प्रवास से सम्बन्धित आँकड़े निम्नलिखित दो स्त्रोतों से प्राप्त होते हैं -

1. भारतीय जनगणना (Census of India),

2. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey)।

विभिन्न जनगणना में प्रवास के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए अलग से कालम बनाए जाते हैं, जिन्हें घर-घर जाकर भरा जाता है। फिर इनका संग्रहण और विश्लेषण किया जाता है।

प्रवास जहाँ एक राष्ट्रीय घटना है, वहीं दूसरी ओर यह अन्तर्राष्ट्रीय घटना भी है, किन्तु इस घटना के संबंध में विश्वासनीय आँकड़े उपलब्ध नहीं हैं। इसका कारण यह है कि प्रवास के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्रित करने की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है। प्रवास सम्बन्धी आँकड़ों की दूसरी बड़ी कठिनाई यह है कि प्रवास की कोई स्पष्ट एवं वैज्ञानिक परिभाषा भी नहीं है। आन्तरिक प्रवास के बारे में किसी प्रकार की लिखित सूचनाओं का संकलन नहीं किया जाता है, किन्तु इन कठिनाईयों का तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि प्रवास के संबंध में आँकड़ों का संकलन ही नहीं किया जाता है। प्रवास के सम्बन्ध में आँकड़े संकलित करने की दो प्रमुख विधियाँ हैं :

(1) **प्रत्यक्ष विधि** (Direct Method) : प्रत्यक्ष विधि की सहायता से उन सभी व्यक्तियों को गणना में सम्मिलित किया जाता है, जो प्रवास करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की गणना निम्नलिखित दो प्रकार से की जाती है।

NOTES

(a) **प्रथम** :- अभिलेखों (Documents) के आधार पर एक देश से दूसरे देश में जाने वाले व्यक्तियों की गणना की जाती है।

(b) **द्वितीय** :- जनगणना सम्बन्धी आँकड़ों के आधार पर, जिनमें इसका उल्लेख रहता है कि कोई व्यक्ति स्थान छोड़कर प्रवास कर गया है।

(2) **अप्रत्यक्ष विधि** (Indirect Method) : इस विधि की सहायता से जन्म स्थान सम्बन्धी आँकड़ों की सहायता से प्रवास का पता लगाया जाता है। जनगणना में उल्लेखित जन्म स्थान तथा वास्तविक निवास स्थान के आधार पर प्रवास का पता लगाया जाता है।

प्रवास को प्रभावित करने वाले कारक
(Factors affecting Migration)

(1) आर्थिक कारक

(a) **अनुकूल कारक** : (Pull Factors)

(i) भूमि का आकर्षण,

(ii) रोजगार के अवसर की उपलब्धता,

(iii) आमदनी के अच्छे अवसर,

(iv) दूसरे देश की आर्थिक सम्पन्नता तथा उच्च जीवन स्तर,

(v) रोजगार तथा नौकरी की उपलब्धता,

(vi) खुली अर्थव्यवस्था।

(b) **प्रतिकूल कारक** : (Push Factors)

(i) जीविकोपार्जन के साधनों का अभाव तथा मजदूरी का निम्न स्तर,

(ii) रोजगार के अवसरों की कमी,

(iii) निर्धनता, बेरोजगारी तथा निम्न जीवन स्तर।

(2) जनसंख्या का बढ़ता दबाव

(3) यातायात तथा संदेशवाहन के विकसित साधन

(4) प्राकृतिक एवं भौगोलिक कारक

(a) अनुकूल

(b) प्रतिकूल

(5) सामाजिक कारक

(a) सामाजिक भेदभाव,

(b) सामाजिक रीतियों, विश्वासों या व्यवहारों के प्रति विरक्ति,

(c) विवाह (लड़की प्रवास करती है),

(d) शिक्षा तथा बच्चों के उज्जवल भविष्य की संभावनाएँ,

(e) स्वास्थ्य तथा अन्य सुविधाएँ।

(6) धार्मिक कारक - धर्मस्थान, हज, प्रयाग, रोम, यरूथलम,

(7) राजनैतिक कारक : युद्ध, बंगलादेश

(8) अन्य कारक

(a) नगरीय आकर्षण

(b) नौकरी या तबादले।

NOTES

प्रवास के प्रभाव
(Consequences of Migration)

प्रवास का सबसे बड़ा प्रभाव जनसंख्या के आकार और जीवन के तरीकों पर पड़ता है। **एडवर्ड रॉस** (Edward Ross) का विचार है कि प्रवास के कारण अनुपयुक्त तथा अवांछित तत्वों का विनाश हो जाता है। रॉस के अनुसार आवास और प्रवास किसी राष्ट्र की मानसिक गतिशीलता प्रदान करते हैं। जो जाति अपने मूल स्थान से जितनी दूर जाती है, उतनी ही उन्नति करती है। प्रवास के वास्तविक प्रभावों का अध्ययन करना अत्यन्त ही कठिन है। इसके प्रभावों को जानने के लिए निम्नलिखित तीन दृष्टिकोण अपनाने होंगे-

(1) प्रवास के कारण उस जनता पर क्या प्रभाव पड़ा है, जहाँ से व्यक्ति प्रवासित हुए हैं। उदाहरण के लिए जनसंख्या के दबाव में कमी तथा आर्थिक अवसरों की सुलभता।

(2) प्रवास का उस जनता पर क्या प्रभाव पड़ा है, जहाँ व्यक्ति प्रवासित होकर बसे हैं। स्वभावतः वहाँ अनेक सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन होंगे।

3) जो व्यक्ति प्रवासित हुए हैं, उनके जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है। वे क्या छोड़कर आये? उन्होंने क्या प्राप्त किया? उनकी आशाएँ और आकांक्षाएँ क्या हैं? आदि प्रवास के प्रभावों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(A) अच्छे प्रभाव

(i) आर्थिक अवसरों की समानता,

(ii) राष्ट्रीयता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता का विकास,

(iii) गाँवों पर घटता जनसंख्या का दबाव,

(iv) सामाजिक एकता में वृद्धि।

(B) बुरे प्रभाव

(i) मानसिक असंतोष महत्वाकांक्षा की पूर्ति नहीं होती है।

(ii) अन्तर्वैक्तिक सम्बन्धों का विघटन,

(iii) प्रवासितों में स्थनीय लगाव का अभाव,

(iv) वर्ग भेद का जन्म,

(v) आवास समस्या।

प्रवास के विरोधी कारक
(Factors against Migration)

प्रवास एक सार्वभौमिक घटना है। प्रवास की जहाँ एक ओर कुछ तत्व प्रोत्साहित करते है, वहीं दूसरी ओर प्रवास को कुछ तत्व हतोत्साहित भी करते हैं। इन तत्वों को प्रवास में मार्ग के अवरोध (Hurdles) भी कहा जाता है। प्रवास को हतोत्साहित करने वाले प्रमुख तत्वों में से कुछ निम्नलिखित हैं :

(1) **दूरी** (Distance) : कहावत भी प्रचलित है कि ''घर की आधी भली''। इसका तात्पर्य है कि कम आमदनी और वेतन पर घर के पास रहना अधिक अच्छा है। यही कारण है कि दूरी प्रवास के मार्ग में बाधा उत्पन्न करती है। जैसे-जैसे दूरी बढ़ती जाती है, प्रवास की प्रेरणा घटती जाती है। दूरी के कारण जहाँ एक ओर व्यय की मात्रा अधिक होती है, वहीं दूसरी ओर जोखिम भी उठानी पड़ती है।

(2) **लगाव** (Attachment) : दूरी के अतिरिक्त लगाव भी प्रवास को हतोत्साहित करता है। यह लगाव निम्न प्रकार का हो सकता है :

(i) स्थान से लगाव,

(ii) व्यवसाय से लगाव,

(iv) अन्य प्रकार के लगाव।

NOTES

लगाव का मानवीय भावनाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। लगाव लोगों को अपनी भावनाओं के वशीभूत कर देता है, जिसको आर्थिक लाभ और सामाजिक प्रतिष्ठा भी नहीं लांघ सकती है। यही कारण है कि अनेक व्यक्ति स्थान के लगाव के कारण अपनी पदोन्नति तक को स्वीकार नहीं करते हैं। नगरीय व्यक्तियों की तुलना में ग्रामीण व्यक्तियों का लगाव अधिक होता है। यही कारण है कि ग्रामीण व्यक्ति अपने निवास स्थान को छोड़कर कहीं भी नहीं जाते हैं। यदि वे कहीं जाते भी हैं तो धार्मिक तथा सामाजिक त्यौहारों के अवसर पर वापस आ जाते हैं।

(3) **भिन्नताएँ** (Diversities) : मानव समाज अनेक प्रकार की भिन्नताओं तथा विविधताओं का अजायबघर है। इन विविधताओं को सुविधा के लिए निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(i) भाषा सम्बन्धी, (ii) धर्म सम्बन्धी,

(iii) सांस्कृतिक, (iv) रीतिरिवाज तथा व्यवहारों से सम्बन्धित।

मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि वह अपनी बोली, खान-पान, रीतिरिवाज और सांस्कृतिक परम्पराओं के बीच में निवास करना चाहता है। प्रवास के कारण वह इन सब चीजों से वंचित हो जाएगा। ऐसी स्थिति में वह प्रवास नहीं करता है।

(4) **प्रवास क्षमता का अभाव** (Lack of Migration Capacity) : प्रवास करना कोई सरल कार्य नहीं है, अपितु यह मानव की वास्तविक परीक्षा की घड़ी होती है। एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर बसने के लिए एक विशेष प्रकार की क्षमता, निर्भीकता, योग्यता और गतिशीलता की आवश्यकता होती है। प्रवास के लिए यही कारण है कि अनेक व्यक्ति हिचकिचाते हैं। ग्रामीण व्यक्ति शहर नहीं जाना चाहते। इसका मूल कारण यह है कि उन्हें शहर के वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई होती है।

(5) **यात्रा व्यय** (Travelling Expenses) : यात्रा में होने वाला व्यय भी प्रवास के मार्ग में एक बड़ी बाधा है। एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करना अत्यन्त ही खर्चीला होता है। यात्रा जितनी ही अधिक खर्चीली होगी, प्रवास उतना ही कम होगा।

(6) **रोजगार की अनिश्चितता** (Uncertainty of Employment) : यदि रोजगार की प्रकृति अनिश्चित होती है, तो इससे भी प्रवास हतोत्साहित होता है।

(7) **सरकारी नियन्त्रण** (Government Controal) : आन्तरिक प्रवास देश की सीमाओं के अन्दर होता है, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास एक देश से दूसरे देश के बीच होता है। एक देश से दूसरे देश में जाने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा 'वीसा' की होती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक देश दूसरे देश के निवासियों को अपने देश में आकर बसने में आपत्ति करते हैं। इसके आर्थिक तत्व तथा अन्य कारण भी हो सकते हैं। अनेक देश अपने नागरिकों को दूसरे देश में जाने की अनुमति नहीं देते हैं। इसके साथ ही अनेक देश अपने देश में दूसरे देश के नागरिकों को प्रवास करने की अनुमति नहीं देते हैं।

डेविड हीर (David Heer) ने भी प्रवास के मार्ग में बाधाओं का उल्लेख किया है। इनके अनुसार प्रवास के मार्ग में जो सांस्कृतिक मूल्य और मान्यताएँ बाधा उत्पन्न करती हैं, उनका विवरण इस प्रकार है:

(i) संयुक्त परिवार प्रथा, (ii) जाति प्रथा,

(iii) बन्द समाज, (iv) अशिक्षा और पिछड़ापन,

(v) नातेदारी तथा सामाजिक व्यवस्था, (vi) डर तथा आकांक्षाएँ,

(vii) भाग्यवाद तथा अन्धविश्वास, (viii) सरकारी नीति और कानून,

(ix) रंग तथा भाषा का भेदभाव।

ग्रामीण प्रवर्जन
(Rural Migration)

मानव विकास का इतिहास इस बात का साक्षी है कि मनुष्य एक झुण्ड, गोत्र, आदिवासी, वर्ग और राष्ट्र के रूप में एक स्थान से दूसरे स्थान को निरन्तर भ्रमण करता रहा है। मानव की इस भ्रमणशील प्रवृत्ति को इतिहासवेत्ताओं ने बहुंत ही अच्छे ढंग से व्यक्त किया है। जनसंख्या में जो शनैः-शनैः वृद्धि हुई, इस वृद्धि ने भी मनुष्य को

प्रवास के लिये प्रेरित किया। इसके साथ ही मानव आवश्यकताओं में वृद्धि और अवसर की सीमितता के कारण प्रवासी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला। कारण अनेक हो सकते हैं, किन्तु मानव जीवन में प्रवास की अत्यधिक महत्व है।

प्रवर्जन अंग्रेजी के शब्द (Migration) का हिन्दी रूपान्तर है। प्रवास का अर्थ है एक मूल स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान को जाना, यहाँ-वहाँ अस्थायी तौर पर निवास करना और अपने मूल स्थान से सम्पर्क बनाये रखना तथा कभी आते-जाते रहना।

प्रवर्जन एक सामाजिक समस्या है। भारतवर्ष में प्रवर्जन ग्रामों से नगरों की ओर हो रहा है। ग्रामीण जनसंख्या शीघ्रता से नगरों की ओर भाग रही है। 1911 से 1961 तक की जनसंख्या के आँकड़े इस बात के प्रमाण हैं कि निरन्तर ग्रामीण जनसंख्या का प्रवाह नगरों की ओर बना हुआ है। 1911 में भारत की कुल जनसंख्या का 88.8 प्रतिशत भाग ग्रामों में निवास करता था जब कि सिर्फ 11.2 प्रतिशत जनसंख्या ही नगरों में रहती थी। 1931 में 88.0 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती थी, जबकि सिर्फ 13.9 प्रतिशत भाग ही नगरों में निवास करता था।

स्वतंत्रता के बाद प्रवर्जन की प्रवृत्ति में और वृद्धि हुई है। 1951 में कुल जनसंख्या के 82.7 प्रतिशत भाग ही नगरों में निवास करता था। सन् 1961 में 18 प्रतिशत व्यक्ति नगरों में रहते थे। और 82 प्रतिशत व्यक्ति ग्रामों में निवास करते थे। इन आँकड़ों को निम्न तालिका के द्वारा स्पष्ट किया जा सकता हैं -

सन्	ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत	नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत
1911	88.8	11.2
1931	88.0	12.0
1941	86.1	13.9
1951	82.7	17.3
1961	82.0	18.0
1971	81.0	19.0
1981	76.7	23.73
1991	74.3	25.7
2001	72.2	27.8

यदि भारत वर्ष में प्रवर्जन की प्रवृत्ति के 50 वर्षों 1911 से 1961 तक के आँकड़ों का विश्लेषण करें, तो स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रता के बाद प्रवासी प्रवृत्ति को अत्यंत ही प्रोत्साहन मिला है, 30 वर्षों में 1911 से 1941 तक प्रवासी प्रवृत्ति में सिर्फ 2.7 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। सरल शब्दों में 30 वर्षों में कुल भारतीय जनसंख्या का 6.7 भाग ही ग्रामों से नगरों की ओर स्थानान्तरित हुआ है। जबकि 21 वर्षों में, 1941 से 1961 तक से करीब 4 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों से नगरों की ओर स्थानांतरित हुई है। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वतंत्रता के बाद प्रवासी प्रवृत्ति में अत्यंत ही वृद्धि हुई है।

ग्रामीण प्रवर्जन के प्रकार
(Types of Rural Migration)

इतना तो निश्चित है कि भारतवर्ष में प्रवर्जन की प्रवृत्ति में निरन्तर वृद्धि हो रही है, किन्तु प्रवासी प्रवृत्ति एक ही प्रकार की नहीं है। प्रवृत्ति को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है।

1. **दैनिक प्रवर्जन** - दैनिक प्रवास जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट होता है, ग्रामों से नगरों की ओर वह प्रवास है जो प्रतिदिन समान रूप से होता है। जो ग्राम शहरों के नजदीक होते हैं, वहाँ के निवासी नौकरी, व्यापार, शिक्षा तथा अन्य कारणों से रोजाना प्रायः ग्रामों से नगरों की ओर आते हैं और कार्य समाप्त हो जाने पर शाम को गाँव लौट जाते हैं। इस प्रकार के प्रयास को दैनिक प्रवास के नाम से जाना जाता है।

2. **मौसमी प्रवर्जन** - ग्रामों से नगरों की ओर जो दूसरा प्रवर्जन होता है, वह एक विशेष मौसम में ही होता है और जैसे ही वह मौसम समाप्त हो जाता है तथा अन्य मौसमी कार्यों के सम्पादन के लिए जैसे ही मौसम में परिवर्तन होता है, प्रवास की प्रवृत्ति भी समाप्त हो जाती है। जब ग्रामीण लोग कृषि कार्य से मुक्त हो जाते हैं तो उनमें प्रवास की संख्या में वृद्धि हो जाती है।

NOTES

3. **आकस्मिक प्रवर्जन** - कभी-कभी प्रवर्जन अचानक होता है। यह प्रवास दैनिक और मौसमी प्रवास से भिन्न प्रकृति का होता है। कभी-कभी कुछ विशेष परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण से अचानक प्रवास करना पड़ता है। जैसे बीमारी, अदालत, सामाजिक और धार्मिक उत्सव तथा अन्य इसी प्रकार की परिस्थितियाँ।

4. **स्थायी प्रवर्जन** - स्थायी प्रवास यह है जिसमें व्यक्ति पूरी तरह गाँव को छोड़कर नगरों में निवास करने लगता है। जब एक बार व्यक्ति गाँव छोड़कर नगर चला जाता है। तो फिर उसकी इच्छा गाँव की ओर लौटने की नहीं होती है।

ग्रामीण प्रवर्जन के कारक
(Causes of Rural Migration)

प्रवर्जन आधुनिक भारत की सबसे बड़ी समस्या के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म और विकास होता है। प्रवास के प्रमुख कारण कौन से हैं? एक व्यक्ति एक स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान में क्यों जाता है।? क्या ऐसा करने में उसकी इच्छा प्रबल होती है। या कुछ सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ होती हैं, जिनसे विवश होकर प्रवर्जन ही व्यक्ति के लिए मात्र रास्ता रह जाता है? प्रवर्जन के अनेक कारण हैं? इन कारणों में भारत में जो अधिक महत्वपूर्ण हैं वे निम्नलिखित हैं -

1. **जनसंख्या में वृद्धि** - प्रवर्जन का पहला और मौलिक कारण जनसंख्या में होने वाली तीव्र वृद्धि है। यदि हम 1961 के आँकड़ों की तुलना 1971 से करें, तो ऐसा प्रतीत होता है। कि इन 10 वर्षों में भारतीय जनसंख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। वृद्धि का परिणाम यह होता है कि भूमि पर जनसंख्या का यह भार असाध्य प्रतीत होता है। इसका परिणाम यह होता है कि जीवन-यापन के लिए प्रवर्जन एक अनिवार्य आवश्यकता हो जाती है।

2. **कुटीर उद्योग का पतन** - भारतीय ग्रामों में कृषि के साथ ही साथ कुटीर उद्योग का आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक महत्व था। इन कुटीर उद्योगों की सहायता से व्यक्ति अपना आर्थिक जीवन व्यतीत करते थे। कुटीर उद्योग का पतन और जनसंख्या में होने वाली अत्यधिक वृद्धि के कारण भी भारत में प्रवासी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है।

3. **भूमिहीन कृषक** - भारत में ऐसे भी किसान हैं जो भूमिहीन की श्रेणी में आते हैं और जो खेती तो करते हैं किन्तु जिनके पास अपनी जमीन नहीं होती है। गाँवो में भूमिहीन कृषकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इसका कारण यह है कि अनेक व्यक्ति निर्धनता और ऋणग्रस्तता के कारण अपनी जमीन बेच देते हैं। इन भूमिहीन कृषकों को जब गाँव में कोई काम नहीं मिल पाता है, तो उनके लिए मात्र यही रास्ता शेष बचता है कि आस-पास के शहरों में जाकर अपनी रोजी-रोटी कमाएँ। इस प्रकार किसानों का भूमिहीन होना भी भारत में प्रवासिता को प्रोत्साहन देना है।

4. **ऋणग्रस्तता** - ऋणग्रस्तता भारतीय ग्रामीण जीवन की प्रमुख विशेषता है। भारत का प्रत्येक परिवार और व्यक्ति ऋणग्रस्तता का शिकार है। भारतीय ऋणग्रस्तता की मौलिक विशेषता यह है कि इसका एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होता रहता है। इन ऋणों को चुकाने के लिए अथवा इन ऋणों में मुक्ति पाने के लिए भी अनेक व्यक्ति ग्रामों से नगरों की ओर प्रवास करते हैं। भारत में इस प्रकार की विचार धारा का प्रचलन है कि व्यक्ति को ऋण चुकाना ही पड़ता है। यदि वह इस जन्म में नहीं कर पाता है, तो अगले जन्म में व्यक्ति को ऋण चुकाना ही होगा।

5. **सामाजिक अयोग्यताएँ** - भारतीय ग्रामीण ढाँचा अत्यन्त की रूढ़िवादी और परम्परावादी है। यहाँ जाति-पाति, छुआछूत, हुक्कापानी, खान-पान, बिरादरी तथा इसी प्रकार की अनेक मान्यतायें हैं। ग्रामों में अछूतों की स्थिति अत्यन्त ही दयनीय होती है तथा वे अनेक प्रकार की अयोग्यताओं के शिकार रहते हैं। साथ ही जो व्यक्ति ग्रामीण मान्यताओं और परम्पराओं की अवहेलना करता है, उसे अनेक प्रकार की अयोग्यताओं का शिकार होना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि इन व्यक्तियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है और इनके साथ अनेक प्रकार के अत्याचार किए जाते है। लोग गाँवों की अपेक्षा नगरों और औद्योगिक क्षेत्रों की ओर भागने के लिए विवश होते हैं।

6. **संयुक्त परिवार** - भारत में संयुक्त परिवार की प्रथा के कारण व्यक्तियों में सामूहिक जीवन का विकास होता था। आधुनिक औद्योगिक परिस्थितियों और व्यक्तिवादी विचारवादी विचाराधारा के कारण संयुक्त

परिवारों का विघटन प्रारम्भ हो गया है। व्यक्ति परिवारों मे रहता था, तो उसे आर्थिक तथा अन्य अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना नहीं करना पड़ता था। इन परिवारों के विघटन के कारण व्यक्ति के ऊपर सामाजिक तथा आर्थिक भार आ जाता है और अब इस उत्तरादायित्व को पूरा करने के लिए व्यक्ति को प्रवास करना पड़ता है।

इसके विपरीत संयुक्त परिवार-प्रथा भी प्रोत्साहन करती है। संयुक्त परिवार का जो सदस्य प्रवास करता है, वह अपनी पत्नी और बच्चों की व्यवस्था से निश्चिंत रहता है।

NOTES

7. **पारिवारिक कलह** - आधुनिक भारतीय परिवतनों में कलह (संघर्ष) की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। इस पारिवारिक कलह के कारण भी कुछ व्यक्तियों को नगरों की ओर प्रवास करना पड़ता है।

8. **धन कमाने के लिए** - आधुनिक युग में पैसे (धन) के महत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। अनेक व्यक्ति ऐसे होते हैं जो ऋण के बोझ से दबे रहते हैं और इससे मुक्ति पाना चाहते हैं। साथ ही कुछ व्यक्ति कृषि के उन्नति या व्यवसायों की स्थापना के लिए पैसा कमाना चाहते हैं और इसके लिए उन्हें गाँवों से नगरों की ओर प्रवास करना पड़ता है।

9. **अधिक मजदूरी की आशा** - गाँवों में मजदूरी की दर कम होती है। इसके अतिरिक्त गाँवों में जो मजदूरी दी जाती है वह अन्न के रूप में होती है। अनेक व्यक्ति इस आशा और विश्वास के कारण गाँवों से नगरों की ओर प्रवास करते हैं कि नगरों में उन्हें नकद मजदूरी मिलेगी।

10. **नगरों का आकर्षण** - यदि हम भारतीय ग्रामीण और नगरीय जीवन की तुलना करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि नगरों में अनेक प्रकार की सुविधाएँ हैं। इन सुविधाओं में शिक्षा, चिकित्सा, यातायात, सुरक्षा आदि प्रमुख हैं। नगरों का लगाव या नगरीय आकर्षण के कारण भी अनेक व्यक्ति ग्रामीण जीवन का त्याग करके नगरों की ओर प्रवास करते हैं।

11. **उन्नतिशील जीवन** - कुछ व्यक्ति ऐसा सोचते है कि यदि वे नगरों में निवास करेंगे, तभी उनका भावी जीवन सम्पन्न और उन्नतिशील होगा। भविष्य के जीवन की यह आशा उन्हें नगरों की ओर स्थानांतरित करती है।

12. **बेरोजगारी** - कुटीर उद्योगों के समाप्त हो जाने से अनेक व्यक्ति रोजगार की तलाश में नगरों की ओर आकर्षित होते हैं। इससे बेरोजगारी में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। नगरों को रोजगार का केन्द्र मानकर ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर प्रवास करती है।

13. **अन्य कारण** - उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त अनेक ऐसे कारण हैं, जो प्रवास को प्रोत्साहन देते हैं। इन कारणों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

(a) ग्रामों में स्वास्थ्य और चिकित्सा के साधनों का अभाव,

(b) ग्रामों में शिक्षा का अभाव,

(c) सामाजिक सुरक्षा का अभाव,

(d) यातायात और संचार साधनों का अभाव,

(e) शहर, फैशन और सभ्यता के प्रतीक,

(f) सामाजिक दण्ड से बचने के लिए, आदि।

भारत में प्रवर्जन के कारणों की विवेचना से ऐसा स्पष्ट होता है कि नगर का आकर्षण और नगरीय जीवन की सुविधाएँ प्रवास का कारण नहीं हैं। प्रवास का प्रमुख कारण आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियाँ हैं। इन आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों का सम्बन्ध ग्रामीण जीवन से है। इसलिए भारत में प्रवास की प्रवृत्ति गाँवों से नगरों की ओर है। शहरी श्रम आयोग ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "प्रवास की प्रेरक शक्ति एक सिरे से आती है।, अर्थात् गाँवों से औद्यौगिक श्रमिक, नागरिक जीवन के आकर्षण से शहरों में नहीं जाता और न उसके प्रवास का कारण महत्वाकांक्षा ही होती है। शहर स्वयं उसके लिये आकर्षण की वस्तु नहीं हैं और अपना गाँव छोड़ने के समय उनके मन में जीवन की आवश्यकताओं की प्राप्ति के अतिरिक्त और कोई भावना नहीं रहती। बहुत ही कम औद्योगिक श्रमिक नगर में रहना चाहेंगे, यदि उन्हें गाँवों में जीवनयापन के लिए पर्याप्त अन्न और वस्त्र मिल जाएं। वे नगर की ओर आकर्षित नहीं होते, अपितु ढकेले जाते हैं?"

NOTES

ग्रामीण प्रवर्जन के परिणाम
(Effects of Rural Migration)

प्रवास के परिणाम अच्छे नहीं होते हैं। यह व्यक्ति और समाज को एक संक्रमणकालीन परिस्थिति से गुजरने के लिए बाध्य करता है। प्रवास के प्रमुख परिणामों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) **सांस्कृतिक संघर्ष** - प्रवास सांस्कृतिक संघर्ष को जन्म देता है। प्रवास के कारण संस्कृति में जो संघर्ष हो सकते हैं। उनके कुछ उदाहरण निम्न हैं -

(a) व्यक्ति को दो संस्कृतियों के नियंत्रण का सामना करना पड़ता है - अपनी पैतृक संस्कृति और वर्तमान प्रवासी संस्कृति, इसका आवश्यक परिणाम संघर्ष के रूप में होता है।

(b) दोनों सांस्कृतिक मूल्यों में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और व्यक्ति की वही दुर्गति होती है जो युद्ध क्षेत्र की होती है।

(c) व्यवहारों में भिन्नता के कारण भी संस्कृति में संघर्ष होता है। संस्कृति में संघर्ष चाहे किसी भी कारण से हो, इससे समाज का विघटन होता है और व्यक्ति के मूल्यों में गिरावट होती है।

2. **आर्थिक विघटन** - प्रवासियों की मौलिक समस्या, रोजगार प्राप्त करने की होती है। रोजगार न मिलने से उनके सामने भयंकर आर्थिक परिस्थितियाँ खड़ी हो जाती हैं। परिणामस्वरूप चोरी, डाका आदि को प्रोत्साहन मिलता है। कभी-कभी प्रवासियों को रोजगार तो मिल जाता है किन्तु उनकी प्रकृति के अनुकूल न होने के कारण वे अधिक दिनों तक इसे निरन्तर नहीं कर पाते हैं। इसका परिणाम आर्थिक पतन के रूप में होता है।

3. **धार्मिक विघटन** - प्रवास, धार्मिक विघटन को भी प्रोत्साहित करता है। धर्म का प्राथमिक समूहों में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। धर्म और सामाजिक वातावरण अन्तःसम्बंधित होते हैं। इन्हें एक दूसरे से अलग नही किया जा सकता है जब कि प्राथमिक सम्बन्ध, नगरों में द्वैतीयक सम्बन्धों का स्वरूप ग्रहण करते हैं तो धार्मिक गाँठें टूटने लगती हैं। इससे संस्थात्मक विघटन प्रारम्भ हो जाता है।

4. **पारिवारिक विघटन** - नई जीवन-पद्धति ने पारिवारिक संगठन को अधिक मात्रा में प्रभावित किया है। नगरों के स्थानाभाव के कारण सम्पूर्ण किसान परिवार के लिए वहाँ रहना असम्भव हो जाता है। इसका परिणाम तलाक और पृथक्करण के रूप में होता है। कुछ भी हो, प्रवास-कम या अधिक मात्रा में पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन देता है।

5. **आत्महत्या** - दुर्खीम ने आत्महत्या के लिये निम्न दो कारणो का उल्लेख किया है:-

(a) व्यक्ति का सामाजिक एकीकरण, और

(b) व्यक्ति के सामूहिक लगाव में कमी।

प्रवास ऐसा कारक है जो पारिवारिक और सामूहिक ढाँचे को नष्ट कर देता है। जब व्यक्ति आर्थिक उन्नति के लिए प्रवास करता है, तो इससे व्यक्तिगत विघटन होता है। सामन्जस्य के अभाव में व्यक्ति आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है।

6. **नैतिक पतन** - प्रवासी प्रवृत्ति का परिणाम यह होता है कि इससे व्यक्ति में समाज का नैतिक पतन होता है। शहरों में जाकर वे परिवार, पड़ोस, धर्म आदि के नियंत्रणों से मुक्त हो जाते हैं। परिवार से दूर रहते हैं और अपनी यौन की मूलभूत इच्छा को दबाने में असमर्थ रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वेश्यागमन का सहारा लेते हैं। कारखानों मे दिन भर काम करके वे अपनी शारीरिक और मानसिक शक्ति नष्ट कर देते हैं। परिवार के अभाव में उन्हें मनोरंजन नहीं मिल पाता है। इसका परिणाम यह होता है कि जुआ और मद्यपान का सहारा लेते हैं इससे उनका नैतिक पतन होता है।

7. **निम्न स्वास्थ्य स्तर** - प्रवासिता के परिणामस्वरूप श्रमिकों का स्वास्थ्य स्तर से, निम्नतर होता जाता है इसके तीन प्रमुख कारण हैं:-

(a) श्रमिकों को कठिन परिश्रम करना पड़ता है।

(b) उन्हें भर पेट पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता है, और

(e) उनके काम करने की दशाएँ अत्यन्त ही अस्वास्थ्यकर होती हैं,

इससे श्रमिकों का स्वास्थ्य खराब होता जाता है। वे मानसिक दृष्टि से चिन्तित रहने लगते हैं। इसके साथ ही वे अनेक प्रकार की बीमारियों के शिकार हो जाते हैं।

8. **कार्यक्षमता में ह्रास** - जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है श्रमिकों के काम करने की दशाएँ अत्यन्त ही अस्वास्थ्यकर होती हैं। इसका असर उनके स्वास्थ्य पर पड़ता है। अनेक संक्रामक और भयंकर रोग से ग्रस्त हो जाते है। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिकों की शारीरिक और मानसिक क्षमता का ह्रास होने लगता है।

9. **उत्पादन में बाधा** - प्रवासी प्रवृत्ति के कारण राष्ट्रीय उत्पादन में बाधा उत्पन्न होती है। प्रवासी प्रवृत्ति के दो परिणाम होते हैं:-

(a) प्रवासिता के कारण उनकी कुशलता और कार्यक्षमता में वृद्धि नहीं हो पाती है, तथा

(b) प्रवासिता के कारण औद्योगिक क्षेत्रों में यह अनिश्चितता बनी रहती है कि किस दिन कितने मजदूर उत्पादन काम पर आएँगे।

इससे उत्पादन कम होता है, उत्पादन लागत में वृद्धि होती है और राष्ट्रीय हानि होती है।

10. **सुविधाओं से वंचित** - श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति उन्हें अनेक प्रकार की सुविधाओं से भी वंचित कर देते हैं। श्रमिकों को जो सुविधाएँ मिलती हैं, वे दो प्रकार की होती हैं:-

(a) कल्याणकारी, और

(b) सामाजिक सुरक्षा से सम्बन्धित।

किन्तु ये सुविधाएँ सिर्फ उन्हीं श्रमिकों को प्राप्त होती हैं, जो एक निश्चित समय तक काम करते हैं। इस प्रकार प्रवासी श्रमिक इस प्रकार की सुविधाओं से भी वंचित रह जाते हैं।

11. **बेरोजगारी का भय** - प्रवासिता से बेरोजगारी और अर्द्धबेरोजगारी के बढ़ने का भय भी उत्पन्न हो जाता है। मजदूर जब भी कारखानों से छुट्टी लेकर गाँव जाते हैं, तो छुट्टी की समाप्ति पर अपने काम पर नहीं लौटते हैं और छुट्टियों में वृद्धि करते रहते हैं। जब वे लम्बे अर्से तक काम पर नहीं लौटते हैं, तो उनके स्थान पर नई नियुक्तियाँ कर ली जाती हैं। इससे बेरोजगारी के बढ़ने का भय उत्पन्न हो जाता है।

12. **श्रम संघों के विकास में बाधा** - प्रवासिता का परिणाम यह होता है कि श्रमिक स्थायी तौर पर एक स्थान पर नहीं रह जाते हैं इसके साथ ही श्रमिक, श्रम-संघों की सदस्यता को ग्रहण नहीं कर पाते हैं। इसक दो परिणाम होते हैं:

(a) श्रम संघों की सदस्यता में कमी रहती है, और

(b) श्रम संघ को शक्ति प्रदान नहीं हो पाती है।

(c) इससे श्रमिकों का संगठन शक्तिशाली नहीं हो पाता है, जिससे श्रमिक अपनी समस्याओं के समाधान में असमर्थ रहते हैं।

13. **अस्थिर जीवन** - प्रवासिता का परिणाम यह होता है। कि इससे श्रमिकों का जीवन अस्थिर हो जाता है। वे कभी शहरों में रहते हैं, तो कभी गाँवों में, कभी उद्योगों में काम करते हैं, तो कभी कृषि कार्यों का सम्पादन करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने को अनिश्चित परिस्थिति में पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनका व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन अत्यन्त ही अस्थिर हो जाता है।

ग्रामीण प्रवर्जन के लाभ
(Merits of Migration)

इससे पहले प्रवासिता के परिणामों की विवेचना की गई है। इस विवेचना से स्पष्ट होता है कि प्रवासिता अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देती है, जिससे व्यक्ति समाज को अनेक प्रकार की हानियाँ उठानी पड़ती हैं, किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि प्रवासिता से सिर्फ हानियाँ ही हैं, लाभ नहीं हैं। प्रवासिता से श्रमिकों को कुछ लाभ ही होते हैं। संक्षेप में प्रवास के जो प्रमुख लाभ हैं, उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

NOTES

NOTES

1. **आर्थिक लाभ** - प्रवासिता से श्रमिक और उसके परिवार की आर्थिक दशा सुधरती है। जो श्रमिक शहरों में काम करते हैं वे अपनी आर्थिक आय का कुछ भाग नियमित रूप से अपने परिवार के सदस्यों को भेजते रहते हैं। इससे गाँव वालों की आर्थिक दशा अच्छी रहती है। वे आसानी से अपने ऋण की अदायगी कर सकते हैं और साथ ही कृषि की उन्नति तथा अन्य प्रकार के व्यवसाय कर सकते हैं।

2. **सुरक्षा की भावना** - उन श्रमिकों के लिए, जो प्रवासी प्रवृत्ति के होते हैं, गाँव सुरक्षा का स्थान होता है। गाँव, हर प्रकार से व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सुरक्षा प्रदान करता है। व्यक्ति जब भी बीमार, असहाय या अपंग हो जाता है तो ऐसे समय में श्रमिकों के लिए गाँव सुरक्षा का काम करता है।

3. **स्वास्थ्य की दृष्टि से हितकर** - प्रवासी प्रवृत्ति, श्रमिकों के स्वास्थ्य के लिये भी लाभकारी है। गाँव का वातावरण अत्यन्त ही स्वास्थ्यप्रद रहता है तथा यहाँ आकर व्यक्ति यांत्रिक जीवन नीरसता को भूल जाता है तथा अपनी थकान को कम करता है। इससे व्यक्ति को दोहरा लाभ होता है -

(a) व्यक्ति कुछ समय के लिए नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों के गन्दे वातावरण से अपने को दूर कर लेता है, तथा

(b) गाँव के स्वस्थ वातावरण में रहकर वह अपने में नई स्फूर्ति और नई शक्ति का अनुभव करता है।

4. **भूमि पर जनसंख्या का दबाव** - प्रवासिता से यह भी लाभ होता है कि इससे जनसंख्या का भूमि पर भार कुछ हल्का हो जाता है। इसका कारण यह है कि खेती पर दबाव कम हो जाता है।

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examination)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. ग्रामीण प्रवर्जन की अवधारणा को समझाइए।
Explain the concept of rural migration.
2. भारत में ग्रामीण जनसंख्या के प्रवर्जन के क्या कारण हैं?
What are the causes of migration of rural population in India?
3. ग्रामीण प्रवर्जन के प्रकार लिखिए।
Write types of rural migration.
4. ग्रामीण प्रवर्जन के कारणों को लिखिए।
Write causes of rural migration.
5. ग्रामीण प्रवर्जन के परिणामों को समझाइए।
Explain consequences of rural migration.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
Write a short note on the following–

1. प्रवर्जन शब्द का प्रयोग
Use of the word migration.
2. प्रवर्जन शब्दावली
Migration Terminology.
3. प्रवर्जन सम्बंधी अध्ययन
Studies relating migration.
4. प्रवर्जन के प्रकार
Types of migration.
5. भारत में अन्तर्राज्यीय प्रवास
Inter State migration in India.

(C) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Type Questions)

1. 2001 की जनगणना के अनुसार ग्रामीण जनसंख्या का प्रतिशत निम्न है -

   (अ) 70.2 (ब) 71.2 (स) 72.2 (द) 73.2

2. The Population of India and Pakistan किसने लिखी है?

   (अ) स्मिथ (ब) मेहता (स) डेविस (द) राय

3. कथन सत्य है या असत्य? ग्रामीण प्रवर्जन ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर जाना है।

   उत्तर– 1. (स) 2. (स) 3. (सत्य)

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

5

ग्रामीण भारत में जजमानी व्यवस्था - अर्थ, विशेषताएँ एवं परिवर्तन

(JAJMANI SYSTEM IN RURAL INDIA - MEANING, CHARACTERISTICS & CHANGE)

जजमानी (यजमानी) व्यवस्था
(Jajmani System)

जजमानी शब्द संस्कृत भाषा से लिया गया है। यह हिन्दी में प्रचलित शब्द 'जजमान' से बना है। इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के 'यज्ञमान' शब्द से हुई है। यह दो शब्दों का योग है -

यज्ञ = यज्ञ, होम, हवन, पूजा, अर्चना, आराधना, आदि।

मान = सम्पादन करने वाला।

इस प्रकार यज्ञ या हवन के सम्पादन कराने वाले को, 'जजमान' कहा जाता था। जजमानी प्रथा भारतीय सामाजिक जीवन की वह व्यवस्था है, जिसकी सहायता से समाज में यज्ञों के सम्पादन के महत्व को स्वीकार किया गया है तथा इसे व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया गया है।

प्राचीन भारतीय सामाजिक जीवन में यज्ञों का अत्यधिक महत्व था। उस युग में यज्ञ जीवन के अभिन्न अंग होते थे। यज्ञों के सम्पादन के लिए निश्चित विधि-विधान बनाये गये थे। प्राचीन भारत में प्रत्येक घरों में यज्ञ हुआ करते थे। यज्ञों का सम्पादन करना प्रत्येक गृहस्थ का मौलिक कर्त्तव्य था। कालान्तर में जैसे ही जैसे यज्ञों के विधि-विधान जटिल होते गये, सर्वसामान्य द्वारा इनका सम्पादन करना कठिन हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि ऐसे व्यक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ, जो व्यावसायिक आधार पर यज्ञों का सम्पादन करने लगे।

आरम्भ में राजा महाराजा यज्ञ कराते थे। कालान्तर में समाज के सभी स्तरों पर यज्ञों की व्यवस्था होने लगी। इसके परिणामस्वरूप किसानों ने धार्मिक आधार पर यज्ञों का सम्पादन प्रारम्भ कर दिया। जो यज्ञ कराते थे और इन यज्ञों में पैसा खर्च करते थे, जजमान कहलाये। कुछ व्यक्ति यज्ञों के अवसर पर जजमानों की सहायता करते थे और वस्तुओं और श्रम के रूप में उसकी सेवा करते थे। इन व्यक्तियों को भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता जैसे 'परजन', 'प्रजा', 'परजा', 'कमीन' या 'पवनी' आदि उदाहरण के लिये कृषक जजमान हुआ और ब्राह्मण, नाई, धोबी, बढ़ई, लुहार, कुम्हार आदि परजन हुये। इसे निम्न तालिका के द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है -

यज्ञों के सम्पादन का जब व्यवसायीकरण हुआ, तो अनेक व्यक्तियों ने यज्ञों को एक व्यवसाय के रूप में अपनाया और दूसरों के यहाँ यज्ञों का सम्पादन कराने लगे। बाद में यही व्यवस्था एक प्रथा के रूप में विकसित हुई। जजमानी प्रथा से सम्बन्धित कुछ **परिभाषायें** हैं -

(1) आस्कर लुइस - "इस व्यवस्था में गाँव में हर एक जाति समूह के अन्य जातियों के परिवारों के लिये कुछ विशेष निश्चित सेवाओं की आशा की जाती है।"

(2) वेबस्टर्स शब्दकोष - "जजमान एक ऐसा व्यक्ति है जिसने कि धार्मिक सेवाओं के लिए ब्राह्मण को किराये पर लिया है। इस प्रकार वह एक संरक्षक है या कार्याथी है।"

(3) रैडी - "किसान जो कि काम देते हैं जजमान कहलाते हैं और शिल्पी लोग परजन कहलाते हैं।"

संक्षेप में, किसान के द्वारा लेने वाली सेवाओं और सम्बन्धों की इस व्यवस्था को जजमानी प्रथा के नाम से जाना जाता है। जजमान का सीधा अर्थ सेवाओं से है और परजन का अर्थ कार्यवाहक या सेवक से है। भारतीय ग्रामीण जीवन में प्रचलित सेवाओं और सेवकों की इस व्यवस्था को जजमानी प्रथा के नाम से पुकारा जाता है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के द्वारा यह ज्ञात होता है कि जजमानी प्रथा का सीधा सम्बन्ध भूमिकाओं या कार्यों (Role) से है। इस व्यवस्था की भूमिकाओं को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) धार्मिक कार्यों और अनुष्ठानों से सम्बन्धित कार्य, जैसे पुरोहित के कार्य, और

(ii) कृषि और परिवार से सम्बन्धित कार्य इसमें मजदूर, हलवाह, चरवाह, चमार, नाई, धोबी आदि के कार्यों को सम्मिलित किया जाता है।

NOTES

भारत में यजमानी व्यवस्था का अध्ययन
(Study of Yajmani System in India)

भारतवर्ष में जजमानी व्यवस्था के अनेक अध्ययन किये गये हैं। इन अध्ययनों को निम्न तालिका में दर्शाया गया है -

क्र.सं.	अध्ययनकर्ता का नाम	अध्ययन स्थान	अध्ययन वर्ष
1.	डालिंग	पंजाब	1943
2.	लुइस	उत्तरी भारत	1946
3.	ओपलर और सिंह	पूर्वी उत्तरप्रदेश	1948
4.	मिलर	कोचिन	1952
5.	स्टील	गुजरात	1953
6.	एस.एन. रेडी	उत्तरी भारत	1955
7.	एस.एन. श्रीनिवास तथा बीर सिंह	मैसूर	1955
8.	गफ	तंजौर	1955
9.	डॉ. एस.सी. दुबे	हैदराबाद	1955

जजमानी व्यवस्था की विशेषताएँ
(Characteristics of Jajmani System)

भारतवर्ष की मौलिक विशेषता यह है कि यहाँ नगरीय जीवन में भले ही कितनी भिन्नता हो, ग्रामीण जीवन में एकरूपता पाई जाती है। भारतीय ग्रामों की इस एकरूपता का आधार यहाँ की कृषि-व्यवस्था है। यजमानी व्यवस्था कृषि व्यवसाय के चारों ओर केन्द्रित है। यजमानी व्यवस्था सम्पूर्ण भारतवर्ष में पाई जाती है। यजमानी व्यवस्था की विशेषताओं को सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में बाँटा जा सकता है :-

(1) **जाति पर आधारित** - यजमानी व्यवस्था की मौलिक विशेषता यह है कि यह प्रथा जाति-प्रथा पर आधारित है। जाति-प्रथा को यदि जजमानी प्रथा से अलग कर देते हैं, तो जजमानी प्रथा को समझना असम्भव होता है। इसके दो कारण थे :-

(a) जाति और यजमानी व्यवस्था वंशानुगत होते हैं और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं।

(b) यजमानी व्यवस्था में भिन्न-भिन्न जातियाँ होती हैं, जिनके अलग-अलग कर्तव्य और सेवाएँ होतीहैं।

(2) **सम्बन्धों का स्थायीकरण** - यजमानी व्यवस्था की दूसरी विशेषता यह है कि यह प्रथा जजमान और परजन के बीच स्थायी सम्बन्धों पर आधारित है। इसका कारण यह है कि जजमानी व्यवस्था के दो आधार-स्तम्भ हैं -

(a) कृषि और (b) जाति।

चूँकि कृषि और जाति दोनों ही स्थायी हैं और भारतीय जीवन के अंग हैं। परिणामस्वरूप ये दोनों तत्व मिलकर जजमानी प्रथा के सम्बन्धों की स्थायित्व प्रदान करते हैं। कृषि व्यवसाय में स्थायित्व होने के कारण जो लोग इसमें हाथ बँटाते हैं, उनके सम्बन्ध भी स्थायी हो जाते हैं। जजमानी व्यवस्था के सम्बन्ध में स्थायीपन का निर्वाह दो प्रकार का होता है।

NOTES

(a) जब कोई परजन एक गाँव छोड़कर दूसरे गाँव में जाकर बस जाता है, तो यह आवश्यक नहीं है कि जजमान से उसके सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं, अपितु वह दूसरे गाँव से ही अपने जजमान की सेवा करता रहता है और

(b) यदि वह दूसरे गाँव जाकर अपने जजमान की सेवा करने में अपने को असमर्थ पाता है, तो वह इसे अपने परिवार या रिश्तेदारों को हस्तांतरित कर देता है और इस प्रकार ये सम्बन्ध एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित ही होते रहते हैं।

जजमानी अधिकारों को बेचा भी जाता है। इसकी कीमत व्यवसाय की प्रकृति और व्यक्तियों पर आधारित होती है।

(3) **आवास की स्थिरता** - जजमानी प्रथा के सम्बन्धों में स्थिरता पाई जाती है। इसका कारण यह है कि कोई भी परजन एक गाँव छोड़कर दूसरे गाँव में बसना पसन्द नहीं करता है और स्थायी तौर पर अपने जजमानों की सेवा करते जाते हैं। परजन जजमानी अधिकारों का अपना पैतृक अधिकार समझते हैं और किसी भी कीमत पर इन अधिकारों को छोड़ना नहीं चाहते हैं। यही कारण था कि भारतीय ग्रामीण लोग नगरों की अपेक्षा गाँवों में रहना पसन्द करते थे। धीरे-धीरे जजमानी प्रथा समाप्त होती रही है और यही कारण है ग्रामीण लोग अपनी अर्थ-व्यवस्था के उद्देश्य से नगरों की ओर भाग रहे हैं।

(4) **व्यावसायिक संघवाद** - यदि इस प्रथा को ऊपरी तौर से देखा जाए तो अत्यन्त सरल प्रतीत होती है, किन्तु वास्तविकता इससे भिन्न है। इस प्रथा में भी वे सभी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो आधुनिक व्यवसायों के आधार में हैं। जजमानी प्रथा का भी व्यवसाय के रूप में एक संगठन है। यही कारण है कि कोई भी परजन जातीय दण्ड के भय के कारण से दूसरी परजन का कार्य अपने हाथ में नहीं लेता है। यदि कोई परजन ऐसा करता भी है तो उस जाति की पंचायत के द्वारा पूर्व निश्चित दण्ड भुगतान करना पड़ता है।

(5) **पैतृक व्यवस्था** - जजमानी प्रथा में पैतृकता का तत्व महत्वपूर्ण होता है। यह प्रथा अनेक पीढ़ियों तक चलती रहती है। इसीलिये ऐसा कहा जाता है कि 'जजमानी प्रथा परजनों की सम्पत्ति है।' जजमानी पर अधिकार पैतृकता के आधार पर निर्धारित होते हैं और इनमें सामान्य परिस्थितियों में परिवर्तन सम्भव नहीं होता है। यदि एक पिता के अनेक पुत्र होते हैं तो सभी भाइयों में जजमानी के अधिकारों के बराबर-बराबर बँटवारा हो जाता है। यह प्रक्रिया एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। जिस प्रकार से परजन की सेवाओं से इन्कार नहीं कर सकता ठीक इसी प्रकार जजमान भी परजन को निम्न कारणों से हटा नहीं सकते-

(a) यह प्रथा परम्पराओं पर आधारित होती है और परम्पराओं की उपेक्षा आसानी से नहीं की जा सकती है,

(b) पेशेवर जातियों में पायी जाने वाली पंचायतें। ये पंचायतें शक्तिशाली होती हैं अत: यदि कोई जजमान किसी परजन को अकारण हटा देता है, तो कोई भी दूसरा परजन उसके यहाँ सेवा नहीं कर सकता है। आस्कर लुइस ने इसीलिए लिखा है कि जजमानी अधिकार .... सम्पत्ति के एक ऐसे रूप में माने जा सकते हैं, जो पिता से पुत्र को मिलती रहती है।

(6) **मानसिक सुरक्षा** - किस प्रकार से जाति-प्रथा अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा प्रदान करती है और उन्हें अन्य व्यवसाय प्राप्त करने की चिन्ता नहीं रहती है, ठीक इसी प्रकार जजमानी प्रथा में भी अनुभव निश्चित होने के कारण इसके सदस्य मानसिक दृष्टि से सुरक्षा का अनुभव करते हैं। परजनों के व्यवसाय जन्म के साथ ही निश्चित हो जाते हैं। उसे अपने व्यवसाय को करने के लिये किसी भी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती है। प्रत्येक परिवार व्यावसायिक प्रशिक्षण का केन्द्र होता है और इसी प्रशिक्षण के आधार पर भावी जीवन का निर्धारण होता है। व्यवसाय की सुरक्षा के कारण व्यक्ति को अनिश्चितता की स्थिति का सामना नहीं करना पड़ता है।

(7) **व्यावसायिक सुरक्षा** - परजन के अन्तर्गत अनेक जाति के व्यक्ति सम्मिलित होते हैं। जैसे सभी परजनों के व्यवसायों में एकरूपता न होकर भिन्नता पाई जाती है। ब्राह्मण का कार्य चमार के कार्य से भिन्न होता है। ठीक इसी प्रकार लुहार और बढ़ई के कार्यों में मौलिक भिन्नता पाई जाती है। इस प्रकार परजनों के व्यवसाय अलग-अलग होते हैं और इनमें भिन्नता पाई जाती है।

(8) **कार्य-क्षेत्र की भिन्नता** - व्यवसायों में भिन्नता के साथ ही परजनों के कार्य-क्षेत्र में भिन्नता पाई जाती है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी परजनों के कार्य-क्षेत्र समान होते हैं। किसी परजन का कार्य-क्षेत्र बड़ा-छोटा हो सकता है, दूसरे का कार्य-क्षेत्र बड़ा हो सकता है। कार्य-क्षेत्र का निर्धारण अर्थशास्त्र के नियम 'माँग और पूर्ति' (Demand and Supply) के आधार पर होता है। उदाहरण के लिये बढ़ई और लुहार का कार्य क्षेत्र सीमित

हो सकता है, क्योंकि ये कृषि से सम्बन्धित कार्य करते हैं। कृषकों की अधिकता और मौसम में अधिक कार्य होने के कारण इन परजनों को अधिक जजमानों का कार्य करना सम्भव नहीं होता है। जबकि ब्राह्मण और नाई का कार्य-क्षेत्र विस्तृत भी हो सकता है। इसी प्रकार बनिये का कार्य-क्षेत्र विस्तृत होता है।

(9) **शान्ति, सन्तोष और व्यवस्था** - वाइजर[2] ने लिखा है कि यजमानी प्रथा अपने सदस्यों को शान्ति और सन्तोष प्रदान करती है। इस प्रथा के कारण लोगों में व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा का विकास नहीं हो पाता है। अत: समाज को किसी भी प्रकार के संघर्ष का सामना नहीं करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि समुदाय अधिकाधिक संगठित रहता है और इसमें सामाजिक व्यवस्था का विकास होता है।

(10) **सामाजिक संस्तरण का निर्माण** - प्रत्येक समाज में एक निश्चित संस्तरण पाया जाता है। जजमानी प्रथा ग्रामीण सामाजिक संस्तरण का आधार है और इसी के द्वारा ग्रामीण जीवन में व्यक्ति के पद का निर्धारण होता है। उदाहरण के लिये ब्राह्मण, लुहार और चमार इन तीनों परजनों के पद अलग-अलग और पूर्व निश्चित होते हैं। ब्राह्मण का पद सभी परजनों में सर्वोच्च होता है। इसी प्रकार चमार की तुलना में लुहार का पद ऊँचा होता है।

(11) **कार्य और पारिश्रमिक की निश्चितता** - जजमानी प्रथा में प्रत्येक व्यक्ति के निश्चित पद होते हैं। इन पदों के अनुसार व्यक्ति को निश्चित कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है। इस कार्य के बदले व्यक्ति को एक निश्चित मात्रा में पारिश्रमिक दिया जाता है। जैसे ब्राह्मणों का पद सर्वोच्च होता है, अत: इसका कार्य भी उच्च कोटि का रहता है - जैसे पूजा का कार्य। इस कार्य के बदल उसे पारिश्रमिक के बतौर कम से कम 1 रुपया 25 पैसे देने पड़ेंगे और पक्के भोजन की व्यवस्था करनी होगी या सामान देना होगा। जबकि चर्मकार, धोबी आदि परजनों को न तो इतना ही दिया जाएगा और न ही उन्हें अच्छा भोजन दिया जाएगा। उदाहरण के बतौर कुछ जातियों के कार्यों का विवरण दिया जा रहा है -

क्र.सं.	जाति का नाम	कार्य की प्रगति
1.	चर्मकार	(a) जूते बनाना (b) कृषि में सहायता (c) मृत जानवरों को हटाना (d) बेगार
2.	नाई	(a) बाल बनाना (b) शादी-ब्याह पर सेवाएँ (c) अन्य पारिवारिक कार्य
3.	कुम्हार	(a) मिट्टी के बर्तन बनाना (b) शादी-ब्याह पर कार्य (c) बेगार देना

लुइस ने अपने अध्ययन के माध्यम से एक लम्बी तालिका प्रस्तुत की है, जिसके आधार पर उसने भिन्न-भिन्न परजनों की सेवाओं और पारिश्रमिक का विवेचन करने का प्रयास किया है। जहाँ तक कार्यों का सम्बन्ध है सम्पूर्ण भारत के परजनों को जाति के अनुसार एक ही प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। इतना निश्चित है कि पारिश्रमिक में थोड़ी बहुत भिन्नता पाई जाती है। साथ ही पारिश्रमिक की प्रकृति भी भिन्न-भिन्न होती है।

जजमानी व्यवस्था के लाभ
(Advantage of Jajmani System)

जजमानी प्रथा के इतिहास का यदि अवलोकन किया जाए, तो ऐसा प्रतीत होता है कि इस प्रथा के जन्म और विकास में भारतवर्ष की तत्कालीन आर्थिक परिस्थितियों का महत्वपूर्ण हाथ रहा है। जजमानी प्रथा के लाभों की विवेचना करते हुए आपलर और सिंह ने लिखा है कि "न केवल प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू प्रथा में स्थान रखता था अपितु यह एक विशेषता है कि ब्राह्मण से लेकर चर्मकार तक प्रत्येक जाति समूह समुदाय के सामाजिक और संस्कारगत क्षेत्र के कुछ न कुछ मात्रा में एक दूसरे से सम्बन्धित रहा है और जाति आवश्यक तथा गर्व का अनुभव करने को कुछ अवसर दिया जाता रहा है।" जजमानी प्रथा से लाभ होते हैं, उन्हें निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

NOTES

NOTES

(1) यजमानी प्रथा वंशानुगत होती है, इसलिये समाज की सारी व्यवस्था पूर्व निश्चित रहती है। व्यवस्था के पूर्व निश्चित होने के कारण समाज के सदस्यों के बीच संघर्ष के अवसर कम आते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि सामाजिक संगठन को अधिक बल मिलता है।

(2) भारतवर्ष में यजमानी प्रथा के परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के व्यवसायों का जन्म और विकास हुआ।

(3) यजमानी प्रथा अपने सदस्यों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करती है। जजमानी प्रथा सामाजिक आपत्तियों से सुरक्षा प्रदान करने का प्रयास करती है।

(4) यजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत जजमान परजनों की सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। इसलिये परजनों के जीवन में आर्थिक सुरक्षा का विकास होता है।

(5) आर्थिक और सामाजिक सुरक्षा प्राप्त होने से व्यक्ति मानसिक सुरक्षा की अनुभूति करता है। व्यक्ति का जीवन, शादी, व्यवसाय, धर्म और राजनैतिक कार्य सभी पर्याप्त मात्रा में निश्चित होते हैं। इससे मानसिक सुरक्षा की भावना में दृढ़ता का विकास होता है।

(6) यजमानी प्रथा का आधार निश्चित व्यवसाय होते हैं। इन व्यवसायों के सम्पादन के लिये विशेष प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है। जजमानी प्रथा के द्वारा वह प्रशिक्षण नि:शुल्क रूप से प्राप्त होता रहा है।

(7) यजमानी प्रथा के द्वारा व्यक्तियों और जातियों के बीच स्थायी, गहन और दृढ़ सम्बन्धों का विकास होता है। इसके परिणामस्वरूप पारस्परिक एकता की भावना का विकास होता है।

(8) यजमानी प्रथा समाज के अस्तित्व के लिये संघर्ष के सिद्धान्त से दूर रखती है।

(9) यजमानी प्रथा श्रम संगठन के रूप में कार्य करती है जैसे धोबियों का संगठन।

जजमानी व्यवस्था के दोष
(Disadvantage of Jajmani System)

हर एक चीज के दो पहलू होते हैं। जिस प्रकार एक पहलू उसकी अच्छाइयों का होता है, ठीक उसी प्रकार से एक पहलू बुराइयों का होता है। इससे पहले जजमानी प्रथा के अनेक गुणों की चर्चा की गई और इस प्रथा से अनेक लाभ बतलाए गये हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि इस प्रथा के अवगुण या दोष नहीं है। जजमानी प्रथा में अनेक बुराइयों का भी समावेश है। संक्षेप में, इस प्रथा की बुराइयों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) यजमानी प्रथा भले ही अच्छी रही हो किन्तु भारत को बदलती हुई स्थितियों में यह अनुपयोगी सिद्ध हो रही है। इस प्रथा से अर्थ-व्यवस्था पंगु हो जाती है और प्रति व्यक्ति के आय में वृद्धि नहीं होती है।

(2) यजमानी प्रथा इस बात पर आधारित है कि कुछ व्यक्तियों के पद ऊँचे होते हैं, तो कुछ व्यक्तियों के निम्न। इस प्रकार यह प्रथा मानव-मानव के बीच समानता के सिद्धान्तों की विरोधी है।

(3) यजमानी प्रथा के परिणामस्वरूप औद्योगिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

(4) व्यवसाय पूर्व निश्चित और परम्परागत होने के कारण भी देश के आर्थिक विकास में कठिनाइयाँ आती हैं।

(5) यजमानी प्रथा सामाजिक स्थिरता में वृद्धि करती है और स्थिरता सामाजिक उन्नति में स्वभावत: बाधा उत्पन्न करती है।

(6) इस प्रथा के कारण व्यक्तियों के बीच दोहरी नैतिकता का विकास होता है। ब्राह्मण की नैतिकता अलग है और चर्मकार की नैतिकता अलग है।

(7) यजमानी प्रथा व्यक्तियों को आलसी और अकर्मण्य बना देती है।

(8) इस प्रथा के कारण परजनों के जीवन में अवसरों की कमी आ जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उस जाति के व्यक्तियों में समुचित कार्य क्षमता का विकास नहीं हो पाता है।

(9) इस प्रथा के द्वारा परजनों का शोषण किया जाता है और उन्हें अधिक मात्रा में श्रम करना पड़ता है।

(10) इस प्रथा के परिणामस्वरूप व्यक्तियों में आत्मनिर्भरता की भावना समाप्त हो जाती है और उनमें पराश्रयता की भावना का विकास होता है।

(11) जजमानी प्रथा देश के आर्थिक विकास को पीछे की ओर खींचती है। अत: यह प्रथा प्रगति में बाधक है।

जजमानी व्यवस्था एवं परिवर्तन
(Jajmani System and Change)

आधुनिक युग में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों का प्रभाव सभी प्रकार की संस्थाओं और प्रभावों पर पड़ रहा है। जजमान प्रथा भी इन परिवर्तनों से अछूती नहीं है। यही कारण है कि आधुनिक युग में जजमानी प्रथा में निरन्तर परिवर्तन हो रहे हैं और इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे यह प्रथा समाप्त होती जा रही है और जजमानी प्रथा जाति पर आधारित है। इसलिये जजमानी प्रथा का विघटन होना बिलकुल स्वाभाविक है। भारतवर्ष में जजमानी प्रथा के विघटन के कारणों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) जैसे - जैसे शिक्षा के प्रसार और मानव ज्ञान में वृद्धि होती जा रही है, यह प्रथा समाप्त होती जा रही है।

(2) भारतवर्ष में आवागमन और संदेशवाहन के साधनों में जैसे ही जैसे वृद्धि होती जा रही है, जजमानी प्रथा समाप्त होती जा रही है।

(3) भारतवर्ष की कृषि अर्थ-व्यवस्था के साथ ही यहाँ पर औद्योगिक विकास हो रहा है। उद्योगों की प्रगति से कारखानों को प्रोत्साहन मिलता है और इससे भी यजमानी प्रथा समाप्त होती जा रही है।

(4) भारतीय स्वतन्त्रता के कारण भी जजमानी प्रथा समाप्त होती जा रही है। जैसे ही जैसे जनता के प्रजातन्त्र की भावना विकसित होती जा रही है, यह प्रथा समाप्त होती जा रही है।

(5) आधुनिक समाज में धन के महत्व में वृद्धि होती जा रही है। इसके कारण लोग अधिक धन कमाना चाहते हैं और परिणाम यह होता है कि जजमानी प्रथा समाप्त होती जा रही है।

(6) आधुनिक भारत में लोगों से धर्म और कर्म के प्रति श्रद्धा भी समाप्त होती जा रही है, जिससे ब्राह्मणों का आदर और सत्कार कम होता जा रहा है। इससे यह प्रथा भी समाप्त होती जा रही है।

(7) सामाजिक और धार्मिक सुधारों के परिणामस्वरूप भी इस प्रथा को काफी धक्का लगा है।

(8) साम्यवाद और समाजवाद की भावनाएँ भी इस प्रथा को समाप्त करने में काफी मात्रा तक उत्तरदायी हैं।

(9) आधुनिक भारत में संयुक्त परिवार का विघटन होता जा रहा है। इस विघटन के कारण जजमानी प्रथा से लोगों की आस्था समाप्त होती जा रही है।

(10) सरकारी नौकरियों में सभी को बिना भेद-भाव के समान अवसर प्रदान किए जा रहे हैं। इसके परिणामस्वरूप भी यह प्रथा समाप्त होती जा रही है।

जजमानी व्यवस्था और परिवर्तनशील उत्पादन सम्बन्ध
(Jajmani System and Changing Production Relation)

भारत के भविष्य का संवाद जाति प्रथा के अस्तित्व से भी जुड़ा है। जाति प्रथा की संरचना और प्रकार्य में जजमानी प्रथा अनिवार्य तत्व में गिनी जाती है, परन्तु एक व्यवस्था के रूप में जजमानी समापन की ओर है। जाति का चेहरा और छवि बदल रही है। सेवक जातियों का देहातों से शहरों में प्रवजन ने दिशा बदल कर रख दिया है जजमानी का। आरक्षण के लिये जाति की गणना मात्र कर राजनैतिक तात्कालिक लाभों का बँटवारा किया जाता है। **प्रो. श्रीनिवास** लिखते हैं कि "ग्राम स्तर पर जातियाँ परस्पर आश्रित थीं और वे इस वास्तविकता के प्रति सजग थीं, लुहार, कुम्हार, नाई, धोबी और पुजारी को दिया जाने वाला वार्षिक अन्न प्रतिदान इस परस्पर आश्रित रहने का साक्षात प्रमाण था।" इस मालिक-नौकर, भूस्वामी - काश्तकार, साहूकार - ऋणी तथा संरक्षण-अवलम्बी जैसे (Patronage- exploitation) सम्बन्ध जाति का विभाजन करते थे। **प्रो. श्रीनिवास** ने पचास वर्ष बाद जातियों की एक व्यवस्था के रूप में पुनरावसान (obitnary of caste system 2003) की टिप्पणी की है और विस्तार से जजमानी के अन्त का उल्लेख किया है। यद्यपि जजमानी प्रथा के अन्त की जिम्मेदार शक्तियों में ग्रामीण क्षेत्रों का औद्योगीकरण और शहरीकरण का प्रभाव परिलक्षित पूर्व में ही हुआ। मुद्रीकृत राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में बढ़ती साझेदारी ग्रामीण समुदाय को विशाल समाज के दायरे में लाती है। नयी सत्ता, आदर, अनाज की जगह नकदी मुद्रा का चलन जजमानी के लिये अहितकर साबित हुआ।

उत्पादन सम्बन्धों के पुराने प्रतिमान कमजोर पड़ गये हैं, नया संस्तरण-व्यवस्था (Hierarchical system) मौद्रिक ताकत को ज्यादा स्थान देती है, भूमि-जाति अन्तर्सम्बन्धों को नया आधार और अनेक नये सम्बन्धों का जन्म संभव हुआ। भूमि विखण्डन ने पुराने जमींदारों का जनसंख्या वृद्धि के साथ शहर की ओर प्रेरित किया है,

NOTES

जहाँ पवित्रता और संस्कार क्रम ज्यादा मायने नहीं रखते। उत्तरी भारत में जजमानी प्रथा का ढाँचा भू-स्वामी जमींदाराना ढाँचे में फिट बैठता है। आज देहाती भारत में सेवक जातियाँ खासतौर से नाई शहरी कटिंग की दुकानें खोले एवं गाँवों से बाहर कस्बों, महानगर और राजमार्गों पर 'सैलून' मालिक बन बैठे हैं अत: ग्राम में जाति की प्रस्थिति (Status) की चिंता किसे है शायद सबसे उपेक्षणीय तथ्य। जजमानी से श्रम विभाजन (Division of Labour) कुछ सीमा तक उत्पादन सम्बन्धों को संभालता रहा है, आज जाति से जुड़े कर्तव्यों को अच्छी नजर से नहीं देखा जाता। इसे शोषण और अत्याचार का कारण समझा जाता है। जजमानी प्रथा को बदलने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान नयी तकनीकों का रहा है इसके फायदे तो अनेक हुये हैं अपितु कर्नाटक के कपास उत्पादक किसानों की आत्महत्यायें करने की घटनायें चिंताजनक है (1999) जो कृषि क्रान्ति के बुरे प्रभाव हैं। जजमानी प्रथा के कमजोर पड़ते जाने के अनेक कारण और भी हैं जनसंख्या विस्फोट के दौर में शहरी प्रवजन, सड़कें, दूर संचार और नवीन शहरी सीमान्त सुविधायें जजमानी प्रथा को तोड़ती रहीं। जमीन और पुराने सामन्ती ढाँचे की जगह गाँवों में नवीन वर्ग शहरी व्यवस्था, नवीन सरकारी नौकरी, नया पैसा और उदीयमान हरित क्रांति का समृद्ध किसान जजमानी के कई सेवक वर्गों की संगति नहीं पाया, सेवक जातियाँ नयी पीढ़ी को अपने जजमानी कौशल का प्रशिक्षण हेय दृष्टि से देखे जाने के कारण नहीं कर पायी, अत: नयी पीढ़ी जो साठ के दशक के बाद की है, जजमानी का अस्तित्व अपने लिये नहीं रख पाई।

जजमानी प्रथा के बारे में वीजर (1936) एवं वीडलमैन (1959) का अध्ययन अत्यन्त सम्मानित ढंग से रखा जाता है। कई अगले अध्ययनों का आधार रहा है वीजर के प्रामाणिक लेखन पश्चात् देश भर में जजमानी के स्थानीय अध्ययन ग्रामीण अध्ययन माला (Village Studies) के मोनोग्राफ तैयार भी हुये थे। वर्तमान संदर्भों में जजमानी की परिभाषा को 1936 से 1986 तक चालीस-पचास दशक में बदलते औचित्य के (Relevance) संदर्भ में देखें तो -

(1) परिमाणात्मक अन्वतियाँ (definitional orientation) नयी जजमानी को सूचित करती हैं जैसे पंडित-यजमान, नाई-किसान, बढ़ई-किसान के बीच मौद्रिक कारक आधारभूत रहे।

(2) व्यवसाय के नये अवसरों से उत्पन्न कुछ व्यवसायों का शहरों से प्रवाह दूसरे 'कस्टमर सर्विस' नयी यथार्थता गैर जजमानी शब्द है।

(3) सेवा सम्बन्धों का संकुचन लगातार हुआ है, ग्रामीण परिधि के क्षेत्र में भी संकुचन हुआ है। परजा और जजमान का सम्बन्ध आर्थिक दायरे में सामाजिक दायरे की तुलना में अधिक प्रसरित होता गया है। परम्परागत परजा जैसा कुछ नहीं।

(4) नवीन पंचायत व्यवस्था ने ग्राम पंचायत आय की दृष्टि से ठेका प्रथा को बढ़ावा दिया तथा ठेका की आमदनी से सेवक जातियों का कल्याण नहीं किया जाकर सभी ग्राम के लोगों का किया जाना संभव हुआ है।

वर्तमान ग्रामीण परिवेश में प्रोत्साहन, प्रलोभन के नये क्षेत्र हैं, जजमानी की उपयोगिता जानने का सवाल नहीं उठता। गति व्यवस्था का शनै:-शनै: विलोपन जजमानी के विलोपन के साथ होना नियति कहा जा सकता है।

डेविड मेण्डलवाम (1972) ने निरन्तरता एवं परिवर्तन परिप्रेक्ष्य से जजमानी प्रथा को स्पष्ट किया है। नकदी फसलों का दायरा बढ़ता गया, परिवहन से शहरों में मण्डी तक अनाज बिक्री का कार्य सरल हुआ जिससे मेहनती सेवक जातियाँ भी सहायक उद्यम में चली गयीं। गन्ना, कपास, आलू की नकदी फसलें सिंचित गाँवों से सीधे नकदी कमाई देती रही। इसी से देहाती मजदूरों व सेवक जातियों को भी कुछ कमाई करने के नकद प्रावधान बनने लगे। (ओरन्स्टीन, कर्वे एवं डामले 1963, पृ.37) बाहरी उद्यमों की कमाई बढ़ने से स्थानीय प्रभुजातियों का रुतबा जजमानी प्रथा को कायम रखने में भी सफल नहीं रहा था। आर्थिक स्थायित्व और सुरक्षा का भरोसा देने वाले जजमानी प्रथा से लोगों ने शहरी नकदी आय के धंधे पकड़े और एक साथ सवर्ण जातियों से संघर्ष से बचाव और नयी पीढ़ी के लायक नये रोजगार का सहयोग मिला।

गाँवों में पिछले दशकों में **ठेका मजदूरों** (Contract labour) की अधिक माँग बढ़ी है। पंजाब, हरियाणा हरित क्रान्ति के क्षेत्रों / राज्यों से ठेका मजदूरी के कारण निचले सेवक और कमियाँ मजदूरों को मौसमी पलायन (Seasonal Migration) करना प्रारम्भ हुआ। गाँवों में सेवक जातियाँ अपनी नयी पीढ़ी के लिये गैर कृषि और जजमानी व्यवसायों के लिये सफल रही हैं। बढ़ई के बेटे खाड़ी देशों तक में प्लम्बर, मेसन, अनस्किल्ड मजदूरी से देहातों में अपने घरों को पक्का, खेती की जमीनें खरीद सके। ऋण की मदद की भी आवश्यकता किसानों से

नहीं करते। विवाह, खेती अन्य धार्मिक कार्यों को बाहरी धंधे में अधिक ढंग से टेन्ट हाउस करते हैं। अब सब कुछ क्रय करके शहरों से गाँवों में शादी-ब्याह में पहुँचता है।

ठेकेदारी, खेती में साझा प्रथा और देहातों में खेती का ठेका भी जजमानी को कमजोर कर चुका है।

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

NOTES

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. जजमानी प्रथा की व्याख्या कीजिये। जजमानी प्रथा की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिये।
   Define Jajmani system. Discuss chief characteristics of jajmani system.
2. जजमानी प्रथा के गुण-दोषों की विवेचना कीजिये।
   Discuss advantages and disadvantages of jajmani system.
3. 'भारत में जजमानी प्रथा विघटन की प्रक्रिया में है।' विवेचना कीजिए।
   The jajmani system in India the process of disorganization. Discuss.
4. जजमानी प्रथा और जाति के सम्बन्धों की विवेचना कीजिये।
   Discuss the relationship between jajmani system and caste system.
5. जजमानी व्यवस्था और परिवर्तनशील उत्पादन सम्बन्धों को समझाइए।
   Explain Jajmani system and changing production relations.

(B) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जजमानी शब्द को समझाइए।
   Explain the word Jajmani.
2. जजमानी व्यवस्था की विवेचना कीजिए।
   Describe Jajmani System.
3. जजमानी व्यवस्था की तीन विशेषताएँ लिखिए।
   Write the characteristics of Jajmani system.
4. जजमानी व्यवस्था जाति पर आधारित है। समझाइए।
   Jajmani system is based on caste. Explain.
5. जजमानी व्यवस्था के गुणों को लिखिए।
   Write demerits of Jajmani system.
6. जजमानी व्यवस्था के तीन दोषों को लिखिए।
   Write three demerits of Jajmani system.
7. जजमानी व्यवस्था परिवर्तित हो रही है। समझाइए।
   Jajmani system is changing. Explain.

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

(C) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. जजमानी व्यवस्था किस पर आश्रित है?
   (अ) वर्ण पर (ब) वर्ग पर (स) जाति पर (द) उपरोक्त तीनों पर
2. किसने कहा- 'किसान जो कि काम देते है, जजमान कहलाते हैं और शिल्पी लोग परजन कहलाते हैं।'
   (अ) आस्कर लुइस (ब) रैडी (स) श्रीनिवास (द) आन्द्रे वेतिल
3. 'Hindu Jajmani system' के लेखक कौन हैं?
   (अ) वीडलमैन (ब) वाइजर
   (स) एम.एन. श्रीनिवास (इ) आस्कर लुइस

उत्तर- 1 (स) 2 (ब) 3 (ब)

●●●

NOTES

6

भारत में कृषि सम्बन्ध
(AGRARIAN RELATION IN INDIA)

प्रत्येक देश की अपनी अर्थव्यवस्था होती है। भारतीय संदर्भ में अर्थव्यवस्था के दो आधार हैं- ग्रामीण और नगरीय। ग्रामीण अर्थव्यवस्था ग्रामीण पर्यावरण पर आधारित होती है, जब कि नगरीय अर्थव्यवस्था का आधार नगरीय पर्यावरण होता है। भारत गाँवों का देश है। तीन चौथाई जनसंख्या भारतीय गाँवों में निवास करती है। इस ग्रामीण जनसंख्या का आधार कृषि है। मानव के उद्‌विकास की प्रक्रिया का आधार भी कृषि है। कृषि अर्थव्यवस्था के कारण ही मानव आखेट और घुमन्तू अवस्था से स्थायी निवास की अवस्था में आया है। जिस दिन से मानव ने कृषि को अपनी आजीविका का आधार बनाया, वह एक निश्चित स्थान पर आकर निवास करने लगा। उसका जमीन से जुड़ाव हुआ और इस जुड़ाव के कारण वह भूस्वामी बना और कृषि का कार्य प्रारम्भ किया। कालान्तर में कृषि का विकास होता गया और कृषि कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों तथा वस्तुओं की आवश्यकता हुई प्रारम्भ में व्यक्ति कृषि से सम्बन्धित वस्तुओं का स्वतः निर्माण करता था। कालान्तर में उसे इस कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता हुई और इन अनेक व्यक्तियों ने आपस में मिलकर कृषि तथा इससे सम्बन्धित कार्यों का सम्पादन किया। इन कार्यों के सम्पादन के कारण ही भारतीय ग्रामीण समाज में कृषि सम्बन्धों का जन्म और विकास हुआ।

भारत में ग्रामीण अर्थव्यवस्था
(Rural Economy in India)

भारतवर्ष गाँवों का देश कहा जाता है। जनगणना 2001 के अनुसार भारत की लगभग 77.39 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार कृषि है। ग्रामीण सीधे ग्राम से सम्बन्धित हैं। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था इन सभी ग्रामवासियों की आर्थिक अन्तर्क्रियाओं का परिणाम है। मौलिक प्रश्न यह उठता है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार क्या है? कौन-सी ऐसी परिस्थिति है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती है? आदि कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो बार-बार ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर विचार करने के लिए बाध्य कर देते हैं। इसके ठोस उत्तर में सिर्फ इतना ही कहा जा सकता है कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। भारतीय कृषि को.मानसून का जुआ भी कहा जाता है। कृषि पूर्णतया वर्षा पर आधारित होती है। जिस वर्ष वर्षा न हुई, तो कृषि चौपट हो जाती है। इस स्थिति में ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था का आधार ही समाप्त हो जाता है। साथ ही उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति भी ठीक तरीके से नहीं होती है।

प्रायः ग्रामीण जीवन नगरीय जीवन से पूर्णतया भिन्न होता है। वास्तव में ग्रामीण और कृषक एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। जैसा कि टी. लिन स्मिथ महोदय ने लिखा है - "समस्त अन्तरों में, जो समाज के ग्रामीण तथा शहरी भागों में देखे गये हैं, व्यावसायिक अन्तर अत्यधिक मौलिक महत्ता को रखते हुए प्रमुख दिखाई देता है। कृषि तथा सामूहिक उपक्रम 'ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार हैं, 'कृषक' तथा 'ग्रामीण' प्रायः पर्यायवाची शब्द समझे जाते हैं।'

वास्तव में किसान दिन-रात परिश्रम करता है जिससे कि उत्पादन में वृद्धि हो सके और आजीविका के साधन सुलभ हो सकें। इस प्रकार कृषक का मुख्य व्यवसाय कृषि है, वही उसकी आर्थिक व्यवस्था का आधार है। इसके माध्यम से वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में करता है। इस दृष्टि से कृषि कृषक के व्यवसाय की अपेक्षा जीवन जीने का ढंग है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास
(Development of Rural Economy)

ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था को पूर्ण रूप से समझने के लिए मानव उद्‌विकास की अवधारणा का सहारा लेना होगा। अति संक्षेप में इसके विकास की अवस्थाएँ निम्न हैं :-

(1) **शिकारी अवस्था** (Hunting Stage) - यह मानव-समाज के आर्थिक जीवन के विकास की पहली अवस्था है। विकास की पहली अवस्था में मानव के पास न तो भोजन ही रहा होगा और न ही निवास के लिए घर। स्वभावतः वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का इच्छुक और इसके लिए प्रयत्नशील रहा होगा। विकास की पहली अवस्था में मानव के पास इन आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन भी सीमित रहे होंगे। साथ ही उसे उन साधनों की जानकारी भी रही होगी। उसके आस-पास जो विविध प्रकार का वातावरण था, उसने इससे ही अनुकूलन करना आवश्यक समझा। ऐसा करने से ही उसके अस्तित्व की रक्षा भी हो सकती थी। मनुष्य ने आस-पास के वातावरण से जो फल-फूल आदि प्राप्त किये उन्हीं को अपने भोजन का आधार बनाया। उसने आस-पास के जंगली जानवरों को मारकर खाना प्रारंभ किया। ऋतु-परिवर्तन तथा अन्य कारणों से अपना स्थान परिवर्तित करता रहता था। वह इतना तो प्रयास करता था कि एक स्थान से दूसरे स्थान की तलाश करे जहाँ पर जानवर और फल-फूल प्राप्त हो सकें। यह मानव-विकास की पहली आर्थिक अवस्था थी।

(2) **चरवाहा अवस्था** (Pastoral Stage) - मानव आर्थिक जीवन की दूसरी अवस्था चरवाहा या पशु-पालन की अवस्था थी। आखेट-अवस्था की तुलना में इस अवस्था में उसके आर्थिक जीवन का अधिक विकास हो जाता है। आखेट-अवस्था में मानव के जीवन में अनेक बार ऐसा समय आया होगा जब कि कुछ दिनों तक खाने के लिए उसके पास कुछ नहीं मिलता रहा होगा, तब ऐसा भी होता रहा होगा कि मानव अनेक दिनों तक भूखा रहता रहा होगा। अपनी इस भूख की समस्या का समाधान करने के लिए मनुष्य ने अनेक उपायों की खोज का प्रयास किया होगा। मानव मस्तिष्क में ऐसे विचार आये होंगे कि यदि इन्हीं जानवरों को मारने की अपेक्षा जिन्दा पकड़ लिया जाये तो शिकार में जानवरों के न मिलने पर भी भूखे रहने की समस्या से जूझा जा सकेगा। अतः कुछ लोगों ने जानवरों को मारने के बजाय उन्हें पकड़ कर पालना शुरू किया। जानवरों को इसलिए पाला गया होगा कि जिस दिन शिकार न मिले तो इन जानवरों को मारकर खाया जा सके। बाद में शायद ऐसा अनुभव किया गया होगा कि इन जानवरों से सिर्फ माँस ही नहीं मिलता अपितु दूध तथा बच्चे भी प्राप्त होते हैं। इससे जानवरों की संख्या में भी वृद्धि होती है। इस अवस्था में आते-आते मनुष्यों में एक समूह में रहने की भावना का भी विकास हो गया था। व्यक्तियों ने ऐसा अनुभव किया कि समूह से अलग रहने से अनेक प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इसलिए व्यक्ति एक समूह बनाकर रहने लगे और पशु-पालन के माध्यम से अपना जीविकोपार्जन करने लगे। इस प्रकार अर्थव्यवस्था में कुछ स्थिरता आई। यद्यपि वे अब भी घुमन्तू जीवन अपनाते थे, किन्तु इसकी मात्रा में किंचित् कमी आ गई।

(3) **कृषक अवस्था** (Agriculture Stage) - मानव अर्थ-व्यवस्था कि उद्विकास की तीसरी अवस्था है। इसमें मानव ने पशु-पालन के साथ ही साथ कृषि करना प्रारम्भ कर दिया। पशुओं के लिए अच्छी घास और पर्याप्त पानी की आवश्यकता का अनुभव मानव ने किया होगा और जहाँ ये दोनों तत्व पर्याप्त मात्रा में मिल गये होंगे, मानव कुछ दिनों के लिए वहीं पर बस गया होगा। इस प्रकार मानव के घुमन्तू जीवन में स्थिरता का प्रारम्भ होता है। घास और जल की तलाश में मानव एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकता रहता था। जब उन्होंने एक स्थान पर कुछ दिन के लिए स्थायी रूप से निवास किया होगा, तो ऐसा अनुभव किया होगा कि कुछ घास ऐसी भी है जिनके दानों को खाया जा सकता है। अतः मनुष्य ने घास के इन दानों को खाना प्रारंभ किया। बाद में ऐसा अनुभव किया होगा कि घास के दानों को कुछ विशेष मौसम में उगाया भी जा सकता है। अतः मनुष्य ने घास को बोना प्रारंभ किया और यहीं से मानव ने कृषि-युग में प्रवेश किया। इस अवस्था में मनुष्य ने आर्थिक क्षेत्र में जो प्रगति की, उसकी विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

(a) इस अवस्था में व्यक्तिगत सम्पत्ति के विचार का उदय हुआ और भूमि को सम्पत्ति के रूप में स्वीकार किया गया।

(b) सामूहिक सम्पत्ति का विचार वैयक्तिक सम्पत्ति के रूप में परिवर्तित होने लगा।

(c) इस युग में श्रम-विभाजन के नियमों का सूत्रपात हुआ।

(d) आत्म-निर्भरता की भावना में कमी आई और व्यक्ति मिल-जुलकर अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने लगे।

(e) सम्पत्ति के विचार का जन्म हुआ।

(f) वस्तु-विनिमय को स्थायित्व प्रदान करने के लिए छोटी-छोटी मण्डियों का विकास हुआ।

(g) कृषि की प्रारंभिक अवस्था में मनुष्य के पास औजार नहीं थे, अतः मानव ने इन औजारों का आविष्कार किया और गृह-उद्योगों का विकास हुआ। इस प्रकार कृषि के साथ दस्तकारी का भी विकास हुआ।

(h) वस्तु-विनिमय के स्वरूप को व्यवस्थित किया गया।

(i) व्यापारियों तथा कारीगरों के संघों की स्थापना हुई।

इस प्रकार छोटे-छोटे गाँवों का जन्म हुआ और ग्रामीण अर्थव्यवस्था के प्रथम चरण का विकास हुआ।

NOTES

ग्रामीण अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ
(Characteristics of Rural Economy)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर ग्रामीण अर्थव्यवस्था की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं:-

(1) **अर्थव्यवस्था की वातावरण से घनिष्ठता** - वास्तव में अर्थव्यवस्था और वातावरण परस्पर एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होता है। जिस प्रकार का वातावरण रहेगा, उसी प्रकार की अर्थव्यवस्था का भी विकास होगा। भारतीय ग्रामीण वातावरण कृषि के लिए भी उपयुक्त है। अतः कृषि ही भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है।

(2) **कृषि की प्रमुखता** - ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। गाँव की अन्य आर्थिक व्यवस्थाएँ इसी के चारों ओर केन्द्रित रहती हैं। सचमुच में ग्रामीणों का अस्तित्व इसी कृषि पर ही निर्भर है। वे अपनी आवश्यकता की पूर्ति प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों ही रूपों में इसी कृषि के माध्यम से करते हैं। अतः कृषि-कार्य को ग्रामीण लोग प्राथमिकता प्रदान करते हैं जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है।

(3) **भूमि पर जनसंख्या का दबाव** - भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता चला जा रहा है जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण अर्थव्यवस्था प्रभावित हुई है। जहाँ पर लोग खेती करते हैं, वहाँ अब रहने के लिए मकान या झोपड़ खड़े हो गये हैं। अतः कृषि-कार्य करने के लिए भूमि की कमी होती जा रही है। भूमि की कमी के कारण कृषि-क्षेत्र में कमी का आभास होने लगा है। यह कमी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है।

(4) **अर्थव्यवस्था जीवन का एक ढंग मात्र है** - अर्थव्यवस्था वास्तविक रूप में जीवन का एक ढंग है। कृषक खेती के कार्य में दिन-रात मेहनत करता है। खेत को उपजाऊ बनाने में वह हर ढंग से जुट जाता है। उससे उत्पन्न अनाज से वह अपनी जीविका चलाता है। इस आधार पर तो यह कहा जा सकता है कि कृषि कृषक का व्यवसाय मात्र है, लेकिन व्यवसाय तो उसे कहा जाता है जिसमें लाभ की आशा हो अथवा जिसे लाभ की दृष्टि से किया जाये, परन्तु कृषि के अतिरिक्त बहुत से ऐसे कार्य हैं जिनसे लाभ ही लाभ हैं। लेकिन कृषक ऐसा नहीं करता है। वह अपनी भूमि से प्रेम रखता है। उसे धरती माँ के नाम से सम्बोधित करता है। भूमि कृषक के लिए सम्पत्ति मात्र ही नहीं है, बल्कि उसके जीवन का एक अंग है। उपरोक्त बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कृषि कृषक के लिए व्यवसाय मात्र नहीं है, अपितु जीवन का एक ढंग है।

(5) **पैतृकता का अधिक महत्व** - ग्रामीण समाज परम्परागत समाज होता है। परम्परागत समाज में पैतृकता को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है, वहीं व्यवस्था करनी पड़ती है जो कि उनके पूर्वज करते हैं। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि व्यवसाय वंशानुक्रम पर आधारित होता है। चूँकि भारत गाँवों में बसा है, अतः वहाँ पैतृक रूप से कृषि का ही कार्य होता रहा है और ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार बन गया है।

(6) **निम्न आर्थिक स्तर** - ग्रामीणों का आर्थिक स्तर बहुत ही निम्न कोटि का रहता है। कृषि तो अर्थव्यवस्था का आधार है। कृषि भी अच्छे ढंग से नहीं होती कि जिससे ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ हो सके। अतः ग्रामीणों के जीवन में निर्धनता हमेशा बनी रहती है।

(7) **बाजारों का अभाव** - प्रायः ग्रामीण क्षेत्रों में बाजारों का अभाव होता है। गाँवों में छोटी पूँजी वाले सेठ-साहूकार होते हैं, जो अपनी इच्छानुसार किसानों का शोषण करते हैं, अपनी वस्तु की अधिक कीमत लेते हैं। किसानों का अनाज सस्ते भाव से लेते हैं। इसका प्रभाव उनकी आर्थिक स्थिति पर पड़ता है। परिणामस्वरूप उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही कमजोर रहती है।

(8) **आर्थिक शोषण** - ग्रामीणों का शोषण पग-पग पर होता है। यहाँ तक कि यदि पुलिस एवं पटवारी साधारण रूप में भी गाँवों में पहुँच जाएँ तो उनसे भी उनका बराबर भय बना रहता है और कुछ न सही तो ये किसानों के रुपये या अनाज लेने में भी नहीं चूकते। सेठ और साहूकारों की बात ही क्या है, अवसर मिलते ही शोषण में कतई नहीं चूकते हैं। इस सबका प्रभाव ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था पर पड़ता है।

(9) **यातायात की प्राचीन पद्धतियाँ** - बहुधा आज भी गाँव ऐसे स्थानों में आबाद हैं जहाँ पर आने-जाने के लिए कोई सड़क या रास्ता नहीं है। टेढ़े-मेढ़े आकार के रास्ते हैं। यदि गाँवों में जाया जाए तो भी कई-कई दिन लग जाते हैं। परिणामस्वरूप लोगों से सम्पर्क नहीं हो पाता और वे कूपमण्डूक बने रहते हैं। वे रूढ़िवादिता एवं अन्य सामाजिक कुरीतियों की चपेट में खड़े रहते हैं। कृषि आदि से सम्बन्धित आधुनिक यंत्र एवं रासायनिक खाद, उत्तम बीज, जिसके प्रयोग से उत्पादन अधिक हो सकता है, आसानी से उन्हें उपलब्ध नहीं हो पाते। इसका मात्र कारण जानकारी का अभाव एवं रूढ़िवादिता है। अतः उनके हल और बैल पुराने ही हैं और उत्पादन भी अधिक रूप में नहीं हो पाता। इसका प्रभाव ग्रामीणों की आर्थिक व्यवस्था पर पड़ता है। उनकी आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन गिरती जाती है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के तत्व
(Elements of Rural Economy)

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के एक नहीं अनेक तत्व हैं, जो निम्न हैं -

(1) **कृषि** - ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मुख्य तत्व कृषि है। यह एक ऐसा व्यवसाय है जो ग्रामीण अर्थव्यवस्था का प्रमुख आधार है।

(2) **जजमानी-व्यवस्था** - भारतीय ग्राम समाजों में जजमानी-व्यवस्था भी देखने को मिलती है। जजमानी-व्यवस्था भी ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार है। वास्तव में इस व्यवस्था के माध्यम से गाँव के प्रत्येक जाति-समूह से यह आशा की जाती है कि दूसरी जातियों के परिवारों को वे कुछ सेवाएँ प्रदान करें। वह इन सेवाओं के बदले अनाज या द्रव्य प्राप्त करते हैं जो कि अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार माना जा सकता है। अतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में जजमानी व्यवस्था का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

(3) **ग्रामीण श्रम** - ग्रामीण क्षेत्रों में शारीरिक श्रम करने वाले लोगों की संख्या अधिक होती है। अतः श्रम द्वारा श्रमिक मजदूरी या बदले में अनाज आदि प्राप्त करता है। यह पाश्रिमिक उनकी अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है। अतः ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में ग्रामीण श्रम का महत्व सर्वाधिक रूप से है।

(4) **गृह-उद्योग** - ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था के क्षेत्र में गृह-उद्योग का भी बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। कृषि-कार्य के अतिरिक्त जो समय बचता है उसमें छोटे-मोटे कार्य किये जाते हैं। जैसे- चटाई बुनना, खिलौना बनाना आदि। इनसे व्यक्ति को प्रत्यक्ष रूप से लाभ होता है, अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण स्थान रहता है।

(5) **ग्रामीण बाजार** - ग्रामीण क्षेत्रों में बाजार होने से लोग अपनी आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु उचित मूल्य पर प्राप्त करते हैं। सेठ या साहूकारों के चंगुल में नहीं फँसते जो कि अनुचित रूप से ग्रामीणों का शोषण करता है। स्पष्ट है कि ग्रामीण बाजार भी ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था को प्रभावित करता है।

(6) **ग्रामीण यातायात** - ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात की पर्याप्त सुविधा होने के कारण ग्राम-विकास से सम्बन्धित योजनाएँ भी चालू की जा सकती हैं जिनसे ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था में परिवर्तन अवश्य होगा। अतः यातायात का विकास होने से ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था निश्चित रूप से सुदृढ़ होगी।

(7) **ग्रामीण राजस्व** - ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार ग्रामीण राजस्व भी है। ग्राम विकास से सम्बन्धित मदों पर लोग व्यय करते हैं। साथ ही कृषि-विकास में भी खर्च करते हैं जो कि ग्रामीणों का मुख्य व्यवसाय है। अतः ग्रामीण राजस्व की भी उनकी अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाता है।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ग्रामीणों की अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। वैसे कृषि के अतिरिक्त अन्य क्षेत्र भी हैं, लेकिन मुख्य रूप से कृषि को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए क्योंकि कृषि ग्रामीणों के जीवन का एक अंग है।

भारत एक धनी देश है, जहाँ के निवासी निर्धन हैं
(India is a rich country where poor persons live)

उपर्युक्त कथन में यद्यपि काफी विरोधाभाष है, किन्तु इस कथन में सच्चाई भी पर्याप्त है। उपर्युक्त कथन का तात्पर्य मात्र इतना है कि भारत में अनेक प्राकृतिक तथा भौगोलिक साधन विद्यमान हैं, फिर भी इन साधनों का उचित दोहन न होने के कारण यहाँ के निवासी निर्धन हैं। भारती को प्रकृति ने 3280483 वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र प्रदान किया है। खेती के लिए गंगा का विशाल मैदान जिसकी लम्बाई 1500 मील तथा चौड़ाई 200 मील

NOTES

है। भारत में विशाल वन सम्पत्ति है, जिससे प्रतिवर्ष 20 लाख टन इमारती और 50 लाख टन जलाऊ लकड़ी प्राप्त होती है। भारत में खनिज सम्पत्ति का विशाल भण्डार है। यहाँ समस्त संसार का एक-चौथाई कच्चा लोहा विद्यमान है। मैंगनीज भी यहाँ काफी मात्रा में है। दुनिया के मैगनीज उत्पादक देशों में रूस के बाद भारत का दूसरा स्थान है। प्राचीनकाल में भारत में जल-शक्ति भी पर्याप्त है। इससे स्पष्ट होता है कि भारत में प्राकृतिक साधनों का विशाल भण्डार है। प्राचीन काल में भारत में घी और दूध तथा दूध की नदियाँ बहती थीं। इन्हीं कारणों से भारत को सोने की चिड़िया कहा जाता था।

उपर्युक्त तथ्य भारत के एक धनी देश के होने के प्रमाण हैं, किन्तु इस धनी देश में निर्धन व्यक्ति क्यों निवास करते हैं? अर्थात् इसके निवासी निर्धन क्यों हैं? भारत जैसे धनी देश में निवास करने वाले निवासी निम्न कारणों से निर्धन हैं।

(1) अशिक्षा तथा परम्परात्मक जीवन,

(2) मोक्ष तथा परलोक में आस्था,

(3) श्रम की कुशलता तथा प्रौद्योगिकीय ज्ञान का अभाव,

(4) निर्धनता,

(5) साख सुविधाओं का अभाव,

(6) कृषि की निम्न दशा,

(7) यातायात व संचार के साधनों तथा वैज्ञानिक प्रगति का अभाव,

(8) जाति प्रथा संयुक्त परिवार प्रथा आदि।

भारत की निर्धनता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि भारतीयों का जीवन स्तर (Standard of life) संसार भर में सबसे नीचा है। इस तथ्य का प्रमाण निम्न तालिका में दी गयी विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति की औसत वार्षिक आय से स्पष्ट हो जाएगा।

भारतीय कृषि
(Indian Agriculture)

भारत कृषि-प्रधान देश है। श्री वी.पी. सिंह का विचार है कि 'कृषि हमारे देश में केवल जीवकोपार्जन का साधन मात्र अथवा उद्योग-धन्धा ही नहीं है, अपितु अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। राष्ट्र की संवृद्धि, योजनाओं की सफलता, विदेशी मुद्रा का अर्जन, राजनैतिक स्थिरता आदि सभी कृषि विकास पर आधारित हैं। इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भारतीय अर्थ-व्यवस्था में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु भारत में 1500 वर्षों से कृषि की परम्परागत विधियाँ ही प्रचलित हैं। किसानों के हल, बैल, खाद और बीज के बारे में वही धारणायें हैं, जो पहली थीं। कृषि को भारत में व्यापार न मानकर जीवन-यापन का एक साधन माना गया है। यही कारण है कि भारतीय किसान खाद्यान्न फसलें अधिक बोता है, व्यापारिक फसलें बहुत कम। भारत में कृषि की सर्वोच्चता के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति प्रचलित है, जो इस प्रकार है -

उत्तम खेती, मध्यम बान।
निकृष्ट चाकरी, भीख निदान॥

वास्तविकता कुछ और ही है। आज भारतीय कृषि को उत्तम कहना मात्र ढोंग करना है। आज कृषि तथा किसान दोनों ही दयनीय स्थिति में हैं।

भारत में कृषि का महत्व
(Importance of Agriculture in India)

निम्न कारणों से अन्य व्यवसायों की तुलना में भारत में कृषि का महत्व अधिक है -

(1) **महत्वपूर्ण रोजगार** - अन्य व्यवसायों की तुलना में भारत में कृषि महत्वपूर्ण व्यवसाय है। 2002-03 में भारतीय जनसंख्या का 69.5 प्रतिशत भाग कृषि आजीविका पर आधारित है।

(2) **राष्ट्रीय आय का मुख्य स्रोत** - 2002-03 के आँकड़ों के अनुसार भारतीय राष्ट्रीय आय में कृषि क्षेत्र की भागीदारी 22.0 प्रतिशत है।

(3) **खाद्य पदार्थों का मुख्य स्रोत** - भारत में खाद्य पदार्थों की 90 से 95 प्रतिशत की पूर्ति भारतीय कृषि से होती है। इस दृष्टि से भारत में कृषि का महत्वपूर्ण स्थान है।

(4) **भूमि का सर्वाधिक उपयोग** - भारत में कृषि ही ऐसा एक मात्र व्यवसाय है, जिसमें भूमि का सबसे अधिक उपयोग होता है। 2005 के अनुसार भारत के कुल क्षेत्रफल 3,287.3 लाख हैक्टेयर में से 1412.3 लाख हैक्टेयर भू-क्षेत्र में कृषि की जाती है।

(5) **उद्योग-धन्धों का आधार** - अनेक भारतीय उद्योग धन्धे कृषि पर आधारित हैं। भारत के महत्वपूर्ण उद्योग जैसे- कपड़ा, पटसन, चीनी, तेल, वनस्पति घी आदि अपने कच्चे माल के लिए कृषि पर आधारित हैं।

(6) **पशुधन को प्रोत्साहन** - भारत में कृषि का महत्व इसलिए भी है कि इससे पशुपालन को प्रोत्साहन मिलता है। इनसे दूध, घी प्राप्त होता है तथा बैलों से खेती होती है।

(7) **व्यापारिक महत्व** - व्यापार की दृष्टि से भारत में कृषि के दो महत्व हैं- आन्तरिक और बाहरी। आन्तरिक व्यापार में कृषि उपज और मंडियों की पूँजी कृषि उपज से प्राप्त होती है। भारत के विदेश व्यापार (निर्यात) में भी कृषि-उत्पादों का प्रमुख स्थान है।

(8) **बैंक व्यवसाय** - बैंक व्यवसाय का पर्याप्त भाग कृषि उपजों पर आधारित है। कृषि उपज का सामान बाजार में आता है, तो व्यापारी उन्हें खरीदकर गोदामों में रखकर बैंकों से जमानतों पर रुपया लेते हैं।

(9) **सरकारी बजट** - भारतीय सरकार का राजस्व ढाँचा कृषि पर आधारित है।

(10) **भारतीय संस्कृति की रक्षा** - भारत में कृषि का महत्व इसलिए भी है कि इसके द्वारा भारतीय संस्कृति को जीवित रखा जा सकता है तथा इसे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित किया जा सकता है। यही कारण है कि भारत का किसान अपनी कृषि की पुरानी विधियों में कोई परिवर्तन करना नहीं चाहता है।

(11) **सरल व्यवसाय** - भारत में कृषि उदरपूर्ति का एक साधन भी है। आज ऐसा कोई भी व्यवसाय नहीं है, जिसमें किसी प्रकार के प्रशिक्षण और ज्ञान की आवश्यकता न हो। कृषि में सभी व्यक्तियों को किसी न किसी प्रकार का व्यवसाय मिल ही जाता है। वहाँ कार्य करने वाले व्यक्तियों के समक्ष बेरोजगारी की समस्या उपस्थित नहीं होती है।

(12) **अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति** - अनेक कृषि उत्पादन हैं, जिनमें भारत का नाम ऊँचा है। गन्ना उत्पादन में भारत का संसार में पहला स्थान है। इसी प्रकार कपास उत्पादन में भारत का अमेरिका के बाद दूसरा स्थान है। भारत चाय उत्पादन का प्रमुख केन्द्र है। जूट और लाख उत्पादन में भारत दुनिया में सबसे आगे है। पशुओं की संख्या भी भारत में अन्य देशों की तुलना में अधिक है।

यही कारण है कि भारत में कृषि को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जाता है। भारत में दूसरी पंचवर्षीय योजना को छोड़कर अन्य योजनाओं में सर्वोच्च प्राथमिकता देने का यही कारण है। नेहरू जी ने कहा था कि- "कृषि को सर्वाधिक प्राथमिकता की आवश्यकता है। यदि कृषि असफल रहती है, तो सरकार और राष्ट्र दोनों असफल रहते हैं।"

भारतीय कृषि की विशेषताएँ
(Characteristics of Indian Agriculture)

कृषि भारतीय जीवन का सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय है। इस दृष्टि से भारतीय कृषि की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) **जनसंख्या का दबाव** - भारत में प्रति 100 एकड़ भूमि पर 100 व्यक्ति कृषि कार्यों में लगे हुए हैं, जबकि इंग्लैंड में इतने काम के लिये 6 और अमेरिका में 6 से भी कम व्यक्ति इस कार्य में संलग्न हैं। यही कारण है भारतीय कृषि पर जनसंख्या का भार अधिक है।

(2) **कम उत्पादन** - भारत में कृषि की दूसरी विशेषता यह है कि अन्य देशों की तुलना में भारत में कृषि के उत्पादन अत्यन्त ही कम है। यह उत्पादकता प्राप्त प्रति हेक्टेयर और प्रति श्रमिक दोनों दृष्टियों में कम है।

(3) **जीवन-निर्वाह का साधन** - भारत में कृषि को व्यवसाय न मानकर इसे जीवन-निर्वाह का साधन मात्र माना जाता है। किसान द्वारा जो फसलें पैदा की जाती हैं, उनका प्रमुख उद्देश्य 'परिवार के उपभोग' का दृष्टिकोण होता है।

NOTES

(4) **पौष्टिक उपजों की कमी** - भारत में जो कृषि उत्पादन होता है, उसका पौष्टिक मूल्य बहुत ही कम होता है। भारत में गेहूँ की उपज में कमी आ रही है, जबकि जौ, मक्का, बाजरा और ज्वार का उत्पादन बढ़ रहा है। भारत में 'कृषि और सन्तुलित आहार' में कोई सामन्जस्य स्थापित नहीं किया गया है।

(5) **बंजर भूमि** - भारत में पर्याप्त मात्रा में कृषि योग्य भूमि बंजर पड़ी हुई है। इस समय देश में कुल 1.72 करोड़ हैक्टेयर कृषि योग्य भूमि बंजर पड़ी है और इसकी संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(6) **श्रम और पूँजी का असन्तुलन** - भारत में प्रति एकड़ उपज इतनी कम है कि इसे गहरी खेती नहीं कहा जा सकता है। इसके साथ ही श्रम इतना अधिक लगा हुआ है कि इसे विस्तृत खेती भी नहीं कहा जा सकता है। भारतीय किसान गरीब हैं। अतः वह अपनी कृषि पद्धति में किसी प्रकार की उन्नति नहीं कर सकता है। अतः भारतीय कृषि में श्रम और पूँजी के असन्तुलन की विचित्र विशेषता है।

(7) **छोटे खेत** - भारतीय किसानों के खेत छोटे-छोटे तथा टुकड़ों में बँटे हुए और बिखरे हैं। भारत में जोतों का औसत आकार 1.41 हैक्टेयर है। भारत में 61.6 प्रतिशत जोतें 1 हैक्टेयर से कम और 48.7 प्रतिशत जोतें 10 हैक्टेयर से कम हैं। भारतीय जनता का भूमि के प्रति अगाध स्नेह और ग्रामीण जीवन में उद्योग-धंधों का अभाव भी खेतों के छोटे और बिखरे होने का कारण है।

(8) **दोषपूर्ण संगठन** - भारतीय कृषि में मध्यस्थों की अधिकता है। पट्टेदार, जमींदार, साहूकार आदि मध्यस्थ किसानों की अज्ञानता, निर्धनता और विवशता का अनुचित लाभ उठाकर उनका शोषण करते हैं। यह सभी किसान की अवहेलना करते हैं और उसे लूटते हैं।

(9) **बीमा का अभाव** - भारतीय कृषि प्रकृति पर आधारित है। अनेक प्राकृतिक घटनाओं और परिस्थितियों के कारण फसल नष्ट हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि किसान के समक्ष जीवन-निर्वाह की समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। फसल बीमा योजना का अभी तक अभाव इसका मुख्य कारण था, परन्तु गत वर्षों में भारत सरकार ने फसल बीमा योजनाओं का श्रीगणेश किया है।

(10) **अर्द्ध बेरोजगारी** - भारतीय कृषि श्रमिकों से अर्द्धबेरोजगारी की एक समस्या है। भूमि पर जनसंख्या का दबाव अधिक है। यही कारण है कि थोड़ी जमीन होने पर भी परिवार के सभी सदस्य उसमें लगे रहते हैं। भारतीय कृषि की विशेष परम्पराओं के कारण देश के विभिन्न भागों में कृषक वर्ष में 150 से 170 दिन तक ही कृषि कार्य करते हैं शेष समय वे बेरोजगार रहते हैं।

(11) **व्यावसायिक फसलों की कमी** - कृषि फसलों की दृष्टि से भारतीय कृषि में खाद्यान्न फसलों की ही प्रमुखता रहती है। भारत में खाद्यान्न फसलों की तुलना में व्यापारिक फसलों का उत्पादन गौण है।

(12) **फसलों का क्षेत्रीय आधार** - भारत विशाल देश है। इस कारण से यहाँ कृषि का विशिष्टीकरण पाया जाता है। बंगाल में जूट, महाराष्ट्र और गुजरात में कपास, पंजाब में गेहूँ, उत्तरप्रदेश और बिहार में गन्ना, तमिलनाडु में कहवा और आसाम में चाय आदि भारतीय कृषि की विशिष्टीकरण के उदाहरण हैं।

भारतीय कृषि की समस्याएँ
(Problems of Indian Agriculture)

भारत में कृषि को राष्ट्रीय-व्यवसाय माना जाता है, इसका कारण यह है कि भारतीय जनसंख्या का 69.5 प्रतिशत भाग इस व्यवसाय से सम्बन्धित है, किन्तु यह अत्यन्त ही दुर्भाग्यपूर्ण है कि भारतीय कृषि की असंख्य समस्याएँ (Innumerable Problems) हैं। डॉ. क्लाउस्टन ने लिखा है- "भारत में दलित जातियाँ हैं और उन्हीं के समान दलित उद्योग भी हैं, दुर्भाग्य से कृषि-उद्योग भी उनमें से एक है।" कृषि की परम्परात्मक विधियों, पूँजी की कमी, भूमि सुधार की अपूर्णता, विपणन एवं बीज सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण भारतीय कृषि देश की आवश्यकताओं की पूर्ति में असमर्थ है। इस असमर्थता का कारण वे समस्याएँ हैं, जो सदियों से भारतीय कृषि पद्धति में व्याप्त हैं। इन समस्याओं में से प्रमुख निम्न हैं -

(1) **जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि** - भारत में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है। इस बढ़ती हुई जनसंख्या को प्रत्यक्ष रूप से कृषि पर ही निर्भर रहना पड़ता है, लेकिन कृषि की वर्तमान व्यवस्था इस अतिरिक्त जनसंख्या को रोजगार देने एवं जीवन-यापन के साधन उपलब्ध कराने में असमर्थ है। इस प्रकार बेरोजगारी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। ग्रामीण जनसंख्या बढ़ने का एक और कारण है कि गाँवों में परिवार-नियोजन (Family Planning) की न तो समुचित विधियाँ हैं और न ग्रामीण लोग इसे स्वीकार ही करते हैं। इससे कृषि निम्नस्तरीय होती है।

(2) **खेतों का विभाजन** - हमारे देश के किसान पहले से ही निर्धन हैं, उस पर हर पीढ़ी में उन्हीं सन्तानों के मध्य में भूमि का बँटवारा हो जाने से भूमि बहुत छोटे-छोटे टुकड़ों में बँट जाती है और खेती के लिए लाभकारी हो जाती है। यहाँ पर विस्तृत खेती की जाती है, जो इस प्रकार के खेतों में असम्भव होती है और साथ ही गहरी खेती के न तो इतने उपयुक्त साधन ही हैं और न किसान प्रशिक्षित हैं जो गहरी खेती में सफलता प्राप्त कर सकें। फलस्वरूप खेती पर व्यक्तियों का दबाव अधिक हो जाता है।

(3) **भूमि का सीमित एवं बिखरा होना** - कृषि हेतु भूमि की अधिक आवश्यकता होती है। जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि होने से कृषि भूमि आवासीय उपयोग में आने लगी है, औद्योगीकरण से कल-कारखानों ने अधिक भूमि घेर ली है। इस प्रकार, कृषि हेतु भूमि कम हो गई है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण सामाजिक जीवन में विघटन होने से एवं परिवार व्यवस्था का संयुक्त रूप भी विघटित होने से भी कृषि भूमि विभाजित होकर बिखर गयी है।

(4) **अवैज्ञानिक एवं प्राचीन कृषि पद्धति** - अन्य देशों की तुलना में हमारे किसान कम उपज पाते हैं। इसका कारण उनके पास खेती के पुराने और अवैज्ञानिक साधनों का होना है। यहाँ सुधरे हुये बीजों, उपजाऊ खाद और अच्छी नस्ल के पशुओं की कमी है। इन सभी असुविधाओं के कारण किसान अच्छी फसल पैदा नहीं कर पाता है।

(5) **वर्षा पर आधारित कृषि के दुष्परिणाम** - हमारे देश में नहरों और बाँधों का समुचित प्रबन्ध न होने से किसानों को खेती के लिए प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। अतिवृष्टि और अल्पवृष्टि, अनावृष्टि के कारण खेती को अत्यधिक क्षति उठानी पड़ती है। साथ ही ओला-पाला ऐसे प्राकृतिक कारण हैं जिनसे खेती असुरक्षित रहती है और बहुत जल्दी अकाल पड़ता है, फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ जाती है।

(6) **कुटीर उद्योग का पतन** - ग्रामीण जनजीवन में कृषि की अस्थायी एवं प्राकृतिक निर्भरता की प्रवृत्ति होने के कारण प्रारम्भ में कुटीर उद्योग की व्यवस्था थी। इससे कृषक, कृषि के उपरांत, अन्य सहायक उद्योगों में अपने श्रम या जन समुदाय का सदुपयोग कर लेते थे, लेकिन अंग्रेजी शासन काल में अतिरिक्त राजकीय हस्तक्षेप से इस व्यवस्था का विनाश हो गया। इसके अलावा औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) के फलस्वरूप मशीनों आदि के प्रयोग से कुटीर उद्योगों का ह्रास हो गया, इससे ग्रामीण जन-जीवन बेकार हो गया।

(7) **विशाल उद्योग-धन्धों में विकास न होना** - इसका एक कारण यह भी है कि ग्रामीण उद्योग-धन्धों के ह्रास के बाद आवश्यकता के अनुरूप विशाल उद्योग-धन्धों का विकास नहीं हुआ। यदि उनका विकास होता तो गाँव के बेकार लोगों की समस्या कुछ मात्रा में कम हो सकती थी।

(8) **नगरीकरण** - नगरीकरण ने भी ग्रामीण बेरोजगारी को विकसित करने में योग दिया है। नगरों के आकर्षण एवं कल-कारखानों से प्राप्त होने वाले रोजगार के आकर्षण ने ग्रामीण जनता को अपनी ओर खींच लिया। इससे ग्रामीण लोग शहरों की ओर भागने लगे, लेकिन उनका व्यवसाय नहीं हो सका। वे पुनः गाँवों की ओर आये, लेकिन शहरी भौतिकवाद एवं बनाव-ठनाव ने उनमें श्रम के प्रति घृणा उत्पन्न कर दी। उनका मन कृषि-कार्य से हटने लगा। अब वे कहीं के न रहे। इधर-उधर भटकते रहे और इससे बेरोजगारी की संख्या में वृद्धि हुई।

(9) **शहरी शिक्षा का कुप्रभाव** - स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् गाँवों में शिक्षा का प्रसार किया गया। परम्परागत एवं बुनियादी शिक्षा के आधार पर गाँवों के नव-युवक शिक्षित होने लगे, लेकिन शिक्षा-पद्धति में क्रियात्मक कार्यों का विशेष रूप से ग्रामीण उद्योगों की शिक्षा का अभाव रहा। ग्रामीण जन भी शिक्षित होकर शहरों में नौकरी के आकर्षण से इधर-उधर घूमने लगे। उनको कृषि एवं श्रम से घृणा हो गई और इसे अशिक्षितों का कार्य समझने लगे। वे इस मूर्खतापूर्ण समझ के परिणामस्वरूप न नौकरी प्राप्त कर सके और अपने परम्परागत व्यवसायों में रुचि जागृत कर सके। इस प्रकार काफी संख्या में ग्रामीण युवक बेकार हो गये।

(10) **मशीनों का उपयोग** - सरकारी प्रयत्नों ने कृषि का यन्त्रीकरण करने की दृष्टि से परम्परागत प्रविधि को समाप्त किया। खेतों में ट्रैक्टर चलने लगे। कुओं से बिजली की मशीनों से पानी निकाला जाने लगा। इससे उत्पादन एवं क्षमता में वृद्धि हुई, लेकिन ग्रामीण जनता बेरोजगार हो गई।

(11) **ग्रामीण सामाजिक विघटन** - ग्रामों के सामाजिक विघटन ने भी बेरोजगारी बढ़ाई है। पहले ग्रामीण जनता में सामुदायिक भावना विशेष रूप से पायी जाती थी। वे पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर इकाइयों में संगठित थे। विज्ञान की ज्योति से गाँवों के लोग भी शहरों के लोगों से प्रभावित हुए। सामुदायिक भावना (Community feeling) के स्थान पर व्यक्तिवादी भावना का विकास हुआ। इस वैयक्तिकता ने आर्थिक वैयक्तिकता को जन्म दिया, जिससे कृषि उत्पादन में ह्रास हुआ। भूख ने लोगों को विचलित कर दिया और बेकारी की समस्या भीषण हो गई। इसके अनेक गंभीर दुष्परिणाम हुए।

NOTES

सुधार के लिए सुझाव
(Suggestions for Improvement)

भारत का मूल व्यवसाय कृषि है। देश में इस मूल व्यवसाय की अत्यन्त ही सोचनीय स्थिति है। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि कृषि की दशाओं में उन्नति की जाये। भारत की प्रगति तब तक नहीं हो सकती है, जब कि कृषि की दशाओं में सुधार न किया जाये। भारत में कृषि की दशा में सुधार के लिए निम्न सुझाव महत्वपूर्ण हैं -

(1) **कृषि प्रणाली में सुधार** - कृषि प्रणाली ग्रामीण भारत का आधार होने के साथ ही अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं का केन्द्र बिन्दु भी है। यदि कृषि का वर्तमान परिस्थितियों में पूर्ण रूप से पुनरुद्धार कर दिया जाय तो न केवल भारत की आर्थिक दशा एवं बेरोजगारी का ही सन्तुलन होगा, वरन् अनेक सामाजिक एवं आर्थिक समस्याएँ भी समाप्त हो जायेंगी। इस सम्बन्ध में निम्न उपाय उल्लेखनीय हैं -

(i) अनार्थिक जोतों का अन्त करने के लिये भूमि का अपखण्डन रोका जाये और भूमि का विभाजन तथा भूमि उत्तराधिकार के नियमों में सार्थक एवं व्यापक 'परिवर्तन' किये जायें।

(ii) चकबन्दी करके आर्थिक जोतों एवं सामुदायिक कृषि तथा संयुक्त खेती को बढ़ावा दिया जाये।

(iii) कृषि कार्य को सहकारी समितियों द्वारा संचालित किया जाये।

(iv) कृषि उत्पादन में वृद्धि हेतु नये बीज खादों का समुचित मात्रा में उपयोग किया जाये।

(v) गहरी खेती (Extensive agriculture) पद्धति को अपनाया जाये।

(vi) फसलों के हेर-फेर का निश्चित क्रम निर्धारित किया जाये।

(vii) सिंचाई के साधनों को प्रचुर मात्रा में विकसित किया जाये तथा कृषि की प्राकृतिक निर्भरता की प्रवृत्ति का अन्त किया जाये।

(viii) सहकारी बैंकों की स्थापना द्वारा कृषि-ऋण की व्यवस्था की जाये।

(ix) यातायात एवं कृषि के विक्रय की सुविधा प्रदान की जाये।

(x) ग्रामों की कृषि को संयुक्त कृषि (Collective Farming) के अन्तर्गत लाकर मशीनों का उपयोग किया जाये।

(2) **कुटीर उद्योगों का विकास** - ग्रामों में कुटीर उद्योगों का पुनः विकास करना सबसे अधिक अनिवार्य है। ग्रामीण नव-सन्तति को कुटीर उद्योगों की व्यवस्थित शिक्षा प्रदान कर प्रोत्साहित किया जाये। कुटीर उद्योगों के विक्रय एवं सामूहिक बाजार व्यवस्था को संगठित करना चाहिये। शहरों में ग्रामोद्योग की बनी वस्तुओं का अधिक से अधिक मात्रा में विक्रय एवं उपयोग के प्रति प्रोत्साहन एवं सुविधाएँ विकसित की जायें। गाँवों में इन उद्योगों हेतु बिजली या छोटी मशीनें लगाई जायें। कुटीर उद्योगों में नवीन उद्योगों को स्थान दिया जाए। ग्राम स्तर पर संगठित उद्योगों के कारखानों को बढ़ावा दिया जाये। कुटीर उद्योगों के साधनों एवं उपयुक्त शिक्षण एवं प्रशिक्षण सुविधाओं का विकास हो।

(3) **जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम** - जनसंख्या वृद्धि की रोकथाम एवं परिवार नियोजन के कार्यक्रम का ग्रामों में विकास किया जाये। इसके प्रशिक्षण द्वारा रचनात्मक पक्ष पर बल दिया जाये। ग्राम जीवन के रहन-सहन के स्तर एवं शिक्षा विशेष रूप से महिला शिक्षा को बढ़ावा दिया जाये। मनोरंजन, चिकित्सा के समुचित साधनों का ग्रामों में विकास हो।

(4) **नगरीकरण नियोजन** - ग्रामीण बेकारी दूर करने के लिये नगरीकरण का बहिष्कार भी आवश्यक है। ग्रामीण जनसंख्या की गतिशीलता को कम किया जाये। कृषि हेतु उपयुक्त भूमि पर कल-कारखाने न खोले जाएँ। इस हेतु बाजार, बंजर या पहाड़ियों पर नवीन बस्तियों एवं औद्योगीकरण भी किया जाये।

(5) **सार्वजनिक निर्माण कार्य** - सार्वजनिक निर्माण की योजनाएँ भी ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने में अच्छा योग दे सकती हैं। यातायात, बिजली व सिंचाई की योजनाएँ, नदी घाटी योजनाएँ, पंचायत, स्कूल, अस्पताल, भवन निर्माण के कार्यों में भूमिहीन कृषकों को स्थान दिया जाना चाहिये। इससे बेरोजगारी को बहुत कुछ दूर किया जा सकता है।

(6) **उपयुक्त शिक्षा** - शिक्षितों को खेती-सम्बन्धी शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षित लोगों को विभिन्न राज्यों में भूमि का उपजाऊपन बनाए रखना, फर्टिलाइजर्स के प्रयोग, गहरी खेती (Entensive Agriculture), सिंचाई के साधनों का सदुपयोग, फसलों की हेर-फेर और दोहरी फसल, सुधरे हुए औजारों के प्रयोग आदि से सम्बन्धित शिक्षा मिलना चाहिये। बिना अधिकारियों के अधीन प्रत्येक गाँव में एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जो कि खेती के प्रारंभिक ज्ञान से किसानों को अवगत करा सके।

(7) **पंचायतों की सक्रिय भूमिका** - पंचायतें भारतीय ग्रामीण जीवन की आत्मा थीं। अंग्रेजी शासन काल में इनका विनाश हो गया। अब ग्रामीण बेकारी और इस समस्या के उन्मूलन के लिये पंचायतों की सक्रियता आवश्यक है।

(8) **सामाजिक संगठन** - ग्रामीण बेरोजगारी के कारणों में सामाजिक या ग्रामीण जीवन का विघटन भी महत्वपूर्ण है। ग्रामीण जीवन संगठन में सुधार करनें से बेकारी की समस्या दूर हो सकती है।

बेकारी की समस्या वास्तव में एक आर्थिक समस्या है, लेकिन ग्रामीण जीवन में आर्थिक समस्याओं का कोई अस्तित्व नहीं होता, क्योंकि वहाँ का जीवन सामाजिक-आर्थिक है। इस दृष्टि से यह एक बड़ी सामाजिक-आर्थिक समस्या है, जिसका उत्तरदायित्व सामाजिक सुधारकर्ताओं पर है। अतः जितने भी प्रयत्न इस दिशा में हुए हैं, उनमें वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण नहीं किया गया। कृषि-जीवन में आमूल परिवर्तन से सम्भव है, इस समस्या का हल निकल आए।

कृषक समाज
(Peasant Society)

समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। सामाजिक सम्बन्धों के इस जाल में अनेक समाज अन्तः सम्बन्धित हैं। अनेक अवसरों पर इन समाजों को एक दूसरे से भिन्न करना अत्यन्त ही कठिन है। इसका कारण यह है कि इन समाजों में अनेक भिन्नताओं के बावजूद समानता निहित है। यही समानता और भिन्नता विभिन्न समाजों को एक दूसरे से अलग करने में भ्रम की स्थित को निर्मित करते हैं। इसी प्रकार की स्थिति कृषक समाज और जनजातीय समाज को समझने में आती है।

कृषक समाज की अवधारणा
(Concept of Peasant Society)

कृषक समाजों के अध्ययन ने समाजशास्त्र और सामाजिक मानवशास्त्र के अध्ययनों को एक नया मोड़ प्रदान किया है। संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में कृषक समाजों के सम्बन्ध में अनेक शोध कार्य हुए हैं। यह स्मरणीय है कि कृषक समाज की मानवशास्त्रीय जानकारी मुख्यतः समूह अध्ययनों के माध्यम से ही उपलब्ध है। चैम्बर्स ट्वेन्टियथ सेंचुरी डिक्सनरी (Chamber's Twentieth Century Dictionary) में कृषक (Peasant) शब्द का अर्थ 'एक कन्ट्रीमैन; एक देहाती, एक ग्रामीण, जिसका पेशा ग्रामीण श्रम है।' शानीन ने कृषक समाज के निम्नलिखित चार आधारभूत तत्वों का उल्लेख किया है -

1. सामाजिक संगठन की इकाई के रूप में कृषक कार्य,
2. आजीविका के प्रधान साधन के रूप में भूमि पर कृषि कर्म, जो उपभोग की बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है,
3. छोटे समुदायों के जीवन- यापन के तरीकों से सम्बन्धित विशिष्ट पारस्परिक संस्कृति,
4. कृषक वर्ग की निम्नस्तरीय स्थिति, बाहरी लोगों द्वारा कृषक वर्ग पर प्रभुत्व।

हेराल्ड एफ. ई. पीके (Peake) ने Encyclopaedia of Social Sciences, vol. XV 'The Village Community' में लिखा है कि - 'कृषक समाज परस्पर सम्बन्धित अथवा असम्बन्धित उन व्यक्तियों का समूह है, जो एक अकेले परिवार से अधिक विस्तृत एक बहुत बड़े गृह अथवा परस्पर निकट स्थित गृहों में कभी अनियमित रूप से तथा कभी एक गली में रहता है मूलतः अनेक कृषि योग्य खेतों में सामान्य रूप से खेती करता है, मैदानी भूमि को आपस में बाँट लेता है तथा आस-पास की बेकार भूमि पर पशु चराता है, जिस पर निकटवर्ती समुदायों की सीमाओं तक वह अपने अधिकार का दावा करता है।'

NOTES

बेबस्टर्ड ने अपनी पुस्तक 'थर्ड न्यू इन्टरनेशनल डिक्सनरी' में लिखा है कि 'कृषक उस श्रेणी का व्यक्ति है, जो अल्प स्वतंत्र स्वस्वामी या भाड़े के मजदूर के रूप में काम करता है।'

आक्सफोर्ड डिक्सनरी के अनुसार 'कृषक शब्द की व्याख्या एक व्यक्ति जो गाँव में रहता है तथा खेती के काम करता है, एक ग्रामीण एक अनपढ़ आदमी के रूप में की है।'

कृषक समाज की जो ऊपर परिभाषाएँ दी गई हैं, उनके अनुसार इसमें निम्न तीन तत्वों का समावेश है-

(अ) कृषक भूमि से जुड़ा व्यक्ति है।

(आ) अधिकांश समाजों में कृषक को निम्न पद वाला व्यक्ति माना जाता है।

(इ) अनेक समाजों में कृषक वर्ग को श्रमिक का पर्याय माना जाता है।

कृषक समाज के प्रकार
(Types of Peasant Society)

विभिन्न विद्वानों ने कृषक समाज को भिन्न-भिन्न भागों में विभाजित किया है। इन विभाजनों में कुछ निम्नलिखित हैं -

(1) **डॉ. दुबे** - डॉ. एस.सी. दुबे ने कृषक समाज को निम्न आधारों में विभाजित किया है -

(अ) आकार, जनसंख्या तथा भूमि का क्षेत्रफल,

(आ) जाति तथा प्रजातीय तत्व,

(इ) भूमि का स्वामित्व,

(ई) अधिकार और सत्ता,

(उ) स्थानीय परम्पराएँ।

(2) अन्य वर्गीकरण - हेराल्ड पीके, सोरोकिन, गाल्पिन और जिमरमैन ने कृषक समाज की जनसंख्या, घनत्व, भूस्वामित्व के आधार पर कई प्रकार के कृषक समाजों का उल्लेख किया है -

(अ) किसानों के संयुक्त स्वामित्व के गाँव,

(आ) किसानों के संयुक्त पट्टेदारी के गाँव,

(इ) किसानों के व्यक्तिगत स्वामित्व के गाँव, जिनमें कुछ पट्टेदार तथा मजदूर शामिल हों,

(ई) किसानों के स्वतंत्र व्यक्तिगत पट्टेदारी के गाँव,

(उ) जमींदारों के कर्मचारियों एवं मजदूरों के द्वारा बसे ग्राम,

(ऊ) सार्वजनिक कर्मचारियों एवं मजदूरों द्वारा बसे ग्राम।

कृषक समाज की विशेषताएँ
(Characteristics of Peasant Society)

ऊपर की विवेचना के आधार पर कृषक समाज की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. कृषक समाज जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, यह किसानों का समाज है, जिनकी आजीविका का आधार भूमि होती है।
2. भूमि आजीविका का साधन ही नहीं होती, अपितु यह एक प्रकार की जीवन पद्धति भी होती है।
3. कृषक समाज की एक अपनी जीवन शैली होती है, जिसके आधार पर वे अपने जीवन का निर्वाह करते हैं।
4. कृषक समाज का भूमि से केवल भौतिक सम्बन्ध ही नहीं होता, अपितु इसका भावात्मक सम्बन्ध (Emotional Relations) भी होता है।

5. कृषक समाज भूमि को पूँजी के रूप में नहीं देखता है तथा न ही उसे लाभ की प्राप्ति का साधन मानता है। इसीलिए वह खेती को व्यापार नहीं समझता है।

6. कृषक समाज भूमि को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन मानता है।

7. कृषक समाज एक मध्यवर्गीय परिवार होता है, जो अन्य समाजों से अलग नहीं होता है।

8. कृषक समाज जहाँ एक ओर आदिम होता है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक होता है।

9. कृषक समाज पूर्णतया आत्मनिर्भर नहीं होता है। वह समाज के अन्य वर्गों और समाजों से अन्त:सम्बन्धित होता है।

10. कृषक समाज को 'अंग समाज' कहा जाता है। अपनी पृथक विशिष्टता रखते हुए भी कृषक समाज एक सामाजिक समग्रता का अंग है। रेडफील्ड ने लिखा है कि 'वे सामान्य सभ्य जीवन के ग्राम आयाम हैं।' इसी प्रकार क्रोबर ने लिखा है कि - 'कृषक लोग निश्चय ही ग्रामीण हैं, किन्तु तब भी वे नगर के बाजारों के साथ सम्पर्क में रहते हैं, वे एक बृहत्तर जन समुदाय के एक वर्गांश होते है, जिनमें साधारण रूप से नागरिक केन्द्रों और कभी-कभी महानगरों का भी समावेश होता है। वे अंगभूत संस्कृतियों वाले अंग समाज होते हैं।'

11. कृषक समाज सार्वभौमिक होते हैं। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जो कुछ भिन्नताओं के साथ सभी समाजों में विमिान रहता है।

12. कृषक समाज की मानसिकता प्रायः सभी समाजों में एक जैसी होती है। उनके विचार, व्यक्तित्व, जीवन शैली में सामान्य समानता पाई जाती है। मैल्काम डार्लिंग (Malcolm Darling) ने लिखा है कि 'किसान एक ऐसी जीवन विधि का प्रतिनिधि है, जो सम्पता के जन्म के साथ ही जन्मी थी और जिनमें एक ऐसी आन्तरिक एकता है, जो सर्वत्र किसानों को एकसा बनाती है।'

कृषक समाज एवं जनजातीय समाज
(Peasant Society and Tribal Society)

जाति और जनजाति के बीच फैले दो छोरों के आर्थिक कार्यकलाप कृषकीय समांगता (Unification of Peasants) की मात्रा पर सबसे अधिक निगाह पड़ती है। जाति और जनजाति दोनों खेती करने वाले समुदाय हैं, अस्पष्टता और जटिलता खेती के साथ-साथ अन्य गतिविधियों के करने और सामुदायिक स्वीकार्यता की है।

फार्मर और पीजेन्ट (Former, Peasant) दो शब्द हैं बड़े भूस्वामी, अनुपस्थित जमींदार और भू-आधारित दासता में स्वामित्व और सम्पत्ति के स्वामी होते ये, इलाकेदार, जमींदार भारत में रहे ही हैं जो जनजातियों के क्षेत्रों में भी अंग्रेजी शासन काल में पैर जमाये हुये थे और भी जमींदारी के अवशेष देहाती भारत में मौजूद हैं।

जनजातियाँ स्थायी कृषि करने में आगे हैं। उन्हें खेती की आवश्यकता आजीविका के साथ परम्परागत और पैतृक कौशल के साथ बँधी हुयी चलती रही है। जंगलों, घने पहाड़ी एकान्तवासी भौगोलिक प्रदेशों में खेती, शिकार, फलोत्पादन और निर्वाही प्रकार से वे स्थापन्न (Autonomy) ढंग से आर्थिक जीवन में बाजार के न्यूनतम हस्तक्षेप से जीवन जीते थे। उनमें से खेती को अधिक पैमाने पर भूमि स्वामित्व के जनजाति बड़े किसान या 'गोंटिया' हुये। गोंटिया गाँव के बड़े किसान के साथ अपने सभी जातीय परिवारों के मुखिया और नियंत्रक थे इनको सबसे पहले और सबसे अधिक अवसर बाहरी लोगों (Outsider) से मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

समाजशास्त्र में 'कृषक' अपने ग्रामीण विशालता और उत्पादन के विभिन्न स्तरों के अनुसार देखा गया है। किसके लिये कौन किस तरीके से उत्पादन करता है और 'उत्पादन सम्बन्ध' को मार्क्सवादी मान्यताओं में भी बल मिला है जिसे वारका कहा गया है। राबर्ट रेडफील्ड, (1956), मैनिंशनैश आदि की जनजातियाँ कृषकीय अवस्था (Stage of Peasantry) से पूर्व निर्वाही के पूर्व की अर्थव्यवस्था की निष्पत्तियाँ हैं। यह वारका आधुनिक जनजातीय खेतिहर समाज की नहीं है जिसमें अब उन्नत अतिरेक उत्पादक (Surplus productions) करने वाले देशी किसान आदिवासी क्षेत्रों में रहते हैं।

जनजातियों में सर्वाधिक सरल जीवन-यापन खेती करके गुजारे लायक कार्य का है। जमीन से जुड़े होने से इन्हें जनजातीय किसान (Tribal Peasants) कहा जा सकता है। जनजातीय कृषकों का बड़ा वर्ग निर्वाही और अत्यन्त सीमित स्तर पर उपयोग और उत्पादक इकाई है। अपितु खेती करने वाले अनाज की कमी देखते हुये

NOTES

वनोपज संग्राहक, मजदूर और ठेका पर काम करने वाले प्रवासी हैं जो अपने गाँवों से पलायन मौसमी एवं रोजगार के नये अवसरों हेतु अब अधिक करने लगे, सूखा तथा मौसमी तकलीफों के कारण वे प्रवासी मजदूर और अपने श्रम का बाजार में कम मूल्य, मजदूरी पाने वाले वर्ग बन गये हैं। आदिवासी इलाकों से गाँव के गाँव मौसमी पलायन (Seasonal Migration) करते हैं। खेती प्रारंभ करने हेतु वे बरसात प्रारंभ होते तक अपने गाँवों में लौटते हैं। जनजातियों की कृषकीय एवं बाजार-मजदूरी आधारित आर्थिक व्यवस्था एक प्रसामान्यक (Indicator) है।

जनजातियों में कृषकीय संस्तरण (Hierachrical system) के सभी अलग-अलग पहचान बिन्दु (Point of locus) स्पष्ट नहीं होते जबकि उच्च हिन्दू काश्तकारों का अपने स्थानीय कृषि-सम्बन्धों (Agrasian Relation system) में जमींदार या भू-स्वामी फिर निम्न तबके से खेत मजदूर और इन सबके बीच 'जजमानी व्यवस्था' कार्य करती रही है।

आजीविका एवं कृषकों के घर-परिवार के बीच के सम्बन्धों को भी 'प्रसामान्यक' के रूप में देखा जाये तो जनजाति कृषकों की स्व-निर्भरता (Self-dependance) सीमित दायरे में होती है जैसा उत्पादक इकाई के रूप में जनजाति अपने गोत्र की स्थानीय व्यवस्था पर भूमि का प्रयोग और उसके ऊपर निर्भर लोगों की आंशिक व्यवस्था हो, (बेली-विसिवारा अध्ययन, 1956)

अल्फ्रेड क्रोयर (1923) ने आदिम समाज के खेतिहारों को अंश-संस्कृति और अंश-समाज कहा है। अर्थात् कृषक लोग समाजों और संस्कृतियों के हिस्से हैं। कृषक जनजाति की 'लघु परम्परा' दिखाई पड़ती है। एकिक वुल्फ (1966) के अनुसार कृषक ग्रामीण व्यक्ति होते हैं जो स्वयं के जीवन-यापन के लिये उत्पादन करते हैं, घर-परिवार के श्रम के द्वारा जीवन निर्वाह स्तर का उत्पादन।

इस पुरानी परिभाषा में आज का कोई भी खेतिहर समाज आगे निकल चुका है। अवधारणा में बाहरी संसाधनों, बाजार, किराये का मजदूर और व्यावसायिक खेती के लिये अतिरेक उत्पादन का संकेत नहीं है। अत: जनजातियों में खेतिहर संरचना (Agrarian structure) का संदर्भ और विशेषतायें बदल चुकी हैं। नवीन कृषकीय संरचना का बोध व्यापक बाहरी समाज पर खेती के मामले में बढ़ती निर्भरता है। निर्भरता अनाज, बीज, दवायें और बाजार के ऊपर बढ़ना स्वाभाविक है।

काम की प्रकृति से देखें तो 73 प्रतिशत कर्मकार जनसंख्या खेती में लगी थी वहीं जनजातियाँ 91% तक खेती में संलग्न थी। 11 प्रतिशत सामान्य कर्मकार निर्माण कार्य में थे वहीं 3% मात्र जनजातीय कर्मकार थे (Scheduled Tribe Woncers) और 16% के मुकाबले 5% नौकरी में भोजन संग्रह और वानिकी पर निर्भरता 1% थी। जनजातीय समुदायों में सभी समान कृषि अवस्था में नहीं है और एकाकी भूखण्डों (Isolated Terrains) में रहने के कारण वे विनिमय, उत्पादन का **संचयी स्तर** (Premordial) पर टिके हुए हैं। अभाव के दिनों के लिये संचय करना। जनजातीय अर्थव्यवस्था में अन्य महत्वपूर्ण तथ्य निम्नलिखित हैं -

(1) अपने मिश्रित जनांकिकीय स्तर पर अथवा गैर आदिवासी परिवारों का सम्पर्क कितना है? गुजरात, मध्यप्रदेश राज्यों में गैर आदिवासी साहूकार और बिचौलिया प्रकार के रहे हैं फलस्वरूप भूमि से विरसन (Land alienation), बंधुआ मजदूरी और ऋणग्रस्तता पायी जाती है।

संरक्षक और शोषण (Patronage and exploiation) का अध्ययन किया गया है जो अभी भी पाया जा सकता है।

(2) पीपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट से ज्ञात होता है कि, खेती से सलंग्न 87% 1981 की जनगणना के अनुसार जनजातीय कर्मकारों में 54.43% कृषक (cultivator) स्तर के थे, 32.67% खेत मजदूर थे। 2.73% पशुपालन जंगलात, मछली, शिकार आदि में संलग्न थे।

(3) निजी सम्पत्ति के कई रूप आदिम समुदायों में अभी भी पाये जाते हैं जिसमें पुरुष और स्त्री के सम्पत्ति का स्वामी होने की अपनी जातीय परम्परा है। मातृ सत्तात्मक समाजों में सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी स्वाभाविक रूप से स्त्री को बनाया गया है। वंश परम्परा (Lineage) प्रभावी कारक रहा है।

कई जनजातियाँ शुद्ध कृषकीय स्तरण (Peasantry level) से पीछे खाद्य संग्रहण और शिकार के जरिये अभी तक टिकी हुयी, व्यापक रूप से उनमें कृषक, कृषि मजदूर और सहायक व्यवसायों का विकास नहीं हो पाया है। उदाहरण के लिये बिहार के विरहोर खाद्य संग्रहण और शिकार पर आश्रित हैं। थारू जनजाति को खेती का सहारा है। मछली और शिकार शौकिया हो चला है।

(4) निर्धनता और ऋण ग्रस्तता की व्यापकता से जनजातीय समाज की आर्थिक दुरावस्था का आभास होता है। जाहिर है पश्चिमी उ.प्र. के हरित क्रान्ति में प्रमुख जाट जाति के परिप्रेक्ष्य में अतिरिक्त मूल्य और 'समृद्धि' की कोई साम्यता नहीं है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारत में खेतिहर संरचना का ढाँचा विशाल और विविधतापूर्ण है जिसमें एक किनारे पर आदिवासी कृषक हैं जो खेती के लाभों से वंचित हैं। इनकी मुख्य समस्या तकनीक का निम्न स्तर, खाद व उन्नत यंत्रों की कमी तथा सौदेबाजी में कमी है। आदिवासी बाजार में अपने उत्पादों का सही मूल्य नहीं पाता जबकि बड़े किसानों की फार्म लाबी (form labbing) होती है जो सबसिडी (Subsidies) का फायदा उठाती रही है।

(5) सामान्य तौर पर आदिवासी बहुल इलाके ग्रामीण भारत में गिने जायें तो जाति, वर्ग और जनजाति को खेतिहर दशाओं के संदर्भ में समझा जा सकता है।

सामाजिक स्तरीकरण और विषमता की व्याख्या करते हुये आन्द्रे वेतिल ने जनजाति कृषक की निरन्तरता (Continuum) का विश्लेषण किया है। मैदानी इलाकों में जो खेतिहर संरचना है उसमें हिन्दू उच्च जातियाँ और औपनिवेशिक सम्बन्धों का पुराना अतीत जमींदारी व्यवस्था में मिलता है।

1960-70 के दशक में 'ग्रामीण अध्ययन' का स्वर्णिम काल था। इस अवधि में आदिवासी बहुल गाँवों के आर्थिक संरचना का अध्ययन भी अध्येताओं ने किया। गाँवों में परम्परागत रूप से रहने वाले सभी परिवार अपनी जमीन नहीं जोतते अपितु वे सार्थक रूप से कृषक वर्ग वाले नहीं गिने जायें इसी तरह मध्यप्रदेश में गोंड जनजाति के बड़ी जोतों वाले परिवार लगान वसूलने की स्थिति में थे। कृषक वर्ग के रूप में इनकी गिनती होती है अर्थात् जनगणना का कृषक (cultivator) 'पीजेन्ट' के मूल अर्थों से अधिक उदार परिभाषा का पुंज है।

कृषक वर्ग के रूप में जनजातीय समुदाय में विभेदीकरण और स्तरीकरण की विशेषतायें पाया जाना चाहिये। प्रथम तो यह है कि जनजातीय समुदाय में परिवार उत्पादन और उपयोग की मुख्य इकाई बना हुआ है। घरेलू गृह (Domestic household) के तौर पर कृषक परिवारों (Peasant household) लेने पर बल दिया है। आन्द्रे बेतिल (1965, 1975) जनजातियाँ इस अर्थ से ठीक बैठती हैं कि उन्हें कृषक वर्ग में रखा जाये। जनजातीय अध्ययनों से यह तथ्य प्राप्त होता है कि कृषक एवं गैर कृषक के बीच का अन्तर किस प्रकार हिन्दू और जातियों के परिधि से अलग करते हुये किया जाये?

दूसरा प्रश्न यह है कि जनजातीय कृषक संरचना मैदानी समृद्ध खेतिहर इलाके से किस प्रकार अलग रखी जाये। बिहार, झारखण्ड के संथाल हों, भूमिज का कृषक वर्ग निर्धारण, हरियाण्व के जाट कृषकों से अलग कैसे और किस प्रकार हो सकता है।

जनजातीय खेतिहर व्यवस्था में मानव-भूमि अनुपात तथा सम्पन्न देखे जाने चाहिये। अपने खेतों में घर बनाने और वैचारिक सम्पत्ति की जगह पुरखों की भूमि से प्रेम की भावना बलवती रहती है। प्रायः इसलिये खराब भूमि के बावजूद जनजातियाँ इसी भूमि के टुकड़े से चिपकी रहती हैं।

अपने ही समुदाय के प्रांतर गाँव (Hiliy tract village) से बाहर की दुनिया से सम्बन्ध विकसित बाहरी कारकों ने निरन्तर किया है। इससे आदिम संस्कृति के तत्व कम होते गये, बाहरी समाजों से उपयोगी सम्बन्ध विकसित होने के कारण आज का जनजाति कृषक एकाकी (Isolated) नहीं रह गया है।

संस्कृति के भौतिकवादी पक्षों को सम्मिलित करते हुये देखें तो जनजाति खेती का संसार आधुनिक उपकरणों का केन्द्र है। कई आदिवासी परिवारों को सम्मिलित करते हुये ट्रेक्टर और सिंचाई के साधन सरकारी प्रयासों से बैंक वित्त पोषण करते हैं। इसका अर्थ यह है कि जनजाति कृषक की एकांत प्रवृत्ति निरन्तर बाहरी दबाव से कमजोर हुयी परन्तु इनमें स्तरण (Hierarchal system) अधिक साफ-साफ नहीं आ पाया है जैसे औपनिवेशक उत्तर भारत के मैदानी गाँवों में सवर्ण जमींदारों के स्वतंत्रता पूर्व का और भूमि सुधार (Land Reforms) का 1950-70 की अवधि के लाक्षणिक परिणाम देखे गये।

भूमि विखण्डन, भूमि विरसन की समस्या रही है। वर्तमान में विषमता से कहीं अधिक समस्या निर्धनता की रही है। जनजातीय कृषकों में धनी और गरीब ही उप वर्ग (Sub Category) दिखाई पड़ रहा है।

वर्ग और स्तर (Class and Standard) आधुनिक खेतिहर समाजों से ज्यादा औद्योगिक समाज को सूचित करता है। कृषक को एक श्रेणी (Peasant as category) के रूप में जनजातीय वर्ग अस्तित्व पर लागू करने की कठिनाइयाँ मिलती हैं।

NOTES

दूसरा दृष्टिकोण यह है कि आर्थिक ढाँचे को राजनैतिक संगठन के साथ जोड़कर देखा जाये, समूहों और श्रेणियों का अधिक प्रतिमानित रूप यहाँ पाया जा सकता है। चूँकि जनजातियाँ अभी भी परम्परागत खेती करने में अधिकांश लगी हुयी हैं अत: कृषि उत्पादन संगठन से इनके कृषकीय स्वरूप का मूल्यांकन करना पड़ेगा जैसे-

(1) भू-स्वामित्व और नियंत्रण।

(2) वैयक्तिक, सामूहिक सम्पत्ति।

(3) शारीरिक श्रम और भौतिक सम्पदा का विपरीत सम्बन्ध कैसे अस्तित्व में है।

(4) बाजार, हाट (Weekly market) की जगह स्थापित बाजारों की भूमिका।

(5) विकास एजेन्सी और जनजाति कृषकों का पारस्परिक शोषण और पनपता गठबंधन।

(6) जनजातीय खेतिहर संरचना में अतिरिक्त मूल्य (Surplus) का उत्पादन स्तर।

(7) तकनीक हस्तांतरण।

(8) परिवार, पैतृकता, स्त्रियों की भूमिका आदि।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जनजातीय कृषक का उदीयमान स्वरूप स्तरण व्यवस्था के नये संकेतकों (Indicators of Non-Premordial system) से परिपूर्ण है। इस दिशा में और अधिक अध्ययन किया जाना चाहिये।

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिये।
Write short essay on rural economy.

2. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के उद्विकास की अवस्थाएँ लिखिये।
Write the stages of evolution of rural economy.

3. ग्रामीण अर्थव्यवस्था की विशेषताएँ लिखिये।
Write the characteristics of rural economy.

4. ग्रामीण जनसंख्या के तत्वों की विवेचना कीजिये।
Discuss the elements of rural economy.

5. 'भारत एक धनी देश है, जहाँ निवासी निर्धन हैं।' विवेचना कीजिये।
India is a rich country where poors live? Discuss.

6. भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि के महत्व की विवेचना कीजिए।
Discuss the importance of Agriculture in Indian Economy.

7. 'कृषि भारत की आत्मा है।' इस कथन की विवेचना करते हुए ग्रामीण भारत में कृषि का महत्व लिखिए।
`Agriculture in the soul of India.' Write the importance of agriculture in Rural India in the light of above statement.

8. ग्रामीण भारतीय कृषि की प्रमुख समस्याएँ लिखिए।
Write the major problems of Rural Indian Agriculture.

9. 'कृषि ग्रामीण भारत का प्राथमिक व्यवसाय है, फिर भी कृषि की असंख्य समस्याएँ हैं।' व्याख्या कीजिए।
`Agriculture is the primary occupation of Rural India, still there are innumerable problems of Agriculture. Discuss.

10. ग्रामीण भारत के सामाजिक विकास और प्रगति में कृषि के महत्व की विवेचना कीजिए।
Discuss the importance of Agriculture in Rural India. Social development and progress of.

11. कृषक समाज की अवधारणा को समझाइए।
Explain the concept of peasant society.

12. कृषक समाज क्या है? इसकी विशेषताएँ लिखिए।
What is peasant society. Write its characteristics.

13. जनजातीय समाज और कृषक समाज पर एक लेख लिखिए।
Write and essay on Tribal society and peasant society.

14. जनजातीय कृषक पर टिप्पणी लिखिए।
Write short notes of Tribal peasantary.

(B) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिये–
Write short note on–

1. मानव उद्विकास की कृषि अवस्था।
Agriculture Stage of human evolution.

2. ग्रामीण अर्थव्यवस्था के तत्व।
Elements of Rural Agriculture.

3. भारत में कृषि।
Agriculture in India.

4. कृषक समाज की अवधारणा।
Concept of Agricultural Society.

5. कृषक समाज की विशेषताएँ।
Characteristics of Agricultural Society.

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

7

ग्रामीण नेतृत्व-अर्थ, विशेषताएँ एवं उभरते प्रतिमान
(RURAL LEADERSHIP-MEANING, CHARACTERISTICS AND EMERGING PATTERN)

नेतृत्व की अवधारणा
(Concept of Leadership)

नेतृत्व का तात्पर्य उस व्यवस्था से है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति को सामाजिक स्तरण में अग्रणी स्थान प्राप्त होता है और दूसरे सभी व्यक्ति उसका अनुसरण करते हैं। विभिन्न विद्वानों ने नेतृत्व की निम्नलिखित परिभाषाएँ दी है-

(1) **पीगोर्स** - "नेतृत्व व्यक्तिगत पर्यावरण की परिस्थिति का वर्णन करने के लिये एक सामान्य विचार धारा है, जब एक व्यक्तित्व पर्यावरण में इस प्रकार स्थित हो कि उसकी इच्छा, संवेदना एवं अन्तर्दृष्टि एक सामान्य कारण का अनुगमन करने के अन्तर्गत दूसरों को नियन्त्रित करती है।"

(2) **लौपियर और फ्रान्सवर्थ** - "नेतृत्व वह व्यवहार है जो दूसरे व्यक्तियों के व्यवहारों को उससे कहीं अधिक प्रभावित करता है जितना कि उन दूसरे लोगों का व्यवहार नेता को प्रभावित करता है।"[2]

(3) **ओ. टीड** - "नेतृत्व किसी लक्ष्य की प्राप्ति, जिसे वे चाहते हैं, सहयोग करने के लिए लोगों को प्रभावित करने की क्रिया है।"

(4) **मैकाइवर और पेज** - "नेतृत्व से हमारा तात्पर्य लोगों को प्रोत्साहित करने अथवा निर्देशित करने की वह योग्यता है, जो कि पद के अलावा व्यक्तिगत गुणों से आती है।"

(5) **सीमन और मोरिस** - "नेतृत्व की एक अस्थायी रूप से मानने योग्य परिभाषा उसके प्रभाव के कार्य हैं,जो उन व्यक्तियों को अनुरूप दिशा में प्रभावित करते हैं।"

(6) **डब्ल्यू.जी.एच. स्प्रीट** - "जो कोई भी दूसरों के लिए एक आदर्श का कार्य करता है, बहुधा एक नेता कहलाता है।"

इस प्रकार 'नेतृत्व की परिभाषा नेता और उसके अनुयायियों के रूप में की जा सकती है, जो अन्तःक्रियाओं के परिणामस्वरूप एक-दूसरे के व्यवहारों से प्रभावित होते हैं और स्वयं को प्रभावित करते हैं।'

नेतृत्व की विशेषताएँ
(Characteristics of Leadership)

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर नेतृत्व की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

(1) नेतृत्व एक प्रकार की ऐसी अन्तःक्रिया है, जिसमें नेता और उसके अनुयायी एक-दूसरे से प्रभावित होते हैं और स्वयं को प्रभावित करते हैं,

(2) नेतृत्व में प्रभुत्व (Dominance) का तत्व पाया जाता है,

(3) नेता और उसके अनुयायियों के बीच एक विशिष्ट व्यवहार प्रतिमान (Behaviour Pattern) पाये जाते हैं,

(4) नेतृत्व का एक विशिष्ट उद्देश्य होता है,

(5) नेता सुझाव देता है और अनुयायी इसे ग्रहण करते हैं,

(6) नेतृत्व एक ऐसा शब्द है, जो श्रेष्ठता का बोध करता है,

(7) नेतृत्व का जन्म एक विशिष्ट परिस्थिति में होता है। चूँकि परिस्थितियों में भिन्नतायें रहती हैं, इसलिए नेतृत्व में भी भिन्नताओं का होना स्वाभाविक है।

नेतृत्व के सामान्य लक्षण
(General Traits of Leadership)

NOTES

विद्वानों ने नेतृत्व के जो लक्षण या गुण निर्धारित किये हैं इनके आधार पर नेतृत्व के सामान्य लक्षणों गुणों की विवेचना की जा सकती है। ये सामान्य लक्षण निम्नलिखित हैं-

(1) **शारीरिक लक्षण-** नेतृत्व प्राप्त करने में शारीरिक लक्षण या गुणों का महत्वपूर्ण स्थान है। नेतृत्व के शारीरिक लक्षणों या गुणों में निम्न शारीरिक विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है -

(a) **ऊँचाई** - ऊँचाई नेतृत्व का एक आवश्यक गुण है और इससे व्यक्ति को असाधारणता प्राप्त होती है। ऊँचाई व्यक्ति को आकर्षक बनाती है और इससे व्यक्ति शीघ्र ही नेता को पहचान लेते हैं। जो विभिन्न अध्ययन किये गये हैं, उनसे ऐसा स्पष्ट होता है कि सामान्यतया नेताओं की ऊँचाई अधिक होती है।

(b) **वजन** - यद्यपि वजन का नेतृत्व से कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी इस आशय में प्रायः जो अध्ययन किये गये हैं उनमें यह निष्कर्ष निकलता है कि नेता भारी शरीर और अधिक वजन के होते हैं।

(c) **स्वास्थ्य** -जो अध्ययन किये गये हैं, उनसे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नेताओं का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यह एक अच्छे नेतृत्व का गुण है।

(d) **आकर्षकता** - नेतृत्व के लिये सिर्फ ऊँचाई भारी वजन और भारी शरीर ही आवश्यक नहीं है, अपितु उसके शरीर का गठन कुछ इस प्रकार हो कि वह आकर्षक दिखे। आकर्षक शरीर व्यक्तियों को शीघ्र ही अपनी ओर खींच लेता है।

(2) **मानसिक लक्षण या बौद्धिक योग्यता-** कुशल नेतृत्व के लिये शारीरिक लक्षणों को बौद्धिक योग्यता या बुद्धि (Intelligence) कहा जा सकता है। बुद्धि के अभाव में न तो सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान ही प्राप्त किया जा सकेगा और न इन्हें दूर करने के लिये मानसिक योग्यता ही रहेगी। मानसिक लक्षण के अन्तर्गत निम्न विशेषताओं को सम्मिलित किया जाता है -

(a) बुद्धि (b) दूरदर्शिता (c) चातुर्य (d) तीक्ष्ण दृष्टि।

(3) **सामाजिकता** - आधुनिक युग में सामाजिकता को नेतृत्व का गुण माना जाता हैं। नेतृत्व और सामाजिकता एक-दूसरे के अन्तःसम्बंधित हैं। और इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है। सामाजिकता का परिणाम यह होता है कि नेता और अनुयायियों के बीच शीघ्र की अनुकूलन हो जाता है। सामाजिकता के अभाव में वह न तो जनता में घुल-मिल सकेगा और न उनकी समस्याओं को ही समझ सकेगा। इसलिए नेता को सामाजिक और मिलनसार होना चाहिए।

(4) **दूरदर्शिता** - नेता को दूरदर्शी भी होना चाहिये। नेतृत्व की यह दूरदर्शिता स्वयं नेता के लिए, जनता के लिये और राष्ट्र के लिए अत्यन्त ही उपयोगी होती है। इस दूरदर्शिता का परिणाम यह होता है कि उसे राष्ट्र के भूत, वर्तमान और भविष्य के बारे में जानकारी रहती है। समय के अनुरूप राष्ट्र के लिए अनेक ऐसे कदम उठा सकता है जिसमें राष्ट्र की उन्नति और उसकी सुरक्षा निहित होती है।

(5) **संयम** - नेता को संयमप्रिय होना चाहिए। इससे आत्म-नियंत्रण बना रहता है। आत्म-नियंत्रण का परिणाम यह होता है कि नेता हर समस्या को धैर्य और साहस के साथ सुलझाता है तथा उसके अनुकूल व्यवहार करता है।

(6) **आत्म-निर्भरता**- नेता में आत्म-निर्भरता भी होनी चाहिये। नेता की इस आत्मनिर्भरता का परिणाम यह होता है कि उसमें आत्म-विश्वास की भावना का विकास होता है। आत्म-विश्वास से उसमें निर्णय करने की क्षमता और उद्देश्य का ज्ञान आदि प्राप्त होता है।

(7) **उत्तरदायित्व** - नेता में उत्तरदायित्व की भावना का होना भी आवश्यक है। इससे नेतृत्व में स्थायित्व, एकाग्रता, उद्देश्य-प्रेम और कर्त्तव्यनिष्ठा का विकास होता है। इसका परिणाम यह होता है कि नेता जटिल समस्याओं को भी कुशलता के साथ सुलझा लेता है।

(8) **इच्छा शक्ति** - नेतृत्व को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उसके व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवन में अनेक उतार चढ़ाव आते हैं। इन सभी परिस्थितियों में नेता में प्रबल इच्छा-शक्ति का होना नितान्त

नेतृत्व के सामान्य लक्षण

कोफिन (Coffin)	टर्मन (Terman)	टीड (Orway Tead)	पैट्रिज (Partidge)	बोगार्डस (Bogardus)	
				नेतृत्व के लक्षण	नेतृत्व विरोधी लक्षण
1. बौद्धिक योग्यता	1. कम स्वार्थी	1. स्नायु एवं शारीरिक शक्ति	1. शारीरिक पराक्रम	1. प्रजातांत्रिक धारणाएँ	1. उदासीनता
2. नैतिकता	2. अधिक साहसी	2. उद्देश्य और साधनों का पर्याप्त ज्ञान	2. अवलम्बन योग्यता	2. चेतनता	2. संकीर्णता
3. कल्पना शक्ति	3. आकर्षक व्यक्तित्व	3. मैत्री और अनुराग	3. आकृति	3. यथार्थता	3. कायरता
4. आत्मनिर्भरता	4. विशाल शरीर	4. विश्वास	4. बुद्धि	4. मित्रता	4. अहंकार और आडंबर
5. उत्तरदायित्व	5. कम भावुक	5. पवित्रता		5. उत्साह	5. अहम्
6. संयम	6. अन्य विशेषताओं से युक्त	6. निश्चय		6. सहानुभूति	6. निर्बुद्धि
7. शक्ति और निर्णय		7. उत्साह		7. विश्वसनीयता	7. अस्थिरता
8. योग्य सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता		8. बुद्धि		8. धैर्य	8. हठ और जिद
9. व्याकुल न होने की क्षमता		9. तकनीकी ज्ञान			
10. सामाजिकता		10. शिक्षा देने की कुशलता			
11. क्रियाशील शारीरिक					

आवश्यक है। संकल्प-शक्ति ही वह साधना है, जिससे वह कठिन परिस्थितियों का कुशलतापूर्वक सामना कर सकता है।

(9) **परिवर्तनशीलता एवं अनुकूलनशीलता** - समय और परिस्थितियां निरन्तर बदलती रही हैं। परिस्थितियों से चिपके रहना,भविष्य की चिन्ता न करना और भूत का गुणगान करना नेतृत्व का सबसे बड़ा दुर्गुण है। अच्छे नेता को चाहिए कि उसके विचार और दृष्टिकोण प्रगतिशील होने चाहिये तथा उसमें परिवर्तित परिस्थितियों से अनुकूलन की क्षमता होनी चाहिये। इसी आधार पर उसे सफलता प्राप्त हो सकती है।

(10) **परिश्रमशीलता** - नेता को परिश्रमी भी होना चाहिये। आधुनिक युग में यद्यपि साधन संपन्नता को नेतृत्व का आधार माना जाता है, किन्तु ऐसे अनेक नेताओं के उदाहरण हैं, जो साधनहीन परिवारों में पैदा हुए थे और उन्होंने कठोर परिश्रम के द्वारा सफल नेतृत्व प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।

(11) **उद्दीपकता** - उद्दीपन और नेतृत्व का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अन्तर्गत किसी नेता में निम्नलिखित गुणों का होना अनिवार्य है -

(a) उत्साह , (b) मौलिकता, (c) स्पष्टता,

(d) प्रसन्नता और प्रफुल्लता, (e) स्फूर्ति, (f) बातचीत करने की कुशलता।

(12) **कुशल सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता** - कुशल नेतृत्व में ऐसी क्षमता का होना आवश्यक है जिससे वह समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ कुशल सम्बन्धों की स्थापना कर सके। इसके लिए नेता में निम्न गुणों का होना आवश्यक है -

(a) मानव, प्रकृति का ज्ञान, (b) सहयोग की भावना, (c) दया भाव,

(d) तार्किकता और (e) सहानुभूति।

(13) **क्रियाशीलता** - एक सफल नेतृत्व के लिये क्रियाशीलता का होना आवश्यक है। उसे सामाजिक परिस्थितियों, जनता और राष्ट्र के प्रति निरन्तर क्रियाशील होना चाहिये।

नेतृत्व का वर्गीकरण
(Classification of Leadership)

विभिन्न विद्वानों ने नेतृत्व का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है,

(1) **बोगार्डस के अनुसार** - बोगार्डस ने नेतृत्व को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है -

(a) प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नेतृत्व,

(b) सामाजिक, अधिशासी और मानसिक नेतृत्व,

(c) तानाशाही करिश्माई, पैतृक और प्रजातन्त्रात्मक

(d) पैगम्बर, सन्त, विशेषज्ञ व मालिक (Prophets, Saints, Experts and Boss)।

(2) **किम्बाल यंग** ने नेतृत्व को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया है-

(a) राजनैतिक नेतृत्व, (b) प्रजातन्त्रात्मक नेतृत्व, (c) नौकरशाही नेतृत्व,

(d) कूटनीतिज्ञ नेतृत्व, (e) सुधारक नेतृत्व, (f) आन्दोलनकर्ता नेतृत्व,

(g) सिद्धान्तवादी नेतृत्व।

समाज में नेतृत्व का महत्व
(Importance of Leadership in Society)

समाज में नेतृत्व की भूमिका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण होती है। वास्तव में नेतृत्व समाज की स्थापना और इसकी रक्षा करता है। समाज में नेतृत्व का निम्नलिखित महत्व है -

(1) नेतृत्व समाज में नैतिकता की स्थापना करता है। नेतृत्व के द्वारा ही समाज का नैतिक स्तर बनाये रखा जाता है।

NOTES

(2) नेतृत्व समाज में सामाजिक व्यवस्था की स्थापना भी करता है।

(3) नेता अपने समूह की क्रियाओं को संचालित करता है, इससे समाज में कार्यात्मक व्यवस्था स्थापित होती है।

(4) आदर्श व्यक्ति होने के कारण समाज के अन्य व्यक्ति नेता का अनुसरण करते हैं, इससे सामाजिक मूल्यों की स्थापना होती है।

(5) नेता समूह का पथ-प्रदर्शन करता है और समाज को परिस्थिति के अनुकूल बनाता है।

(6) नेता समाज के विरोधी व्यक्तियों के बीच सामंजस्य स्थापित करता है, इससे समाज में संगठन बना रहता है।

(7) नेता सामूहिक प्रतिनिधित्व करता है और समाज के सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति में योगदान देता है।

(8) नेता नीति निर्धारित करता है और सामाजिक कार्यों को सम्पादित करता है।

भारत में ग्रामीण नेतृत्व
(Rural Leadership in India)

भारत गाँव का देश है। यहाँ की 72.2 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण अंचलों में निवास करती है। इसलिए भारत में ग्रामों का महत्व अधिक है। इन ग्रामों की समस्याओं का समाधान करने के लिए भारत में आदिकाल से पंचायतें पाई जाती हैं। इन पचायतों का संचालन ग्रामीण नेतृत्व के द्वारा होता था। ग्रामीण नेतृत्व ग्रामीण- जीवन से सम्बंधित है जो व्यक्ति ग्रामीण-जीवन का नेतृत्व करते हैं, उन्हें नेता के नाम से जाना जाता है।

ग्रामीण नेताओं के प्रकार
(Types of Rural Leadership)

ग्रामीण नेताओं को सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(1) **वर्तमान नेता** - वर्तमान नेताओं को दूसरे शब्दों में औपचारिक नेता भी कहा जाता है। ये नेता वास्तविक नहीं होते हैं। इन्हें सरकार नियुक्त करती है। इन नेताओं के अन्तर्गत पंच-सरपंच मुखिया आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

(2) **परम्परागत नेता** -ये नेता सरकार के द्वारा नियुक्त नहीं होते हैं बल्कि परम्पराओं से चले आते हैं। इन्हें ग्रामीण जनता का अनौपचारिक या वास्तविक नेता भी कहा जा सकता है, इन नेताओं को समुदाय और ग्राम के द्वारा मान्यता प्राप्त होती है। परम्परात्मक नेताओं को सुविधा की दृष्टि से निम्न भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) **स्वीकृति प्राप्त नेता** - स्वीकृति प्राप्त नेता भी दो प्रकार के होते हैं -

(a) **सक्रिय नेता** - इन नेताओं को ग्रामीण जीवन में परम्परात्मक ढंग से स्वीकृति प्राप्त है तथा ये ग्रामीण-जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। ये नेता बहुत चालाक होते हैं तथा साम-दाम-दण्ड-भेद सभी प्रकार की नीतियों का प्रयोग अपनी नेतागिरि की रक्षा के लिए करते हैं। यह लोक कल्याण की अपेक्षा व्यक्तिगत हितों के लिए अधिक कार्य करते हैं।

(b) **निष्क्रिय नेता** - इस प्रकार के नेता आदर्श व्यक्ति होते हैं। समुदाय इन्हें आदर और प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखता है, किन्तु ये नेता ग्रामीण-जीवन नेतृत्व में क्रियाशील रूप से भाग नहीं लेते हैं। दूसरे शब्दों में नेता यह नहीं बतलाता है कि हम नेता हैं।

(ii) **अस्वीकृति प्राप्त नेता** - गाँव में कुछ ऐसे भी नेता होते हैं जिन्हें ग्रामीण समुदाय नेता नहीं मानता है। ये लोग शक्ति के बल पर अपनी नेतागिरी कायम रखते हैं।

महत्व या कार्यों के आधार पर ग्रामीण नेताओं को मुख्य रूप से तीन भागों में बाँटा जा सकता है-

(a) **छोटे नेता** - जिनका प्रभाव अपने परिवार, रिश्तेदारी या पड़ोस तक ही सीमित रहता है।

(b) **मध्यम नेता** - ये नेता गाँव में कुछ प्रभाव रखते है तथा पंचायत आदि के सदस्य होते हैं।

(c) **बड़े नेता** - ये गाँव के महत्वपूर्ण नेता होते हैं तथा इनके बिना गाँवों का कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय नहीं लिया जा सकता है।

ग्रामीण नेता की विशेषतायें
(Characteristics of Rural Leader)

संक्षेप में ग्रामीण नेताओं की विशेषताएँ इस प्रकार है -

(i) ग्रामीण नेता में कुछ विशिष्ट विशेषताएँ होती हैं, जिसके द्वारा वह दूसरों को प्रभावित करता है।

(ii) ग्रामीणों के लिये कुछ परम्परात्मक आधार एवं मूल्य होते हैं, जो नेतृत्व को प्रभावित करते हैं।

(iii) उसमें समदर्शी होने की प्रवृत्ति पाई जाती है।

(iv) उसे सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक पक्ष के अनुभव होते हैं।

(v) उसमें समुदाय के प्रति निष्ठा एवं भक्ति की भावना पाई जाती है।

(vi) उसमें कुछ ऐसी योग्यताएँ होती हैं, जिनके द्वारा वह किसी समस्या का नियोजन, समाधान और निर्देशन कर सकता है।

ग्रामीण नेतृत्व के विकास के तत्व
(Elements of Development of Rural Leadership)

मौलिक प्रश्न यह है कि गाँवों में नेतृत्व का क्या आधार है? वे कौन से तत्व हैं, जो ग्रामीण नेतृत्व में सहायक होते हैं या दूसरे शब्दों में ग्रामीण नेतृत्व के लिये भूमिका का निर्माण करते हैं? संक्षेप में, ग्रामीण नेतृत्व को निम्न परिस्थितियां प्रभावित करती हैः-

(i) आर्थिक स्थिति अच्छी होने से ग्रामीण नेतृत्व प्रभावित होता है। यदि गाँव में एक व्यक्ति आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ होता है और ग्रामीण लोगों की आर्थिक सहायता करता है,तो ग्रामीण व्यक्ति इस अहसान से दबे होने के कारण उसे नेता मान लेते हैं।

(ii) परिवार का आकार भी ग्रामीण नेतृत्व को प्रभावित करता है। यदि परिवार बड़ा होता है, तो इससे भी ग्रामीण नेतृत्व प्रभावित होता है।

(iii) अधिक आयु भी ग्रामीण नेतृत्व का आधार है। अधिकांशतः ऐसा देखा गया है कि गाँव में बुजुर्गों को अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है।

(iv) भूमि का स्वामित्व या किसी व्यक्ति के पास अधिक जमीन का होना भी ग्रामीण नेतृत्व का आधार होता है।

(v) व्यक्तित्व के कुछ विशिष्ट गुण भी ग्रामीण नेतृत्व को प्रभावित करते हैं ।

(vi) शिक्षा भी ग्रामीण जीवन में नेतृत्व का आधार होती है।

(vii) गाँवों में उस व्यक्ति को भी नेता मान लिया जाता है, जिन्हें कोर्ट-कचहरी का ज्ञान होता है तथा उसका परिचय उच्च सरकारी अधिकारियों से होता है।

ग्रामीण नेतृत्व में परिवर्तन
(Change in Rural Leadership)

आधुनिक युग में ग्रामीण नेतृत्व में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। भारतीय स्वतन्त्रता के बाद ग्रामीण नेतृत्व के परम्परात्मक स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। प्राचीन भारत में ग्रामीण नेतृत्व परम्परा के आधार पर चलता था। इसलिए नेतृत्व पर कुछ विशेष व्यक्तियों का अधिकार हो गया था। भारतीय पंचायतें जो परम्परा के आधार पर चली आ रही थीं और काफी जर्जर हो गई थीं, उन्हें नये सन्दर्भ में समझानें का प्रयास किया गया। इस परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण नेतृत्व में निम्न परिवर्तन देखे जा रहे हैं :-

(1) ग्रामीण नेतृत्व में स्थिरता समाप्त होती जा रही है। नेतृत्व का परम्परात्मक आधार समाप्त हो रहा है। नेतृत्व आज परम्परागत पद नहीं रह गया है, बल्कि नेतृत्व का निर्णय वयस्क मताधिकार के आधार पर किया जाता है।

NOTES

(2) ग्रामीण नेतृत्व में स्त्रियों का महत्व नहीं था किन्तु अब उनके लिए पद सुरक्षित हैं, इसलिए उनमें भी नेतृत्व की भावना का क्रमिक विकास होता जा रहा है।

(3) पंचायतों का नेतृत्व जो पहले एक या दो परिवारों तक सीमित था, अब सम्पूर्ण ग्राम समुदाय तक विस्तृत हो गया है।

(4) ग्रामीण नेतृत्व में अल्पसंख्यक, दलित और पिछड़ी जातियों को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होने लगा है।

(5) गाँवों में जो जाति या कबीलाई पंचायतें थीं, उनका महत्व समाप्त होता जा रहा है।

(6) ग्रामीण नेतृत्व शिक्षा के कारण से भी प्रभावित हो रहा है।

(7) ग्रामीण नेतृत्व का आधार अनेक सहकारी संस्थाओं के क्रियाशील सदस्यता के कारण भी प्रभावित हो रहा है।

(8) ग्रामीण नेतृत्व में आयु का महत्व भी समाप्त होता जा रहा है। वर्तमान में पंच और सरपंच वे व्यक्ति भी हैं, जिनकी आयु 30 वर्ष से कम है।

(9) आज धन का महत्व भी समाप्त होता जा रहा है। धन और भूस्वामित्व ग्रामीण नेतृत्व के आधार नहीं रह गये हैं।

(10) ग्रामीण नेतृत्व के निर्धारण में परिवार का महत्व भी धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा है। इसका कारण यह है कि संयुक्त परिवार समाप्त होते जा रहे हैं। साथ ही परिवारों में नित्य नये झगड़ों का जन्म हो रहा है।

(11) ग्रामीण नेतृत्व के अधिकारों और कर्तव्यों में भी परिवर्तन हुए हैं। आज ग्रामीण नेताओं को असीमित कर्तव्यों का पालन करना पड़ता है।

(12) ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्षेत्र में भी ग्रामीण नेतृत्व का महत्व पहले की अपेक्षा अधिक हो गया है, क्योंकि शासकीय योजनाएँ ग्रामोन्मुखी बनाई जा रही हैं।

परीक्षाओं के लिये महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. सामाजिक संगठन में नेता की भूमिका लिखिए।
Write the role of leader in social organization.

2. नेतृत्व की व्याख्या कीजिए। नेतृत्व के कार्यों की विवेचना कीजिए।
Explain leadership. Discuss functions of leadership.

3. नेता के आवश्यक गुणों की विवेचना कीजिए।
Discuss the essential characteristics of a leader.

4. नेतृत्व पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
Write short essay on leadership.

5. ग्रामीण नेतृत्व से आप क्या समझते हैं? ग्रामीण नेताओं के प्रकार लिखिए।
What do you understand by rural leadership ? Write types of rural leaders.

6. ग्रामीण नेतृत्व के बदलते प्रतिमानों की विवेचना कीजिए।
Discuss changing patterns of rural leadership.

7. ग्रामीण नेता की प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?
Write are essential characterstics of rural leader .

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. ग्रामीण नेता की विशेषतायें लिखिये।
Write characteristics of Rural Leader.

(C) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

नीचे प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर दिए गए हैं। इनमें से एक सही उत्तर का चयन कीजिए-

1. "नेतृत्व से हमारा तात्पर्य लोगों को प्रोत्साहित करने अथवा निर्देशित करने की वह योग्यता है, जो कि पद के अलावा व्यक्तिगत गुणों से आती है।" यह परिभाषा किसकी है -
   (अ) मैकाइवर और पेज (ब) ओ. टीड
   (स) लैपियर और फ्रांसवर्थ (द) पी गोर्स

2. निम्न में से कौन-सी एक नेतृत्व की विशेषता नहीं है -
   (अ) नेतृत्व में 'प्रभुत्व' का तत्व पाया जाता है।
   (ब) नेतृत्व का एक विशिष्ट उद्देश्य होता है।
   (स) नेता सुझाव देता है और अनुयायी उसे ग्रहण करता है।
   (द) नेतृत्व का जन्म एक सामान्य परिस्थिति में होता है।

3. 'Leadership and Groups in South Indian Village' पुस्तक किसने लिखी है -
   (अ) जे.टी प्लैट्स (ब) लुइस
   (स) हरिबन्स सिंह ढिल्लन (द) आस्कर लेविस

4. निम्न में से कौन-सा एक गुटबन्दी का लाभ नहीं है -
   (अ) हम भावना का विकास होता है। (ब) हितों और उद्देश्यों की पूर्ति होती है।
   (स) अहम् कुशलता की संतुष्टि (द) कुशलता में कोई वृद्धि नहीं होती है।

5. ऊँचाई नेतृत्व का एक आवश्यक गुण है। भारत के कौन-से प्रधानमंत्री इसके अपवाद होते हैं -
   (अ) पं जवाहरलाल नेहरू (ब) लाल बहादुर शास्त्री
   (स) इन्दिरा गाँधी (द) नरसिम्हा राव

6. आदर्श व्यक्ति किस प्रकार के नेतागण श्रेणी में गिने जाते हैं -
   (अ) सक्रिय नेता (ब) निष्क्रिय नेता
   (स) उग्र नेता (द) अस्वीकृत नेता

उत्तर– 1. (अ), 2. (द), 3. (स), 4. (द), 5. (ब), 6. (ब)।

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

8

प्रभावशाली जाति एवं ग्रामीण भारत में गुटवाद
(DOMINANT CASTE AND FACTIONALISM IN RURAL INDIA)

ईश्वर को प्रभु कहा जाता है। क्यों? इसका कारण यह है कि ऐसी मान्यता है कि ईश्वर में परमशक्ति (Super power) होती है, जो मानव जाति में नहीं होती है। यह शक्ति सर्वकालिक और सर्वव्याप्त होती है। इसीलिए मानव इस शक्ति की पूजा करता है, इसे प्रसन्न करता है और इससे डरता भी है। मानव समाज का उद्विकास हुआ है। मानव समाज का उद्विकास निम्न चार अवस्थाओं से हुआ है :-

(a) आखेट अवस्था (Hunting Stage)

(b) पशुपालन अवस्था (Pastoral Stage)

(c) कृषक अवस्था (Agricultural Stage) और

(d) औद्योगिक अवस्था (Industrial Stage)

इन चारों अवस्थाओं में किसी न किसी प्रकार की प्रभुता विद्यमान थी। आखेट अवस्था में जो ज्यादा आखेट करता था, जिसके पास आखेट के साधन और औजार अधिक थे तथा जो शारीरिक दृष्टि से अधिक शक्तिशाली था, वह अन्यों की तुलना में अधिक प्रभु था। अर्थात उसका समाज में अधिक वर्चस्व तथा उसी के निर्देशन तथा आधिपत्य में अन्य कार्य करते थे। पशुपालक अवस्था में जिनके पास पशुधन अधिक था, अन्यों की तुलना में समाज में उनकी प्रभुता अधिक थी। कृषक अवस्था में जिनके पास भूमि अधिक थी, समाज में उनकी प्रभुता अधिक थी और औद्योगिक अवस्था में जिनका उद्योगों पर अधिकार था तथा जिनके पास पूँजी अधिक थी, समाज में अन्यों की तुलना में वे अधिक प्रभु थे।

कार्लमार्क्स ने साम्यवाद की कल्पना की थी और उसका कहना था कि 'आदिम साम्यवाद' (Primitive Communism) में मानव समाज था। इसके साथ ही उसने आगे लिखा है कि साम्यवाद की अन्तिम अवस्था में वर्गहीन समाज (Classless society) का निर्माण होगा, जिसमें सभी मानव समान होंगे। ऐसा समाज न आया है और न ही ऐसी आशा की जा सकती है कि कभी ऐसा समाज आएगा। कहने का तात्पर्य यह है कि मानव समाज में प्रभुता का तत्व हमेशा विद्यमान रहा है, विद्यमान है और आगे भी विद्यमान रहेगा।

प्रत्येक समाज की एक सामाजिक संरचना (Social Structure) होती है। इस सामाजिक संरचना के दो तत्व होते हैं -

(a) पद (Status) और (b) कार्य (Role)

प्रत्येक व्यक्ति का एक पद होता है।

परिवार में माँ का पद, समाज में शिक्षक का पद, धर्म में पुरोहित का पद आदि। व्यक्ति को ये पद क्यों प्राप्त होते हैं, इसलिए कि व्यक्ति इन पदों के परिप्रेक्ष्य में कुछ विशिष्ट कार्यों का सम्पादन करता है। इन कार्यों के सम्पादन के कारण समाज में व्यक्तियों का एक सोपान (Hierarchy) बन जाती है। इस सोपान में कुछ व्यक्तियों का स्थान ऊपर होता है, जब कि कुछ का नीचे। जो ऊपरी सोपान पर होते हैं, प्रभुता उनके पास रहती है।

भारतीय समाज के संदर्भ में वर्णव्यवस्था का उल्लेख करना आवश्यक है। चार प्रकार के वर्णों को स्वीकार किया गया है-

(a) ब्राह्मण (b) क्षत्रिय (c) वैश्य (d) शूद्र।

ऐसा माना जाता है कि समाज में व्यक्तियों के कार्यों के विभाजन के लिए वर्ण व्यवस्था बनाई गई थी। चार वर्ण के व्यक्तियों को चार कार्य दिए गए थे-

(i) ब्राह्मण - अध्ययन-अध्यापन (ii) क्षत्रिय - सुरक्षा - प्रशासन

(iii) वैश्य - भरण-पोषण (iv) शूद्र - सेवा।

मैं विश्वास नहीं करता, किन्तु कहा गया है कि वर्ण परिवर्तनशील व्यवस्था थी। इसका कारण कर्मों की प्रधानता का होना है। जब व्यक्ति अपने कर्मों का सम्पादन नहीं करता था, उसका वर्ण बदल जाता था। यह मात्र एक कोरी कल्पना है। ऐसा परामानव (Super-man) कर सकता है मानव (Man) नहीं। इसका सीधा उत्तर है कि मानव आदिकाल से अपने और पराए में विभक्त रहा है। भला कोई पिता यह नहीं चाहेगा कि उसका पुत्र समाज के ऊँचे पायदान पर न हो। अतः यदि प्रभु ऊँचा काम भी नहीं करेगा, तो भी वही ऐसा प्रयास करेगा कि वह ऊँचे पद पर ही रहे। मानव की इसी प्रवृत्ति के कारण जाति (Caste) का जन्म और विकास हुआ। जो व्यक्ति ऊँचे सोपान पर बैठ गए, उन्होंने अपनी संतान के लिए ऊँची कुर्सी का आरक्षण (Reservation) कर लिया और यही आरक्षण जाति की उत्पत्ति का आधार बना।

प्रभु जाति की अवधारणा को स्पष्ट करने के लिए जाति के सम्बन्ध में इसकी विवेचना आवश्यक है। भारत में अनेक जातियाँ हैं जो ग्रामीण, नगरीय तथा विभिन्न क्षेत्रों में निवास करती है। इन जातियों द्वारा विभिन्न प्रकार के कार्यों को सम्पादित किया जाता है। इन कार्यों को ध्यान में रखकर कुछ जातियों को ही प्रभु जाति मान लिया जाता है, जो इस प्रकार है-

(a) जो धार्मिक कार्यों का सम्पादन करते है, उनके साथ पवित्रता की भावना जुड़ी होती है। अतः कार्य दो भागों में विभाजित हो गए- पवित्र और अपवित्र जो कार्य पवित्र हैं, उनका सम्पादन जो व्यक्ति करते हैं उन्हें प्रभु जाति से सम्बोधित किया जाता है।

(b) जिनके पास अधिक कृषि भूमि तथा आर्थिक साधन होते हैं, उनकी भी समाज में प्रभुता होती है।

(c) जनसंख्यात्मक दृष्टि से जिनकी संख्या अधिक होती है, उनकी भी समाज में प्रभुता होती है।

(d) जो राजसत्ता के निकट होते हैं, समाज में उनकी भी प्रभुता होती है तथा

(e) शिक्षा और नए आर्थिक अवसर व्यक्ति को प्रभुता प्रदान करते हैं।

प्रभुजाति की अवधारणा के जनक
(Founder of the Concept of Dominant Caste)

प्रभु जाति की अवधारणा के जनक प्रमुख समाजशास्त्री मैसूर नृसिंहाचार श्री निवास (जिन्हें छोटे नाम से M.N. Srinivas से सम्बोधित किया जाता है) हैं। इन्होंने कुर्ग प्रदेश तथा मैसूर के ग्रामीण क्षेत्रों का अध्ययन करते हुए प्रतिपादित किया है कि भारतीय जाति संरचना में कुछ जातियाँ प्रभु (Dominant) होती हैं। प्रभु जाति की अवधारणा की व्याख्या करते हुए प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की नई अवधारणा का प्रतिपादन किया। वास्तव में संस्कृतिकरण और प्रभुजाति दोनों अवधारणाएँ आपस में सम्बोधित है। इनमें अन्तर केवल इतना है कि संस्कृतिकरण और प्रभुजाति दोनों अवधारणाएँ आपस में सम्बन्धित है। इनमें अन्तर केवल इतना है कि संस्कृतिकरण एक विस्तृत अवधारणा है, जो सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित करती है। इसके विपरीत प्रभु जाति की अवधारण जातियों की सामाजिक संरचना और इसमें होने वाले परिवर्तनों को रेखांकित करती है। इस दृष्टि से प्रभु जाति की अवधारणा को समझने के लिए संस्कृतिकरण की अवधारणा को भी समझना अनिवार्य है।

संस्कृतिकरण
(Sanskritization)

आधुनिक भारत की अनेक मौलिक विशेषताएँ हैं, इनमें "सामाजिक परिवर्तन" (Social change) का स्थान सर्वप्रथम है। वैसे तो परिवर्तन एक ऐसी प्रक्रिया है, जो निरंतर गतिशील रहती है, किंतु आधुनिक भारत में परिवर्तन की यह प्रक्रिया अत्यंत ही तीव्र है। इस परिवर्तन की प्रक्रिया अत्यंत ही जटिल है। इस परिवर्तन की मौलिक विशेषता यह है कि परिवर्तन किसी खास दिशा में न होकर सभी दिशाओं में हो रहा है। इस परिवर्तन से शिक्षा, अर्थव्यवस्था, राजनैतिक जीवन, धर्म आदि क्षेत्रों का प्रभावित होना नितांत स्वाभाविक है। नैतिक और सांस्कृतिक जीवन भी इस परिवर्तन से अप्रभावित नहीं है।

यदि हम भारतीय इतिहास का अवलोकन करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि परिवर्तन की यह प्रक्रिया आदिकाल से निरंतर चली आ रही है। भारतीय स्वतंत्रता ने इस प्रक्रिया को और भी तेज कर दिया है और आज इसके लक्षणों को अधिक स्पष्ट और गंभीरता से देखा जा सकता है। संस्कृतिकरण के माध्यम से भारत में होने वाले परिवर्तन की इसी प्रक्रिया को जानने का प्रयास किया गया है।

NOTES

संस्कृतिकरण की परिभाषा
(Definition of Sanskritization)

संस्कृतिकरण की अवधारणा का प्रतिपादन प्रोफेसर एम.एन. श्रीनिवास ने किया है। प्रो. श्रीनिवास ने ही संस्कृतिकरण की जो परिभाषा दी है, उसे यहाँ रखने का प्रयास किया जाएगा-

(1) "संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कोई "नीच" हिन्दू जाति या कोई जनजाति अथवा अन्य समूह, किसी उच्च और प्राय: "द्विज" जाति की दिशा में अपने रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड, विचारधारा और जीवन पद्धति को बदलता है। आमतौर पर ऐसे परिवर्तनों के बाद वह जाति परम्परा से स्थानीय समाज द्वारा सोपान में जो स्थान उसे मिला हुआ है, उनसे ऊँचे स्थान का दावा करने लगती है।"[1]

इसकी विवेचना करते हुए उन्होंने आगे लिखा है कि सामान्यत: संस्कृतिकरण के साथ-साथ और प्राय: उनके परिणामस्वरूप सम्बद्ध जाति ऊपर की ओर गतिशील होती है, पर गतिशीलता संस्कृतिकरण के बिना भी अथवा गतिशीलता के बिना संस्कृतिकरण भी सम्भव है, किंतु संस्कृतिकरण से सम्बद्ध गतिशीलता के परिणामस्वरूप व्यवस्था के केवल "पद्मूलक परिवर्तन" ही होते हैं। कोई संरचनात्मक परिवर्तन नहीं अर्थात् एक जाति अपने आस-पास की जातियों से ऊपर उठ जाती है और दूसरी नीचे आ जाती है, पर यह सब मूलत: अचल सोपान में घटित होता है। स्वयं व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

(2) "संस्कृतिकरण का अर्थ केवल नई प्रथाओं और आदतों को ग्रहण करना नहीं है, बल्कि नये विचारों और मूल्यों को भी अभिव्यक्त करना है जो कि धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष संस्कृत साहित्य के विशाल शरीर में बहुधा अभिव्यक्त हुआ है। कर्म, धर्म, पाप, पुण्य, माया, संसार और मोक्ष कुछ सामान्य सांस्कृतिक, धार्मिक विचारों के उदाहरण हैं और जब कोई समाज "संस्कृत" बन जाता है तो ये शब्द उनकी संस्कृति में बहुधा दिखाई देते हैं। सांस्कृतीय पौराणिक कथाओं और कहानियों के द्वारा ये विचार सामान्य लोगों तक पहुँचते हैं।"[3]

वे आगे कहते हैं कि संस्कृतिकरण स्वयं ही एक विषय और जटिल प्रत्यय है। यह भी सम्भव है कि इसको प्रत्ययों का ढेर मानना अकेले प्रत्यय मानने से अधिक उपयोगी होगा। यह एक विस्तृत सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया के लिए केवल एक नाम भर है। प्रत्यय के भोड़ेपन और अस्पष्टता के बावजूद भी मैं उसको बिना किसी पश्चाताप के इस्तेमाल करता रहूँगा।

"जब निम्न जाति का व्यक्ति उच्च जाति के व्यक्तियों के आदर्शों, विचारों तथा रहन-सहन को अपनाता है, तो इसी प्रक्रिया को जिसके माध्यम से वह उच्च जाति के व्यक्तियों के आदर्शों और विचारों को अपनाता है, तो इसे ही संस्कृतिकरण के नाम से जाना जाता है। इस प्रक्रिया के द्वारा जो परिवर्तन होते हैं, वे संरचनामूलक न होकर पद्मूलक होते हैं।"

संस्कृतिकरण की विशेषताएँ
(Characteristics of Sanskritization)

प्रो. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की जो विवेचना की है, उसको ध्यान में रखकर इसकी निम्न तीन विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं -

1. संस्कृतिकरण की पहली विशेषता यह है कि यह एक प्रक्रिया है। इसकी धारणा गतिशील है।
2. संस्कृतिकरण का सीधा सम्बंध परिवर्तन से है। परिवर्तन के अभाव में संस्कृतिकरण असम्भव है।
3. संस्कृतिकरण वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से निम्न जाति के व्यक्ति उच्च जाति के विचारधारा और जीवन पद्धति को अपनाते हैं।
4. यह संस्कृतिकरण की प्रक्रिया हिन्दू जातियों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि जनजाति और अर्द्ध जनजाति में भी यह प्रक्रिया गतिशील रहती है।
5. संस्कृतिकरण का सम्बंध भारतवर्ष की परम्परागत सामाजिक स्तरीकरण में परिवर्तन से है।
6. संस्कृतिकरण की इस प्रक्रिया में केवल ब्राह्मणों का ही अनुकरण नहीं किया जाता है, अपितु प्रत्येक स्थिति में निम्न जाति उच्च जाति के व्यक्तियों का अनुसरण करती है।
7. संस्कृतिकरण की प्रक्रिया में जाति अथवा समूह के रीति-रिवाज, कर्मकाण्ड विचारधारा और जीवन पद्धति किसी द्विज जाति के अनुरूप परिवर्तित की जाती है।

संस्कृतिकरण सार्वभौमिक नहीं है
(Sanskritization is not Universal)

प्रोफेसर श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की जिस अवधारणा को प्रतिपादित किया है, उसे सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि यह प्रक्रिया समान रूप से सभी जगह क्रियाशील नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया सिर्फ निम्न जातियों में ही देखी जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि निम्न जातियाँ ही उच्च जातियों के विचारों और आदर्शों को अपनाती हैं। कभी भी उच्च जातियाँ निम्न जातियों के विचारों को ग्रहण नहीं करती हैं। इसके साथ ही संस्कृतिकरण की यह प्रक्रिया सम्पूर्ण भारतवर्ष में समान रूप से लागू नहीं होती है। डॉ. डी.एन. मजूमदार (Dr. D.N. Majumdar) ने उत्तरप्रदेश के मोहाना ग्राम का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकाला है कि इस गाँव की निम्न जातियों में उच्च जातियों के विचारों और आदर्शों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती है। इसके साथ यदि कोई भी निम्न जाति उच्च जाति के विचारों और आदर्शों को ग्रहण करती है तो उसे सामाजिक स्तरीकरण में ऊँचा स्थान नहीं मिलता है। संस्कृतिकरण के मुख्य रूप से दो आधार हैं -

(1) ऊर्ध्वोन्मुख (Vertical)। (2) क्षैतिज (Horizontal)।

डॉ. डी.एन. मजूमदार ने मोहाना गाँव का अध्ययन करने के उपरान्त यह निष्कर्ष निकाला था कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया ऊर्ध्वोन्मुख न होकर क्षैतिज होती है। इसे उन्होंने निम्न उदाहरण के द्वारा समझाया है-

भारतीय सामाजिक संस्तरण

● ब्राह्मण ● क्षत्रिय ● वैश्य ● शूद्र

इस संस्तरण में ब्राह्मण का पद सर्वोच्च है और शूद्र इस संस्तरण में नीचे की स्थिति में है। मजूमदार के अनुसार संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के द्वारा शूद्र को ब्राह्मणों के संस्तरण में पहुँचाना चाहिए, किंतु ऐसा नहीं होता है, बल्कि शूद्रों में ही एक अलग जाति बन जाती है, जैसे- रैदास। रैदास ब्राह्मण न होकर शूद्रों में ही एक शाखा के रूप में होंगे। इसलिए संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता है।

असंस्कृतिकरण
(Dissanskritization)

डॉ. डी.एन. मजूमदार का कहना है कि यदि हम भारतीय सामाजिक संस्तरण की विवेचना करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ संस्कृतिकरण से अधिक असंस्कृतिकरण की प्रक्रिया दिखाई देती है। इसे संस्कृतिकरण की विरोधी प्रक्रिया कहा जा सकता है। उनका तर्क है कि यदि निम्न जातियों द्वारा उच्च जातियों के विचारों और आदर्शों को ग्रहण करने की प्रक्रिया को संस्कृतिकरण कहा जाता है, तो उच्च जातियों द्वारा अपने विचारों और आदर्शों के त्याग की प्रक्रिया को क्या कहा जायेगा। उनका कहना है कि भारतीय सामाजिक संस्तरण में ब्राह्मणों का काम अध्ययन, अध्यापन, दान, यज्ञ आदि था, किन्तु क्या ब्राह्मण इन कार्यों का आज भी संचालन कर रहे हैं। अनेक ब्राह्मण वाणिज्य, व्यापार, सेवा और प्रशासनिक कार्यों का संचालन कर रहे हैं। इसके साथ ही वे मांस-मदिरा का सेवन करते हैं तथा अनेक ऐसे कार्यों का सम्पादन कर रहे हैं, जो उनके पद और प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हैं। डॉ. डी.एन. मजूमदार का कहना है कि भारत में संस्कृतिकरण न होकर असंस्कृतिकरण हो रहा है। निम्न जातियाँ उच्च जातियों के आचारों-विचारों को तो कम ग्रहण करती हैं, अपितु उच्च जाति के व्यक्ति ही अपने आचार-विचार और आदर्शों को छोड़ते जाते हैं।

प्रभु जाति

प्रोफेसर श्रीनिवास ने लिखा है कि "भारत विभिन्न भागों में देहाती जीवन की एक विशेषता है- प्रभुसत्ता सम्पन्न, भूस्वामी जातियों की उपस्थिति।" प्रभुता का क्या आधार होता है? ऐसी कौन-सी विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर किसी भी जाति को "प्रभु जाति" कहा जाये। प्रो. श्रीनिवास ने भारतीय देहातों में फैली इन प्रभु जातियों की निम्न विशेषताओं का उल्लेख किया है -

(1) उपलब्ध स्थानीय कृषि योग्य भूमि में से बड़े अंश पर स्वामित्व हो।

(2) उसकी सदस्य संख्या यथेष्ट हो।

(3) स्थानीय सोपान परम्परा में उस जाति को ऊँचा स्थान प्राप्त हो।

NOTES

जब किसी भी जाति में प्रभुता के ये गुण मौजूद होते हैं, तो इस जाति को प्रभु जाति के नाम से जाना जाता है।

प्रभुता (Domination) के आधारों को निम्न दो भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) **परम्परात्मक प्रभुता** (Traditional Domination)- परम्परात्मक प्रभुता वह है, जिसमें परम्पराएँ प्रभुता का आधार प्रस्तुत करती हैं। ये परम्पराओं से चली आती हैं।

(b) **प्रजातन्त्रात्मक प्रभुता** (Democratic Domination)-प्रजातंत्रात्मक प्रभुता का आधार भारतीय स्वतंत्रता है। स्वतंत्र भारत की प्रभु जातियाँ वे हैं, जिनके हाथ में राजनैतिक सत्ता होती है।

भारतवर्ष के प्रत्येक भाग में प्रभु जातियाँ पाई जाती हैं। उत्तर भारत के गाँवों में इन प्रभु जातियों को "अजगर" कहकर सम्बोधित किया जाता है। इसके अन्तर्गत उत्तर भारत की निम्न चार जातियाँ पाई जाती हैं -

(i) अ = अहीर। (ii) ज = जाट। (iii) ग = गूजर। (iv) र = राजपूत।

इसी प्रकार के विभिन्न प्रान्तों में इन प्रभु जातियों को जिस नाम से पुकारा जाता है, उसका विवरण अग्रलिखित है -

(a) पश्चिम बंगाल = सद्गोय।

(b) गुजरात = पाटीदार + राजपूत।

(c) महाराष्ट्र = मराठा।

(d) आन्ध्र = कम्प + रेड्डी।

(e) कर्नाटक = औक्कलिजग + लिंगायत।

(f) तमिलनाडु = बेल्लास + गाउडर + पड़पाची + कल्लर।

(g) केरल = नायर।

प्रभुत्व को विघटित करने वाले कारक
(Factors Disorganizing Dominance)

भारतीय देहातों में जो प्रभुता पाई जाती है, वह आज परिवर्तन की प्रक्रिया में है। यह प्रभुता आंज स्थायी नहीं रह गई है। अनेक ऐसे कारण हैं जो प्रभुता को समाप्त कर रहे हैं। संक्षेप में प्रभु जातियों की प्रभुता को समाप्त करने के जो प्रमुख कारक हैं, उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) **भारतीय स्वतंत्रता**- भारतीय देहाती क्षेत्रों में प्रभु जातियों की जो प्रभुता थी, उसका प्रमुख कारण भारतीय परतंत्रता ही है। स्वतंत्रता के बाद देश के सभी व्यक्तियों को बिना भेदभाव के जो अधिकार और समानता प्रदान की गई है, इनसे प्रभु जातियों की प्रभुता में परिवर्तन आया है।

(2) **प्रशासन में नौकरी**- प्रभु जातियों की प्रभुता को समाप्त करने का जो दूसरा कारक है, वह भारतवर्ष में प्रशासकीय सेवाओं में सभी जाति, वर्ग और सम्प्रदाय के व्यक्तियों को स्थान प्रदान करना है।

(3) **आय के शहरी साधन**- जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि प्रभुता का सिद्धांत भारतीय देहाती क्षेत्रों में लागू होता है। ग्रामों में प्रभुता इसलिए बनी रहती है कि आमदनी के सभी साधनों पर कुछ विशिष्ट व्यक्तियों का अधिकार होता है और अधिकांश व्यक्ति निर्धन रहते हैं। शहरों में आमदनी के साधनों पर किसी का एकाधिकार नहीं होता है। इसका कारण यह है कि यहाँ के व्यवसाय परम्परात्मक नहीं होते हैं। शहरों में जिसके पास अधिक पैसा होता है, प्रभुता भी उसी के पास रहती है।

(4) **शिक्षा**- स्वतंत्रता के बाद भारत सरकार ने शिक्षा की नई नीति अपनाई है, जिसके अनुसार सभी नागरिकों को शिक्षा प्राप्त करने के समान अधिकार होते हैं।

इसके अतिरिक्त अनेक कारण ऐसे हैं, जो प्रभुता को समाप्त कर रहे हैं, इनके कुछ प्रमुख कारण निम्न हैं-

(5) पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का भी देश पर तीव्र गति से प्रभाव पड़ रहा है। इस प्रभाव के कारण भी प्रभुता समाप्त होती जा रही है।

(6) राजनैतिक जागरूकता का स्थान भी प्रभ जातियों की प्रभुता को समाप्त करने में कम नहीं है।

(7) आवागमन और संचार के साधनों के कारण सभी व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं। इस सम्पर्क के कारण भी प्रभु जातियों की प्रभुता समाप्त होती जा रही है।

(8) **नये पदों** (Status) और **भूमिकाओं** (Roles) के कारण सामाजिक स्तरीकरण में परिवर्तन होता है। इस स्तरीकरण का परिणाम यह होता है कि प्रभु जातियों की प्रभुता समाप्त हो जाती है।

NOTES

संस्कृतिकरण के साधन
(Means of Sankritization)

भारत में संस्कृतिकरण के कौन से साधन हैं? वे कौन से तत्व हैं जो भारत में संस्कृतिकरण के लिए परिस्थितियाँ पैदा करते हों? संक्षेप में संस्कृतिकरण के साधनों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है-

(1) **सामाजिक परिवर्तन**- सामाजिक परिवर्तन संस्कृतिकरण का मौलिक तत्व है। परिवर्तन के अभाव में संस्कृतिकरण की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। परिवर्तन के कारण सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन होता है, समाज के मूल्य और मान्यताएँ बदलती हैं। मूल्य और मान्यताओं में परिवर्तन होने से संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को गति मिलती है।

(2) **सामाजिक सम्पर्क**- सामाजिक सम्पर्क संस्कृतिकरण का दूसरा महत्वपूर्ण साधन है। आधुनिक युग में सामाजिक सम्पर्क के साधनों को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है -

(i) विज्ञान और प्रौद्योगिकी का प्रसार।

(ii) आवागमन और संदेशवाहन के साधनों का विकास।

(iii) सहशिक्षा और बढ़ता हुआ ज्ञान।

इन माध्यमों से मनुष्यों के बीच सम्पर्क की मात्रा में वृद्धि हुई है। इस सम्पर्क ने भारत में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान की है।

(3) **प्रसार**- प्रसार को भी संस्कृतिकरण का साधन माना जाता है। प्रसार वह प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से संस्कृति फैलती है। संस्कृति में प्रसार की प्रक्रिया अत्यंत ही मन्द गति से प्रभावित होती है। संस्कृति के दो रूप होते हैं- सांस्कृतिक लक्षण और सांस्कृतिक संकुल। सांस्कृतिक लक्षण संस्कृति के एक अंग को कहते हैं। इन सभी अंगों को मिलाकर सम्पूर्ण संस्कृति का निर्माण होता है। जब किसी संस्कृति का एक भाग दूसरी संस्कृति से प्रभावित होता है तो इसे प्रसार कहते हैं। जब संस्कृति सम्पूर्ण रूप से दूसरी संस्कृति से प्रभावित होता है तो इस प्रक्रिया को संस्कृतिकरण के नाम से जाना जाता है। संस्कृति का एक भाग पहले प्रभावित होता है और धीरे-धीरे सम्पूर्ण संस्कृति प्रभावित हो जाती है।

(4) **धार्मिक स्थान**- भारत में धार्मिक स्थान भी संस्कृतिकरण के साधन हैं। भारत के धार्मिक स्थानों में जगन्नाथपुरी और बद्रीनाथ का नाम महत्वपूर्ण है। इन धार्मिक स्थानों में व्यक्ति-व्यक्ति का भेद, ऊँच-नीच का भेद नहीं रहता है। यहाँ सभी जाति और वर्ग के व्यक्तियों को समान महत्व दिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि संस्कृतिकरण की प्रक्रिया गतिशील हो जाती है।

(5) **आर्थिक कारक**- संस्कृतिकरण के साधनों में आर्थिक कारकों का भी कम महत्व नहीं है। प्रारम्भिक अवस्था में कृषि जीवन का मूल व्यवसाय था। मेहनत करना नीचता का प्रतीक ही नहीं, बल्कि कम हैसियत का प्रतीक माना जाता था। जीवन में गतिशीलता तथा अन्य परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण ग्रामीण व्यक्ति नगरों की ओर स्थानांतरित होने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि जाति के बंधन समाप्त हुए और नए वर्गों का विकास हुआ।

(6) **राजनैतिक कारक**- संस्कृतिकरण के साधनों में राजनैतिक कारकों का भी अत्यधिक महत्व है। स्वतंत्रता से पहले भारत में राजनैतिक गतिशीलता और जागरूकता इतनी नहीं थी, जितनी की आज है। 18वीं शताब्दी में राजनैतिक व्यवस्था के निम्न चार स्तर थे-

(a) सामाजिक स्तर = मुगल बादशाह।

(b) माध्यमिक स्तर = नवाब आदि।

(c) प्रादेशिक स्तर = जागीरदार।

(d) स्थानीय स्तर = आमिल।

NOTES

स्वतंत्र भारत से पहले प्रशासकों को इस आशय के अधिकार थे कि वे जातियों के स्तर को अपनी इच्छानुसार ऊँचे या नीचे गिरायें। स्वतंत्रता के बाद राजनैतिक जीवन में अत्यंत ही गतिशीलता आ गई है। इससे भी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को गति मिली है।

संस्कृतिकरण के आदर्श
(Ideals of Sanskritization)

संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के कारण सामाजिक संरचना में ऊँचे पद पर दावा किया जाता है। उस प्रकार संस्कृतिकरण के कारण सामाजिक गतिशीलता को प्रोत्साहन मिलता है। यह सामाजिक गतिशीलता ऊर्ध्वोन्मुख होती है। इस प्रकार संस्कृतिकरण के कारण समाज में जो परिवर्तन होते हैं, वे पदमूलक होते हैं, संरचना मूलक नहीं। इसका तात्पर्य यह है कि संस्कृतिकरण के कारण समाज में व्यक्तियों के पद मात्र में परिवर्तन होता है, संरचना में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता है। जनजातियों में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया को देखा जा सकता है। संस्कृतिकरण के कारण ही जनजाति अपने को हिन्दू होने का दावा करते हैं। अपनी पुस्तक में प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने ब्राह्मण को आदर्श माना है। प्रो. श्रीनिवास ने ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य जातियों को भी आदर्श माना है। इस प्रकार संस्कृतिकरण की प्रक्रिया के लिए आदर्श का निर्धारण महत्वपूर्ण है। आदर्श के अभाव में संस्कृतिकरण कि गतिशीलता की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। आदर्श के निर्धारण के बाद ही समाज के जब दूसरे व्यक्ति उस आदर्श को प्राप्त करने के लिए जब अपने परम्परात्मक आचार-विचारों का त्याग करते हैं तो इस प्रक्रिया को ही संस्कृतिकरण के नाम से जाना जाता है।

संस्कृतिकरण के प्रत्यय की आलोचना
(Criticism of the Concept of Sanskritization)

प्रो. एम.एन. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण की अवधारणा को प्रस्तुत किया है। इस अवधारणा में जो प्रमुख दोष है, उनका विवरण इस प्रकार है -

(1) संस्कृतिकरण की अवधारणा सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को अवश्य व्यक्त करती है, किंतु यह अवधारणा सार्वभौमिक नहीं है।

(2) प्रो. श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण को एक उपयोगी प्रत्यय अवश्य माना जाता है, किंतु वे इसकी अवधारणा को स्पष्ट नहीं कर सके हैं।

(3) प्रो. श्रीनिवास ने स्वयं लिखा है कि संस्कृतिकरण नि:संदेह एक भौण्डा (Awkward) शब्द है, परन्तु कुछ कारणों से ब्राह्मणीकरण से बेहतर है।

(4) प्रो. श्रीनिवास ने स्वीकार किया है कि भारतीय समाज के विश्लेषण के एक मात्र यंत्र के रूप में संस्कृतिकरण की उपयोगिता इस प्रत्यय की जटिलता और ढीलेपन के कारण बहुत ही सीमित हो गई है।

(5) प्रो. श्रीनिवास का विचार है कि संस्कृतिकरण को प्रत्ययों का एक ढेर मानना अकेले प्रत्यय मानने से अधिक उपयोगी होगा।

(6) प्रो. श्रीनिवास ने लिखा है कि यह एक सामाजिक और सांस्कृतिक प्रक्रिया के लिए केवल एक नाममात्र भार है।

ग्रामीण गुटवादिता
(Rural Factionalism- Meaning)

आजादी के बाद ग्रामीण परिदृश्य बदल रहा है। इस बदलाव का कारण भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त नागरिकों को स्वतंत्रता, समानता, मातृत्व और न्याय की गारन्टी का प्रदान किया जाना है। इसके साथ ही नागरिकों को दिए गए भाषा, धर्म, जाति और विचार की स्वतंत्रता है। आजादी के पहले गाँवों में गुटों की स्थिति कमजोर थी। गाँव के प्रभावशाली व्यक्ति ही गुटों के मुखिया होते थे और गाँव के अधिकांश जन उन्हीं का अनुकरण करते थे। गाँवों में धर्म, विचार, कार्यों की भिन्नता के बावजूद भी गुटों का कोई खास अस्तित्व नहीं था। इसका कारण यह था कि गाँव आत्मनिर्भर थे तथा सभी ग्रामीण अपनी आवश्यकताओं के लिए एक दूसरे पर आश्रित रहते थे। आश्रितता ही वह आधार था, जो ग्रामीण समाज के व्यक्तियों को गुटों के निर्माण में बाधा उपस्थित करता था। इसके साथ ही ग्रामीण जनता के निश्चित उद्देश्य होते थे। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए साधन और साध्य (Meand

and Ends) का विचार किया जाता था। समाज की एक निश्चित संरचना (Structure) होती थी। इस संरचना में व्यक्तियों के पद (status) और कार्य (Role) पर्याप्त स्पष्ट थे। ऐसी स्थिति में व्यक्ति अपने पदों के अनुसार ही अपने कार्य का निर्वहन करते थे। इसके अतिरिक्त व्यक्ति धर्म (Religion) और परिवार (Family) से बंधा हुआ होता था। संक्षेप में, ग्रामीण समाज में स्थायित्व था तथा ऐसी स्थिति में ग्रामीण जीवन में गुटों की न कोई आवश्यकता थी और न ही उनका महत्व।

NOTES

किन्तु आज परिस्थितियों में काफी अन्तर आया है। गांवों की एकजुटता समाप्त हो गई है। एकजुटता के समाप्त हो जाने के कारण गांवों में अनेक हित समूहों (Interest Groups) और दबाव समूहों (Pressure Groups) का विकास होता जा रहा है। ये हित समूह और दबाव समूह जाति (Caste), धर्म (Religion) सम्प्रदाय (Communal), राजनैतिक दलों (Political Parties) आदि से सम्बन्धित हो रहे हैं। इन हित समूहों में भिन्नता के कारण अनेक गुटों (Factions) का निर्माण होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त आवागमन और संदेश वाहनों का विकास (Development of Transport and Communication), शैक्षणिक जागरुकता (Educational Consciousness), कृषि से अलगाव (Alienation from Agriculture) तथा आय के विविध स्रोतों (Different Sources of income) बाहरी दुनिया से सम्पर्क (Contact from outer world) आदि अनेक कारण हैं, जो गाँवों में गुटों का निर्माण करते हैं। नेतृत्व के बदलते प्रतिमानों (Changing Pattern of leadership) तथा प्रजातांत्रिक स्रोत्र (Democratic Ideas) के विकास के कारण में भी गाँवों की एकजुटता का आघात लगा है और यही गाँवों में गुटों के निर्माण की प्रक्रिया का आधार है।

गुटवादिता की अवधारणा
(The Concept of Factionalism)

गुटबन्दी या गुटवादिता दो शब्दों से मिलकर बना है- गुट (Faction) और वादिता (Ism) गुट बाहरी संरचना है व्यक्तियों का समूह है। वादिता (Ism) एक प्रकार की भावना है, विचार है। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी एक विचार अथवा एक भावना से प्रेरित होकर एक समूह का निर्माण कर लेते हैं, तो इसे ही गुटवादिता कहा जाता है। उदाहरण के लिए जाति और जातिवाद। जाति एक सामाजिक संस्था है। इसकी एक निश्चित संरचना और कार्य है किन्तु जब एक जाति के व्यक्ति एक भावना से प्रेरित होकर, एक विचार से प्रेरित होकर एक समूह, एक गुट या एक मंच बना लेते हैं, तो इसे जातिवाद कहा जाता है। विभिन्न विद्वानों ने गुटवादिता को जो परिभाषाएँ दी हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. **जे.टी.प्लैट्स** :- इन्होंने 'हिन्दुस्तानी शब्दकोष' ने गुट या धड़ क्या है, इसके अर्थ को बतलाया है। उनके अनुसार 'उत्तरी भारत में इसका सामान्य अर्थ दल से होता है।'
2. **लुइस** :- लुइस ने रामपुर गाँव का अध्ययन किया था। उसके अनुसार धड़ राजनैतिक समूह नहीं है। उनके अनुसार हिन्दी के धड़ शब्द का समानार्थी अंग्रेजी का Fraction शब्द हो सकता है। लुइस का विचार है कि फ्रैक्सन से परस्पर विरोधी समूह का बोध होता है, परन्तु धड़ के परस्पर विरोध या संघर्ष का स्थान नहीं होता है।
3. **हरिबन्त सिंह ढिल्लन** :- हरिबन्त सिंह ढिल्लन ने दक्षित भारत के हरिपुर गाँव का अध्ययन किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक Leadership and Groups in South Indian Village में लिखा है कि "जब कि अन्य समूहों के प्रति फ्रैक्सन का एक सामान्य लक्षण है और झगड़ों तथा विरोधों के परिणामस्वरूप नए दल बनते जा रहे हैं, परन्तु फ्रैक्सनों में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने में यह एकमात्र अथवा सबसे बड़ी शक्ति नहीं है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि फ्रैक्सन या गुट वह सामाजिक समूह है, जो विशिष्टि उद्देश्यों अथवा स्वार्थों की पूर्ति के लिए आपस में एक भावना से जुड़े हुए होते हैं।

गुटवादिता की विशेषताएँ
(Characteristics of Factionalism)

ऊपर जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनके अनुसार फ्रैक्सन या गुट की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. गुटवादिता व्यक्तियों का एक समूह है।
2. व्यक्तियों का यह समूह एक 'भावना' (Feeling) से आपस में जुड़ा हुआ होता है।

NOTES

3. गुट के व्यक्तियों में जो भावना होती है, उसका एक निश्चित आधार होता है। यह आधार चाहे स्वार्थ प्रेरित हो, क्षेत्रीय हो अथवा राष्ट्रीय भी हो सकता है।

4. गुटवादिता की एक निश्चित संरचना (Structure) होती है। यह संरचना गुट के व्यक्तियों में एक सोपान (Hierarchy) परम्परा का निर्धारण करती है।

5. गुटवादिता की एक कार्य संस्कृति (Work Culture) होती है, जिसके आधार पर गुट अपनी भावना या स्वार्थों को मूर्त रूप प्रदान करता है।

6. गुटवादिता का क्षेत्र सीमित और विस्तृत दोनों प्रकार का हो सकता है।

7. एक ही जाति, धर्म और विचारधारा में भी अनेक गुट हो सकते हैं।

8. अनेक जाति, धर्म और विचारधारा के व्यक्ति भी एक ही गुट के सदस्य हो सकते हैं।

9. गुट के लिए यह आवश्यक नहीं है कि सभी व्यक्तियों में वैयक्तिक सम्बन्ध हो। अवैयक्तिक सम्बन्धों के आधार पर भी गुट की सदस्यता प्राप्त की जा सकती है।

10. सामान्यतया गुट की सदस्य संख्या सीमित होती है। किन्तु यह आवश्यक नहीं है। इसकी सदस्य संख्या भी अधिक हो सकती है।

गुटबन्दी या गुटवादिता की आवश्यक दशाएँ
(Necessary Conditions of Factionalism)

हर एक गुट या दल की कुछ आवश्यक दशाएँ होती हैं। ये आवश्यक दशाएँ गुट के निर्माण में महती भूमिका का निर्धारण करती हैं। गुटवादिता की जो प्रमुख दशाएँ हैं, वे इस प्रकार हैं-

1. गुटवादिता की पहली आवश्यक दशा यह है कि गुट एक इकाई के रूप में संगठित हो। संगठन के अभाव में गुट की कल्पना नहीं की जा सकती है।

2. गुट को आत्मनिर्भर होना चाहिए। यदि गुट आत्मनिर्भर न होकर दूसरे पर आश्रित होगा तब भी इसके निर्माण में कठिनाई आएगी।

3. गुट का आर्थिक आधर मजबूत होना चाहिए। अर्थात गुट के लिए आर्थिक स्रोत अनिवार्य है।

इस प्रकार संगठन, आत्मनिर्भरता और आर्थिक आधार वे बिन्दु हैं, जो किसी भी गुट के निर्माण के लिए आवश्यक हैं।

गुटबन्दी के कारण
(Causes of Factionalism)

दलबन्दी या गुटबन्दी क्यों पाई जाती है? भारतीय सामाजिक जीवन में दलों का अस्तित्व क्यों है? दलबन्दी या गुट समूह के अनन्त कारण हैं, क्योंकि इनका सम्बन्ध स्थानीय परिस्थितियों और दशाओं से होता है। भारत में दलबन्दी या गुट समूहों के जो प्रमुख कारण हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं -

(1) **राजनैतिक कारण** - गुटों के निर्माण में राजनैतिक कारणों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। चुनाव के समय विभिन्न राजनैतिक पार्टियाँ जनता में दलबन्दी के विषय का बीज बो देती हैं, जो कालान्तर में पनप कर भयंकर रूप धारण कर लेता है।

(2) **धार्मिक भावनाएँ** - भारत में विभिन्न धार्मिक विश्वास और मत-मतान्तर हैं। इन धार्मिक मत-मतान्तरों को मानने वाले व्यक्ति एक-दूसरे को अपने से अलग मानते हैं। इस अलगाव की प्रवृत्ति के कारण भी दलबन्दी का विकास होता है।

(3) **जातीय झगड़े** - भारत जातियों का अजायबघर है। यहाँ अनेक जातियाँ और उपजातियाँ पाई जाती हैं। वर्तमान भारत में जातिवाद की भावना विकसित हो रही है। इस जातिवाद, जातीय तनाव और संघर्षों के कारण भी दलबन्दी का विकास होता है।

(4) **यौन अपराध** - यौन अपराध भी दलबन्दी के कारण होते हैं। खासकर ऐसे यौन अपराध जो विभिन्न जातियों, वर्गों, धर्मों के बीच में होते हैं।

गुटबन्दी के अन्य कारण इस प्रकार है -

(5) पुत्र को गोद लेने से उत्पन्न झगड़े,

(6) सम्पत्ति सम्बन्धी झगड़े,

(7) भूमि सम्बन्धी झगड़े,

(8) मकान की भूमि से सम्बन्धित झगड़े,

(9) सिंचाई के अधिकार सम्बन्धी झगड़े,

(10) बिजली सम्बन्धी झगड़े।

गुटबन्दी के आधार
(Basis of Factionalism)

गुटबन्दी के निम्नलिखित आधार हैं -

(1) **जाति के आधार पर** - गाँवों में प्रायः जाति का बोलबाला रहता है और यहाँ जाति के अलग-अलग गुट बन जाते हैं और जिस जाति के लोगों की संख्या अधिक होती है, वे दूसरी जातियों पर अपना अधिकार जमा लेती हैं।

(2) **वैवाहिक सम्बन्धों के आधार पर** - जिन परिवारों में परस्पर विवाह सम्बन्ध हो जाते हैं वे मिलकर अपना एक गुट बना लेते हैं और अपनी शक्ति बढ़ा लेते हैं और अपनी शक्ति के बल पर रौब दिखाते हैं।

(3) **परम्परागत शत्रुता के आधार पर** - कई बार कुछ समूहों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी शत्रुता चली आती है या किसी शत्रुता का बदला लेना होता है तो परस्पर गुट बन जाता है और एक-दूसरे से शत्रुता, ईर्ष्या-द्वेष आदि रखते हैं।

(4) **परिवार के आधार पर** - कभी कोई परिवार विद्वान् होता है और शक्तिशाली होता है तो अन्य कुछ परिवार भी मिल जाते हैं और इनका अपना एक गुट बन जाता है।

(5) **वंश के आधार पर** - एक ही वंश के लोग आस-पास रहते हैं या पास ही किसी गाँव में रहते हैं तो वे अपना गुट बनाकर अपने वंश को शक्तिशाली बना लेते हैं।

(6) **गाँवों के आधार पर** - कभी-कभी कई गाँवों के अलग-अलग गुट बन जाते हैं और वे दूसरे गाँवों से ईर्ष्या-द्वेष रखते हैं।

(7) **उत्तराधिकार के आधार पर** - जब उत्तराधिकार सम्बन्धी बात आती है तो प्रायः दो गुट बन जाते हैं, एक पक्ष में और दूसरा विपक्ष में।

(8) **भूस्वामित्व के आधार पर** - कभी-कभी इस सम्बन्ध में झगड़े उत्पन्न होने लगते हैं कि किस भूमि का स्वामी कौन है? तो दो मत हो जाते हैं और गुट बन जाते हैं।

(9) **सिंचाई सम्बन्धी झगड़े** - सिंचाई के हेतु पानी के लिए प्रायः दो गुट बन जाते हैं। दोनों अपने खेत में सिंचाई पहले करना चाहते हैं और परस्पर झगड़े हो जाते हैं।

(10) **गोद लेने के आधार पर** - जब किसी परिवार में किसी बालक को गोद लेने की बात आती है तो एक गोद लेने के पक्ष में तथा दूसरे गोद न लेने के पक्ष में हो जाता है। इस प्रकार के दो गुट बन जाते हैं।

(11) **यौन सम्बन्धी झगड़े** - जब कोई व्यक्ति किसी लड़की को भगा ले जाता है या अन्य कोई यौन सम्बन्धी अपराध कर देता है, तो गाँव में इसके सम्बन्ध में दो मत वाले लोग उत्पन्न हो जाते हैं, एक उसका पक्ष लेता है और दूसरा विपक्ष का।

(12) **नैतिकता का आधार** - इस सम्बन्ध में दो गुट बन जाते हैं एक वयोवृद्ध का, दूसरा नवयुवकों का। वयोवृद्ध नैतिकता के पक्ष में रहते हैं और नवयुवकों का प्रायः विपक्ष में।

(13) **चुनाव का आधार** - चुनाव के आधार पर भी दो या अधिक गुट बन जाते हैं जो एक-दूसरे के विपक्ष पर वार करते हैं।

(14) **हत्याएँ** - जब गाँव में किसी व्यक्ति की हत्या कर दी जाती है तो इस सम्बन्ध में गुट बन जाता है। एक हत्यारे के पक्ष में दूसरा विपक्ष में।

NOTES

(15) **अन्य गुट** - अन्य अनेक समस्याओं की अवधारणा पर गुट बन जाते हैं जो परस्पर ईर्ष्या-द्वेष रखते हैं।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि गाँवों में गुटों की बहुलता पाई जाती है और प्रायः इनका आधार यही होता है।

गुटबन्दी के लाभ (Advantages of Factionalism) - जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि दलबन्दी का निर्माण निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए होता है। इस दृष्टि से दलबन्दी के निम्नलिखित लाभ हैं-

(1) दल की आवश्यकताओं की पूर्ति।
(2) हम की भावना का विकास।
(3) व्यक्तिवादिता की सन्तुष्टि।
(4) हितों और उद्देश्यों की पूर्ति।
(5) अहम् की सन्तुष्टि।
(6) कुशलता में वृद्धि।

गुटबन्दी के दोष (Demerits of Factionalism) - दलबन्दी से लाभ की अपेक्षा हानियाँ अधिक हैं। इस दृष्टि से दलबन्दी के प्रमुख दोष निम्न हैं -

(1) परस्पर द्वेष और ईर्ष्या की भावना का विकास।
(2) प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष की भावना का विकास।
(3) हम की भावना का विकास।
(4) सामूहिक स्वार्थपरता।

अन्तर्गुट सम्बन्ध
(Interfaction Relations)

धार्मिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा अन्य परिस्थितियों के कारण अनेक प्रकार के गुटों या दलों का निर्माण हो जाता है। जब एक दल दूसरे दल के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, तो इस सम्बन्ध को अन्तर्गुट सम्बन्ध के नाम से जाना जाता है। अन्तर्गुट सम्बन्ध उन गुटों के बीच होता है, जिनके सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण होते हैं। इन मित्र गुटों के बीच धार्मिक, आर्थिक तथा राजनैतिक आधारों पर सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। वे एक दूसरे के उत्सवों और निमन्त्रणों में भाग लेते हैं। मित्र गुटों के बीच जो सम्बन्ध पाए जाते हैं, सामान्य असामान्य अवस्था में वे पुरुषों तक ही सीमित होते हैं। स्त्रियाँ इनमें भाग नहीं लेती हैं। पुरुषों में भी सामान्यतया परिवार के सभी लोग भाग नहीं लेते हैं। शत्रु गुटों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं पाए जाते हैं, क्योंकि उनका आधार तनाव और संघर्षपूर्ण होता है।

अन्तर्गुट सम्बन्ध का अर्थ - एक ही गुट के सदस्यों में पाए जाने वाले आन्तरिक सम्बन्ध (अन्तर्गुट सम्बन्धों) में निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं -

(i) सम्बन्धों के प्रत्यक्ष स्वरूप,
(ii) घनिष्ठ सम्बन्ध,
(iii) सम्बन्धों की पारिवारिक प्रकृति,
(iv) स्त्रियों द्वारा एक दूसरे के उत्सव में सहभागिता,
(v) सुख और दुःख में बराबर सहभागिता।

क्या भारतीय ग्राम समुदाय, गुट-समाज है?
(Is Indian Rural Community, Faction Society?)

सामान्यतया इस आशय के प्रश्न किए जाते हैं कि क्या भारतीय ग्रामीण समुदाय गुट समाज है? क्या भारतीय ग्रामीण समुदाय में गुट के लक्षण पाए जाते हैं? भारतीय ग्रामीण जीवन का अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि भारतीय ग्रामीण जीवन में अनेक गुट या दल पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि भारतीय ग्रामीण जीवन में आर्थिक, धार्मिक तथा राजनैतिक भिन्नताएँ हैं। इन भिन्नताओं के कारण गाँवों में अनेक स्वार्थ समूहों का निर्माण होता है। अनेक स्वार्थ समूहों के हो जाने के कारण इनमें निरन्तर संघर्ष होते रहते हैं। इन संघर्षों के कारण भारतीय ग्रामीण समाज अनेक गुटों में विभाजित हो जाते हैं। **आस्कर लेविस** ने उत्तरी भारत के ग्रामीण अंचलों में गुटों का अध्ययन किया था। **लेविस** के अनुसार प्रत्येक गाँव अनेक गुटों में विभक्त है।

यह विभाजन यहाँ तक कि एक ही जाति में अनेक गुट पाए जाते हैं। **लेविस** ने गुटों में समूहों का जो वर्णन किया है, वह इस प्रकार है -

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन में संस्कृतिकरण की प्रक्रिया पर एक निबंध लिखिए।
   Write an essay on the process of Sanskritization in social change in modern India.
2. संस्कृतिकरण से आप क्या समझते हैं? भारतीय जाति व्यवस्था में संस्कृतिकरण के सामाजिक परिणामों की विवेचना कीजिये।
   What is Sanskritization? Discuss the social consequences of Sanskritization in Indian caste system.
3. संस्कृतिकरण की व्याख्या कीजिए। संस्कृतिकरण के प्रमुख साधनों की विवेचना कीजिए।
   Define Sanskritization. Discuss the means of Sanskritization.
4. संस्कृतिकरण के आदर्श को समझाइये।
   Explain Ideals of Sanskritization.
5. संस्कृतिकरण के प्रत्यय की आलोचनात्मक विवेचना कीजिये।
   Discuss critically the concept of Sanskritization.
6. प्रभुजाति की अवधारणा को समझाइए।
   Explain the concept of Dominant caste.
7. प्रभुजाति पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on Dominant Caste.
8. ग्रामीण गुटवादिता पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on Rural Factionalism.
9. गुटवादिता की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए।
   Define Factionalism. Write its Characteristics.
10. ग्रामीण भारत में गुटवादिता के कारणों की विवेचना कीजिए।
    Discuss the Causes of Rural Factionalism in India.
11. गुटवादिता क्या है? इसके गुण-दोष लिखिए।
    What is Factionalism. Write its merits and demerits.
12. क्या भारतीय ग्रामीण समाज गुट समुदाय है? विवेचना कीजिए।
    Is Indian rural society a Faction Community Describe.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
Write a short note on the following–

1. गुटवादिता।
   Factionalism.
2. गुटवादिता की विशेषताएँ।
   Characteristics of Factionalism.
3. अन्तर्गुट सम्बन्ध।
   Inter-faction relations.
4. भारतीय गाँवों में गुट।
   Factions in Indian Village.

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

●●●

NOTES

9

पंचायती राज संस्था-लक्ष्य, कार्य एवं संगठन
(PANCHAYATI RAJ INSTITUTION- AIMS, FUNCTIONS AND ORGANIZATION)

पंचायती राज
(Panchayati Raj)

भारत गाँवों का देश है। गाँवों में सत्ता के विकेन्द्रीकरण का व्यावहारिक चित्र ग्राम पंचायतों के द्वारा प्राप्त होता है। भारत में पंचायतों का इतिहास अत्यन्त ही प्राचीन है। वैदिक काल में भारत में गाँवों को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। व्यक्ति को अपने दैनिक जीवन में पूर्ण स्वतंत्रता मिली हुई थी। बौद्ध काल में भारत में छोटे-छोटे गणराज्य (Republics) थे। मुस्लिम काल में भी भारत में पंचायतों का महत्व था और वे कर वसूलने का कार्य करती थीं। ब्रिटिश काल में भारतीय पंचायत व्यवस्था को क्षति पहुँची, किन्तु 1901 में विकेन्द्रीकरण कमीशन ने पंचायतों को पुनर्जीवित करने की अनुशंसा की।

भारत में पंचायती राज की स्थापना स्वतंत्रता के बाद हुई। **बलवन्त राय मेहता कमेटी** ने भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सिफारिश की थी। 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद् ने इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया था।

भारत में 76 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। भारतीय ग्रामीण समुदाय की संरचना के तीन प्रमुख आधार हैं -

(i) जाति प्रथा, (ii) संयुक्त परिवार, और (iii) ग्राम पंचायत।

भारत में प्रजातंत्र के स्तम्भ के रूप में ग्राम पंचायतें अत्यन्त ही प्राचीन काल से चली आ रही हैं। यही कारण है कि भारतीय ग्रामीण जीवन में पंचायतों की महत्वपूर्ण भूमिका है। **महात्मा गाँधी** ग्राम पंचायतों को रामराज्य का आदर्श मानते थे। ग्राम पंचायतों के बिना ग्रामीण जीवन का पुनर्निर्माण का कार्य कठिन है। इसलिए भारतीय सामाजिक संगठन में ग्राम पंचायतों को अलग कर देना जीवित शरीर से प्राण को निकाल देने के समान ही होगा। अत: ग्रामीण भारत के लिए पंचायती राज ही एकमात्र उपयुक्त योजना है। पंचायतें हमारे राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ हैं।

ग्राम पंचायतों की शुरुआत का श्रेय **पं. नेहरू** को जाता है। **पं. नेहरू** का कहना था कि "गाँवों के लोगों को अधिकार सौंपना चाहिए। उनको काम करने दो चाहे वे हजारों गलतियाँ करें। इससे घबराने की जरूरत नहीं। पंचायतों को अधिकार दो।"

ग्राम पंचायत
(Village Panchayat)

भारत में पंच को परमेश्वर की संज्ञा दी गई है। इन पंचों के निर्णय को समाज में सर्वोच्च प्राथमिकता दी जाती थी। पंचायतें प्राचीन भारत की आधारशिलाएँ थीं। भारतवर्ष में पंचायतों के इतिहास को गाँवों के इतिहास से अलग नहीं समझा जा सकता है। गाँवों में न्याय व्यवस्था और सुरक्षा का साधन यही पंचायतें थीं। रामायण, महाभारत, बौद्धकाल और यहाँ तक कि उत्तर वैदिक काल में भी भारतीय ग्रामों में पंचायतों का जाल बिछा था।

ब्रिटिश काल में पंचायतें थीं, किन्तु इसका महत्व कम होता जा रहा था। इसके साथ ही पुलिस की व्यवस्था, दीवानी और फौजदारी न्यायालयों की स्थापना, नगरीकरण और पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव जैसे-जैसे भारत में आने लगे वैसे ही ग्राम पंचायतों के प्रभाव और महत्व में कमी आने लगी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले से ही पंचायतों के पुनर्संगठन के लिए प्रयास प्रारम्भ हो गए थे। इन प्रयासों के परिणामस्वरूप जिला मंडलों की स्थापना की गई थी, किन्तु इन जिला मंडलों को उतनी सफलता नहीं मिली जिसके

लिए इन मंडलों की स्थापना की गई थी। सन् 1915 के अधिनियम के द्वारा भी पंचायतों को पुन: स्थापित करने पर बल दिया गया था।

स्वतंत्र भारत में पंचायतों की पुन: स्थापना पर विशेष जोर दिया गया। इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया गया कि भारतीय ग्रामों के विकास का आधार पंचायतें ही हैं। भारतीय संविधान के 40वें अनुच्छेद में लिखा है कि "राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करने के लिए अग्रसर होगा तथा उनको ऐसी शक्तियाँ और अधिकार प्रदान करेगा जो उन्हें स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए आवश्यक हों।" स्वतंत्र भारत में पंचायतों को आधारशिला के रूप में स्वीकार किया गया है और देश के विकास तथा प्रजातंत्र के मूल्यों की रक्षा के लिए अनिवार्य माना गया है। आजादी के बाद और 1993 के पहले तक प्रत्येक राज्य अपनी इच्छानुसार पंचायतों का गठन व निर्वाचन करते थे, किन्तु संविधान के 73वें संशोधन के उपरान्त अब प्रत्येक राज्य अनिवार्य रूप से विधि अनुसार पंचायतों का गठन तथा उसके अनुसार स्थानीय शासन तंत्र की कार्यवाही को सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है। अत: पंचायतों का गठन करना प्रत्येक राज्य सरकारों का अनिवार्य दायित्व होगा।

NOTES

पंचायती राज से सम्बन्धित केन्द्रीय अधिनियम
(Central Legislation Related to Panchayati Raj)

लगभग चार दशक पूर्व स्थापित पंचायती राज व्यवस्था जब डगमगाने लगी तो सम्पूर्ण देश में पंचायती राज संस्थाओं को एकरूपता प्रदान करने तथा उन्हें और अधिक शक्तिशाली व प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से केन्द्रीय सरकारी ने एक अधिनियम 'संविधान (तिहत्तरवाँ संशोधन) अधिनियम 1993' पारित किया। यह अधिनियम पंचायती राज का एक नया प्रतिमान कहा जा सकता है, क्योंकि प्रजातंत्र के लिए यह आवश्यक है कि सत्ता में भागीदारी निचले से निचले तबकों के लोगों को मिले। इस सम्बन्ध में भारत सरकार का यह महत्वपूर्ण कदम कहा जा सकता है।

पंचायती राज से सम्बन्धित विधेयक को लोकसभा और राज्यसभा ने क्रमश: दिसम्बर, 1992 तथा दिसम्बर, 1992 को सर्वसम्मति से पास कर दिया। इस विधेयक को 17 राज्यों की विधानसभाओं ने भी अपनी संस्तुति प्रदान कर दी है। यह विधेयक संविधान (तिहत्तरवाँ संशोधन) अधिनियम, 1993 के रूप में 24 अप्रैल, 1993 से सम्पूर्ण भारत में प्रभावशील हो गया।

संविधान के 73वें संशोधन द्वारा संविधान में नया अध्याय 9 जोड़ा गया। अध्याय 9 द्वारा संविधान में 16 अनुच्छेद और एक अनुसूची (ग्यारहवीं अनुसूची) जोड़ी गई। इस अधिनियम के पारित होने से पंचायती राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ तथा इसके लागू होने के परिणामस्वरूप दिल्ली और अरुणाचल प्रदेश को छोड़कर लगभग सभी राज्यों/संघों राज्य क्षेत्रों ने अपने कानून बना लिए।

इस अधिनियम की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें अन्य बातों के साथ-साथ सभी स्तरों पर पंचायतों के नियमित चुनाव, अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों और महिलाओं (33 प्रतिशत) के लिए सीटों का आरक्षण और स्थानीय निकायों की वित्तीय स्थिति को मजबूत बनाने के उपायों की व्यवस्था की गई है। इसमें राज्य वित्त आयोग निधियों का प्रावधान किया गया है। यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 243(छ) में पंचायतों की स्वशासन की संस्थाओं के रूप में परिकल्पना की गई है लेकिन शक्तियों और कार्य सौंपने का कार्य राज्य विधानमंडल की इच्छा के अधीन रखा गया है।

- **पंचायती राज अधिनियम 1993 की प्रमुख विशेषताएँ (धाराएँ)**

(1) **ग्राम सभा** - प्रत्येक गाँव में एक ग्राम सभा होगी और वह गाँव के स्तर पर ऐसे अधिकारों का उपभोग करेगी तथा ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगी जो राज्य विधान मंडल बनाकर उपबन्धित करेगी। यह एक निकाय होगा जिसमें ग्राम स्तर पर पंचायत क्षेत्र में मतदाताओं के रूप में पंजीकृत सभी व्यक्ति शामिल होंगे।

(2) **पंचायतों का गठन** - अनुच्छेद 243 (ख) त्रिस्तरीय पंचायती राज का प्रावधान करता है। प्रत्येक राज्य में ग्राम स्तर, मध्यवर्ती स्तर और जिला स्तर पर पंचायती राज संस्थाओं का गठन किया जाएगा, किन्तु उस राज्य में जिसकी आबादी 20 लाख से अधिक नहीं है, वहाँ मध्यवर्ती स्तर पर पंचायतों का गठन करना अनिवार्य नहीं होगा।

(3) **पंचायतों की संरचना** - राज्य विधान मंडलों को विधि द्वारा पंचायतों की संरचना के लिए उपबन्ध करने की शक्ति प्रदान की गई है, परन्तु किसी भी स्तर पर पंचायत के प्रादेशिक क्षेत्र की जनसंख्या और ऐसी

NOTES

पंचायत में निर्वाचन द्वारा भरे जाने वाले स्थानों की संख्या के बीच अनुपात समस्त राज्य में यथासम्भव एक ही होगा। सभी स्तरों की पंचायतों के सभी सदस्यों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान से होगा, परन्तु मध्यवर्ती तथा जिला स्तरों के अध्यक्षों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से उसके ही सदस्यों द्वारा अपने में से किया जाएगा। ग्राम पंचायत के वार्डों की न्यूनतम संख्या 10 और अधिकतम संख्या 20 रखी गई है।

(4) **पंचायतों में आरक्षण** - प्रत्येक पंचायत में क्षेत्र की जनसंख्या के अनुपात में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए स्थान आरक्षित रहेंगे। ऐसे स्थानों को प्रत्येक पंचायत में चक्रानुक्रम (Rotation) से आवंटित किया जाएगा। आरक्षित स्थानों में से 1/3 स्थान अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित रहेंगे।

प्रत्येक पंचायत में प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे गए स्थानों की कुल संख्या के 1/3 स्थान (जिनके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों और जनजातियों की स्त्रियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या सम्मिलित है), महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगे और चक्रानुक्रम से पंचायत के विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रों को आवंटित किए जाएँगे।

(5) **पंचायतों का कार्यकाल** - इस नए अधिनियम में भारत के प्रत्येक राज्य की पंचायत राज संस्थाओं का कार्यकाल सामान्य रूप से पाँच वर्ष निश्चित किया है किन्तु अगर कोई पंचायत निरस्त कर दी जाती है तो उस हालत में उसके फिर से गठन करने के लिए उसके निरस्त किए जाने के छह महीने के अन्दर चुनाव हो जाने चाहिए।

(6) **पंचायतों के निर्वाचन** - इस अधिनियम के अनुसार राज्यपाल द्वारा नियुक्त राज्य चुनाव आयुक्त की देखरेख में चुनाव कराने की व्यवस्था है। राज्य निर्वाचन आयुक्त को केवल उसी रीति और उसी आधार पर उसके पद से हटाया जा सकता है जैसे कि उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। पंचायतों के लिए निर्वाचक नामावली तैयार करने का और पंचायतों के सभी निर्वाचनों के संचालन का अधीक्षण, निर्देशन और नियंत्रण निर्वाचन आयोग में निहित होगा।

(7) **वित्त आयोग का गठन** - राज्य विधान मंडलों को यह अधिकार दिया गया है कि वे पंचायतों को उपयुक्त स्थानीय कर लगाने, उन्हें वसूल करने और उनसे प्राप्त धन को खर्च करने के लिए प्राधिकृत कर सकते हैं और राज्य के समेकित कोष से पंचायतों को सहायता-अनुदान दे सकते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक पाँच साल में एक बार एक वित्त आयोग की नियुक्ति होनी है, जो पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा करेगा और राज्यीय तथा स्थानीय संस्थाओं के बीच कोषों के वितरण के बारे में राज्य सरकार से सिफारिश करेगा। केन्द्रीय वित्त आयोग राज्य के समेकित कोष को बढ़ाने के लिए आवश्यक उपाय भी सुझाएगा ताकि राज्य के अन्दर पंचायतों के संसाधनों की कमी की प्रतिपूर्ति हो सके। इस प्रकार अब पंचायती राज संस्थाओं को पहले की अपेक्षा अधिक धन मिलेगा। इस धन के मिलने का वे भरोसा रख सकती हैं। इससे आयोजना प्रक्रिया में जनता की भागीदारी बढ़ेगी।

(8) **ग्यारहवीं अनुसूची द्वारा पंचायतों के कार्य** - इस अधिनियम में संविधान की ग्यारहवीं अनुसूची की मदों में से कुछ ऐसी मदों का निर्देश किया गया है जो पंचायतों को सौंपी जा सकती हैं। ये मदें उन योजनाओं के ऊपर से होंगी जो राज्य सरकार आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के लिए उन्हें सौंपना चाहे। ग्यारहवीं अनुसूची में पंचायत के निम्न कार्य निर्धारित हैं -

- **ग्यारहवीं अनुसूची (अनुच्छेद 243-छ)**

1. कृषि, जिसके अन्तर्गत कृषि-विस्तार भी है।
2. भूमि विकास, भूमि सुधार का कार्यान्वयन, चकबन्दी और भूमि संरक्षण।
3. लघु सिंचाई, जल प्रबन्ध और जल आच्छादन विकास।
4. पशुपालन, दुग्ध-उद्योग और कुक्कुट-पालन।
5. मत्स्य उद्योग।
6. सामाजिक वनोद्योग और फार्म वनोद्योग।
7. लघु वन उत्पाद।
8. लघु उद्योग, जिसके अन्तर्गत खाद्य प्रसंस्करण उद्योग भी है।
9. खादी, ग्राम और कुटीर उद्योग।

10. ग्रामीण आवासन।
11. पेयजल।
12. ईंधन और चारा।
13. सड़कें, पुलिया, पुल, फेरी, जलमार्ग तथा संचार के अन्य साधन।
14. ग्रामीण विद्युतीकरण, जिसके अन्तर्गत विद्युत का वितरण भी है।
15. गैर-पारम्परिक ऊर्जा स्रोत।
16. गरीबी उपशमन कार्यक्रम।
17. शिक्षा जिसके अन्तर्गत प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालय भी हैं।
18. तकनीकी प्रशिक्षण और व्यावसायिक शिक्षा।
19. प्रौढ़ और अनौपचारिक शिक्षा।
20. पुस्तकालय।
21. सांस्कृतिक क्रिया-कलाप।
22. बाजार और मेले।
23. स्वास्थ्य और स्वच्छता, जिसके अन्तर्गत अस्पताल, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र और औषधालय भी हैं।
24. परिवार कल्याण।
25. स्त्री और बाल विकास।
26. समाज कल्याण, जिसके अन्तर्गत विकलांगों और मानसिक रूप से मन्द व्यक्तियों का कल्याण भी है।
27. दुर्बल वर्गों का और अनुसूचित जातियों और जनजातियों का कल्याण।
28. सार्वजनिक वितरण प्रणाली।
29. सामुदायिक आस्तियों का अनुरक्षण।

ग्राम पंचायतों के उद्देश्य
(Objectives of Village Panchayats)

ग्राम पंचायतों का उद्देश्य ग्रामीण जनता का सर्वांगीण विकास करना है। जिन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ग्राम पंचायतों का गठन किया गया है, वे इस प्रकार हैं -

(1) **प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण** - भारत में ग्राम पंचायतों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य प्रजातांत्रिक शक्ति को संसद से ग्रामीण जनता तक प्रसारित करना है। भारत जैसे विशाल देश में शासन करना तभी सम्भव है, जब स्थानीय व्यवस्था को छोटी-छोटी इकाइयों में संगठित किया जाए। ग्राम पंचायतें इसी उद्देश्य की पूर्ति करती हैं।

(2) **स्वस्थ जनमत का निर्माण** - भारत में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ हैं। इन सामाजिक कुरीतियों को दूर करने में स्वस्थ जनमत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ग्राम पंचायतें स्वस्थ जनमत का निर्माण करके सामाजिक कुरीतियों को समाप्त करने के उद्देश्य से गठित की गई हैं।

(3) **जन सहभागिता की शिक्षा** - जन सहभागिता का सामाजिक समस्याओं के समाधान और पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ग्राम पंचायतों के गठन का उद्देश्य ग्रामीण समुदाय की समस्याओं को स्वयं ग्रामीणों की सक्रिय सहभागिता से सुलझाना है।

(4) **नागरिकता की शिक्षा** - प्रजातंत्र की सफलता के लिए नागरिकों में नागरिकता का ज्ञान अनिवार्य है। ग्राम पंचायतें अनेक प्रकार के कार्यक्रमों, नैतिकता, अनुशासन आदि की शिक्षा देती हैं। इस प्रकार नागरिकता की शिक्षा प्रदान करना ग्राम पंचायतों का उद्देश्य है।

NOTES

(5) **नेतृत्व का विकास** - प्रजातंत्र की सफलता के लिए नेतृत्व अनिवार्य दशा है। नेतृत्व के अभाव में प्रजातंत्र लंगड़ा हो जाता है। ग्राम पंचायत के सदस्य विकास कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेते हैं तथा पंचायतों के अन्य कार्यों में सक्रिय सहयोग देते हैं। इस प्रकार ग्राम पंचायतें उचित नेतृत्व का विकास करती हैं।

(6) **ग्रामीण विकास** - भारत में ग्राम पंचायतों की स्थापना का उद्देश्य ग्रामीण विकास द्वारा 'रामराज्य' की स्थापना करना है। कृषि और उद्योग भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था के आधार हैं। इन दोनों को विकसित करने में ग्राम पंचायतों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

ग्रामीण पुनर्निर्माण में पंचायतों का महत्व या भूमिका
(Role or Importance of Village Panchayats in Rural Reconstruction)

प्राचीन भारत की ग्राम पंचायतें भारतीय ग्रामीण जीवन की खुशहाली की प्रतीक थीं। इसलिए गाँधी जी ने पंचायतों को 'रामराज्य' का प्रतीक माना है। भारतीय ग्रामीण जीवन के पुनर्निर्माण और पुनरुत्थान में ग्राम पंचायतों की भूमिका या महत्व को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) **सामाजिक जीवन में पंचायतों का महत्व** (Importance of Panchayats in Social Life)-

सामाजिक जीवन में पंचायतों का निम्नलिखित महत्व है -

(i) **शिक्षा व्यवस्था** - अशिक्षा ग्रामीण प्रगति और विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। पंचायतों का शिक्षा के संगठन और प्रसार में काफी योगदान रहा है। प्राथमिक, सामाजिक, प्रौढ़ और स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में पंचायतों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है। स्कूलों को खोलना तथा उनकी देख-रेख का कार्य भी पंचायतें करती हैं।

(ii) **सार्वजनिक बाजार** - ग्रामीण जीवन में जनता को उचित बाजार नहीं मिल पाता है। सेठ, साहूकार और दलाल उनका मनमाना शोषण करते हैं। ग्राम पंचायतों ने बाजारों की व्यवस्था और नियन्त्रण को अपने हाथ में लेकर समस्या को दूर किया है।

(iii) **मद्यनिषेध** - त्योहारों तथा उत्सवों में मद्य-वस्तुओं का सेवन भारतीय ग्रामीण जीवन की आम बात है। मद्यनिषेध के क्षेत्र में भी ग्राम पंचायतों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

(iv) **समाज सुधार** - ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याएँ व्याप्त हैं। ग्राम पंचायतें इन समस्याओं के समाधान में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकती हैं। अस्पृश्यता, जातिवाद, दहेज प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा आदि समस्याओं के समाधान में ग्राम पंचायतें अनुकूल वातावरण का निर्माण करती हैं।

(v) **मातृत्व एवं बाल-कल्याण** - भारतीय जीवन अनेक अन्धविश्वासों का शिकार है। इस कारण अनेक माताओं तथा शिशुओं की मृत्यु हो जाती है। माताओं और शिशुओं के हितों की रक्षा राष्ट्रीय जीवन में महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से पंचायतों का अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है।

(2) **जन-कल्याण में पंचायतों का महत्व** (Importance of Panchayats in Public Welfare)-

जन कल्याण के कार्यों के क्षेत्र में पंचायतों का निम्नलिखित महत्व है -

(i) **स्वास्थ्य की उन्नति** - ग्राम पंचायतें ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य को उन्नतिशील बनाने में सहायता करती हैं। वे ग्रामीण जनता के स्वास्थ्य साधनों की जानकारी रखती हैं तथा स्वास्थ्य स्तर को ऊपर उठाने का प्रयास करती हैं।

(ii) **सफाई** - ग्रामीण जीवन में गन्दगी व्याप्त रहती है, जिससे अनेक बीमारियों के फैलने की आशंका बनी रहती है। ग्राम पंचायतें गाँवों की सफाई का प्रबंध करती हैं।

(iii) **चिकित्सा व्यवस्था** - ग्राम पंचायतें बीमारियों की रोकथाम का भी प्रबन्ध करती हैं। पंचायतें ग्रामीण जीवन की संक्रामक बीमारियों का पता नहीं लगाती हैं तथा उन बीमारियों की रोकथाम, उपचार का प्रबन्ध करती हैं।

(iv) **पेयजल की व्यवस्था** - गाँवों में शुद्ध पीने के पानी का अभाव पाया जाता है। इससे पेट की अनेक बीमारियों की आशंका रहती है। इस क्षेत्र में ग्राम पंचायतें अनेक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित कर सकती हैं।

(v) **यातायात व्यवस्था** - भारतीय ग्रामीण जीवन में यातायात एक बड़ी समस्या है। इस समस्या के कारण भारतीय ग्रामीण जीवन पिछड़ा हुआ है। सड़कों की मरम्मत, नई सड़कों का निर्माण, रोशनी, सफाई आदि के क्षेत्र में पंचायतें महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

(vi) **सांस्कृतिक उन्नति** - सांस्कृतिक पिछड़ापन ग्रामीण जीवन की एक समस्या है। ग्राम पंचायतें ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन को आधुनिक दृष्टि से उपयोगी बनाने में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

(vii) **मनोरंजन व्यवस्था** - ग्रामीण विकास में मनोरंजन की महत्वपूर्ण भूमिका है। ग्रामीण जीवन में मनोरंजन के स्वास्थ्यप्रद तथा आकर्षक साधनों को जुटाने में ग्राम पंचायतें महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

(viii) **प्राकृतिक प्रकोपों से बचाव** - अकाल, बाढ़ आदि ग्राम जीवन के विकास के मार्ग में बड़ी बाधाएँ हैं। इस सन्दर्भ में ग्राम पंचायतें दोहरी भूमिका अदा कर सकती हैं। अकाल और बाढ़ की स्थिति में ग्रामीण जनता की समुचित सहायता करके उसे राहत दिलाना आदि।

(3) **आर्थिक जीवन में पंचायतों का महत्व** (Importance of Panchayats in Economic Life)-

आर्थिक क्षेत्र में पंचायतें निम्न महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन कर सकती हैं -

(i) **कृषि सुधार** - भारत कृषि प्रधान देश होते हुए भी खेती के क्षेत्र में यह अत्यन्त ही पिछड़ा हुआ है। यह भारत के लिए अत्यन्त ही चिन्ता का विषय है। पंचायतों के द्वारा कृषि सुधार के कार्यों को प्रभावशाली ढंग से किया जा सकता है।

(ii) **सिंचाई व्यवस्था** - कृषि सुधार में सिंचाई का महत्वपूर्ण स्थान है। ग्राम पंचायतें कुएँ, तालाब, नहर आदि का निर्माण करने और उनकी देखभाल के कार्य को सम्पादित करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं।

(iii) **पशु-नस्ल सुधार** - ग्रामीण आर्थिक विकास में पशुओं की खराब नस्ल सबसे बड़ी बाधा है। ग्राम पंचायतें पशुओं की नस्लों को सुधारने में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

(iv) **उत्तम बीज** - भारतीय कृषि में प्रयुक्त किया जाने वाला बीज भी घटिया किस्म का होता है। ग्राम पंचायतें ग्रामीणों को उत्तम बीज उपलब्ध करवाकर उत्पादन बढ़ाने में सहायता कर सकती हैं।

(v) **सहकारी समितियाँ** - ग्रामीण आर्थिक विकास में सहकारी समितियों की अहम् भूमिका है। ग्राम पंचायतें सहकारी समितियों की सहायता से ग्रामीण पुनर्निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं।

(vi) **ग्रामोद्योग** - कुटीर उद्योग-धन्धों का विकास ग्रामीण जीवन की प्रगति और विकास में महत्वपूर्ण है। इस दृष्टि से ग्राम पंचायतें कुटीर उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहित करके ग्रामीण विकास में योगदान दे सकती हैं।

(vii) **वृक्षारोपण** - ग्रामीण आर्थिक जीवन में वृक्षों का महत्वपूर्ण स्थान है, इस दृष्टि से ग्राम पंचायतें वृक्षारोपण के कार्य को प्रोत्साहित कर सकती हैं।

(viii) **चारागाह** - चारागाह पशु जीवन के अंग हैं, उनके लिए चारागाहों की व्यवस्था अनिवार्य है। ग्राम पंचायतें चारागाह की व्यवस्था में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

(ix) **भूमिहीन श्रमिक** - ग्रामीण जीवन में भूमिहीन श्रमिक अधिक हैं तथा उनकी हालत चिन्ताजनक है। ग्राम पंचायतें इन श्रमिकों को भूमि तथा रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

(4) **राजनैतिक जीवन में पंचायतों का महत्व** (Importance of Panchayats in Political Life)-

राजनैतिक जीवन में ग्राम पंचायतों का महत्व निम्नलिखित है -

(i) **ग्रामीण नेतृत्व का विकास** - ग्रामीण विकास में नेतृत्व की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ग्राम पंचायतें चुनाव तथा अन्य जनोपयोगी कार्यों की सहायता से ग्रामीण नेतृत्व के विकास में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

(ii) **शान्ति और व्यवस्था** - स्वयंसेवक दल का गठन करके ग्राम पंचायतें ग्रामीण अंचलों में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना में महत्वपूर्ण कार्य कर सकती हैं।

(iii) **प्रशासनिक शिक्षा** - ग्रामीण विकास की योजना का संचालन स्वयं ग्रामवासियों को करना पड़ता है। इस प्रकार ग्रामीणों को प्रशासन में सहभागिता प्राप्त होती है। इस प्रकार ग्राम पंचायतें जनता को प्रशासनिक शिक्षा प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह कर सकती हैं।

(iv) **नागरिकता का ज्ञान** - ग्राम पंचायतें नागरिकों को नागरिकता की शिक्षा भी प्रदान करती हैं। इसके लिए ग्राम पंचायतें नाटक, व्याख्यान, सम्मेलन आदि का आयोजन करती हैं।

(v) **आपसी सहयोग** - ग्राम पंचायतें ग्रामीण जनता में आपसी सहयोग की भावना को प्रोत्साहित करके मुकदमेबाजी की संख्या को कम करने में महत्वपूर्ण कार्य करती हैं।

NOTES

पंचायतों के महत्व के सरकारी प्रयास
(Government Efforts for Importance of Panchayats)

सरकार द्वारा भी पंचायतों के महत्व को बढ़ाने के प्रयास किए जा रहे हैं। शासन द्वारा पंचायतों के महत्व में वृद्धि के लिए जो प्रयास किए जा रहे हैं, उनका विवरण इस प्रकार है -

(1) सरकार पंचायतों में कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण की व्यवस्था कर रही है। इससे ग्राम पंचायतों को अपने कार्यक्रमों को सम्पादित करने में सफलता मिलेगी।

(2) कल्याणकारी योजनाओं को सफल बनाने के लिए सरकारी ग्राम पंचायतों की आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के प्रयास कर रही हैं।

(3) सरकार द्वारा समितियों का गठन कर पंचायतों की समस्याओं का पता लगाना तथा उन समस्याओं को दूर करना।

(4) ग्राम पंचायतों में सरकारी हस्तक्षेप को कम करने के लिए पंचायतों को अब सामुदायिक विकासखंडों (Community Development Blocks) के अधीन कर दिया गया है।

(5) पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से पंचायतों के महत्व को स्वीकार किया गया है।

(6) पंचायतों के अधिकार क्षेत्र में वृद्धि कर दी गई है। पंचायतों की समस्त योजनाएँ पंचायतों की देखरेख में बनाई जाती हैं।

ग्राम पंचायत के दोष या असफलता के कारण
(Causes of Failure of Village Panchayats)

भारतीय ग्राम पंचायत की कार्य विधियों का मूल्यांकन करने से ऐसा लगता है कि वर्तमान समय में ग्राम पंचायत में निम्न दोष विद्यमान हैं -

(1) **तनाव एवं संघर्ष** - ग्राम पंचायतों ने ग्रामीण जनता में तनाव एवं संघर्ष को जन्म दिया है। चुनावों के कारण ग्रामीण जीवन में वैमनस्य और दुश्मनी व्याप्त हो जाती है, जो ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याओं को जन्म देती है।

(2) **दलबन्दी** - ग्रामीण जीवन दल विहीन होते थे, किन्तु प्रजातंत्र और चुनाव ने दलबन्दी को जन्म दिया है। ये दल अपनी शक्ति के प्रदर्शन में लगे रहते हैं, जिससे पंचायतें अपने वास्तविक कार्यों का सम्पादन नहीं कर पाती हैं।

(3) **जातिवाद** - चुनावों ने जातिवाद का पोषण किया है। जातीय आधार पर चुनाव लड़े जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जातिवाद की भावना का विकास होता है।

(4) **भ्रष्टाचार** - फंडों के अनुचित दुरुपयोग और घूस लेकर ग्राम पंचायतों ने भ्रष्टाचार को ग्रामीण स्तर तक फैलाया है। अपने निजी तथा जाति बिरादरी के सदस्यों के स्वार्थ की पूर्ति के लिए सत्ता का उपयोग आम बात है।

(5) **प्रजातांत्रिक भावना का अभाव** - ग्रामीण जीवन में प्रजातंत्र की भावना का न होना असली समस्या है। जो व्यक्ति चुनाव हार जाते हैं, वे जनता से बदला लेने का प्रयास करते हैं और जो चुनाव जीत जाते हैं, वे सत्ता के मद में इतने चूर हो जाते हैं कि जन-कल्याण की उपेक्षा कर देते हैं।

(6) **राजनैतिक दलदल** - ऐसा लगता है कि गाँवों में राजनैतिक कीचड़ 'दलदल' बढ़ती जा रही है और गाँव की जनता इस राजनैतिक दलदल में दिन-प्रतिदिन फँसती जा रही है।

(7) **पेशेवर नेता** - ग्राम पंचायतों ने पेशेवर नेताओं को जन्म दिया है, जिनका उद्देश्य अपनी सस्ती नेतागिरी को बनाए रखना तथा अपना उल्लू सीधा करना होता है।

(8) **अशिक्षा** - अशिक्षा भी भारतीय ग्रामीण जीवन की मुख्य समस्या है। अशिक्षा के कारण ग्रामीण जनता पंचायतों के वास्तविक महत्व को नहीं समझ पाती है।

(9) **निर्धनता** - ग्रामीण जीवन की आर्थिक स्थिति अत्यन्त ही गिरी हुई है। इस गिरी स्थिति के कारण गाँव के योग्य और कर्मठ व्यक्ति पंचायतों के कार्यों में नहीं फँसना चाहते हैं।

NOTES

वर्तमान भारतीय ग्राम पंचायतों में व्याप्त उपर्युक्त दोषों के कारण उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हो पाती है। यही कारण है कि ग्राम पंचायतें अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में असफल हो जाती हैं।

ग्राम पंचायतों की सफलता के लिए सुझाव
(Suggestions for Success of Village Panchayats)

ग्राम पंचायतों को सफल बनाने की दिशा में जो महत्वपूर्ण सुझाव दिए जा सकते है, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

(1) ग्रामीण जीवन में व्याप्त दलबन्दी को समाप्त किया जाए और सदस्यों में एकता की भावना का प्रसार किया जाए। इससे सभी सदस्य एक दूसरे को सहयोग करेंगे और इस प्रकार ग्राम पंचायतों को सफलता प्राप्त होगी।

(2) राजनैतिक दलों के सदस्य ग्राम पंचायतों को अपनी रियाज का अखाड़ा न बनाएँ। ऐसा प्रयास किया जाए कि पंचायत, राजनैतिक दलों से दूर रहें।

(3) जातिवाद पंचायतों की असफलता का मूल कारण है। अत: इसे समाप्त किया जाए।

(4) शिक्षा का प्रसार किया जाए। ऐसा करने से लोग पंचायतों के महत्व को समझेंगे और पंचायत के कार्यों में क्रियाशील सदस्य के रूप में भाग लेंगे।

(5) ग्रामीण जीवन में व्याप्त निर्धनता को समाप्त किया जाए।

(6) योग्य और ईमानदार व्यक्तियों को पंचायतों के पदों के लिए चुना जाए।

(7) जनता में इस प्रकार की भावना का प्रसार किया जाए, जिससे वे प्रशासन के कार्यों में रुचि लेने लगें।

(8) पंचायतों को आर्थिक और राजनैतिक विकेन्द्रीकरण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य करना चाहिए।

(9) गाँवों में ऐसे नेतृत्व का विकास किया जाए जो समुदाय के सभी कार्यों को सम्पादित कर सके।

(10) पंचायतों के कार्यों की देखभाल करने के लिए निरीक्षकों की नियुक्ति की जाए और उन्हें पर्याप्त अधिकार प्रदान किया जाए।

(11) ग्राम पंचायतों में जो चुनाव हों उनमें मत डालने की अपेक्षा सर्वसम्मति को सबसे अधिक महत्व प्रदान किया जाए।

(12) जो योजनाएँ निर्मित की जाएँ, उनका आधार गाँव हो।

मध्यप्रदेश में ग्राम पंचायतें
(Village Panchayats in Madhya Pradesh)

भारत में ग्राम पंचायतों का गठन आजादी के बाद से होता रहा है, किन्तु वर्तमान में संविधान के 73वें संशोधन के अनुसार पंचायती राज व्यवस्था कानून के रूप में सम्पूर्ण भारत में 24 अप्रैल, 1993 से एक साथ प्रभावशील है। भारत की आत्मा कहा जाने वाला मध्यप्रदेश देश का पहला प्रदेश है जिसने 30 दिसम्बर, 1993 को पंचायती राज अधिनियम पारित किया। इसे महामहिम राज्यपाल की स्वीकृति 24 जनवरी, 1994 को मिली। 27 जनवरी, 1994 को यह अधिनियम सम्पूर्ण मध्यप्रदेश में एक साथ लागू हो गया। मध्यप्रदेश देश का प्रथम राज्य है जिसने सर्वप्रथम पंचायती राज सम्बन्धी कानून बनाकर तद्नुसार चुनाव सम्पन्न करवाए।

नई पंचायती राज व्यवस्था का उद्देश्य जनता को सत्ता सौंपना है। पंचायतों के गठन का उद्देश्य अपने ग्राम की उन्नति, विकास और प्रशासन की जिम्मेदारी स्वयं देखें। संविधान तथा अधिनियम में पंचायतों को इतने अधिक अधिकार दिए गए हैं कि ग्रामीण जनता अपने क्षेत्र की समस्याओं को स्वयं हल करेंगे। पंचायतें अपने-अपने क्षेत्र

को स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाने में सहायक होंगी। जैसा कि पूज्य राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था। "प्रत्येक गाँव में लोगों की हुकूमत या पंचायत का राज होगा, उसके पास पूरी सत्ता और ताकत होगी।" राष्ट्रपति की इस परिकल्पना को साकार व मूर्तरूप देने का प्रयास पंचायती राज अधिनियमों के द्वारा प्राप्त हो सकेगा।

NOTES

पंचायतों का गठन
(Formation of Panchayats)

मध्यप्रदेश में पंचायती राज व्यवस्था का केन्द्रीय अधिनियम के अनुरूप तीन-स्तरीय (Three Tiers) रूपों में गठन करने की व्यवस्था की गई है -

(1) ग्राम सभा (ग्राम पंचायत),

(2) विकासखंड या मध्यवर्ती स्तर (जनपद पंचायत),

(3) जिला स्तर पर (जिला पंचायत)।

ग्राम सभा या ग्राम पंचायत

ग्राम पंचायत पंचायती राज व्यवस्था की आधारभूत इकाई है। सत्ता के विकेन्द्रीकरण का सबसे व्यावहारिक स्वरूप ग्राम पंचायतों के माध्यम से परिलक्षित होता है। एक ग्राम सभा के कम से कम एक हजार मतदाताओं (Voters) का होना आवश्यक है। जहाँ इससे कम मतदाता होते हैं वहीं दूसरे गाँव को मिलाकर एक पंचायत क्षेत्र बनाया जाता है। पंचायत क्षेत्र में आने वाले सभी वयस्क व्यक्ति ग्राम सभा के सदस्य होंगे। प्रत्येक ग्राम पंचायत क्षेत्र को 10 से अन्यून वार्डों में, जैसा कलेक्टर अवधारित करे, विभाजित किया जाएगा तथा प्रत्येक वार्ड एक सदस्यीय वार्ड होगा, परन्तु जहाँ ग्राम पंचायत क्षेत्र की जनसंख्या एक हजार से अधिक हो, वहाँ उसे ऐसी रीति से वार्डों में विभाजित किया जाएगा जिससे कि वार्डों की कुल संख्या बीस से अधिक न हो और प्रत्येक वार्ड की जनसंख्या यथासाध्य एक जैसी होगी।

ग्राम सभा अपने सदस्यों में से प्रत्यक्ष मतदान प्रणाली के आधार पर एक सरपंच और अन्य पंचों (वार्ड मेम्बर्स) को चुनती है। यदि कोई ग्राम या वार्ड यथास्थिति, ऐसे ग्राम सरपंच या पंच को निर्वाचित नहीं करता है तो उस स्थान को भरने के लिए, यथास्थिति, ऐसे ग्राम या ऐसे वार्ड में नई निर्वाचन की कार्यवाहियाँ राज्य निर्वाचन आयोग से समाधान हो जाने की स्थिति पर छह मास के भीतर प्रारम्भ की जाएँगी। यदि ग्राम पंचायत का सरपंच अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों या अन्य पिछड़े वर्गों का नहीं है, तो उप-सरपंच ऐसी जातियों या ऐसी जनजातियों या ऐसे वर्गों के पंचों में से निर्वाचित किया जाएगा। उप-सरपंच का चुनाव पंचायत के सदस्यों द्वारा किया जाएगा।

प्रत्येक ग्राम सभा की एक निर्वाचक नामावली होगी। निर्वाचक नामावली में जिन सदस्यों का नाम नहीं होगा। वे मतदान नहीं कर सकेंगे और न ही वे पंचायत के किसी पद के उम्मीदवार के रूप में चुनाव में खड़े ही हो सकेंगे। कोई भी व्यक्ति जो राज्य विधान मंडल का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो, कम से कम 21 वर्ष की आयु का हो और किसी स्थानीय प्राधिकारी के अधीन नौकरी न करता हो, ग्राम पंचायत का सदस्य निर्वाचित हो सकता है।

सरपंच ग्राम पंचायत का सबसे महत्वपूर्ण पदाधिकारी होता है। ग्राम पंचायत की बैठक बुलाने, बैठक की कार्यवाही संचालित व नियंत्रित करना तथा ग्राम सभा के कार्यों व कर्तव्यों को क्रियान्वित करना उसका उत्तरदायित्व होता है। ग्राम पंचायत का कार्यकाल पाँच वर्ष का होता है। ग्राम पंचायतों में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और पिछड़े वर्गों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में स्थानों के आरक्षण की व्यवस्था है। सदस्यों की कुल संख्या में से कम से कम एक-तिहाई सीटें महिलाओं के लिए आरक्षित होंगी।

● सरपंच और उप-सरपंच के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव

सरपंच और उप-सरपंच के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करने की प्रक्रिया इस प्रकार है -

(1) उपस्थित तथा मतदान करने वाले पंचों के तीन-चौथाई के बहुमत से, जो तत्समय ग्राम पंचायत का गठन करने वाले पंचों की कुल संख्या के दो-तिहाई से अधिक हैं, पारित संकल्प द्वारा अविश्वास का प्रस्ताव ग्राम पंचायत द्वारा पारित कर दिए जाने पर, वह सरपंच या उप-सरपंच जिसके विरुद्ध ऐसा प्रस्ताव किया जाता है, तत्काल प्रभाव से अपने पद पर नहीं रह जाएगा।

(2) इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए नियमों में अन्तर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कोई सरपंच या उप-सरपंच उस सम्मिलन की अध्यक्षता नहीं करेगा, जिसमें उसके विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव की चर्चा की जाती है, ऐसा सम्मिलन ऐसी रीति में संयोजित किया जाएगा जो विहित की जाए और उसकी अध्यक्षता सरकार के किसी ऐसे अधिकारी द्वारा की जाएगी, जिसे विहित प्राधिकारी नियुक्त करे।

(3) निम्न परिस्थितियों में सरपंच या उप-सरपंच के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव नहीं लाया जा सकेगा-

NOTES

(i) उस तारीख से, जिसको वह सरपंच या उप-सरपंच अपना पद ग्रहण करता है, एक वर्ष की कालावधि के भीतर।

(ii) उस तारीख को, जिसको यथास्थिति उस सरपंच या उप-सरपंच की पदावधि का अवसान होता है, पूर्ववर्ती छह मास की कालावधि के भीतर।

(iii) उस तारीख से जिसको पूर्वतन अविश्वास प्रस्ताव नामंजूर किया गया था, एक वर्ग की कालावधि के भीतर।

● **ग्राम पंचायतों के आय के स्त्रोत** - मध्यप्रदेश में ग्राम पंचायतों की स्थापना विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिए की गई है। इन उद्देश्यों को तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता है जब तक कि विभिन्न प्रकार के खर्चों के लिए पैसे न हों। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए ग्राम पंचायतों को इस आशय के अधिकार प्रदान किए गए हैं कि वे अपनी पंचायत सीमा के अन्दर कर (Taxes) लगाकर अपने कोष में वृद्धि कर उस कोष से ग्रामीण विकास के लिए उचित विनियोग करें। निम्न स्त्रोतों से प्राप्त धनराशि पंचायत कोष में जमा की जाएगी-

(i) पंचायत द्वारा लगाए गए जमीन के लगान और इमारतों के करों से,

(ii) किसी अदालत की आज्ञा से प्राप्त धनराशि,

(iii) किसी अपराध के मामले में राजीनामा से प्राप्त धनराशि,

(iv) कूड़े, गोबर, खाद और मृत जानवरों को बेचने से प्राप्त धनराशि,

(v) नजूल की जमीन के लगान से प्राप्त धनराशि,

(vi) ऋण या दान के रूप में प्राप्त धनराशि और

(vii) शासन, जिला पंचायत या अन्य संस्था से सहायता या अनुदान के रूप में प्राप्त धनराशि।

उपरोक्त धन राशि जो पंचायतों के द्वारा प्राप्त की जाएगी पंचायत निधि में जमा होगी। प्रत्येक ग्राम पंचायत में एक पंचायत निधि होगी। पंचायत निधि से समस्त रकमें (राशि) सरपंच तथा सचिव के संयुक्त हस्ताक्षरों से निकाली जाएगी। पंचायत निधि की समस्त रकमें (राशि) किसी भी बैंक व डाकघर के खजाने में जमा की जाएगी।

● **ग्राम पंचायत की स्थायी समितियाँ** - मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1993 की धारा 46 में ग्राम पंचायतों के कृत्यों तथा कर्तव्यों के निर्वहन के लिए तीन स्थायी समितियों के गठन की व्यवस्था की गई है। ये स्थायी समितियाँ निम्न हैं -

(i) सामान्य प्रशासन समिति,

(ii) निर्माण तथा विकास समिति, और

(iii) शिक्षा, स्वास्थ्य तथा समाज कल्याण समिति।

प्रत्येक समिति में चार सदस्य पंचों द्वारा अपने बीच में से निर्वाचित किए जाएँगे। ग्राम पंचायत के सरपंच/उप-सरपंच सभी समितियों के पदेन सदस्य होंगे। कोई भी व्यक्ति एक समय में दो से अधिक समितियों का सदस्य नहीं होगा। ग्राम पंचायत का सचिव स्थायी समितियों का सचिव होगा। उपरोक्त समितियाँ ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेंगी जो ग्राम पंचायत द्वारा उनको सौंपी जाएँ। ये समितियाँ ग्राम पंचायत के सामान्य नियंत्रण के अधीन होंगी।

● **ग्राम पंचायत के कार्य** - प्रत्येक ग्राम पंचायत का यह कर्तव्य होगा कि वह जहाँ तक ग्राम पंचायत निधि में गुंजाइश हो, अपने क्षेत्र के भीतर जनोपयोगी कार्यों को करें। म.प्र. पंचायत राज अधिनियम 1993 की धारा 49 में ग्राम पंचायतें निम्न कार्यों का निष्पादन करेंगी -

NOTES

(1) स्वच्छता, सफाई और न्यूसेन्स का निवारण और उसका उपशमन।

(2) सार्वजनिक कुओं और तालाबों का निर्माण, मरम्मत और अनुरक्षण तथा घरेलू उपयोग के लिए जल प्रदाय।

(3) नहाने तथा धोने और पालतू पशुओं को पीने के लिए जल प्रदाय हेतु जल के स्रोतों का सन्निर्माण और अनुरक्षण।

(4) ग्रामीण सड़कों, पुलियों, पुलों, बाँधों तथा सार्वजनिक उपयोगिता के अन्य संकर्मों तथा भवनों का निर्माण और अनुरक्षण।

(5) सार्वजनिक संडासों, नालियों, तालाबों, कुओं तथा अन्य सार्वजनिक सन्निर्माण, अनुरक्षण और उनकी सफ़ाई।

(6) उपयोग में न लाए जाने वाले कुओं, अस्वच्छ, तड़ागों, खाइयों तथा गड्ढों को भरना और बावड़ियों को स्वच्छ करना।

(7) ग्राम मार्गों और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर प्रकाश की व्यवस्था करना।

(8) सार्वजनिक मार्गों या स्थानों और उन स्थानों में, जो निजी संपत्ति न हों या जो सार्वजनिक उपयोग के लिए खुले हों, चाहे ऐसे स्थल पंचायत में निहित हों या राज्य सरकार के हों, बाधाओं तथा आगे निकले हुए भाग को हटाना।

(9) मनोरंजनों, खेल, तमाशों, दुकानों, भोजनगृहों और पेय पदार्थों, मिठाइयों, फलों, दूध तथा इस प्रकार की अन्य वस्तुओं के विक्रेताओं का विनियमन और उस पर नियंत्रण।

(10) मकानों, संडासों, मूत्रालयों, नालियों तथा फ्लश शौचालयों के सन्निर्माण का विनियमन।

(11) सार्वजनिक भूमि का प्रबन्ध और ग्राम स्थल का प्रबन्ध, विस्तार और विकास।

(12) शवों, पशु-शवों और अन्य घृणोत्पादक पदार्थों के व्ययन के लिए स्थानों का विनियमन तथा लावारिस शवों और पशु-शवों का व्ययन।

(13) कचरा इकट्ठा करने के लिए परीक्षण का विनियमन।

(14) माँस के विक्रय तथा परीक्षण का विनियमन।

(15) ग्राम पंचायत की संपत्ति का अनुरक्षण।

(16) काँजी हाउस की स्थापना और प्रबन्ध तथा पशुओं से सम्बन्धित अभिलेखों को रखा जाना।

(17) संसद द्वारा बनाई गई विधि द्वारा या उसके अधीन राष्ट्रीय महत्व के घोषित किए गए प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारकों को छोड़कर अन्य ऐसे प्राचीन तथा ऐतिहासिक स्मारकों का अनुरक्षण तथा चारागाहों तथा अन्य भूमियों को बनाए रखा जाना जो ग्राम पंचायतों में निहित या उनके नियंत्रणाधीन हैं।

(18) सार्वजनिक बाजारों तथा सार्वजनिक मेलों से भिन्न बाजारों तथा मेलों की स्थापना, प्रबन्ध और विनियमन।

(19) जन्म, मृत्यु और विवाहों के अभिलेखों का रखा जाना।

(20) जनगणना कार्य में राज्य सरकार या केन्द्रीय सरकार या विधि पूर्वक गठित किसी अन्य स्थानीय प्राधिकरण द्वारा संचालित सर्वेक्षणों में सहायता करना।

(21) सांसर्गिक रोगों के रोकथाम में सहायता करना।

(22) टीका लगाने और चेचक का टीका लगाने में सहायता करना तथा मनुष्यों एवं पशुओं की सुरक्षा के लिए ऐसे अन्य निवारक उपायों को जो संबंधित सरकारी विभागों द्वारा विहित किए जाएँ, प्रवर्तित करने में सहायता करना।

(23) नि:शक्त तथा निराश्रितों की सहायता करना।

(24) युवा कल्याण, परिवार कल्याण तथा खेल-कूद का अभिवर्धन करना।

(25) जीवन तथा सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए तथा आग की रोकथाम, आग बुझाने और ऐसे आग लग जाने पर सम्पत्ति की सुरक्षा करने के लिए रक्षा समिति की स्थापना करना।

(26) वृक्षारोपण तथा पंचायता वनों का संरक्षण।

(27) दहेज जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर करना।

(28) गम्भीर तथा आपसी मामलों में निर्धन व्यक्तियों के लिए चिकित्सीय सहायता की व्यवस्था करने के प्रयोग के लिए या निर्धन व्यक्तियों या उसके कुटुम्ब के किसी सदस्य की अन्त्येष्टि करने के प्रयोजन के लिए या किसी निर्धन व्यक्ति के फायदे हेतु किसी अन्य ऐसे प्रयोजन के लिए जैसा कि राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर अधिसूचित किया जाए।

(29) राज्य सरकार, कलेक्टर, या इस सम्बन्ध में राज्य सरकार द्वारा प्राधिकृत अन्य अधिकारी द्वारा अनुसूचित जातियों या अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों की दशा सुधारने के लिए उपायों के सम्बन्ध में विशेषत: अस्पृश्यता निवारण के सम्बन्ध में दिए गए या जारी किए गए निर्देशों या आदेशों का कार्यान्वयन तथा ऐसे कृत्य करना जो राज्य सरकार, जिला पंचायत या जनपद पंचायत, साधारण या विशेष आदेशों द्वारा उसे सौंपे तथा जनपद पंचायत के पूर्वानुमोदन से ऐसे अन्य कृत्य भी कर सकेंगी जिनका किया जाना वह वांछनीय समझेगी।

परन्तु जहाँ ऐसे कोई कृत्य ग्राम पंचायत को सौंपे गए हैं, वहाँ यह यथास्थिति राज्य सरकार, जिला पंचायत या जनपद पंचायत के अभिकर्ता के रूप में कार्य करेगी और उस प्रयोजन के लिए उसे आवश्यक निधियाँ और अन्य सहायता की व्यवस्था यथास्थिति राज्य-सरकार, जिला पंचायत या जनपद पंचायत द्वारा की जाएगी।

● **ग्राम पंचायत के अन्य कार्य** - राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर जारी निर्देशों, आदेशों के अधीन रहते हुए ग्राम पंचायतों को अन्य कृत्य भी करने होंगे। ये अन्य कृत्य निम्नलिखित हैं -

(1) पंचायत क्षेत्र के आर्थिक विकास तथा सामाजिक न्याय के लिए वार्षिकी योजना तैयार करना और उसे जनपद पंचायत की योजना में सम्मिलित किए जाने के लिए विहित समय के भीतर जनपद पंचायत को प्रस्तुत करना।

(2) आधारभूत नागरिक सुविधाओं की योजना तैयार करना और उनका प्रबन्ध करना।

(3) ग्राम सभा के अनुमोदन से विभिन्न कार्यक्रमों के अधीन हिताधिकारियों को चुनना।

(4) ग्राम पंचायत के भीतर विकास स्कीमों और निर्माण कार्यों को कार्यान्वित करना, निष्पादित करना और उनका पर्यवेक्षण करना।

(5) किसी विधि द्वारा उसे सौंपी गई या जो उसे केन्द्र या राज्य सरकार या जिला पंचायत या जनपद पंचायत द्वारा सौंपी गई हों, ऐसी स्कीमों, संकर्मों, परियोजनाओं के निष्पादन को सुनिश्चित करना।

(6) हितकारियों के लिए बनाई गई स्कीमों और कार्यक्रमों का नियंत्रण करना तथा उन्हें मानीटर करना।

(7) जन साधारण के बीच सामान्य चेतना की अभिवृद्धि करना।

(8) सामुदायिक कार्यों के लिए स्वैच्छिक श्रम तथा योगदान का आयोजन करना और सामुदायिक स्वामित्व की धारणा की अभिवृद्धि करना।

(9) ग्राम पंचायत क्षेत्र के भीतर आने वाली कालोनियों की स्थापना के लिए आवेदनों पर विचार करना।

(10) ग्राम सभा द्वारा की गई अनुशंसाओं और किए गए विनिश्चयों को कार्यान्वियत करना।

(11) अपनी क्षेत्रीय अधिकारिता के भीतर स्थित विनिर्दिष्ट जल क्षेत्र तक अपनी लघु जल निकायों की योजना बनाना और उनका प्रबन्ध करना।

(12) किसी लघु जल निकाय को, मछली पकड़ने और अन्य वाणिज्यिक प्रयोजनों के लिए विनिर्दिष्ट क्षेत्र तक पट्टे पर देना।

(13) सिंचाई के प्रयोजनों के लिए नदियों, जल स्रोतों, लघु जल निकायों के पानी के उपयोग को विनियमित करना।

NOTES

(14) सभी सामाजिक सेक्टरों में, ग्राम पंचायतों को अन्तरित या उनके द्वारा नियुक्त संस्थाओं और कृत्यकारियों पर नियंत्रण रखना।

(15) स्थानीय योजनाओं, संसाधनों और ऐसी योजनाओं के लिए व्ययों पर नियंत्रण रखना।

NOTES

खंड स्तर पर जनपद पंचायत

जनपद पंचायत के निर्वाचन के लिए निर्वाचन क्षेत्रों में जनपद पंचायत खंड के क्षेत्र को इस प्रकार विभाजित किया जाता है कि हर एक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या जहाँ तक साध्य हो पाँच हजार हो। पचास हजार से कम जनसंख्या पर कम से कम दस निर्वाचन क्षेत्र होंगे। उनमें जहाँ तक सम्भव हो एक-सी जनसंख्या रखी जाती है। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र एक सदस्यीय होगा अर्थात् प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र का एक ही प्रतिनिधि निर्वाचित होगा। एक जनपद में अधिक से अधिक सदस्यों का निर्वाचन वहीं हो सकेगा।

सदस्यों के निर्वाचन के पश्चात् यथाशीघ्र जनपद पंचायत के निर्वाचित सदस्यों का सम्मिलन अध्यक्ष या उपाध्यक्ष का निर्वाचन करने के लिए विहित प्राधिकारी द्वारा बुलाया जाता है। अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का चुनाव उन्हीं जनपद सदस्यों में से किया जाता है। जनपद पंचायत में भी अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों व महिलाओं के लिए सीटों के आरक्षण की व्यवस्था उसी तरह होगी जैसा कि ग्राम पंचायत में होती है। अध्यक्ष के पदों में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति व पिछड़े वर्गों के लोगों के लिए क्षेत्र की कुल जनसंख्या में उनके प्रतिशत के अनुपात में आरक्षण होगा। इसी प्रकार अध्यक्ष के कम से कम एक-तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित होंगे।

जनपद पंचायत का कार्यकाल पाँच वर्ष की अवधि के लिए होगा। अगर कोई जनपद पंचायत इस अवधि से पूर्व भंग हो जाती है तो विघटन की तिथि से 6 माह के अन्दर पुन: चुनाव हो जाने चाहिए। ऐसा कोई भी व्यक्ति जनपद पंचायत का सदस्य निर्वाचित हो सकेगा जिसका नाम उस क्षेत्र की मतदाता सूची में होगा साथ ही जो राज्य विधान मंडल का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता है और जिसने कम से कम 21 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली हो।

अपने आय के स्रोत के रूप में जनपद पंचायत को विभिन्न कर (Taxes) आदि लगाने का अधिकार होता है। प्रत्येक जनपद खंड में राज्य शासन द्वारा एक खंड विकास अधिकारी की नियुक्ति की जाती है जो जनपद अध्यक्ष के अधीन रहते हुए अपना कार्य करता है। जनपद पंचायत द्वारा पारित विकास सम्बन्धी सभी कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना इस अधिकारी का उत्तरदायित्व होता है। म.प्र. पंचायत राज अधिनियम, 1993 की धारा 50 में जनपद पंचायतों के प्रमुख 13 कृत्यों का उल्लेख है जिन्हें जनपद पंचायतों के द्वारा किया जाता है।

जिला पंचायत

जिला पंचायत पंचायती राज्य व्यवस्था के त्रिस्तरीय ढाँचे का तीसरा और अन्तिम स्तर है। राज्य सरकार अधिसूचना द्वारा किसी जिले को इतनी संख्या में निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित करेगी जिससे कि प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या यथाशक्य पचास हजार हो और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र एक सदस्यीय होगा परन्तु जहाँ किसी जिले की जनसंख्या पाँच लाख से कम है वहाँ उस जिले को कम-से-कम दस निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जाएगा और प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या यथाशक्य एक जैसी होगी। किन्तु एक जिले में 35 से अधिक निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या नहीं होगी। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र से प्रत्यक्ष मतदान द्वारा सदस्यों का निर्वाचन होगा। अर्थात् जिला पंचायत का गठन निम्न सदस्यों के द्वारा किया जाता है -

(i) अधिक से अधिक 35 निर्वाचित सदस्यों द्वारा।

(ii) सम्बन्धित जिले के लोकसभा के सदस्य और राज्य की विधानसभा के सदस्यों द्वारा।

(iii) उस जिले से सम्बद्ध राज्यसभा व राज्य के विधान परिषद् के सदस्यों को लेकर किया जाएगा।

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए जिला पंचायत में भी आरक्षण की वही व्यवस्था होगी जैसा कि जनपद पंचायत में है। जिला पंचायत का सदस्य निर्वाचित होने के लिए योग्यता का मापदंड वही है जैसा कि जनपद पंचायत के मामले में है। जिला पंचायत का कार्यकाल भी पाँच वर्ष की अवधि के लिए होगा और यदि कोई जिला पंचायत इस अवधि से पूर्व भंग हो जाती है तो विघटन की तिथि से 6 माह के अन्दर फिर से चुनाव सम्पन्न हो जाने चाहिए। जिला पंचायत के निर्वाचित सदस्यों द्वारा अपने में

(2) **सामुदायिक विकास और सहकारिता मंत्रालय-** "इस प्रकार लोकसभा से ग्राम सभा तक और संसद से पंचायत तक प्रजातंत्र की यात्रा होगी।'

(3) **इकबाल नारायण -** "लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण जनता के सहयोग के माध्यमों में से एक है, जिसका उद्देश्य शासन में अधिक से अधिक लोगों को सजीव उपाय द्वारा शामिल करना है।"

(4) **अलबर्ट लेवास्की -** "प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण मात्र प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों का प्रसारण है। जनता के उन अधिकारों का प्रसारण है, जिसकी सहायता से वे अपने निजी क्षेत्र और व्यक्तिगत मामलों में राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय व्यक्ति के अनावश्यक दखलअंदाजी से मुक्त हो सकें।"

संक्षेप में, लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण जनता और शासन के बीच शक्ति संतुलन की वह व्यवस्था है, जो जनता को अपनी स्वयं की समस्याओं को जानने और उन्हें सुलझाने में मदद करता है।"

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की विशेषताएँ

(1) प्रजातंत्र या लोकतंत्र का जन-सामान्य तक प्रसारण करना ही लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रमुख विशेषता है,

(2) इस व्यवस्था की सहायता से जनता सरकार के कार्यों में प्रत्यक्ष रूप से सहयोग देती है,

(3) इस व्यवस्था में जनता को निम्नलिखित कार्यों को सम्पादित करने की स्वतंत्रता रहती है -

(a) नीति, निर्धारण करना,

(b) योजनाओं को कार्यान्वित करना,

(c) निधि के स्रोतों का पता लगाना तथा उन पर नियंत्रण करना,

(d) प्रशासनिक कार्यों में स्वतंत्रता,

(e) प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन-प्रबन्ध में भागीदारी का अधिकार,

(5) विभिन्न समितियों और संगठनों द्वारा सुविधाओं और सेवाओं की उपलब्धि,

(6) क्षेत्रीय कार्यों में केन्द्रीय अधिकारों को सीमित करना।

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य

(1) **प्रजातंत्र की सफलता का आधार** - प्रजातंत्र में सत्ता कुछ खास व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो जाती है। इससे प्रजातंत्र अपने वास्तविक उद्देश्यों को प्राप्त करने में असफल हो जाता है। इसलिए प्रजातंत्र की सफलता के लिए सत्ता का विकेन्द्रीकरण आवश्यक है। श्री मेहता ने लिखा है कि- "यह स्वीकार किया जाता है कि कोई भी प्रजातंत्र विकेन्द्रीकरण के बिना सफल नहीं हो सकता है।"

(2) **प्रजातंत्र को वास्तविक बनाना** (To make democracy real) - प्रजातंत्र को वास्तविक आधार प्रदान करना भी लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण का उद्देश्य है। इसकी सहायता से अधिक से अधिक व्यक्ति प्रशासन के कार्यों में भाग लेते हैं। इसमें सत्ता का ऊपर से नीचे की ओर "संसद से ग्राम पंचायत की ओर" हस्तांतरण किया जाता है।

(3) **रामराज्य का प्रतीक** (Symbol of Ram Rajya)- भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण को रामराज्य का प्रतीक भी माना गया है। महात्मा गाँधी ने भारत के लिए "रामराज्य" की कल्पना की थी, जिसका उद्देश्य था भारतीय गाँवों की सम्वृद्धि? महात्मा गाँधी के आदर्श का साकार स्वरूप प्रदान करने के उद्देश्य से भी भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की स्थापना की गई थी।

(4) **विश्व-बन्धुत्व का आधार** (Basis of Universal Brotherhood)- अत्यन्त ही प्राचीन काल से भारत जीवन के हर क्षेत्र में विश्व बन्धुत्व का हामी रहा है। परिवार को ही विश्व- बन्धुत्व की इकाई माना गया है, जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो को आधारित करती है। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीयकरण विश्व-बन्धुत्व की भावना को प्रबल बनाता है।

(5) **राजनैतिक प्रशिक्षण** (Political Training)- प्रजातंत्र जनता द्वारा, जनता के लिए और जनता की सरकार है। इस सरकार की सफलता का आधार जनता है। इसलिए जनता को राजनीतिक दृष्टि से प्रशिक्षित होना

NOTES

NOTES

अनिवार्य है। प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण जनता को ग्राम पंचायतों से संसद तक पहुँचाती है तथा उसे ऐसा करने का राजनैतिक प्रशिक्षण भी देती है, इससे देश के कुशल नेतृत्व में मदद मिलती है।

(6) **कल्याणकारी राज्य** (Establishment of Welfare State)- भारतीय संविधान बनाने में भारत को कल्याणकारी राज्य बनाने की बात कही गई है, इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी भारत में लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण किया है, जिससे भारतीय गाँव आत्मनिर्भर बनें तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में अपने स्त्रोत का उपयोग करें। यही कारण है आज पंचायतें अनेक कल्याणकारी कार्यों का सम्पादन करती हैं, जिनमें स्वास्थ्य, शिक्षा, संरक्षण आदि प्रमुख है।

(7) **सामुदायिक विकास** (Community Development)- सामुदायिक विकास भारतीय प्रजातन्त्र का आधार है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिये भारत में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को अपनाया गया है। सामुदायिक विकास योजानाओं का प्रमुख उद्देश्य जनता के दृष्टिकोण को परिवर्तित करना है। सामुदायिक विकास योजनाओं को तभी सफलता प्राप्त हो सकती है, जब भारतीय लोकतंत्र का विकेन्द्रीकरण किया जाय। इसीलिए श्री. के.डे ने कहा था कि "सामुदायिक विकास का उद्देश्य है, पंचायती राज साधन।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि पंचायती राज मात्र राजनैतिक व्यवस्था नहीं है, अपितु यह जीवन का तरीका भी है। इसीलिए श्री मेहता ने लिखा है कि "पंचायती राज इस प्रकार जीवन का एक मार्ग है और सरकार को नवीन मार्ग से मिलाता है।"

व्यवहार में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण : पंचायत राज

पंचायतें प्राचीन भारतीय ग्रामीण समाज की आधारशिला थीं। वैदिक युग, रामायण युग, महाभारत काल एवं बौद्ध काल में भारतीय ग्रामों में पंचायतों का जाल बिछा था। बौद्ध- कालीन भारत में छोटे-छोटे गणराज्यों का अस्तित्व प्रमाणित ही है। प्राचीन भारत में इन पंचायतों को कार्यकरण की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। मुस्लिम शासनकाल में भी पंचायत का स्वतंत्र अस्तित्व था और वे कर वसूलती थी।

ब्रिटिश शासन काल में पंचायतों की प्रणाली को क्षति पहुँची, इसके साथ ही पुलिस प्रशासन एवं दीवानी-फौजदारी न्यायालयों की स्थापना, नगरीकरण तथा पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव में भारत के ग्राम पंचायतों की सत्ता एवं प्रभाव में ह्रास हुआ।

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. भारत में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पर निबन्ध लिखिए ।
   Write an essay on Democratic Decentralization in India.
2. ग्राम पंचायतों से आप क्या समझते हैं? इसके कार्यों की विवेचना कीजिए।
   What do you mean by Village Panchayats? Discuss its functions.
3. भारत में ग्राम पंचायतों की असफलता के क्या कारण हैं? इनकी सफलता के सुझाव दीजिये।
   What are the causes of failures of Village Panchayats in India? Give suggestions for their success.
4. ग्राम पंचायत पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
   Write short essay on Village Panchayats.
5. मध्यप्रदेश के विशेष संदर्भ में ग्राम पंचायतों की विवेचना ।
   Discuss Village Panchayats with special reference to Madhya Pradesh.
6. ग्रामीण समस्याओं को समाप्त करने में ग्राम पंचायतों के योगदान की विवेचना कीजिए
   Discuss contribution of Village Panchayats in solving rural problems.
7. ग्रामीण पुनर्निर्माण में ग्राम पंचायतों के योगदान की विवेचना कीजिए।
   Discuss the role of Village Panchayats in rural reconstruction.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
Write a short note on the following–

1. पंचायती राज का अर्थ।
   Meaning of Panchayati Raj.
2. पंचायतों का महत्व।
   Importance of Panchayats.
3. लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की परिभाषा।
   Definition of Democratic Decentralization.
4. 73वाँ संविधान संशोधन।
   73rd constitution Amendment.
5. ग्राम पंचायतों में आरक्षण।
   Reservation in Village Panchayats.

(C) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

नीचे प्रत्येक प्रश्न के चार वैकल्पिक उत्तर दिए गए हैं। इनमें से एक सही उत्तर का चयन कीजिए-

(i) "यदि हमारी स्वाधीनता जनता की आवाज की प्रतिध्वनि है तो पंचायतों को जितनी अधिक शक्ति मिले, जनता के लिए उतनी ही भली है...।" यह किसका कथन है -
(अ) पं जवाहर लाल नेहरू (ब) महात्मा गाँधी
(स) विनोबा भावे (द) बलवन्त राय मेहता

(ii) भारत एक -
(अ) शहरों का देश है (ब) गाँवों का देश है (स) कबीलों का देश है (द) नदियों का देश है

(iii) कौन ग्राम पंचायतों को रामराज्य का आदर्श मानते थे -
(अ) विनोबा भावे (ब) सरदार पटेल (स) महात्मा गाँधी (द) चाणक्य

(iv) ग्राम पंचायतों की शुरूआत का श्रेय किसे जाता है -
(अ) महात्मा गाँधी (ब) पं. जवाहर लाल नेहरू (स) विनोबा भावे (द) इन्दिरा गाँधी

(v) पंचायती राज से सम्बन्धित विधेयक, संविधान (73वाँ संशोधन) अधिनियम सम्पूर्ण भारत में कब लागू हुआ था -
(अ) 24 अप्रैल, 1992 में (ब) 24 अप्रैल, 1993 में
(स) 24 अक्टूबर, 1993 (द) 24 अप्रैल, 1994 में

(vi) सामान्यतः पंचायतों का कार्यकाल कितने वर्ष होता है -
(अ) दो वर्ष (ब) तीन वर्ष (स) चार वर्ष (द) पाँच वर्ष

(vii) पंचायतों का चुनाव किसी देख-रेख में होता है -
(अ) चुनाव आयोग (ब) मुख्यमंत्री (स) राज्य चुनाव आयुक्त (द) उच्च न्यायालय

(viii) पंचायतों की वित्तीय स्थिति की समीक्षा के लिए वित्त आयोग की नियुक्ति कब होती है-
(अ) प्रति वर्ष (ब) दो वर्ष बाद
(स) प्रत्येक तीन वर्ष (द) प्रत्येक पाँच वर्ष में एक बार

उत्तर (i) अ, (ii) ब, (iii) स, (iv) ब, (v) ब, (vi) द, (vii) स, (viii) द।

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

10

NOTES

नगरीय प्रवर्जन-अर्थ, विशेषताएँ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व
(URBAN MIGRATION - MEANING, CHARACTERISTICS, NATURE, SCOPE AND IMPORTANCE)

प्रवास शब्द का सबसे पहले प्रयोग **राबन्स्टीन** ने अपने शोध-पत्र 'प्रवास के नियम' में 1885 में किया था। किसी भी क्षेत्र में जनसंख्या के पुनर्वितरण की प्रवृत्ति को समझने के लिए प्रवास की मात्रा (Quantity), दिशा (Direction), विशेषताएँ (Characteristics) तथा कारणों (Causes) की आवश्यकता होती है। इससे जनसंख्या की गतिशीलता का भी ज्ञान होता है। संक्षेप में जनसंख्यात्मक परिवर्तन को जानने समझने के लिए प्रवास का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

यदि मानव समाज के उद्विकास (Evolution) का अध्ययन किया जाए तो उपर्युक्त कथन का अपने आप प्रमाणीकरण हो जाएगा। आखेट और पशुपालन की अवस्थाओं में मानव अपने शिकार तथा पशुओं के चारे और पानी के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को भटकता रहता था। इन अवस्थाओं के बाद कृषि की अवस्था में जीवन में कुछ स्थायित्व अवश्य आया किन्तु प्रवास की अखिल धारा नहीं रुकी। झूम खेती (Shiefing Cultivation) की प्रवृत्ति के कारण मानव प्रति वर्ष एक स्थान से दूसरे स्थान की तलाश खेती के लिए करता रहा। पशुओं के चारों और पानी के कारण भी उसे स्थायित्व नहीं मिला। कालान्तर में औद्योगिक युग (Industrial Age) आया और इस युग ने तो मानव की प्रवासी प्रवृत्ति को काफी प्रोत्साहित किया। आज प्रवास व्यक्ति की आदत का अभिन्न अंग हो गया है। एक स्थान से दूसरे स्थान को जाना व्यक्ति की आदत में शुमार होता जा रहा है। खासकर नगरीय समाजों में इस प्रकार की प्रवृत्ति का ज्यादा ही विकास हुआ है। आज व्यवसाय तथा बेहतर जीवन की तलाश में गाँवों से नगरों की ओर पलायन तेजी से हुआ है। इससे जहाँ आर्थिक विकास का मार्ग प्रशस्त हुआ है, वहीं अनेक सामाजिक तथा सांस्कृतिक समस्याओं का जन्म और विकास हुआ है।

प्रवास समंकों के स्रोत
(Sources of Migration Statistics)

मौलिक प्रश्न यह है कि प्रवास से सम्बन्धित आँकड़ों का स्रोत क्या है? वह कौन सा माध्यम है, जिसके द्वारा प्रवास से सम्बन्धित आँकड़ों का ज्ञान होता है। प्रवास से सम्बन्धित आँकड़े निम्नलिखित दो स्रोत से प्राप्त होते हैं-

1. भारतीय जनगणना (Census of India)
2. राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (National Sample Survey)।

विभिन्न जनगणना में प्रवास के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने के लिए अलग से कालम बनाए जाते हैं, जिन्हें घर-घर जाकर भरा जाता है। फिर इनका संग्रहण और विश्लेषण किया जाता है।

प्रवास की अवधारणा
(Concept of Migration)

जनांकिकीय परिवर्तन अथवा जनसंख्या में होने वाले प्रमुख परिवर्तन निम्नलिखित तीन है :

(a) प्रजनन, (b) मृत्यु क्रम एवं (c) प्रवास।

हावले ने लिखा है कि - 'सभ्य पुरुष वे हैं, जिनके पास अधिक मात्रा में गतिशीलता है।' यदि इसे इस प्रकार कहा जाये कि प्रवास ही संसार की जनसंख्या के विकास का मूल है, तो अतिश्योक्तिपूर्ण नहीं होगा। संसार के इतिहास की सारी घटनाएँ प्रवास का ही परिणाम हैं। अमेरिका की उन्नति का सारा इतिहास योरोपीय प्रवास का ही परिणाम है।

जनसंख्या की गतिशीलता के दो परिणाम होते हैं :

(i) अन्य स्थानों से किसी स्थान पर आने की प्रक्रिया को अन्तर्गमन (Immigration) कहा जाता है। इस अन्तर्गमन के कारण जो व्यक्ति बाहर से आते हैं, उन्हें आगन्तुक (Immigrants) कहा जाता है।

(ii) इसके विपरीत एक स्थान से बाहर जाने की क्रिया को बहिर्गमन (Emigration) कहा जाता है तथा जो व्यक्ति बाहर जाते हैं, उन्हें बहिर्गन्तुक (Emigrants) कहा जाता है।

प्रवास में अन्तर्गमन एवं बहिर्गमन दोनों सम्मिलित हैं। इस प्रकार अन्तर्गमन एवं बहिर्गमन सापेक्ष अवधारणाएँ हैं। इन दोनों अवधारणाओं में जो अन्तर है, वह मात्र दृष्टिकोण का है। जो व्यक्ति दूसरे स्थान से आकर एक स्थान में बसता है, वह कहीं से प्रवासित होता है। अतः एक स्थान का अन्तर्गमन दूसरे स्थान का बहिर्गमन होता है।

प्रवास की परिभाषा
(Definition of Migrations)

(1) **डेविड हीर** : 'अपने स्वाभाविक निवास से अलग होना प्रवास है।'

(2) **बर्गेल** : 'प्रवास मानव जनसंख्या में स्थानान्तरण के लिए प्रयुक्त नाम है।'

(3) **डॉ. एस.सी.दुबे** : 'प्रवास सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा जनसंख्या का अन्तर्गमन तथा बहिर्गमन होता है।'

इस प्रकार 'प्रवास वह प्रक्रिया है जो जनसंख्या को एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर की गतिशीलता को रेखांकित करती है'।

प्रवर्जन का महत्व
(Importance of Migration)

प्रवर्जन समाज की महत्वपूर्ण जनांकिकी घटना है इससे जनसंख्या पर व्यापक पैमाने पर प्रभाव पड़ता है लेकिन नगरीय समाज में इसका विशेष महत्व देखा गया है **एडवर्ड रॉस** (Edward Ross) के अनुसार नगरों में निरंतर प्रवर्जन होने के कारण नगर में गतिशीलता बनी रहती है।

(1) ग्रामीण क्षेत्रों में नगरों की ओर प्रवर्जन होने से ग्रामीण क्षेत्रों की भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम होने से यहाँ पर भूमि का विखंडन रुक जाता है।

(2) प्रवर्जन से श्रमिकों की माँग और पूर्ति में सामंजस्य स्थापित हो जाता है जिससे नगरीय आय में वृद्धि होती है जिससे अर्थव्यवस्था का संतुलित विकास होता है।

(3) प्रवर्जन से एकता की भावना विकसित होती है। एक स्थान पर दूसरे स्थान से व्यक्ति के आने पर वे एक दूसरे की संस्कृति, परम्परा, रीति-रिवाज से परिचित होते हैं अर्थात् प्रवर्जन से समाज में भावनात्मक एकता का विकास होता है।

(4) प्रवर्जन जनांकिकी की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण होता है। स्वास्थ्य सेवाओं की नगरों में सुलभता से जीवन स्तर ऊँचा उठता है।

(5) प्रवर्जन का एक लाभ यह भी है कि इससे व्यक्ति को नगरीकरण के समस्त लाभ प्राप्त हो जाते हैं। नगरों में गाँव की तुलना में शिक्षा, स्वास्थ्य, परिवहन, संचार, मनोरंजन, रोजगार, तकनीकी प्रशिक्षण आदि की सुविधायें अधिक होने से ग्रामीण व्यक्ति यहाँ आकर लाभांवित होता है।

(6) प्रवर्जन गरीबी दूर करने में महत्वपूर्ण होता है।

(7) सांस्कृतिक प्रवाह में प्रवर्जन का महत्वपूर्ण स्थान है।

(8) प्रवर्जन का मौसमी और स्थायी बेरोजगारी दूर करने में महत्व होता है।

(9) प्रवर्जन अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। पंजाब, गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा की कृषि अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण में म.प्र., उ.प्र., बिहार, छत्तीसगढ़ के प्रवर्जित श्रमिकों की मुख्य भूमिका है।

NOTES

नगरीय प्रवर्जन का अर्थ एवं विशेषताएँ
(Meaning and Characteristics of Urban Migration)

"नगरीय प्रवर्जन या प्रवास उस स्थिति को कहा जाता है जिसमें नगर में कहीं बाहर से जनसंख्या आकर रहने लगती है या नगर की जनसंख्या किसी अन्य नगर में जाकर रहने लगती है अर्थात् प्रवर्जन के कारण जब नगरीय जनसंख्या प्रभावित होती है तो उसे नगरीय प्रवर्जन या प्रवास कहा जाता है।" नगरीय प्रवर्जन की विद्वानों ने निम्नांकित विशेषताएँ बताई हैं–

(1) प्रवर्जन के कारण नगरीय जनसंख्या प्रभावित होती है।

(2) वह प्रवर्जन जिसमें व्यक्ति आर्थिक कारण से एक नगर से दूसरे नगर में चले जाते हैं।

(3) नगरीय प्रवर्जन में जनसंख्या गाँव से नगर और नगर से नगर में जाती है।

(4) नगरीय प्रवर्जन छोटे शहरों से बड़े शहरों की ओर होता है।

(5) नगरीय प्रवर्जन में पुरुषों का प्रतिशत अधिक होता है।

(6) नगरीय प्रवर्जन में इच्छा पर अधिक निर्भर करता है।

नगरीय प्रवर्जन के लक्षण
(Characters of Urban Migration)

समाज में जब जनसंख्या का एक भाग अपने ग्रामीण जन्म स्थान को छोड़कर नगर में आकर रहने लगता है या किसी विशेष नगरीय क्षेत्र में रहने वाले लोग दूसरे नगरीय या ग्रामीण स्थानों में जाकर रहना आरम्भ कर देते हैं तो इसे नगरीय प्रवर्जन कहते हैं अर्थात् नगरीय जनसंख्या जब गाँव या नगर से जनसंख्या के आने-आने के कारण प्रभावित होती है तो उसे नगरीय प्रवर्जन कहा जाता है। नगरीय प्रवर्जन का अध्ययन कर विद्वानों ने इसके निम्नांकित लक्षण स्पष्ट किये हैं–

(1) नगरीय प्रवर्जन का सम्बन्ध समाज के उन लोगों से है जो नौकरी, व्यवसाय, राजनीति, आर्थिक कारणों के कारण अपना मूल निवास स्थान छोड़कर दूसरे नगर में रहने लगते हैं।

(2) नगरीय प्रवर्जन में अधिकांशतः गाँवों से नगरों में व्यक्ति प्रवास करते हैं। नगर से गाँव की ओर कम लोग ही प्रवास करते हैं।

(3) नगरीय प्रवास में सामान्यतः छोटे नगरों से व्यक्ति बड़े नगरों की ओर प्रवास करते हैं।

(4) नगरीय प्रवर्जन में अधिकांशतः स्त्रियों की तुलना में पुरुषों की संख्या अधिक होती है।

(5) अपने राज्य को छोड़कर किसी दूसरे राज्य के नगरों में जाकर बसने का बाह्य प्रवासी या बाह्य प्राव्रजक कहते हैं। मुम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद में बिहार, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान के लोगों की संख्या अधिक है।

नगरीय प्रवर्जन के कारक
(Factors of Urban Migration)

नगरीय प्रवर्जन का अध्ययन कर विद्वानों ने इसके निम्नलिखित प्रमुख कारकों की व्याख्या की है–

(1) आर्थिक कारक (Economic Factor)– नगरीय प्रवर्जन में सबसे प्रमुख आर्थिक कारक है। आर्थिक कारणों के कारण ही व्यक्ति गाँव से नगर एवं नगर से नगर की ओर प्रवर्जन करता है। मुम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद, बंगलरु, आगरा, इन्दौर, जबलपुर, भोपाल में होने वाले प्रवर्जन का मूल कारण आर्थिक ही है।

(2) सामाजिक कारक (Social Factor)– आधुनिकता, पश्चिमीकरण एवं नगरीकरण के कारण नगरों के प्रति जनसाधारण का आकर्षण बढ़ता जा रहा है। वहीं नगरों में स्वतंत्रता, सामाजिक गतिशीलता, जातीय भेदभाव का अभाव, रूढ़ियों का अभाव आदि सामाजिक कारकों के कारण प्रवर्जन अधिक होता है।

(3) शैक्षणिक कारक (Education Factor)– नगरों में प्रवर्जन का एक प्रमुख कारण शैक्षणिक भी है। नगरों में विविध प्रकार के उन्त एवं उच्च स्तरीय शैक्षणिक संस्थानों के कारण युवा वर्ग प्रवर्जन करता है।

वाराणसी, इलाहाबाद, जबलपुर, अहमदाबाद, दिल्ली, आगरा, अलीगढ़, पूना, बंगलुरु में उच्च शैक्षणिक संस्थानों के कारण प्रवर्जन होता है।

(4) राजनैतिक कारक (Political Factor)— वर्तमान में नगर राजनैतिक क्रियाओं के प्रमुख केन्द्र हो गये हैं। नगरों में राजनैतिक दलों के कार्यालय, राजनीति की संभावनाएँ होने के कारण ही आज सर्वाधिक प्रवर्जन हो रहा है। दिल्ली, लखनऊ, भोपाल, राजधानी होने के कारण राजनीति के केन्द्र हैं अतः यहाँ राजनैतिक प्रवास का प्रतिशत अधिक है।

(5) आतंकवाद (Terrorism)— नगरीय प्रवर्जन में आतंकवाद भी प्रमुख कारक है। पंजाब, कश्मीर में आतंकवाद के कारण प्रवर्जन हो रहा है। मध्य प्रदेश में बालाघाट, मंडला, डिण्डौरी में नक्सली गतिविधियों के कारण व्यक्ति सुरक्षा की दृष्टि से गाँव, शहर छोड़कर अन्यत्र प्रवास कर रहे हैं।

(6) प्राकृतिक कारक (Natural Factor)— नगरीय प्रवास का एक कारण प्राकृतिक आपदाएँ भी हैं। भूकम्प, बाढ़, महामारी से बचने के लिए गाँवों से अधिकांश व्यक्ति शहरों और शहरों से अन्य शहरों की ओर प्रवास करते हैं। 26 जुलाई, 2005 को मुम्बई में बाढ़ से हुए विनाश के कारण अधिकांश व्यक्ति पूना, नासिक, नागपुर की ओर प्रवास कर रहे हैं। अतः इसे प्राकृतिक कारकों के कारण होने वाला प्रवास कहेंगे।

नगरीय प्रवास के प्रकार
(Forms of Urban Migration)

नगरीय प्रवास के प्रकार निम्न हैं—

(1) आन्तरिक प्रवास (Internal Migration)

(2) स्थायित्व प्रवास (Stable Migration)

(3) बाह्य प्रवास (External Migration)

(1) आन्तरिक प्रवास (Internal Migration)—

आन्तरिक स्तर पर होने वाला प्रवास आन्तरिक प्रवास कहलाता है यह निम्न तीन प्रकार से होता है—

(i) गाँव से नगर में होता है,

(ii) नगर से नगर में होता है,

(iii) नगर से गाँव में होता है।

इस प्रकार के प्रवास करने वाले लोगों में उन लोगों की संख्या सबसे अधिक होती है जो कि अपने जन्म के मूल ग्रामीण स्थान को छोड़कर नगर में आजीविका पालन के लिये आकर बस जाते हैं। यह प्रवास गाँव से नगर की ओर होता है। उदाहरणार्थ— रायसेन, सीहोर जिले के ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों का भोपाल शहर में जीविकोपार्जन (आटो/टैक्सी चलाने, भवन निर्माण कार्य करने) के लिए आना। नगरीय प्रवास के आन्तरिक प्रकार में अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि लगभग 15-20 प्रतिशत व्यक्ति गाँव छोड़कर नगरों के निवासी बन रहे हैं।

आन्तरिक प्रवास के दूसरे स्वरूप में नगर से नगर में प्रवास का प्रवाह (Current of Migration) होता है। विभिन्न जनसंख्या अध्ययनों के अनुसार ज्ञात हुआ है कि नगर से नगर प्रवर्जन का देश में 8-10 प्रतिशत है। इस प्रकार प्रवर्जन सामान्यतः शासकीय, अशासकीय नौकरियों में कार्यरत व्यक्तियों द्वारा किया जाता है।

आन्तरिक प्रवास के तीसरे स्वरूप में प्रवर्जन नगर से गाँव की ओर होता है। इसमें सामान्यतः नगर से गाँव में व्यापार, शासकीय कार्यों हेतु प्रवर्जन होता है। सामान्यतः नगरीय महिलाओं का ग्रामीण क्षेत्रों में 'विवाह' होना भी इसमें सम्मिलित है।

भारत में आन्तरिक प्रवास (Internal Migration in India)

भारत में भी प्रवास गतिशील है। यह प्रवास दोनों प्रकार का है। जहाँ तक अन्तर्राष्ट्रीय प्रवास का प्रश्न है भारत में प्रति वर्ष हजारों की संख्या में डॉक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर तथा अन्य वर्गों के व्यक्ति जीवन के अच्छे अवसरों की तलाश में विदेश जा रहे हैं। इसे ही 'बौद्धिक बहिर्गमन' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसके अतिरिक्त भारत में आन्तरिक प्रवास भी गतिशील है। इस आन्तरिक प्रवास में ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की

NOTES

NOTES

ओर प्रवास मुख्य है। सन् 1961 की जनगणना से पहले भारत में आन्तरिक प्रवास सम्बन्धी आँकड़ों का संकलन नहीं किया जाता था। 1961 की जनगणना में आन्तरिक प्रवास से सम्बन्धित आँकड़ों की जानकारी प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित प्रश्नों को सम्मिलित किया गया था।

(a) जन्म स्थान,

(b) ग्रामीण अथवा नगरीय,

(c) जिला, प्रदेश एवं देश,

(e) आखिरी निवास स्थान,

(e) वर्तमान स्थान पर निवास की अवधि।

भारत में आन्तरिक प्रवास में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है- वह है ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर प्रवास। निम्न तालिका में भारत में ग्रामीण जनसंख्या के नगरों की ओर प्रवास को दिखाया गया है:

क्र.सं.	वर्ष	ग्रामीण (प्रतिशत)	नगरीय (प्रतिशत)
1	1921	88.8	11.2
2	1931	88.00	12.00
3.	1941	86.1	13.9
4.	1951	82.6	16.3
5.	1961	82.0	18.0
6.	1971	80.1	19.9
7	1981	76.24	23.76
8.	1991	74.28	25.72
9.	2001	72.2	27.8

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रामीण जनसंख्या शहरों की ओर प्रवासित हो रही है। शहर एक ऐसे विकसित क्षेत्रों के प्रतीक बनते जा रहे हैं, गाँवों की तुलना में जीवनयापन के अवसर अधिक होते हैं। प्रो. विडाल डी.ला ब्लाश ने लिखा है कि "एक नगर एक व्यापक क्षेत्रीय संगठन होता है, यह सभ्यता के उस स्तर का प्रतिनिधित्व करता है, जिस तक कुछ देश नहीं पहुँच पाए हैं और शायद कभी पहुँच भी न सकें" बर्कले ने भी लिखा है कि वर्तमान में प्रवास की मूल प्रवृत्ति ग्रामीण-नगरीय है। आज जनसंख्या का एक भाग कृषि के नए क्षेत्रों की खोज न करके शहरों तथा कस्बों में चले जाते हैं। शहरों में रोजगार का विस्तृत क्षेत्र होता है तथा गाँव की अपेक्षा जीवन पद्धतियाँ होती हैं। इसी प्रकार अन्य आकर्षण व्यक्ति को शहरों की ओर खींचते हैं।

(2) स्थायित्व प्रवास (Stable Migration)—

भारतीय नगरों में होने वाले प्रवर्जन का एक स्वरूप स्थायित्व प्रवास भी है। स्थायित्व प्रवास अर्थात् जब व्यक्ति स्थायी रूप से एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रवासित होता है। यह दो प्रकार का होता है—

(a) अस्थायी नगरीय प्रवास (Temporary Urban Migration)— प्रवर्जन का वह स्वरूप जिसमें व्यक्ति गाँव से नगर या नगर से नगर या नगर से गाँव की ओर एक सीमित अवधि के लिये जाता है तो उसे हम अस्थायी नगरीय प्रवास कहते हैं। इस प्रकार के प्रवास में व्यक्ति एक सीमित अवधि में नगर में जाकर अधिक से अधिक आर्थिक साधन प्राप्त करना चाहते हैं। इसमें नगर में आवास की कमी के कारण व्यक्तियों का अपने मूल आवासीय स्थल से निरन्तर सम्बन्ध रहता है।

(b) स्थायी नगरीय प्रवास (Permanent Urban Migration)— नगरीय प्रवास का वह स्वरूप जिसमें व्यक्ति अपने मूल परिवार के साथ जन्म स्थान से भिन्न किसी दूसरे नगर में आजीविका के लिये अपना स्थायी निवास बना लेता है और वहीं से अपनी सभी आर्थिक एवं सामाजिक गतिविधियाँ संचालित करता है स्थायी नगरीय प्रवास कहते हैं। यहाँ पर रहते हुए धीरे-धीरे अपने मूल रिश्तेदारों से उसके सम्बन्धों की दूरी बढ़ने लगती है और कुछ समय बाद ये सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। सामान्यतः ऐसा प्रवास उनके द्वारा किया जाता है जो गाँव या

नगर से दूसरे नगरीय क्षेत्र में जाकर स्थायी रूप से बस जाते हैं। उदाहरणार्थ– बिहार, उत्तर प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड आदि से हजारों व्यक्ति रोजगार की प्राप्ति के लिये मुम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद, बंगलुरु, हैदराबाद, इन्दौर, जबलपुर, कोलकाता, आगरा, लखनऊ, वाराणसी आते हैं।

(3) बाह्य प्रवास (External Migration)–

बाह्य नगरीय प्रवास सामान्यतः उस प्रवास को कहते हैं जिसमें कुछ व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह अपना देश छोड़कर दूसरे देश में जाकर रहने लगता है। इस प्रकार का प्रवास विकसित एवं विकासशील देशों के बीच आर्थिक, शैक्षणिक, तकनीकी, राजनैतिक सम्बन्धों और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये किया जाता है। आज भारत से इंजीनियर, डॉक्टर, व्यापारी आदि अमेरिका, कनाडा, फ्रांस, इंग्लैण्ड, जर्मनी, अरब देशों में निरन्तर आजीविका हेतु प्रवासित हो रहे हैं।

नगरीय प्रवर्जन को प्रोत्साहित करने वाले कारक
(Factors Encouraging Urban Migration)

प्रवर्जन या प्रवास मानव समाज की एक महत्वपूर्ण जनांकिकीय घटना है क्योंकि इसमें जनसंख्या का आकार, वितरण और संरचना प्रभावित होती है। सामान्यतः हम प्रवर्जन या प्रवास का प्रयोग जनसंख्या के आवागमन की प्रक्रिया से लेते हैं। इसी परिप्रेक्ष्य में ग्रामीण जनसंख्या के आवागमन को ग्रामीण प्रवर्जन और नगरीय जनसंख्या के आवागमन को नगरीय प्रवर्जन कहते हैं। नगरीय प्रवर्जन वर्तमान में एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। नगरीय प्रवर्जन की व्याख्या के लिये कोई विशेष कारक या दशा महत्वपूर्ण नहीं होती है क्योंकि देखा गया है कि नगरीय प्रवास में कभी कोई कारण प्रभावी होता है तो कभी कोई कारण। सामान्यतः देखा गया है कि नगरीय प्रवास में आकर्षक/खिंचाव कारण (Pull factors) और दबाव कारक (Push factors) की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। नगरीय प्रवास का अध्ययन कर विद्वानों ने इसे प्रोत्साहित करने वाले निम्नांकित कारक स्पष्ट किये हैं–

(1) सामाजिक कारक (Social Factor)– औद्योगीकरण के कारण नगरों के विकास से नगर आकर्षण का केन्द्र बन गये हैं। आज छोटे से छोटा नगर भी समीपस्थ गाँव के निवासियों की दिनचर्या और दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये एक केन्द्र की तरह होता है। नगरीय जीवन विधि ग्रामीण जीवन से पूर्णतया पृथक् होती है। ग्रामीण जीवन जहाँ परम्परावादी और दबाव मूलक होता है वहीं नगरीय जीवन आधुनिक और स्वतंत्र होता है आधुनिक और स्वतंत्रता पर आधारित जीवनचर्या के कारण ही नगरों में सामाजिक सम्बन्ध, सामाजिक चेतना, सामाजिक गतिशीलता गाँव की अपेक्षा तीव्र होती है। सामाजिक स्तरीकरण के खुलेपन के कारण ही नगर स्वतः ही समाज के लिये आकर्षण बिन्दु होते हैं, इसलिये नगरों में प्रवास की प्रक्रिया अधिक होती है।

(2) आर्थिक कारक (Economic Factor)– नगरीय प्रवास में निरन्तर हो रही वृद्धि के लिये सर्वाधिक महत्वपूर्ण आर्थिक कारक हैं। नगरीय प्रवर्जनों के विभिन्न अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश प्राव्रजक बेहतर आर्थिक अवसरों के कारण ही अपने जन्म स्थान को छोड़कर दूसरे नगरीय स्थान में प्रवास कर रहने लगते हैं। भारत में मुंबई, दिल्ली, बंगलुरु, अहमदाबाद, हैदराबाद आदि शहरों में गाँवों और छोटे नगरों से हजारों की तादाद में व्यक्ति आर्थिक स्थिति की सुदृढ़ता के लिये ही प्रवास करते हैं। इसी तरह आज भारत से इंग्लैण्ड, कनाडा, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, गल्फ देशों में होने वाले प्रवास का भी मूल कारण भारत में बेरोजगारी और सीमित आय होना है।

(3) धार्मिक कारक (Religious Factor)– भारत में नगरीय प्रवास को प्रोत्साहित करने वाले कारकों में एक धार्मिक कारक भी महत्वूपर्ण है। वाराणसी, मथुरा, उज्जैन, हरिद्वार, इलाहाबाद, तिरुपति आदि धार्मिक नगरों में धार्मिक कार्यों के सम्पादन के लिये मुख्यतया दक्षिण भारत के नंबूदरी ब्राह्मण पूजा-पाठ करने के लिये आये हैं। इसके साथ ही यहाँ पर व्यापार की दृष्टि के साथ ही साथ धार्मिक कार्यों की पूर्ति के लिये प्रतिवर्ष स्थायी और अस्थायी रूप से प्रवास करते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिये बहुत से व्यक्ति अपना घर-द्वार छोड़कर बनारस में बस गये हैं।

(4) शैक्षणिक कारक (Educational Factor)– शिक्षा नगरीय प्रवास का एक अति महत्वपूर्ण कारक है। आज समाज में विशेषीकरण, वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान में सतत् वृद्धि होने के कारण शहरों में तकनीकी, चिकित्सा, संचार, प्रबन्धकीय शैक्षणिक संस्थान में निरन्तर वृद्धि हो रही है और यहाँ पर उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये समीपस्थ छोटे नगरों और गाँवों से हजारों छात्र प्रवास कर रहे हैं। भोपाल में करीब 100 इंजीरियरिंग कॉलेज, 10 नर्सिंग कॉलेज, 10 डेण्टल कॉलेज, 4 मेडीकल कॉलेज, इन्दौर में भी कई निजी विश्वविद्यालय व कॉलेजों की

NOTES

स्थापना होने से इन शहरों में अन्य क्षेत्रों से आकर अनेक छात्र प्रवास कर रहे हैं। वहीं आज दिल्ली, पूना, हैदराबाद, बंगलुरु में सर्वाधिक छात्रों के प्रवास का कारण उच्च शिक्षा प्राप्त करना है।

(5) राजनैतिक कारक (Political Factor)— नगरीय प्रवर्जन प्रोत्साहित करने में राजनैतिक कारकों की भी भूमिका देखी गई है। राजनैतिक दलों के कार्यकर्ताओं का अपने दल के विस्तार के लिये सदैव प्रवास होता है। भारत में 1980 के दशक में पंजाब में आतंकवाद के बढ़ने, कश्मीर में आतंकवाद और देश के विभिन्न इलाकों में नक्सलवाद के कारण भी लोगों ने इन क्षेत्रों से सुरक्षित क्षेत्रों की ओर प्रवास किया है अर्थात् राजनैतिक दशाएँ भी प्रवास का एक कारण हैं।

(6) मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factor)— नगरीय प्रवर्जन को प्रभावित करने में मनोवैज्ञानिक कारक भी महत्वपूर्ण है। गाँवों में एक लम्बे समय तक रह लेने के बाद भी व्यक्ति अपनी वर्तमान स्थिति में सुधार नहीं कर पाता है तो उस पर मनोवैज्ञानिक रूप से स्थान परिवर्तन करने का दबाव बढ़ने लगता है, और इस मनोवैज्ञानिक दबाव के चलते व्यक्ति महानगर एवं नगरों में व्यवसाय, मजदूरी एवं नौकरी आदि करने के लिए प्रवास करता है।

उपर्युक्त कारणों से स्पष्ट होता है कि प्रत्येक नगर अपने समीपस्थ छोटे-छोटे गाँवों और नगरों के लिये आकर्षण का केन्द्र होने के कारण प्रवास की प्रक्रिया में वृद्धि करता है।

प्रवास के प्रकार के अनुसार लिंगानुपात
(Sex Ratio according to Type of Migration)

जैसा कि ऊपर लिखा गया है, भारत में स्त्रियों की तुलना में पुरुषों में प्रवास की प्रवृत्ति अधिक है। धीरे-धीरे इस प्रकार की प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ है और स्त्रियों में भी प्रवासिता की प्रवृत्ति बढ़ी है। इसका कारण जागरूकता तथा शिक्षा का विकास है। साथ ही आर्थिक आवश्यकताओं में वृद्धि भी है। 1971 तथा 1981 की जनगणना के आधार पर प्रवास में लिंगानुपात को निम्न तालिका में दिखाया गया है-

भारत में प्रवास में लिंगानुपात

वर्ष और प्रकार	प्रवासियों का लिंगानुपात
1971	
ग्राम से ग्राम	2222
नगर से ग्राम	1136
ग्राम से नगर	840
नगर से नगर	926
1981	
ग्राम से ग्राम	2439
नगर से ग्राम	1266
ग्राम से नगर	1000
नगर से नगर	1111

अन्तर्राज्यीय प्रवास
(Inter State Migration)

अन्तर्राज्यीय प्रवास का तात्पर्य एक राज्य से दूसरे राज्य में प्रवास है। उदाहरण के लिए भारत में जब केरल राज्य का प्रवासी मध्यप्रदेश में आता है तो इसे अन्तर्राज्यीय प्रवास के नाम से जाना जाता है। भारत में वे राज्य के आकार में तुलनात्मक रूप से छोटे हैं, वहाँ ईसाई जनसंख्या का उच्च अनुपात है। यही साक्षरता की दर ऊँची है। यही कारण है कि इन राज्यों में प्रवास की प्रवृत्तियाँ अधिक हैं। इसके विपरीत जो राज्य आकार में बड़े हैं, वहाँ तुलनात्मक रूप से अन्तर्राज्यीय प्रवास कम है। भारत में अन्तर्राज्यीय प्रवास की दर और मात्रा को निम्न तालिका में दिखाया गया है-

भारत में अन्तर्राज्यीय प्रवास

राज्य/संघीय	क्षेत्रराज्य/संघीय क्षेत्र की जनसंख्या में सकल प्रवास का प्रतिशत	सकल प्रवासियों में अन्त:प्रवासियों का प्रतिशत	सकल प्रवासियों में बाह्य प्रवासियों का प्रतिशत
नागालैण्ड	35.09	92.85	7.15
त्रिपुरा	25.66	94.85	5.15
सिक्किम	22.15	83.97	1..03
हरियाणा	21.52	58.45	41.55
पंजाब	18.17	57.02	42.98
पश्चिम बंगाल	11.99	85.29	14.71
हिमाचल प्रदेश	11.95	45.22	54.78
मेघालय	10.31	89.51	10.49
महाराष्ट्र	9.84	75.72	24.28
राजस्थान	9.26	46.40	53.60
कर्नाटक	8.53	52.55	47.45
मध्यप्रदेश	7.39	61.25	38.75
गुजरात	5.02	55.03	44.97
उत्तरप्रदेश	6.19	28.65	71.35
केरल	5.87	24.16	75.84
बिहार	5.79	34.63	65.37
तमिलनाडु	5.48	45.49	54.51
उड़ीसा	4.93	58.62	41.38
आन्ध्रप्रदेश	4.17	40.22	59.78
मणिपुर	3.71	62.91	37.09
जम्मू और कश्मीर	3.68	55.91	44.09
चंडीगढ़	82.68	86.44	13.56
दिल्ली	51.90	87.37	12.63
अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह	48.80	93.95	6.05
पाण्डिचेरी	43.14	54.44	45.56
दादरा और नगर हवेली	28.88	76.14	23.86
गोवा, दमन दीव	26.76	60.39	39.61
अरुणाचल प्रदेश	20.29	97.5	2.41
मिजोरम	8.45	80.43	19.57
लक्षद्वीप	7.48	72.74	27.26

प्रवास के कारण तथा लिंगानुसार प्रवास का प्रतिशत

जनगणना प्रतिवेदनों में प्रवास के कारणों का भी उल्लेख है। इसमें प्रवास के कारणों को निम्न भागों में विभाजित किया गया है-

1. रोजगार 2. शिक्षा 3. परिवार प्रवाह 4. विवाह 5. अन्य

NOTES

इन कारणों को आधार बनाकर यह जानने का प्रयास किया गया है कि इन कारणों का यौन अनुपात पर क्या प्रभाव पड़ा है। जो निष्कर्ष आए हैं, उन्हें निम्न तालिका में दिखाया गया है-

प्रवास के कारण एवं लिंगानुसार प्रवास का प्रतिशत

कारण	लिंग	ग्राम से ग्राम	ग्राम से नगर	नगर से ग्राम	नगर से नगर
	पुरुष	19.5	47.5	27.0	4.1
रोजगार					
	स्त्री	1.1	4.2	4.3	4.4
	पुरुष	4.2	8.1	3.2	5.2
शिक्षा					
	स्त्री	0.4	2.6	1.0	2.2
	पुरुष	33.7	23.5	31.9	31.5
विवाह					
	स्त्री	81.7	51.5	59.3	43.6
	पुरुष	38.0	9.1	21.9	14.2
अन्य कारण					
	स्त्री	8.2	12.4	15.2	13.9

प्रवास का व्यापक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि स्त्रियों में रोजगार के कारण प्रवास पुरुषों की तुलना में कम है। स्त्रियों में प्रवास का मुख्य कारण विवाह है। समाज में विवाह करने का प्रचलन है, उसमें अधिक दूरी के विवाह नहीं किए जाते हैं। अधिकांश विवाह अपने ही जिलों में किए जाते हैं। शिक्षा के उद्देश्य से प्रवास तुलनात्मक रूप से कम है। शिक्षा के क्षेत्र में भी पुरुष स्त्रियों की तुलना में अधिक प्रवास करते हैं। इसके अलावा अन्य अनेक क्षेत्र हैं, जो प्रवास के लिए उत्तरदायी हैं। इनमें सेवानिवृत्ति, दुकान खोलना, व्यापार, उद्योग आदि प्रारम्भ करना आदि प्रमुख कारण हैं।

नगरीय में प्रवास के परिणाम
(Effects of Migration in India)

नगरीय प्रवास एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। स्वतंत्रता पश्चात् भारत में ग्रामों से नगरों की ओर प्रवास में निरंतर वृद्धि हो रही है। प्रत्येक 10 वर्ष में होने वाली जनगणना के आँकड़े बताते हैं कि निरंतर ग्रामीण जनसंख्या का प्रवाह नगरों की ओर हो रहा है। आज निरंतर हो रहे नगरीय प्रवास के परिणामों को निम्नानुसार बाँटा गया है–

(1) सांस्कृतिक संघर्ष- प्रवास सांस्कृतिक संघर्ष को जन्म देता है। व्यक्ति को दो संस्कृतियों के नियन्त्रण का सामना करना पड़ता है- अपनी पैतृक संस्कृति और वर्तमान प्रवासी संस्कृति इसका आवश्यक परिणाम संघर्ष के रूप में होता है। दोनों सांस्कृतिक मूल्यों में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है और व्यक्ति की वही दुर्गति होती है जो युद्ध क्षेत्र की होती है। व्यवहारों में भिन्नता के कारण भी संस्कृति में संघर्ष होता है। संस्कृति में संघर्ष चाहे किसी भी कारण से हो, इससे समाज का विघटन होता है और व्यक्ति के मूल्यों में गिरावट होती है।

(2) आर्थिक विघटन- प्रवासियों की मौलिक समस्या, रोजगार प्राप्त करने की होती है। रोजगार न मिलने से उनके सामने भयंकर आर्थिक परिस्थितियाँ खड़ी हो जाती हैं। परिणामस्वरूप चोरी, डाका आदि को प्रोत्साहन मिलता है। कभी-कभी प्रवासियों को रोजगार तो मिल जाता है, किन्तु उनकी प्रकृति के अनुकूल न होने के कारण वे अधिक दिनों तक इसे निरन्तर नहीं कर पाते हैं। इसका परिणाम आर्थिक पतन के रूप में होता है।

(3) धार्मिक विघटन- प्रवास, धार्मिक विघटन को भी प्रोत्साहित करता है। धर्म का प्राथमिक समूहों में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। धर्म और सामाजिक वातावरण अन्तः सम्बन्धित होते हैं। इन्हें, एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता है जब कि प्राथमिक सम्बन्ध, नगरों में द्वैतीयक सम्बन्धों का स्वरूप ग्रहण करते हैं तो धार्मिक गाँठें टूटने लगती हैं। इससे संस्थात्मक विघटन प्रारम्भ हो जाता है।

5. अन्तर्राज्यीय प्रवास क्या है। विवेचना कीजिए।
What is Inter-state migration. Describe.

6. भारत में प्रवास के प्रमुख प्रकारों की विवेचना कीजिए।
Describe main types of migration in India.

7. भारत में प्रवास के प्रमुख परिणामों की विवेचना कीजिए।
Describe main consequences of migration in India.

8. भारत में ग्रामीण और नगरीय प्रवास की प्रवृत्तियों पर एक लेख लिखिए।
Write an essay on trends of rural and urban migration in India.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. प्रवास का अर्थ बताइये।
Write the meaning of Migration.

2. आन्तरिक प्रवास से आप क्या समझते हैं।
What do you understand by Internal Migration.

3. अन्तर्राज्यीय प्रवास से आप क्या समझते हैं।
What do you understand by Inter-State Migration.

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

11

नगरीय विकास से सम्बन्धित मुद्दे-बसाहट एवं मलिन बस्तियाँ

(ISSUES RELATED TO URBAN DEVELOPMENT-SETTLEMENTAND SLUMS)

नगरीय अंग्रेजी के 'अरबन' (Urban) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। नगरीय शब्द 'नगर' से सम्बन्धित है। नगर की पूर्ण व्याख्या असम्भव तो नहीं किन्तु कठिन अवश्य है। इसका कारण यह है कि ग्राम और नगर के बीच स्पष्ट अन्तर-रेखा खींचना सम्भव नहीं है। साथ ही, नगर और ग्राम की विशेषताएँ परस्पर अन्त: सम्बन्धित हैं। संक्षेप में, नगर वह स्थान है जहाँ कृषि के अतिरिक्त अनेक व्यवसाय हों। नगर वह सम्पूर्ण समाज है जहाँ पर जनसंख्या अधिक होती है। वहाँ सामुदायिक भावना जैसी चीज का अभाव होता है। विभिन्न विद्वानों ने नगर की भिन्न-भिन्न व्याख्या की है किन्तु अधिकांश समाजशास्त्रियों ने स्वीकार किया है कि व्यवसाय, पर्यावरण, जनसंख्या, गतिशीलता, अन्त:क्रिया, विभेदीकरण और विषमता नगर की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में ऐसा कहा जा सकता है कि 'नगर वह समुदाय है जहाँ आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक विषमता, जनसंख्या का घनत्व, नियन्त्रण के औपचारिक साधन, दिखावा, व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष तथा विभेदीकरण विशिष्ट रूप से पाये जाते हैं।'

नगर का उद्विकास
(Evolution of City)

नगरों की उत्पत्ति कब हुई इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। विद्वान् भी इस पर एकमत नहीं हैं। नगरों की उत्पत्ति किस तारीख को हुई, इससे भी अपना विशेष महत्व नहीं है। यहाँ तो नगरों की उस प्रक्रिया से सम्बन्ध है जिन स्तरों में नगर बने। मानव समाज का उद्विकास 'आखेट अवस्था' से प्रारम्भ होता है और पशुपालन अवस्था से होते हुए कृषक अवस्था में गाँवों की स्थापना करता है। कृषि आविष्कार के परिणामस्वरूप जीवन कुछ स्थिर हो गया था। उसकी अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे स्थायी होती गई। कृषि के अतिरिक्त गाँवों में अन्य उद्योग-धन्धों का विकास हुआ जो कृषि से ही सम्बन्धित थे। कृषि का विकास हुआ, जो कृषि आजीविका का साधन थी, उसको व्यवसाय के रूप में अपनाया गया। इस प्रकार कृषि का व्यवसायीकरण (Commercialization) हुआ। परिणामस्वरूप कृषि में नवीन यन्त्रों और विधियों का प्रयोग हुआ। इस कृषि उपज को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने के लिए आवागमन और सन्देश वाहन के साधनों का विकास हुआ। जो उद्योग कृषि पर आधारित थे, उनका विकास हुआ। 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति हुई। इसके परिणामस्वरूप उद्योगों में कई विधियों का आविष्कार हुआ। इनका बड़े पैमाने का प्रयोग किया गया। इसमें काम करने के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता हुई। वे गाँवों को छोड़कर नगरों की ओर आये और नगरीकरण हुआ। इसके साथ ही राजनीतिक और धार्मिक कारणों से भी नगरों का उद्भव हुआ।

नगर के उद्विकास के कारक
(Factors for Evolution of City)

हर सभ्यता के इतिहास में ग्राम से नगर की ओर प्रवास तथा नगरों का विकास देखा जाता है। मैकाइवर के अनुसार वास्तव में सभ्यता का मूल अर्थ 'शहरीकरण' है। प्राचीनतम सभ्यताओं, जैसे मैसोपोटामिया, मिस्र, यूनान तथा रोम जैसे-जैसे उनके नगरों की शक्ति और प्रभाव बढ़ा, उनकी सभ्यताएँ भी बढ़ीं। जब उन नगरों का पतन हुआ, तो उनकी सभ्यताओं का भी पतन हुआ। मैकाइवर और पेज ने नगरों के विकास के लिए तीन कारकों को उत्तरदायी माना है, जो इस प्रकार हैं।

(1) **मौलिक कारक के रूप में अतिरिक्त साधन** (Surplus Resources as the Fundamental Factor)- जब मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं से अधिक साधनों पर अधिकार कर लेता है, तो नगर का विकास होता

है। प्राचीन समय में नगरों के विकास में मानवीय शक्तियों का प्रमुख हाथ होता था। बेगार, दासता और पराधीनता की नींवों पर विशाल नगरों का निर्माण होता था। युद्ध के द्वारा यदि एक ओर साम्राज्यों का अन्त होता था, तो दूसरी ओर नगरों का विकास भी होता था। प्रकृति पर जैसे-जैसे विजय प्राप्त कर ली जाती है, वैसे ही वैसे अतिरिक्त साधन अधिकाधिक मात्रा में एकत्रित होते जाते हैं। मैकाइवर के अनुसार नगरों के विकास का मौलिक कारण कृषि में क्रान्ति है, कृषि में क्रान्ति के परिणामस्वरूप अनेक व्यक्ति अन्य उद्योगों में संलग्न होने के लिए बाध्य हुए, क्योंकि कृषि में मशीनों के आ जाने से अनेक व्यक्ति बेकार हो गये। नगरीय जीवन की आवश्यकताओं में वृद्धि होती गई। खनिज पदार्थों तथा अन्य प्राकृतिक शक्तियों का ज्ञान हुआ और इन सबका परिणाम यह हुआ कि नगरों का विकास हुआ।

(2) **औद्योगीकरण और व्यवसायीकरण** (Industrialization and Commercialization) - औद्योगीकरण ने नई मशीनों को जन्म दिया। इन नई मशीनों की एक जगह स्थापना की गई। जहाँ मशीन की स्थापना की गई, वहाँ पर काम करने के लिए मजदूरों की आवश्यकता हुई। इस प्रकार नगरों के विकास की गति तीव्र हो गई। पश्चिमी देशों में भाप की शक्ति के आविष्कारों में नगरों के आरम्भिक विकास का काम पूरा किया। भारत में भी टाटानगर, इन्दौर, कानपुर और जमशेदपुर का विकास औद्योगीकरण के द्वारा ही सम्भव हो सका है। औद्योगिक केन्द्रों में व्यापार और व्यवसाय ने भी शहरों के विकास में महत्वपूर्ण हाथ बँटाया है। औद्योगीकरण ने अधिक मात्रा में माल का उत्पादन किया, जहाँ उसकी खपत नहीं हो सकती थी। अत: यह आवश्यक हो गया कि इस माल को दूसरे स्थान पर ले जाया जाये। इस प्रकार 'माल' (Good) का वितरण प्रारम्भ हुआ, वाणिज्य सम्बन्धी संस्थाओं का विकास हुआ। प्राचीन भारत में पाटलिपुत्र, नालंदा आदि का विकास व्यापार के कारण ही हुआ था। आधुनिक भारत में भी कानपुर, अहमदाबाद आदि का विकास व्यवसाय व व्यापार के कारण हुआ।

(3) **नगर का आर्थिक आकर्षण** (The Economic Pull of the City) - मैकाइवर के अनुसार नगरों के विकास का तीसरा और अन्तिम कारण नगर का आर्थिक आकर्षण है। जनसंख्या में वृद्धि और उच्चतम जीवन-स्तर की लालसा ने नगरों का विकास किया है। जब जीवन-स्तर में वृद्धि होगी तो वस्तुओं की माँग (Demand) बढ़ेगी। माँग में वृद्धि होने से उन वस्तुओं की पूर्ति (Supply) के लिए भी प्रयास किया जायेगा। माँग और पूर्ति में वृद्धि होने से 'आजीविका' (Livelihood) के साधन बढ़ जाते हैं। नगरों में आसानी से काम मिल जाने के कारण अनेक बेकार व्यक्ति इस ओर खिंचते हैं और इस प्रकार नगरों का विकास होता है। यातायात और संचार साधनों के विकास के कारण लोग शहरों में ही रहना अधिक पसन्द करते हैं। इस प्रकार एक छोटा-सा स्थान नगर का रूप ले लेता है।

इस प्रकार मैकाइवर ने नगरों के उद्विकास के लिए तीन तत्व बतलाये हैं। इसके अतिरिक्त भी नगरों के लिए अन्य अनेक परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। जो इस प्रकार हैं -

(4) ग्रामीण कारक (Rural Factors) - गाँव नगर जैसे विशाल भवन की आधारशिला है। नगरों के विकास में एक अवस्था वह थी जबकि व्यक्ति ने गाँवों की स्थापना की थी। ग्रामीण तत्व नगरीय विकास की आधारशिलाएँ हैं। ग्रामीण कारकों में कृषि में क्रान्ति (Revolution in Agriculture) सबसे महत्वपूर्ण है। आवश्यकताओं ने नित नये आविष्कारों को जन्म दिया। उद्योगों में क्रान्ति महान् आविष्कार था। उद्योगों में क्रान्ति के कारण महान् सफलताएँ मिलीं। यह क्रान्ति तो अभी तक उद्योगों तक सीमित थी। कृषि के क्षेत्र में भी इसका प्रयोग किया गया। पश्चिमी देशों में कृषि में महान् क्रान्ति हो चुकी है। भारत कृषि में क्रान्ति लाने की प्रक्रिया से गुजरने का प्रयास कर रहा है। कृषि कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। जब कृषि में मशीनों का प्रयोग किया जाता है, जैसे- हल की जगह ट्रैक्टर-तो 100 व्यक्तियों का काम एक व्यक्ति एक मशीन द्वारा कर लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि अनेक व्यक्ति बेकार हो जाते हैं जिन्हें काम की आवश्यकता होती है। शहरों में उद्योगों के कारण अनेक व्यक्तियों को काम मिल जाता है। इससे ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर गतिशील हो जाती है और नगरों का विकास होता है।

आज ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याएँ (Problems) घर कर गई हैं, जैसे - कृषि से सम्बन्धित समस्याएँ, जाति-पाँति, ऋण-समस्या, शिक्षा की समस्या, स्वास्थ्य, स्वच्छता और प्रकाश की समस्याएँ, आवागमन और संदेशवाहन के साधनों की समस्याएँ, सुरक्षा की समस्यायें आदि। इन समस्याओं के कारण आज का ग्रामीण जीवन अशान्त और असुरक्षित हो गया है। वहाँ पर रहने वाले व्यक्तियों को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव होता है। इससे व्यक्ति नगरों की ओर आकर्षित होते हैं और नगरों का विकास होता है।

NOTES

अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण (Favourable Geographical Environment) के कारण ग्रामीण क्षेत्र विशाल नगरों में परिवर्तित हो गये। सभ्यताओं का विकास नदी-घाटियों के किनारे ही हुआ। इन विकास सभ्यताओं ने अनुकूल पर्यावरण के कारण ही इतना विकास किया और विशाल नगर, विशाल भवन, सड़कें, नाली, प्रकाश आदि की समुचित विधि विकसित हुई। विकास की प्रक्रिया में यहाँ पहले छोटा-सा गाँव रहा होगा और पर्यावरण के अनुकूल होने के कारण यह गाँव विशाल नगर में बदल गया। भारत में 10 लाख जनसंख्या में 23 नगर हैं, इनमें 33 प्रतिशत नगरीय जनसंख्या का निवास है।

(5) **नगरीय कारक** (Urban Factors) - जिस प्रकार नगरों के विकास के लिए ग्रामीण कारक उत्तरदायी थे इसी प्रकार कुछ नगरीय कारकों ने भी नगरों के विकास में योगदान दिया। नगर के वातावरण में व्यक्ति को कुछ ऐसी सुविधाओं का अनुभव हुआ, जिससे उसका जीवन अधिक सुखी और व्यवस्थित महसूस हुआ। प्रमुख नगरीय कारकों में पहला था - राजनीतिक कारक (Political Factor)। इतिहास इस बात का साक्षी है कि साम्राज्यों की राजधानियाँ हमेशा नगरों में ही थीं। गाँव में किसी साम्राज्य की राजधानी होने का किसी युग और किसी देश में इतिहास नहीं है। राजधानी देश और प्रदेश के आकर्षण का केन्द्र रहती है। वहाँ पर अनेक देशों और प्रदेशों के प्रतिनिधि रहते हैं, महत्वपूर्ण व्यक्ति इन्हीं स्थानों पर निवास करते हैं फिर भी अन्य स्थानों की तुलना में राजधानी में अन्य अनेक सुविधाएँ रहती हैं। इस कारण नगरों का आकर्षण बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक युग राजनीति का युग है और इसमें हर व्यक्ति की दिलचस्पी बढ़ती जा रही है। राजधानियाँ राजनीति का केन्द्र होती हैं। इस कारण भी राजधानियाँ शीघ्र ही विशाल नगरों के रूप में बदल जाती हैं। भोपाल ही इसका ज्वलन्त उदाहरण है।

नगरों में शिक्षा (Education) की भी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं और यह शिक्षा आधुनिकतम होती है। शिक्षा की सुविधा के कारण भी लोग गाँवों से आकर नगरों में बस गये। धीरे-धीरे गाँवों में उनका स्नेह भी कम हो गया। गाँवों में मुश्किल से प्राथमिक पाठशाला होती है जबकि नगरों में सभी प्रकार की कला, विज्ञान, कृषि, चिकित्सा, यान्त्रिकी, सैनिक आदि उच्च शिक्षा की व्यवस्था रहती है।

सुरक्षा की भावना (Sense of Security) के कारण भी नगरों का विकास सम्भव हो सका। गाँवों में अनेक प्रकार की असुरक्षाएँ रहती हैं। जैसे- जीवन की असुरक्षा, आजीविका की असुरक्षा, प्राकृतिक विपदाओं से उत्पन्न असुरक्षा, समाज विरोधी तत्वों से असुरक्षा तथा इसी प्रकार अन्य अनेक असुरक्षाएँ। नगरों में इन असुरक्षाओं की रोकथाम के लिए साधन उपलब्ध होते हैं अत: व्यक्ति नगरों में अपना जीवन अधिक सुरक्षित मानते हैं। इस सुरक्षा की भावना के कारण भी नगरों का विकास हुआ।

नगरीय क्षेत्र में स्वास्थ्य और सुरक्षा के कारण जीवन की अवधि में वृद्धि (Increase in life scale) हो गई है। यहाँ व्यक्ति चिकित्सा सुविधाओं के कारण से लम्बी अवधि तक जिन्दा रह सकता है। इस कारण भी नगरों का विकास हुआ।

नगरों के विकास का महत्वपूर्ण कारण मनोवैज्ञानिक (Psychological) भी है। इसे दूसरे शब्दों में नगर का चाव (Lure of city) भी कहा जा सकता है। व्यक्ति की मानसिक अवस्था कुछ इस प्रकार परिवर्तित हो रही है कि व्यक्तियों का नगरों से लगाव बढ़ता जा रहा है। आज भी शिक्षित वर्ग गाँवों में जाना नहीं चाहता है। अपने को गाँव का बताने में इसे शर्म और लज्जा का अनुभव होता है। यदि वह ऐसा कहता है कि उसके माँ-बाप खेती करते हैं और गाँवों में रहते हैं, तो इससे वह अपनी प्रतिष्ठा में कमी का अनुभव करता है। नगरों में अधिक सुख का अनुभव होता है। नगरों के प्रति बढ़ते इस चाव (Lure) के कारण नगरों का विकास होता है और नागरिक जीवन में स्थिरता आती है।

नगरों में आवागमन और सन्देश वाहन के साधन (Means of Transport & Communication) भी विकसित होते हैं। व्यक्ति सुविधा से एक स्थान से दूसरे स्थान कम समय में जा सकता है। साथ ही उसे एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में असुविधा का अनुभव नहीं होता है। आवागमन और सन्देश वाहन के साधनों के कारण भी नगर विकसित हुए।

इसके अतिरिक्त नगरों में फिल्म तथा प्रदर्शनियाँ मनोरंजन साधनों के रूप में उपलब्ध रहती हैं। नगरों में सामाजिक नियन्त्रण के साधन शिथिल होते हैं। जुआ (Gambling), वेश्यावृत्ति और शराब के कारण भी लोग नगरों की ओर आकर्षित होते हैं। वहाँ जाति-पाँति, धर्म और गौत्र का भेदभाव नहीं होता। विवाह और प्रेमालाप की स्वतन्त्रता रहती है। ये सभी कारण नगरों के विकास में महत्वपूर्ण हैं।

(6) **आर्थिक कारक** (Economic Factors) - अर्थव्यवस्था में क्रान्ति के कारण ही नगरों का जन्म हुआ है। औद्योगिक क्रान्ति से एक स्थान में विशाल जनसंख्या का एकत्रित हो जाना भी व्यापार, वाणिज्य और उद्योगों

की उन्नति में सहायता करता है। बाजारों का विकास होता है, जहाँ उत्पादित वस्तु को बेचा जा सके। नये-नये रोजगारों का विकास होता है, जहाँ हजारों व्यक्तियों को काम मिलता है। आविष्कारों के कारण प्रकृति पर निर्भरता समाप्त हो जाती है। मानव अपनी शक्ति को व्यर्थ में नष्ट होने से बचा सकता है और अपने जीवन-स्तर को ऊँचा बना सकता है।

NOTES

जनसंख्या में वृद्धि (Growth in Population) के कारण भी नगरों का विकास हुआ। ग्रामीण जनसंख्या के बढ़ने से ग्रामीण क्षेत्रों में बेकारी का विकास हुआ। ग्रामीण बेकार आजीविका की तलाश में नगरों की ओर आये जहाँ व्यवसाय की बहुलता है। इस कारण ग्रामीण जनता नगरों की ओर आती गई और नगर विकसित होते गये।

उद्योग-धन्धों (Industry) के विकास के फलस्वरूप भी छोटे गाँव नगरों के रूप में बदल गये। वाष्प, संचार माध्यम, मशीन और कम्प्यूटर क्रान्ति के कारण से उद्योगों में प्रगति हुई और इसके कारण भी नगरों का विकास हुआ।

नगर के विकास में उद्योग-धन्धों का विकास ही महत्वपूर्ण नहीं है। नगरों का विकास तो व्यापार और वाणिज्य (Trade and Commerce) के कारण हुआ। व्यापार नगर के अस्तित्व के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि शरीर के लिए रक्त का संचरण। आधुनिक युग में भी व्यापार और वाणिज्य के कारण नगरों का विकास होता जा रहा है।

(7) **धार्मिक कारक** (Religious Factors) - धर्म अर्थात आध्यात्मिक शक्तियों में विश्वास। इस विश्वास के कारण भी नगरों का विकास हुआ। हिन्दुस्तान में ऐसे अनेक शहर हैं जो धार्मिक तत्वों के कारण इतना अधिक विकसित हुए हैं, जैसे - वाराणसी, अयोध्या, इलाहाबाद, मथुरा, गया और उज्जैन आदि। इन स्थानों पर या तो अलौकिक शक्ति ने जन्म लिया या यहाँ पर अपनी लीला का प्रदर्शन किया। यह स्थान अलौकिक शक्ति से सम्बन्धित है, इसलिए पवित्र माना जाता है। अनेक व्यक्ति इन स्थानों पर स्थायी रूप से रहना पसन्द करते हैं। कुछ व्यक्ति इन स्थानों का दर्शन करके अपने को कृतकृत्य करना चाहते हैं। इस कारण से होटल, धर्मशाला, व्यापार आदि का वहाँ विकास होता है और नगरों के आकार में वृद्धि होती है। कुछ स्थान संस्कृति और सभ्यता के केन्द्र रहे हैं और इस कारण भी धीरे-धीरे उनका पुनरुत्थान हुआ और उजाड़ जगह एक कस्बे (Town) के रूप में बदल गई, जैसे - विश्व प्रसिद्ध खजुराहो।

(8) **सामाजिक कारक** (Social Factors) - सामाजिक कारकों की भी नगरों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज के दो रूप होते हैं - संगठित और विघटित। संगठित समाज में ही जीवन की बहुमुखी उन्नति होती है। सामाजिक संगठन के कारण सामाजिक मूल्यों की रक्षा होती है। मूल्यों की रक्षा करके समाज प्रगति करता है। जीवन अधिक शान्त और सुरक्षित रहता है। जहाँ का जीवन अधिक व्यवस्थित और शान्त होगा, वहाँ नगरों का विकास होगा। साथ ही नगरों में अनेक प्रकार की सुरक्षाएँ रहती हैं, इससे भी नगरों का विकास होता है।

(9) **सैनिक कारक** (Military Factors) - नगरों के निर्माण और विकास में सैनिक छावनियों (Military Camps) की स्थापना का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सैनिक छावनियों की स्थापना नगर के बाहर की जाती थी। इन छावनियों में 20-25 हजार सैनिक रहते थे। इन सैनिकों की अनेक आवश्यकताएँ होती थीं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के उद्योग-धन्धों की स्थापना की जाती थी। परिणामस्वरूप वहाँ एक विशाल नगर का निर्माण हो जाता था। आगरा, अम्बाला, वाराणसी तथा महू कुछ इसी कारण से विशाल नगर बनते चले गये।

नगरीय जीवन की विशेषताएँ
(Characteristics of Urban Life)

नगरीय जीवन की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) **जनसंख्या सम्बन्धी विशेषताएँ** - नगरीय जनसंख्या की प्रमुख विशेषताएँ अग्रलिखित होती हैं -

(a) जनसंख्या की अधिकता के कारण भीड़भाड़ की समस्या रहती है,

(b) जनसंख्या में विविधता पाई जाती है,

(c) नगरीय जनसंख्या विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई होती है,

(d) नगरीय जनसंख्या के सभी पहलुओं के समुचित विकास का प्रयास किया जाता है,

(e) नगरीय जनसंख्या में गतिशीलता की मात्रा अधिक पाई जाती है और

NOTES

(f) नगरीय जनसंख्या को भूमि का अभाव रहता है।

(2) **आर्थिक विशेषताएँ** - नगरीय जीवन की प्रमुख आर्थिक विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं-

(a) व्यवसाय नगरीय आर्थिक जीवन के आधार होते हैं तथा विविध प्रकार के व्यवसाय पाये जाते हैं,

(b) नगरीय व्यवसाय वंशानुगत न होकर योग्यता और कार्यों पर आधारित होते हैं,

(c) नगरीय आर्थिक जीवन अत्यन्त ही जटिल और कशमकशपूर्ण है और

(d) नगरीय व्यवसायों की प्रकृति अत्यन्त ही जटिल होती है तथा प्रतिस्पर्धापूर्ण होती है।

(3) **सामाजिक विशेषताएँ** - नगरीय सामाजिक जीवन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

(a) नगरों में सामुदायिक जीवन का अभाव पाया जाता है,

(b) नगरीय सामाजिक जीवन विशिष्टता लिये हुए होता है,

(c) नगरों में पड़ोस का कोई महत्व नहीं होता,

(d) नगरीय व्यक्ति विभिन्न मतों और विचारधाराओं के होते हैं, इसलिए सदस्यों में घनिष्ठता का अभाव पाया जाता है।

(e) नगरों में सामाजिक नियन्त्रण के औपचारिक साधनों का प्रयोग किया जाता है, जैसे- कानून, पुलिस और न्यायालय आदि और

(f) नगरीय जीवन में व्यक्तियों के सम्बन्ध अवैयक्तिक, व्यक्तिवाद से पूर्ण असहिष्णु और प्रतिस्पर्धापूर्ण होते हैं।

(g) नगरों में रहने वाले व्यक्ति कर्मठ, आशावादी, कृत्रिम और प्रगतिशील विचारधाराओं वाले होते हैं।

(4) **पारिवारिक विशेषताएँ** - नगरीय परिवार की विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) नगरों में व्यक्तिगत परिवारों की अधिकता होती है,

(b) नगरीय परिवारों में आत्मनिर्भरता पाई जाती है,

(c) नगरीय विवाह पवित्र बन्धन की अपेक्षा स्त्री-पुरुष का एक समझौता मात्र होता है,

(d) नगरीय परिवारों में स्त्री-पुरुष की स्थिति में समानता रहती है।

(e) नगरीय परिवारों में शक्ति का अभाव पाया जाता है, इसलिए विघटन की प्रक्रिया तीव्र रहती है।

(5) **धार्मिक विशेषताएँ** - नगरीय जीवन की धार्मिक विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) नगरों में धर्म को कम महत्व दिया जाता है। इसके साथ ही नगरों में धर्म के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की विचारधाराएँ होती हैं,

(b) नगरों में धार्मिक कर्मकाण्ड का अभाव पाया जाता है,

(c) नगरीय जीवन की संस्कृति अत्यन्त ही गतिशील होती है,

(d) नगरीय संस्कृति भौतिकवादी, स्वार्थपूर्ण और परम्पराओं से परे होती है।

(6) **राजनीतिक विशेषताएँ** - नगरीय जीवन की राजनीतिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(a) नगरीय जनसंख्या राजनीति में अधिक रुचि लेती है,

(b) नगरीय राजनीतिक जीवन विविधाओं से पूर्ण होता है,

(c) नगरीय व्यक्तियों को शासकीय विधानों का ज्ञान रहता है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री **किंग्सले डेविस** (Kingsley Davis) ने नगरीय समाज के निम्न लक्षण बतलाए हैं-

(1) सामाजिक विविधता (Social Heterogeneity),

(2) द्वैतीयक समितियाँ (Secondary Associations),

(3) द्वैतीयक नियंत्रण (Secondary Control),

(4) ऐच्छिक समितियाँ (Voluntary Association),

(5) व्यक्तिवाद (Individualism),

(6) सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility),

(7) सामाजिक सहिष्णुता (Social Tolerance),

(8) क्षेत्रीय पृथकता (Spatial Segregation),

(9) सामुदायिक भावना का अभाव (Lack of community sentiment),

(10) गतिशील जीवन (Mobile life)।

NOTES

नगरीय विकास से सम्बन्धित मुद्दे
(Issues Related to Urban Development)

विभिन्न जनगणना प्रतिवेदनों का अध्ययन और विश्लेषण करने से जो तथ्य सामने उभरकर आते हैं, उनसे स्पष्ट होता है कि समाज तीव्र गति से नगरीकरण की ओर जा रहा है। कभी हम कहते थे कि 'अहा ग्राम्य जीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे कि भावना पूरी तरह से तिरोहित होती जा रही है। भारतीय ग्राम्य की जो स्वर्ग से कल्पना की जाती थी, आज वह भावना दम तोड़ रही है। जिन गाँवों में दूध और घी की नदियाँ बहा करती थीं, आज वहाँ पीने का पानी नहीं है। सबसे बड़ी बात जो है, वह है ग्रामीण भावना का समाप्त होना। आज गाँव एक ऐसी वीरानी में बदलते जा रहे हैं जहाँ अभाव, अशिक्षा और असमानता का जीवन्त स्वरूप है। यही कारण है कि गाँवों की जनसंख्या नगरों की ओर भाग रही है। नगरों में भी किसी प्रकार का नियोजन न होने के कारण जनसंख्या के लिए आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पा रही है। जनसंख्या का दबाव इतना अधिक है कि 'गृह विहीन परिवारों' (Homeless families) और 'परिवार विहीन बच्चों' (Familyless Children) जैसी स्थितियाँ निर्मित हो रही हैं। मानव जीवन के सारे सम्बन्ध मात्र स्वार्थ की परिधि तक सीमित रह गए हैं तथा समाज में मात्र औपचारिकता का बोलवाला है। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि नगरीय जीवन समस्याओं के अम्बार में अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं। यह एक भयावह स्थिति है। इस भयावह स्थिति से छुटकारा पाने के लिए नगरों का विकास करना आवश्यक है, ताकि वहाँ मानवीय सुविधाएँ उपलब्ध कराई जा सकें। इसके लिए नगरों को नियोजित करना पहली शर्त है। नगरीय विकास से सम्बन्धित मुद्दों में अहम् मुद्दा नगरीय नियोजन (Urban Planning) का है।

नियोजन का अर्थ और परिभाषा
(Meaning and Definition of Planning)

नियोजन का सबसे सरल तथा सीधा अर्थ है - व्यवस्था करना। किसी चीज को व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को ही नियोजन कहा जाता है। नियोजन हमेशा भविष्य को ध्यान में रखकर किया जाता है, ताकि किसी प्रकार की विषम स्थिति आने पर भी उस समस्या से निपटा जा सके। जब हम किसी वर्तमान अथवा भविष्य में आने वाली किसी समस्या से छुटकारा पाने के लिए ज्ञात अथवा अज्ञात कठिनाइयों के लिए एक निश्चित कार्यक्रम का निर्माण करते हैं, तो इसे ही नियोजन के नाम से जाना जाता है। नियोजन का मुख्य उद्देश्य अपने नागरिकों के जीवन स्तर को सुधारना, उन्हें नागरिक सुविधाएँ मुहैया करना तथा वर्तमान संसाधनों का अधिक से अधिक उपयोग करना है। अनेक विद्वानों ने नियोजन को परिभाषित करने का प्रयास किया है, कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

1. **कार्ल मैनहीम** :- 'नियोजन वह पूर्व दृष्टि है, जो जानबूझकर मानवीय व्यवहारों में प्रयुक्त की जाती है, जिसमें सामाजिक प्रक्रिया केवल विरोध एवं प्रतियोगिता का ही फलन बन जाए।'

2. किम्बाल यंग :- 'नियोजन एक कार्यक्रम है, जिसका उद्देश्य एक निर्धारित उद्देश्य है, जो मस्तिष्क में है अथवा निश्चित दिशा में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन लाना है।'

नगर नियोजन एवं विकास
(Urban Planning and Development)

NOTES

नगरीय जनसंख्या में तीव्र गति से विकास ने नगरों के नियोजन को प्रोत्साहित किया है। जैसे-जैसे नगरीय जनसंख्या में वृद्धि होती गई, नगरीय समस्याओं का जन्म और विकास होता गया है। इन नगरीय समस्याओं के समाधान के लिए नगरों को नियोजित करना आवश्यक हो गया। वास्तव में नगर नियोजन है क्या? नगर नियोजन को विभिन्न विद्वानों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है। इन विद्वानों में से कुछ के विचार निम्नलिखित हैं -

1. **मेयर** :- "नगर नियोजन नगर की विभिन्न इकाइयों को सुव्यवस्थित करके उसे एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान करना है।"

2. **थामस एडम्स** :- "विज्ञान के रूप में यह नगरीय संरचना तथा सेवाओं और विचरण प्रक्रिया के विषय में ज्ञान प्रदान करता है।"

3. **बेसेट** :- "नगर नियोजन के विषय क्षेत्र में गलियाँ, सार्वजनिक इमारतें, पार्क तथा अन्य सुविधाओं के लिए उपयुक्त स्थान, बन्दरगाह, यातायात के साधनों की स्थितियाँ, आदि सम्मिलित हैं।"

4. **लेविस** :- "नगर नियोजन दूरदर्शिता का साधारण प्रयोग है, जो नगर तथा उसके चारों ओर के परिवेश के क्रमबद्ध और स्थानिक विकास को अक्षीय रेखाओं के सहारे प्रोत्साहित करना है।"

5. **जेम्स फोर्ड** :- "शुद्ध विज्ञान के रूप में यह मानव तथा वातावरण के कारणों एवं अन्तर्प्रभावों की परीक्षा करता है। व्यावहारिक विज्ञान के रूप में नगर नियोजन शुद्ध विज्ञान द्वारा प्राप्त उपलब्धियों को समझने के लिए अन्य विज्ञानों जैसे - अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इन्जीनियरिंग, सांख्यिकी इत्यादि का सहयोग लेता है।"

इस प्रकार नगर नियोजन वह व्यवस्था है, जो नगरीय व्यक्तियों के जीवन की आम जरूरतों को एक व्यवस्थित तरीके से पूरा करे तथा भविष्य की ओर अपना ध्यान रखे।

नगर नियोजन एवं विकास के उद्देश्य
(Aims of Urban Planning and Development)

पैट्रिक एवरक्राम्बी ने नगर नियोजन और विकास के प्रमुख तीन उद्देश्य बतलाए हैं-

1. सौन्दर्य, 2. स्वास्थ्य तथा 3. सुविधा

उपर्युक्त तत्वों के आधार पर ऐसा कहा जा सकता है कि नगर नियोजन का मुख्य उद्देश्य नगर को सुन्दर बनाना, स्वास्थ्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना तथा नागरिक सुविधाएँ प्रदान करना है। नगर विकास और नियोजन के प्रमुख उद्देश्यों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

1. नगर की व्यवस्थित योजना तैयार करना, ताकि नगर का क्रमबद्ध विकास हो सके।
2. नगर के आस-पास का वह क्षेत्र, जो बेकार और वीरान हो, उसे नगरीय क्षेत्र की सीमा में सम्मिलित कर विकास करना।
3. आवासीय क्षेत्र का व्यवस्थित विकास करना तथा सुविधाजनक मकानों का निर्माण करना,
4. नगर का विकास इस प्रकार किया जाए कि नगर की सांस्कृतिक, धार्मिक तथा सामाजिक परम्पराओं की रक्षा की जा सके।
5. नगर में व्यापारिक तथा औद्योगिक क्रियाओं को प्रोत्साहित करना तथा उन्हें सुविधा और साधन मुहैया कराना।
6. नगर विकास की योजना को तैयार करते समय नगर के अगले 50 वर्षों के विकास को ध्यान में रखना।
7. सड़कों तथा नालियों का व्यवस्थित निर्माण।
8. नगरवासियों की सुख, सुविधा और स्वास्थ्य का ध्यान रखना।

नगरीय विकास से सम्बन्धित मुद्दे
(Issues Related to Urban Development)

NOTES

मौलिक प्रश्न यह है कि नगर का नियोजन और विकास किन मुद्दों पर आधारित हो। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, जो निम्नलिखित हैं -

1. आगस्टीन :- फ्रांसीसी विचारक आगस्टीन ने नगर विकास के निम्नलिखित चार तत्वों अथवा मुद्दों का उल्लेख किया है -

(a) व्यापार, (b) उद्योग, (c) प्रशासन, (d) आवास।

2. लेविस :- हेराल्ड एम. लेविस ने नगरीय विकास के लिए निम्न छः मुद्दों का उल्लेख किया है-

(a) नगर से बाहर जाने के लिए उपयुक्त यातायात प्रणाली,

(b) सड़कों की समुचित व्यवस्था,

(c) नगर क्षेत्र के अन्दर परिवहन की उचित व्यवस्था,

(d) पार्कों तथा आमोद-प्रमोद गृहों की समुचित व्यवस्था,

(e) सार्वजनिक भवनों के लिए स्थान तथा

(f) गुणात्मक तथा मात्रात्मक दृष्टिकोण से भूमि का उपयोग।

3. बेसेट :- एडवर्ड एम. बेसेट ने नगर नियोजन की योजना में निम्न सात तत्वों को सम्मिलित किया है-

(a) सड़क, (b) पार्क, (c) सार्वजनिक इमारतों के लिए स्थान, (d) सार्वजनिक सुरक्षित स्थान, (e) कटिबन्धीय जनपद, (f) सार्वजनिक उपयोगी मात्र और (g) छोटी सड़कें।

4. पैट्रिक एवर क्राम्बी :- पैट्रिक एवर क्राम्बी ने नगर नियोजन के निम्न तीन मुद्दों का उल्लेख किया है-

(a) कार्यात्मक कटिबन्ध, (b) वास्तुशिल्प तथा सुविधाएँ और (c) रिक्त क्षेत्र

5. गैलियन :- आर्थर बी. गैलियन ने नगरीय विकास के मुद्दों को दो भागों में विभाजित किया है-

(a) भूमि का नियोजित उपयोग और

(b) परिवहन तथा संचार का नियोजन।

विद्वानों के उपर्युक्त विचारों को ध्यान में रखते हुए नगर नियोजन के मुद्दों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. नगर का विभिन्न सेक्टरों में विभाजन,
2. औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन तथा औद्योगिक सुविधाएँ उपलब्ध कराना,
3. परिवहन व्यवस्था को नियन्त्रित करना,
4. ऐसा प्रयास करना कि बसाहट वैज्ञानिक आधार पर हो तथा मलिन बस्तियों का जन्म और विकास न हो,
5. लोगों की आय स्तर को ध्यान में रखकर विभिन्न आय समूह के व्यक्तियों के लिए आवास की व्यवस्था का करना,
6. सार्वजनिक क्षेत्रों, क्रीड़ा-स्थल, पार्क, धार्मिक स्थान, क्लब, आदि की समुचित व्यवस्था करना,
7. नगरीय भूमि का उचित तथा सार्वजनिक कार्यों के लिए उपयोग,
8. नगर की रिक्त भूमि की व्यवस्था आदि।

बसाहट
(SETTLEMENT)

मानव की तीन मूलभूत आवश्यकतायें थीं, हैं और भविष्य में भी रहेंगी। यह आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं:-

(1) भोजन (Food), (2) वस्त्र (Clothing) और

(3) निवास या आवास (Housing)।

NOTES

जिस प्रकार प्राणी को जिन्दा रहने के लिए भोजन, पानी और प्राणवायु अनिवार्य है, ठीक इसी प्रकार मानव को सर्दी, गर्मी और वर्षा से बचने के लिए आवास की भी आवश्यकता है। विकास की प्रारम्भिक अवस्थाओं में मनुष्य गुफाओं, कन्दराओं, घने पेड़ की छाया आदि का उपयोग आवास के लिए करता था। इसके बाद मनुष्य ने घास और लकड़ी से झोपड़ियों का निर्माण किया होगा। अन्त में मिट्टी, पत्थर, ईंट, लोहा, सीमेण्ट आदि से मकान बनाने लगे।

आधुनिक युग में मौलिक विशेषता यह है कि यह विज्ञान के द्वार पर आकर खड़ा है। विज्ञान की प्रगति ने उद्योगों को नवीन रूप प्रदान किया है। जैसे-जैसे नगरों का विकास हुआ है आवास की समस्या अत्यन्त ही जटिल हो गयी है।

आवास की समस्या कोई नई समस्या नहीं है अधिकांशत: ऐसा देखा जाता है कि शहरों में रहने के लिए उचित और स्वास्थ्यप्रद मकानों का अभाव पाया गया है। लोग गली-कूचों, फुटपाथों और पटरियों पर रहते हैं; इसका प्रमुख कारण अत्यधिक भीड़-भाड़ के लिए पर्याप्त आवास का अभाव है।

अत्यधिक भीड़-भाड़ की समस्या
(The Problem of Over-Crowding)

यद्यपि भारतवर्ष में प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व ही नगरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गयी थी, किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् यह प्रक्रिया अत्यधिक गतिशील हो गयी है। इसकी गति अत्यन्त तीव्र होती जा रही है। इसके मूल में जनसंख्या में वृद्धि और बेरोजगारी प्रमुख है। इन दो-तीन दशकों में भारतवर्ष की जनसंख्या में जो वृद्धि हुई है; इस वृद्धि ने नगरों में भीड़-भाड़ और आवास की समस्या को गति प्रदान की है। यहाँ 1971, 1981 और 1991 के भारतीय जनसंख्या के आँकड़े दिये जा रहे हैं। इन आँकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारतीय जनसंख्या में वृद्धि की गति क्या है।

भारत में राज्यों एवं संघ शासित क्षेत्रों की नगरीय जनसंख्या का वितरण
(1991-2011)

भारत/राज्य संघ क्षेत्र	1991		2001		2011	
जनसंख्या	कुल जनसंख्या	नगरीय जनसंख्या	कुल जनसंख्या	नगरीय जनसंख्या	कुल जनसंख्या	नगरीय
संपूर्ण भारत	**844,324,222**	**217,177,625**	**1,027,015,247**	**2,85,354,954**	**1,210,193,422**	**377,105,760**
राज्य						
आन्ध्रप्रदेश	66,354,559	17,812,693	75,727,541	20,503,597	84,665,533	28,353,745
अरुणाचल प्रदेश	858,392	194,806	109,117	222,688	1,382,611	313,446
आसाम	22,294,562	2,470,888	26,638,407	3,389,413	31,169,272	4,388,756
बिहार	86,338,853	11,368,889	82,878,796	8,679,200	103,804,637	11,729,609
गोआ	1,168,622	479,421	1,343,998	668,869	1,457,723	906,309
गुजरात	41,174,343	12,164,301	50,596,992	18,899,377	60,383,628	25,712,811
हरियाणा	16,317,715	4,045,170	21,082,989	6,114,139	25,353,081	8,821,588
हिमाचल प्रदेश	5,111,079	444,824	6,077,248	594,681	6,856,509	688,704
जम्मू एवं कश्मीर	7,718,700	1,839,400	10,069,917	2,505,309	12,548,926	3,414,106
कर्नाटक	44,806,468	13,850,702	52,733,958	17,919,858	61,130,704	23,578,175
केरल	29,032,828	7,676,371	31,838,619	8,267,135	33,387,677	15,932,171
मध्यप्रदेश	66,135,862	15,348,047	60,385,118	16,102,590	72,597,565	20,059,666
महाराष्ट्र	78,748,215	30,496,352	96,752,247	41,019,734	112,372,972	50,827,531
मणिपुर	1,826,714	505,848	2,388,634	570,410	2,721,756	822,132
मेघालय	1,760,626	329,079	2,306,069	452,612	2,964,007	595,036

NOTES

मिजोरम	686,217	317,040	8,91,058	441,040	1,091,014	561,977
नागालैण्ड	1,215,573	210,095	1,988,636	352,821	1,980,602	573,741
ओड़ीसा	31,512,070	4,232,455	36,706,920	5,496,318	41,947,358	6,996,124
पंजाब	20,190,795	6,000,88	24,289,296	8,245,566	27,704,236	10,387,436
राजस्थान	43,880,640	10,040,188	56,473,122	13,205,444	68,621,012	17,080,776
सिक्किम	405,505	36,984	540,493	60,005	607,688	151,726
तमिलनाडु	55,638,318	19,027,033	62,110,839	27,241,553	3,671,032	960,981
त्रिपुरा	2,744,827	418,983	3,191,168	543,094	72,138,958	34,949,729
उत्तरप्रदेश	139,031,130	27,653,410	166,052,859	34,512,629	199,581,477	44,470,455
पश्चिम बंगाल	67,982,732	18,622,014	80,221,171	22,486,481	91,347,736	29,134,060
उत्तराखण्ड	–	–	879,562	2,170,245	10,116,752	3,091,169
झारखण्ड	–	–	26,909,428	5,986,697	32,966,238	7,929,292
छत्तीसगढ़	–	–	20,795,956	4,175,329	25,540,196	5,936,538
संघ क्षेत्र						
अण्डमान एवं निकोबार द्वीपसमूह	279,111	74,810	356,265	116,407	379,944	135,533
चण्डीगढ़	640,725	574,646	900,914	808,796	1,054,686	1,025,682
दादरा एवं नागर हवेली	138,401	11,720	220,451	50,456	342,853	159,829
दमन एवं दीव	101,439	47,538	158,059	57,319	242,911	182,580
दिल्ली	9,370,475	8,427,083	13,782,976	12,819,761	16,753,235	16,333,916
लक्षद्वीप	51,681	29,089	60,595	26,948	64,429	50,308
पुदुचेरी	807,045	516,934	973,829	648,233	1,244,464	850,123

जनसंख्या के उपर्युक्त आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि भारत में जनसंख्या की वृद्धि अत्यन्त ही तीव्रगति से हो रही है। उक्त आँकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि राज्यों एवं केन्द्र शासित प्रदेशों में जनसंख्या का वितरण बहुत असामान्य है। उत्तरप्रदेश की जनसंख्या सर्वाधिक (13,87,60,417) 16.44 प्रतिशत है जबकि लक्ष्यद्वीप की (7,89,416) 0.01 प्रतिशत है। सर्वाधिक जनसंख्या वाले सात राज्य उ.प्र., बिहार, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल, आन्ध्रप्रदेश, म.प्र. और तमिलनाडु हैं। इन सात प्रान्तों की कुल जनसंख्या देश की जनसंख्या का 66.4 प्रतिशत है।

जनसंख्या का घनत्व 1901 में जहाँ 77 व्यक्ति प्रतिवर्ग कि.मी. था, वहीं 1991 में बढ़कर 267 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. हो गया है। भारत में जनसंख्या घनत्व को निम्न तालिका में दर्शाया जा रहा है।

भारत में जनसंख्या घनत्व

जनगणना वर्ष	घनत्व	जनगणना वर्ष	घनत्व
1901	77	1961	142
1911	82	1971	177
1921	81	1981	216
1931	90	1991	269
1941	103	2001	325
1951	117	2011	382

नगरों की बढ़ती हुई जनसंख्या

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में बढ़ती हुई शहरीकरण की प्रवृत्ति ने गाँव की आबादी को अपनी ओर खींचना शुरू कर दिया है। नौकरी की तलाश में गाँव के भूमिहीन मजदूर और कारीगर शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। कानूनी अव्यवस्था और ग्रामीण अंचलों में पिछड़े वर्गों की दयनीय स्थिति ने इन लोगों को अपने पुश्तैनी घर छोड़ने के लिए मजबूर किया है। गाँव का पढ़ा-लिखा नौजवान अब अपने कपड़े मिट्टी में गन्दे नहीं करना चाहता।

NOTES

उसके लिए गाँव में मनोरंजन के साधन नहीं हैं, नौकरियाँ भी शहरों में हैं अत: पढ़े-लिखे नौजवान भी गाँव छोड़कर शहरों में बस रहे हैं।

इस तरह शहर बराबर फैलते जा रहे हैं। जो छोटे-छोटे कस्बे थे वे शहरों में बदलते जा रहे हैं और शहर, बड़े शहरों में और बड़े शहर महानगरों में। अपना और परिवार का पेट पालने के लिए गाँव छोड़कर बड़े शहरों में पहुँचे लोग वहाँ झुग्गी-झोपड़ी वाली बस्तियों-झोपड़हियों की संख्या और आबादी बढ़ा रहे हैं। सन् 1947 में देहातों की आबादी 30 करोड़ थी अब तक यह दुगुनी होकर 60 करोड़ के करीब पहुँच गयी है लेकिन शहरी आबादी 1947 में 5 करोड़ के आस-पास थी और अब 6 गुनी बढ़कर 30 करोड़ पहुँच गयी है।

भारत के कुछ प्रमुख नगरों की जनसंख्या को आगे तालिका में दिया गया है।

कुल आबादी (लाख में)

नगर का नाम	1951	1971	1981	1991	2001
कलकत्ता	45.8	60.0	91.6	1,09,16,272	13,246,516
बम्बई	28.4	59.7	82.3	1,25,71,720	16,368,084
दिल्ली	13.8	36.3	51.1	83,61,188	12,791,458
मद्रास	14.2	24.7	42.7	53,61,468	6,424,624
हैदराबाद	10.0	18.0	25.2	42,80,261	5,553,640
अहमदाबाद	10.9	15.9	25.1	32,97,655	4,519,278

उपर्युक्त नगरों की जनसंख्या के आँकड़ों को देखकर यह स्पष्टत: प्रतीत होता है कि भारतवर्ष में नगरीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त ही तीव्रगति से बढ़ रही है तथा नगर भी उतनी ही तीव्रगति से बढ़ रहे हैं। कलकत्ता और बम्बई जैसे नगरों की जनसंख्या जिस तीव्रगति से बढ़ी है वह वास्तव में आश्चर्यजनक है। इस जनसंख्या वृद्धि का परिणाम स्वभावत: भीड़-भाड़ की समस्या का जन्म लेना है।

बसाहट का अर्थ
(Meaning of Settlement)

जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि और भीड़-भाड़ की समस्या ने आवास की ओर विचारकों का ध्यान आकर्षित किया है। जैसा कि पूर्व में लिखा जा चुका है कि आवास मानव की मूलभूत आवश्यकता है, अत: आवास समस्या पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि आवास की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझ लिया जाए। आवास की अवधारणा को भिन्न-भिन्न विचारकों और समाज शास्त्रियों में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखा है; यहाँ आवास की सही अवधारणाओं को व्यक्त करने का प्रयास किया जाएगा।

1. **बसाहट का साधारण अर्थ** (Simple Meaning of Settlement) - साधारण-अर्थों में आवास का तात्पर्य रहने के लिए मकान से है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि दिन भर का थका-मांदा व्यक्ति कमरटूट पश्रिम करके विश्राम करना चाहे तो इसके लिए एक ऐसी आवास-व्यवस्था हो जहाँ पर वह रहकर अपनी थकान को दूर सके और भविष्य में किए जाने वाले पश्रिम के लिए शक्ति अर्जित कर सके। रहने की यह व्यवस्था किसी भी प्रकार की हो सकती है। अच्छी भी और बुरी भी, अनुकूल भी और प्रतिकूल भी तथा स्वास्थ्यकर भी और स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालने वाली भी आवास-व्यवस्था का यह अर्थ अत्यन्त ही संकुचित है।

2. **बसाहट का व्यापक अर्थ** (Broad Meaning of Settlement) - आवास का व्यापक अर्थ इस संकुचित अर्थ से बिल्कुल भिन्न प्रकार का है। यहाँ आवास का तात्पर्य एक ऐसे आश्रय-गृह से नहीं है जिसमें चार दीवारें हों तथा एक टूटी-फूटी छत हो, भले-ही उससे सर्दी-गर्मी और बरसात में व्यक्ति अपनी रक्षा न कर सके। व्यापक अर्थों में आवास का तात्पर्य एक ऐसे मकान से है जो आरामदायक हो, व्यक्तियों की आवश्यकताओं के अनुरूप हो और जहाँ उसके परिवार के सदस्य आराम से रह सकें। इसके साथ ही स्वस्थ वातावरण तथा सुखमय जीवन व्यतीत करने आदि की दशाएँ भी आवास के मौलिक गुणों के अन्तर्गत आती हैं। आवास व्यवस्था ऐसी हो जहाँ स्वास्थ्य, वायु, प्रकाश और जल उपलब्ध हों; इसके साथ ही वहाँ किसी भी प्रकार की गन्दगी नहीं होनी चाहिए। वहाँ पर सुरक्षा, चिकित्सा, शिक्षा, मनोरंजन आदि की समुचित व्यवस्था भी हो।

3. बसाहट का आधुनिक अर्थ (Modern Meaning of Settlement) - जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि आवास मानव की मूलभूत आवश्यकता है। आज प्रत्येक राष्ट्र विकास के पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। विकास के लिए प्रायः सभी राष्ट्रों ने योजनाओं का निर्माण किया है। इस दृष्टि से आवास की आधुनिक धारणा प्राचीन धारणा से भिन्न है। अब आवास का अर्थ केवल मकान से ही नहीं लगाया जाता है। आवास की समस्या का वास्तविक अर्थ आयोजित मकानों से है। जैसे-जैसे औद्योगीकरण का विकास और प्रसार होता जाता है आवास की समस्या और भी जटिल से जटिलतर होती जाती है। आधुनिक अर्थों में आवास की समस्या के मुख्य रूप से तीन पहलू हैं।

(a) आवास एक सामाजिक समस्या है। इस समस्या के परिणामस्वरूप मानव को नारकीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

(b) आवास समस्या का नैतिक पहलू भी है। इस समस्या का नैतिक पहलू यह है कि आवास के अभाव में व्यक्ति अपना अधिकांश समय घर के बाहर व्यतीत करता है। इससे व्यक्ति के नैतिक पतन को प्रोत्साहन मिलता है और

(c) इस समस्या का आर्थिक पहलू भी है। आवास की समुचित व्यवस्था न होने से व्यक्ति के स्वास्थ्य और कार्य-क्षमता में गिरावट आती है जिससे व्यक्ति की आमदनी में कमी होती है और इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति को अनेक आर्थिक संकटों का सामना करना पड़ता है।

इस प्रकार आवास की आधुनिक अवधारणा इससे उत्पन्न होने वाली विभिन्न समस्याओं से है। आवास की आधुनिक अवधारणा के संबंध में श्री टी.एन. भगोलीवाल ने जो लिखा है :

"नई विचारधारा का बहुत कुछ झुकाव भूमि के विकास और आवास की एक समन्वयात्मक प्रक्रिया से है जिससे सामुदायिक जीवन के विवेकपूर्ण विकास में सहायता मिल सके। इस रूप में प्राप्त किया जाने वाला आदर्श श्रमिकों के लिए स्वास्थ्यपूर्ण घरों यथा पूर्ण सामुदायिक जीवन की सुविधाओं का होना है।"

कैथेराइनवौर ने औद्योगिक आवास की आधुनिक धारणा को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - "आधुनिक आवास व्यवस्था के कुछ विशेष गुण होते हैं और इसमें कुछ ढंग तथा उद्देश्य सम्मिलित होते हैं जो आधुनिक एवं प्राचीन आवास-व्यवस्था के अंतर को स्पष्ट करते हैं। पहली बात यह है कि इस प्रकार की आवास-व्यवस्था वर्षों तक के कुशल प्रयोग के लिए की जाती है, इसलिए प्राथमिक रूप से यह किसी लाभ कमाने के उद्देश्य से नहीं की जाती है। यह नियोजित होती है। यही कारण है कि इसमें अनुमान या कल्पना का प्रश्न ही नहीं उठता है। आवास की यह आधुनिक धारणा इस बात को स्वीकार करती है कि नियोजन की मुख्य इकाई, निर्माण और व्यवस्था की आर्थिक इकाई तथा रहन-सहन की सामाजिक इकाई इन सबका आपस में घनिष्ठ संबंध है। आवास-व्यवस्था का विकास केवल यान्त्रिक गलियों का विस्तार तथा रहने के मकानों के झुण्ड-मात्र से नहीं है। इसका आदि भी है, अन्त भी है। इसका एक मूर्त स्वरूप है, जिसे हम देख सकते हैं। इसका एक भाग दूसरे भाग से सम्बन्धित है और प्रत्येक भाग का एक विशेष पूर्व निश्चित उपयोग है। इसका गन्दी बस्ती के रूप में कभी अधोपतन नहीं हो सकता है और न ही ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि सुधार के लिए महँगा 'नगर नियोजन' करना पड़े। इसके अतिरिक्त आधुनिक आवास-व्यवस्था अपने अन्तर्गत प्रत्येक आवास के स्थान में न्यूनतम सुविधाओं को स्वीकार करती है जिसमें हवा का एक ओर से दूसरी ओर को आना-जाना, प्रकाश, प्रत्येक खिड़की से सुखद एवं शान्त दृश्य, पर्याप्त एकांतवास, पर्याप्त सफाई की सुविधाएँ हों तथा पास ही बच्चों के खेलने के लिए भी स्थान हो तथा वह स्थान एक ऐसे मूल्य पर उपलब्ध हो सके जिसे कोई भी औसतन नागरिक दे सकता हो।"

बसाहट की विशेषताएँ
(Characteristics of Housing)

शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) ने अपने प्रतिवेदन में गृहों की सामान्य विशेषताओं और दशाओं का वर्णन किया है वह निम्नलिखित है -

नगरीय और औद्योगिक क्षेत्रों में स्थान की कमी, भूमि का आर्थिक मूल्य और श्रमिक को अपने उद्योग के समीप रहने की आवश्यकता के कारण जनसंख्या का एकत्रीकरण और भीड़-भाड़ हो गई है। इस भीड़-भाड़ की समस्या के परिणामस्वरूप नगरों में आवास की विशेषताओं में समानता पायी जाती है। इन विशेषताओं को सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

(1) अधिकांशतः नगरों में भीड़-भाड़ और नगरीकरण के परिणामस्वरूप मकानों का अभाव होता है।

NOTES

(2) जो मकान किराये की दृष्टि से निर्माण किए जाते हैं और थोड़ी या बहुत मात्रा में कुछ अच्छे होते हैं वे इतने महँगे होते हैं कि निम्न और सामान्य आमदनी वाला व्यक्ति उन्हें लेने की कल्पना भी नहीं कर सकता है।

(3) जो मकान होते भी हैं उनमें समुचित व्यवस्था और देख-रेख का अभाव पाया जाता है।

(4) नगरों में यद्यपि विभिन्न स्थानों पर कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए आवास सुविधाएँ उपलब्ध कराने का प्रयास किया जाता है, किन्तु यह व्यवस्था पर्याप्त नहीं होती है; इसका कारण है नगरों पर जनसंख्या का बढ़ता हुआ दबाव।

(5) भीड़-भाड़ और आवास समस्या के परिणामस्वरूप नगरों में अनेक सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं।

(6) नगरों में किराये की दृष्टि से जिन मकानों का निर्माण किया जाता है उनका और उनके कमरों का आकार अत्यन्त छोटा होता है। इसमें प्रकाश, पानी और हवा का पूर्ण अभाव पाया जाता है। यह मकान अत्यन्त ही सस्ते और घटिया किस्म के माल से तैयार किए जाते हैं।

(7) यहाँ गन्दगी का भी साम्राज्य रहता है। यह गन्दी बस्तियाँ नरक की कल्पना को साकार कर देती है।

(8) भीड़-भाड़ के कारण आवागमन के साधन अपर्याप्त प्रतीत होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्तियों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक आने-जाने में अत्यन्त ही असुविधा का अनुभव होता है।

(9) यह मकान अत्यन्त ही जर्जर और जीर्ण-शीर्ण होते हैं तथा कभी भी धराशायी हो सकते हैं। इन मकानों में जो व्यक्ति निवास करते हैं उनके जीवन के सामने हमेशा खतरे की घण्टी बजती रहती है।

(10) एक ही कमरे में जिसमें हवा और रोशनी का नामोनिशान नहीं होता है, दस-बारह व्यक्ति एक साथ सोते हैं। इसी कमरे में जीवन से लेकर मृत्यु तक की सभी क्रियाएँ सम्पादित की जाती हैं। यहाँ गोपनीयता का अभाव भी पाया जाता है।

(11) बुरी आवास-व्यवस्था के कारण इनमें रहने वाले व्यक्तियों का नैतिक पतन होता है।

(12) असुविधाजनक आवास के कारण व्यक्तियों का घरेलू जीवन नीरस और आनन्द रहित हो जाता है; इससे पारिवारिक विघटन, तलाक और परिणाम आदि को बढ़ावा मिलता है।

(13) यहाँ गन्दगी का साम्राज्य पाया जाता है; इससे मलेरिया, चेचक और क्षय रोग जैसी बीमारियों का प्रकोप बढ़ जाता है इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्तियों के मानसिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

(14) आवास-व्यवस्था की कमी के कारण अशांति को प्रोत्साहन मिलता है।

(15) गन्दी आवास-व्यवस्था वाले क्षेत्रों में शिशु-मृत्यु की मात्रा भी अधिक रहती है।

(16) व्यक्ति पर वातावरण हमेशा हावी रहता है और उसका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है। इस प्रकार गन्दी बस्ती में रहने वाले व्यक्तियों में बुरी आदतों का विकास हो जाता है।

दोषपूर्ण बसाहट के दुष्परिणाम

प्रायः सभी औद्योगिक क्षेत्रों और विशाल नगरों में आवास-व्यवस्था अत्यन्त ही जटिल और गम्भीर है। विद्वानों ने श्रमिकों की दशा का वर्णन करते हुए जो लिखा है वह अक्षरशः सत्य है कि :-

"विश्व की रचना ईश्वर ने की है, नगरों की मानव ने और श्रम बस्तियों की शैतानों ने।"

आवास-व्यवस्था में दोष होने से अनेक समस्याओं का जन्म होता है और समाज इन दुष्परिणामों को भोगता है। दोषपूर्ण आवास-व्यवस्था के जो दुष्परिणाम हैं उन्हें निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है:-

1. **वैयक्तिक विघटन :-** दोषपूर्ण आवास-व्यवस्था का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह होता है कि इससे व्यक्तिगत विघटन को बढ़ावा मिलता है। विशाल कारखानों में मशीनों पर 8-8, 10-10 घन्टे कार्य करता हुआ मानव शारीरिक दृष्टि से अत्यन्त ही थक जाता है; वह इतना थक जाता है कि उसका शरीर उसके नियन्त्रण से बाहर हो जाता है। अत्यधिक शारीरिक थकावट उसमें बेचैनी और निराशा जैसी स्थिति को जन्म देती है। दिन भर कार्य से थका हुआ जब वह घर लौटता है तो उसे स्वयं मनोरंजन नहीं मिल पाता है। इसका कारण यह है कि

थकान की जटिलता के परिणामस्वरूप वह अपने परिवार और बच्चों को गाँव में छोड़कर आता है यदि परिवार और बच्चों को शहर में रखता भी है तो एक ही कमरे में तीन-चार परिवारों के होने के कारण वह एकान्तता का अनुभव नहीं कर पाता। प्रारम्भिक दिनों में तो वह इस निराशा और बेचैनी से जूझता है, किन्तु जब वह अपने भविष्य की ओर देखता है तो उसे ऐसा अनुभव होता है कि सारी जिन्दगी इसी शहर और कारखाने में बितानी है तथा ऐसी अवस्था में कब तक निराशा, बेचैनी, ऊब और प्रताड़न का जीवन बिताया जाए, अत: वह सस्ते मनोरंजन की ओर मुड़ जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति मद्यपान, वेश्यागमन और जुए का सहारा लेता है। कालान्तर में वह इनका आदी हो जाता है और उन्हें जीवन के अभिन्न अंग के रूप में स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार भीड़-भाड़ और नगरीय आवास व्यक्ति को सरलता से विघटन की ओर मोड़ देते हैं।

NOTES

2. **पारिवारिक विघटन** :- यह व्यक्तिगत विघटन कालान्तर में पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहित करता है। व्यक्ति वेश्यागमन, मद्यपान और जुए की आदत में कुछ इस प्रकार फँस जाता है कि उसे इसी में अपना सब कुछ मिलता प्रतीत होता है। धीरे-धीरे उस व्यक्ति का परिवार के प्रति लगाव भी समाप्त होता है, अत: परिवार के प्रति लगाव की कमी के कारण पारिवारिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है।

जो श्रमिक अपने परिवारों को नगरों में रखते है, उनमें पारिवारिक सामंजस्य का अभाव पाया जाता है। इसका कारण यह है कि बुरी आदतों में फँसा व्यक्ति अपने परिवार को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है; परिवार का प्रत्येक सदस्य उससे जो अपेक्षाएँ रखता है वह उनकी पूर्ति नहीं कर पाता है। ऐसी स्थिति में पारिवारिक कलह का जन्म होता है तथा परिवार में इस कलह की परिणति आत्महत्या, पृथक्करण, परित्याग और तलाक के रूप में होती है। इस प्रकार विकट आवास-समस्या पारिवारिक विघटन को भी प्रोत्साहित करती है।

3. **सामुदायिक विघटन** :- वैयक्तिक और पारिवारिक दृष्टि से विघटित व्यक्ति किसी न किसी समुदाय में ही रहेगा क्योंकि समुदाय से बाहर व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती है। वह जिस समुदाय में भी रहेगा अपने कार्य-कलापों से समुदाय को दूषित कर देगा। उसमें कुछ इस प्रकार की आदतों का विकास हो जाता है जिससे उसे व्यक्तिगत रूप में तो हानि पहुँचती ही है साथ ही, उससे समुदाय को भी हानि उठानी पड़ती है। व्यक्ति को विवश होकर ऐसे समुदाय में निवास करना होता है जिसमें अनेक प्रकार की समस्याएँ विद्यमान रहती हैं जैसे - आवास, सफाई, बीमारी आदि से सम्बन्धित समस्याएँ। यह सारी समस्याएँ समुदाय को कुछ इस प्रकार जकड़ लेती हैं कि समुदाय के लिए विघटन का मार्ग ही शेष रह जाता है।

4. **सामाजिक विघटन** :- उपर्युक्त तीनों प्रकार के विघटन व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामुदायिक समाज को भी विघटित कर देते हैं। समाज का निर्माण व्यक्ति परिवार और समुदाय से मिलकर होता है। इस प्रकार भीड़-भाड़ और नगरीय आवास के परिणामस्वरूप जो विघटन होता है इससे समाज स्वत: विघटित हो जाता है।

5. **राष्ट्रीय विघटन** :- व्यक्ति और परिवार राष्ट्र की महत्वपूर्ण कड़ियाँ हैं। इन्हीं के आधार पर कोई राष्ट्र प्रगति करता है और कोई राष्ट्र अवनति करता है। विघटित व्यक्ति और विघटित परिवार राष्ट्र को संगठित नहीं कर सकते हैं। गन्दी बस्तियाँ और आवास-समस्या वैसे ही राष्ट्रीय विघटन के ज्वलन्त प्रतीक हैं।

6. **स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव** :- दोषपूर्ण आवास-व्यवस्था का व्यक्तियों के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर भी विपरीत असर पड़ता है। स्वस्थ वायु और प्रकाश मानव स्वास्थ्य के आधार पर स्तम्भ हैं। औद्योगिक नगरों में व्यक्तियों के मकान ऐसी जगहों में स्थित होते हैं जहाँ दिन में बारह बजे भी दियासलाई जलानी पड़ती है। मकान के चारों ओर भीषण गन्दगी रहती है, परिणामस्वरूप बीमारियों का प्रकोप बना रहता है। एक ही मकान में अनेक परिवारों के व्यक्तियों के निवास के कारण क्षय रोग और बाल-मृत्यु को प्रोत्साहन मिलता है।

7. **बाल-मृत्यु की दर में वृद्धि** :- एक ही मकान में 10-12 व्यक्तियों का रहना बाल मृत्यु की दर को प्रोत्साहित करता है। अध्ययन के दौरान ऐसा पाया गया है कि जैसे-जैसे आवास की व्यवस्था में सुधार होता है बाल-मृत्यु की दर में कमी आती जाती है।

एक कमरे वाले मकानों में बालकों की मृत्यु अधिक होती है। इसके साथ ही साथ जैसे-जैसे आवासीय मकानों में कमरे बढ़ते जाते हैं बाल-मृत्यु की दर की मात्रा कम होती जाती है। नीचे की तालिका में सामान्य मृत्यु-दर, क्षय रोग और बाल मृत्यु-दर का तुलनात्मक विवरण दिया गया है।

NOTES

आवास	सामान्य मृत्यु-दर	क्षय रोग मृत्यु-दर	बाल मृत्यु-दर	
			1 वर्ष से कम	1 वर्ष से 5 वर्ष तक
एक कमरे वाले	100	100	100	100
दो कमरे वाले	64	72	78	74
तीन कमरे वाले	44	52	61	44
चार कमरे वाले	41	38	49	25

8. **नैतिक पतन** :- अत्यधिक भीड़-भाड़ और आवास की समस्या मानव के नैतिक पतन के लिए भी उत्तरदायी है। भीड़-भाड़ और आवास समस्या के परिणामस्वरूप नगरों में नारी एवं पुरुषों के अनुपात में असमानता आ जाती है। भीड़-भाड़ के कारण व्यक्ति अपने परिवार को नगरों में लाने में असमर्थ रहते हैं, इससे उन्हें स्वस्थ मनोरंजन और पारिवारिक सुख से तो वंचित रहना ही पड़ता है, साथ ही यौन-सम्बन्धी ज्वाला को शांत न कर सकने के कारण वह मद्यपान और वेश्यागमन का सहारा लेने लगता है। एक ही मकान में अनेक परिवारों के रहने तथा पारी-प्रथा के कारण बारी-बारी से काम पर जाने के कारण वे अन्य स्त्रियों के साथ ही अवैध यौन-सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं। इसी बात को ध्यान में रखते हुए डॉ. राधाकमल मुकर्जी ने ठीक ही लिखा है कि भारतीय औद्योगिक क्षेत्रों की इन असंख्य गन्दी बस्तियों में पावकता को निर्दयता के साथ अभिशापित किया जाता है, नारीत्व का अपमान किया जाता है और बच्चों को आरम्भ से ही विष से सिंचित किया जाता है।

9. **अशांति का वातावरण** :- यद्यपि नगरों में अशांति के अनेक कारण हो सकते हैं किन्तु इसमें आवास-व्यवस्था की कमी या उचित आवास-व्यवस्था का अभाव भी इसका एक कारण है। नगरों में विभिन्न औद्योगिक प्रतिष्ठानों में काम करने वाले व्यक्तियों को जैसे ही इस बात का ज्ञान हो जाता है कि मालिक उनका शोषण करने के बावजूद भी उन्हें रहने के लिए आवास नहीं देते हैं तो वे हड़ताल और तालाबन्दी की ओर अग्रसर हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि मालिकों और श्रमिकों के बीच अशांति का बीजारोपण हो जाता है और इससे उद्योग, श्रमिकों तथा राष्ट्र तीनों को हानि ही होती है। अनेक अव्यवस्थाओं में आवास की समस्या के कारण क्रान्तिकारी विचारों का जन्म और विकास होता है। इसमें समाज में विद्रोह हो जाने की आशंका बनी रहती है।

10. **कार्यक्षमता की कमी** :- आवास-व्यवस्था का कार्य-कुशलता और कार्यक्षमता से गहरा सम्बन्ध है। गन्दी आवास-व्यवस्था के परिणामस्वरूप व्यक्ति रातभर गहरी नींद नहीं सो पाता। गन्दे मकानों में रहने के कारण उनका स्वास्थ्य भी बुरी तरह प्रभावित होता है।

स्वास्थ्य प्रभावित होने से वह अनेक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं और उनके जीवन में उत्साह की कमी हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्तियों की कार्यक्षमता कम हो जाती है।

11. **उत्पादन पर विपरीत प्रभाव** :- आवास-व्यवस्था की खराबी के कारण निम्न समस्याओं का जन्म होता है :-

(a) कार्यक्षमता में कमी, (b) कार्य कुशलता का ह्रास,

(c) बुरा स्वास्थ्य एवं बीमारियों का घेरा, (d) अनुपस्थिति और आकस्मिक अवकाश।

इसका परिणाम यह होता है कि उत्पादन पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और श्रमिक मालिकों को अपना शत्रु समझने लगते हैं।

12. **आय की कमी** :- आवास की बुरी व्यवस्था का प्रभाव आमदनी पर भी पड़ता है। गन्दे मकानों में रहने के कारण व्यक्तियों का स्वास्थ्य खराब हो जाता है; उनकी कुशलता और कार्यक्षमता कम हो जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि उनको प्राप्त मजदूरी और वेतन में भी कमी आती है; मजदूरी और वेतन में कमी से आय पर बुरा प्रभाव पड़ता है। एक ओर उसकी आय में कमी आती है तो दूसरी ओर उनके पारिवारिक उत्तरदायित्व में वृद्धि हो जाती है।

13. **निम्न जीवन-स्तर** :- भीड़-भाड़ और आवास की समस्या व्यक्तियों को निम्नस्तर का जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य करती है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि भीड़-भाड़ के परिणामस्वरूप कार्यकुशलता एवं कार्यक्षमता में कमी आती है। इसका आय पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसका परिणाम यह भी होता है कि उनका जीवन स्तर और भी निम्न होता जाता है।

14. **राष्ट्रीय हानि** :- बुरी आवास-व्यवस्था का प्रभाव केवल व्यक्तियों एवं परिवारों पर ही नहीं पड़ता है, अपितु इससे राष्ट्र भी प्रभावित होता है। बुरी आवास-व्यवस्था वैसे भी राष्ट्र के लिए कलंक है। खराब आवास-व्यवस्था से व्यक्तियों की कार्यकुशलता कम हो जाती है और इससे उत्पादन में कमी आती है जिससे देश में उपयोगी माल की कमी हो जाती है और राष्ट्रीय लाभांश की मात्रा भी कम हो जाती है, इससे राष्ट्रीय हानि होती है।

आवास-समस्या के समाधान हेतु सुझाव
(Suggestions to Solve Housing Problem)

आवास-व्यवस्था के महत्व का प्रतिपादन करते हुए सर विलियम बेवरीज ने लिखा है कि पर्याप्त और स्वस्थ आवास की व्यवस्था एक ऐसा अकेला और सबसे बड़ा उद्देश्य है जिसकी प्राप्ति की हमें इच्छा रखनी चाहिए और जिसकी प्राप्ति में उन्नत जीवन-स्तर, स्वास्थ्य और सुख निहित है।[1] आवास की व्यवस्था में सुधार के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं :-

(1) सरकार को इस सम्बन्ध में अधिनियम का निर्माण करना चाहिए। इस अधिनियम के माध्यम से नगरों और औद्योगिक क्षेत्रों में आवास की समस्या का समाधान करने में मदद मिलेगी।

(2) यातायात व्यवस्था में पर्याप्त सुधार किया जाए। ऐसा करने से व्यक्ति दूर-दूर की जगहों में रहकर भी अपने काम पर जाने में असुविधा का अनुभव नहीं करेंगे, इससे भीड़-भाड़ की समस्या को कम करने में मदद मिलेगी।

(3) कुछ इस प्रकार के वातावरण का निर्माण किया जाए जिससे मिल मालिक श्रमिकों के लिए आवास-व्यवस्था को अपना नैतिक कर्त्तव्य मानें। इस प्रकार जब सभी मिल मालिक अपने श्रमिकों की आवास-व्यवस्था को अपना नैतिक कर्त्तव्य मानेंगे तो यह समस्या स्वयं ही सुलझ जाएगी।

(4) शहरों में मकान अत्यन्त पुराने और जर्जर होते हैं जो कालान्तर में गन्दी बस्तियों का रूप धारण कर लेते हैं, इसलिए यह आवश्यक है कि मकानों की आयु सीमा निर्धारित की जाए। इस निर्धारित तिथि के पश्चात् मकानों का गिराना और नया निर्माण करना आवश्यक शर्त रखी जाए।

(5) नगरीय विकास की सम्भावनाओं का पता लगाया जाए। इन सम्भावनाओं के आधार पर नगरीय योजना का निर्माण किया जाए और इस योजना को कड़ाई से लागू किया जाए।

(6) अनेक उद्योग शहरों के मध्य में होने के कारण भीड़-भाड़ की समस्या को उग्रता प्रदान करते हैं। इसलिए ऐसे उद्योगों को जो शहरों के मध्य बनी बस्तियों में हैं, उन्हें शहरों से बाहर स्थानान्तरित किया जाए।

(7) व्यक्तियों को इस आशय की जानकारी दी जाए कि भीड़-भाड़ और गन्दे मकानों का उनके बच्चों पर बुरा प्रभाव पड़ता है और उनका व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है। इसके साथ ही उन्हें इसका ज्ञान कराया जाए कि गन्दे मकानों में बाल-मृत्यु दर भी अधिक होती है। साथ ही उनका व्यक्तिगत, पारिवारिक जीवन सामुदायिक और सामाजिक जीवन में विघटित हो जाता है।

(8) जागरूकता का प्रचार किया जाए, साथ ही साथ शिक्षा में वृद्धि भी की जाए। समाज के व्यक्तियों के बीच जो दबी हुई हीनता की भावना है उसे समाप्त किया जाए और उनमें आत्म-सम्मान की भावना को जगाया जाए। व्यक्तियों को गन्दे आवास की बुराइयों से परिचित कराया जाए।

(9) नगरों में मकानों के किरायों को नियन्त्रित किया जाए।

(10) नगरों में औद्योगिक विकास की सम्भावनाओं की जाँच की जाए।

(11) सरकारी समितियों को प्रोत्साहित किया जाए। इसके लिए वित्तीय सहायता और ऋण की व्यवस्था की जाए।

मलिन बस्तियाँ
(Slums)

औद्योगिक क्रान्ति ने मानव समाज को बहुमुखी प्रगति और विकास की ओर अग्रसर किया है। इसके कारण जहाँ एक ओर मानव गौरवान्वित हुआ है और उसने सभ्यता के सर्वोच्च शिखर की ओर पहुँचने का प्रयास किया है, वहीं दूसरी ओर मानव समाज को इस क्रान्ति ने अनेक समस्याएँ प्रदान की हैं। औद्योगिक क्रान्ति ने मानव

NOTES

समाज को सशक्त साधन के रूप में प्रभावित किया है और औद्योगीकरण तथा नगरीकरण को प्रोत्साहित किया है। यह वे प्रक्रियाएँ हैं जिनके द्वारा विशाल जनसंख्या एक केन्द्र बिन्दु के चारों ओर केन्द्रित हो जाती है और इसी केन्द्र बिन्दु के चारों ओर निवास करने के लिए प्रेरित होती है। यह एक ऐसा स्थान होता है, जहाँ किसी भी प्रकार की पूर्व नियोजित योजना नहीं होती है। मकानों का निर्माण अव्यवस्थित होता है तथा किसी प्रकार की योजना को स्थान प्रदान नहीं किया जा सकता है। गली और नालियों की समुचित व्यवस्था नहीं होती है। पीने का पानी पर्याप्त मात्रा में सर्वसुलभ नहीं होता है। एक ही स्थान पर अनेक व्यक्ति एक साथ नहाते, कपड़े साफ करते और पीने का पानी भरते हैं। सार्वजनिक नलों पर पानी के बर्तनों को कतारों में रख दिया जाता है और यह कतार इतनी लम्बी होती है कि जिसके बर्तन कतार में न हों, उसे जल्दी पानी प्राप्त करना असम्भव होता है। गन्दे पानी को बाहर निकालने के लिए वैज्ञानिक तरीकों से निर्मित नालियाँ नहीं होती हैं। इससे पानी इधर-उधर फैलता है और सड़ता रहता है। कूड़े-कचरों को फेंकने के व्यवस्थित स्थान नहीं होते हैं और उनकी साफ-सफाई की ओर भी विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। वहाँ पर जनसंख्या का दबाव भी अधिक होता है। इसका परिणाम यह होता है कि वहाँ पर रहने वाली जनसंख्या नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होती है। उनका नैतिक पतन प्रारम्भ हो जाता है और वे अनेक प्रकार के समाजविरोधी कार्यों की ओर उन्मुख होने लगते हैं। उनके रहन-सहन का स्तर निम्न होता है और इसमें निरन्तर गिरावट आती जाती है। उनका जीवन अनेक समस्याओं से घिरा होता है और इन समस्याओं की मात्रा में निरन्तर वृद्धि होती जाती है। मद्यपान, जुआ, वेश्यागमन आदि कार्यों की ओर अग्रसर होकर व्यक्ति विघटन को प्रोत्साहित करते हैं। ये विघटित व्यक्ति परिवार और समाज को भी विघटन के कगार पर लाकर खड़ा कर देते हैं।

भारत में मलिन बस्तियाँ
(Slums in India)

यद्यपि भारत में औद्योगिक क्रान्ति की लहर काफी देर से आई और आज भी यह विश्व के अन्य देशों की तुलना में अत्यन्त धीमी है, फिर भी भारत इस समस्या से अछूता नहीं रहा है। भारत में इन गन्दी बस्तियों का विकास औद्योगीकरण और श्रमिकों का एक स्थान पर आकर निवास करने के फलस्वरूप है। औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता होती है। उद्योगपति श्रमिकों को काम पर तो लगाते जाते हैं किन्तु उनके रहने के लिए किसी प्रकार की व्यवस्था नहीं करते हैं। नगरों में मकानों का किराया अधिक होता है और मजदूर जितनी भी मजदूरी पाते हैं वे अपनी 'रोटी' की समस्या को सही ढंग से नहीं सुलझा पाते हैं; किराये से अच्छा मकान लेकर रहना तो स्वप्न मात्र होता है। फिर, शहरों में तो रहना ही पड़ेगा क्योंकि रोजी- रोटी का प्रश्न है। ऐसी स्थिति में अत्यन्त ही गन्दे और जर्जर मकानों को किराये से लेते हैं और उनमें पशुओं की भाँति कई परिवारों के व्यक्ति निवास करते हैं। ब्रिटिश श्रमिक संघ कांग्रेस (British Trade Union Congress) का एक शिष्टमण्डल 1928 में भारत आया था। इसने भारतीय श्रमिकों की आवास व्यवस्था पर जो टिप्पणी की है, वह निम्नलिखित है-

"हम जहाँ कहीं भी ठहरे वहाँ श्रमिकों के निवास स्थानों को देखने के लिए गये और यदि हमने उन्हें नहीं देखा होता तो, हमें इस बात का कभी भी विश्वास नहीं हो सकता था कि इतने खराब भी मकान हो सकते हैं।"

मकानों की यही दशा गन्दी बस्तियों का मूल कारण है। देश में नगरीकरण और औद्योगीकरण की प्रक्रिया अत्यन्त ही तीव्र है। यदि हम भारत के व्यावसायिक आँकड़ों की ओर देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि-प्रधान देश होते हुये भी भारत में कृषि-व्यवसाय पर आश्रित व्यक्तियों की संख्या में निरन्तर कमी आती जा रही है और व्यवसायों पर आश्रित रहने वाले व्यक्तियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। यद्यपि भारत में कुटीर उद्योगों को सर्वोच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी है, किन्तु इस क्षेत्र में प्रगति नहीं हुई है। ऐसा लगता है कि भारतीय जनता की कुटीर उद्योग में अधिक आस्था नहीं है। भारत में विशाल उद्योगों के क्षेत्र में ही प्रगति हुई है। ये विशाल उद्योग नगरों में ही स्थापित किये गये हैं क्योंकि नगरों में सभी प्रकार की सुविधाएँ प्राप्त हैं। भारतीय गाँव आजादी के 25 वर्ष बाद भी इन सुविधाओं से काफी दूर हैं। यहाँ कुछ प्रमुख भारतीय नगरों में विकसित और स्थापित गन्दी बस्तियों की विवेचना ही पर्याप्त है। यह विवेचना निम्नलिखित है -

1. **चाल** (Chawl) - देश के अन्य नगरों की तुलना में बम्बई में औद्योगिक श्रमिकों की संख्या सबसे अधिक है। श्रमिकों के अतिरिक्त अनेक मध्यम वर्ग के व्यक्ति भी इन्हीं चालों में निवास करते हैं। यह चालें अत्यन्त ही घने क्षेत्रों में होती हैं। इन चालों में व्यक्ति ऐसे कमरों में निवास करते हैं जो कबूतर और मुर्गियों के पालने योग्य होते हैं। अधिकांश चालें तो ऊँची और पक्की इमारतें होती हैं, जो प्रायः 5-6 मंजिल तक की होती हैं। इन चालों में बने कमरों में प्रकाश और वायु का स्थान नहीं होता है। शौचालय अत्यन्त ही दूषित और बदबूदार होते

हैं। गन्दे पानी के निकलने की कोई व्यवस्था नहीं होती है और इन्हीं में कूड़ा-करकट सड़ता रहता है। 1938 में बम्बई के श्रम अधिकारी ने इन चालों की जाँच की थी। इस जाँच में जो तथ्य प्रकाश में आए वे निम्न थे -

(a) 91.24 प्रतिशत परिवार ऐसे थे जो एक ही कमरे वाले मकानों में निवास करते थे,

(b) इन चालों में रहने वाली जनसंख्या में 74 प्रतिशत श्रमिक थे,

(c) 79 प्रतिशत मकानों में शौचालयों की कोई व्यवस्था नहीं थी, और

(d) 81 प्रतिशत कमरों में पानी की कोई भी व्यवस्था नहीं थी।

बम्बई के श्रमिकों की एक बस्ती का वर्णन करते हुए **बी. शिवाराव** ने लिखा है कि "जब बम्बई में श्रमिकों की एक बस्ती में एक लेडी डॉक्टर एक मरीज को देखने गयी तो उसने देखा कि एक कमरे में 4 गृहस्थियाँ रहती थीं, जिनके सदस्यों की संख्या 14 थी।"

बम्बई के श्रमिकों की दयनीय दशा को देखते हुए **श्री हर्स्ट** ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं 'रहने की दशाएँ यहाँ सबसे खराब हैं। एक सँकरी गली में, जिसमें कि दो व्यक्ति एक साथ नहीं जा सकते हैं, (लेखक के) घुसने के बाद इतना अंधेरा था कि हाथ से टटोलने पर ही कमरे का दरवाजा मिला। उस कमरे में सूर्य का लेशमात्र भी प्रकाश नहीं था। ऐसी दशा में दिन के 12 बजे थे। एक दियासलाई जलाने के बाद ज्ञात हुआ कि ऐसे कमरों में भी श्रमिक रहते हैं।'

शाही श्रम आयोग (Royal Commission of Labour) ने भी इसी प्रकार के दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं- "अधिकतर चालों में कोई सुधार करने की गुंजाइश नहीं है और उनको नष्ट कर देने की आवश्यकता है।"

उपर्युक्त आयोगों के प्रतिवेदनों और विचारकों, लेखकों तथा समाज सुधार कार्यकर्ताओं के विचारों का मनन और चिन्तन करने से स्पष्ट हो जाता है कि बम्बई की यह गन्दी बस्तियाँ, जिन्हें चाल के नाम से जाना जाता है, मानव पतन की पराकाष्ठा के चित्र प्रस्तुत करती हैं। इनको देखकर किसी भी इन्सान का हृदय स्वभावत: पीड़ा और वेदना से भर जाता है। इन चालों में रहकर व्यक्ति सभी प्रकार के समाज-विरोधी कार्यों को सम्पादित करने के लिए बाध्य होता है।

2. बस्ती (Bustee) - भारत का दूसरा नगर कलकत्ता है, जहाँ गन्दी बस्तियाँ पायी जाती हैं और वहाँ पर उन्हें बस्ती या बस्तियों के नाम से सम्बोधित किया जाता है। कलकत्ता में इस प्रकार की बस्तियों का निर्माण मिल मालिकों और सरदारों ने किया था। इन बस्तियों का निर्माण मात्र आर्थिक पहलू को ध्यान में रखकर किया जाता था। इनका उद्देश्य मात्र पैसा कमाना था और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मिल मालिकों और सरदारों ने कच्चे तथा सस्ते प्रकार के मकानों का निर्माण किया था। इन बस्तियों में मानव अपना नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य होता है। इन बस्तियों में न तो पीने के पानी की समुचित व्यवस्था ही होती है और न ही गन्दा पानी निकलने के लिए समुचित नालियाँ ही होती हैं। इन मकानों में न तो स्नानघर होते हैं और न ही शौचालय। ये बस्तियाँ अत्यन्त ही घनी रहती हैं और इनमें चारों ओर कूड़ा-करकट पड़ा रहता है। कलकत्ता एक ओर पूँजीपतियों और मिलमालिकों की अट्टालिकाओं से चमकता है तो दूसरी ओर गन्दी बस्तियों के घृणित और पतित् जीवन से भी अभिशप्त होता है। ये गन्दी बस्तियाँ समाजवादी आदर्शों और प्रजातन्त्रीय सिद्धांतों का खोखला चित्र प्रस्तुत करती हैं। जो व्यक्ति इन गन्दी बस्तियों में निवास करते हैं उनका जीवन अत्यन्त ही दयनीय और अस्वास्थ्यप्रद होता है। कलकत्ता कॉरपोरेशन के प्रबन्ध प्रतिवेदन (Report of the Administration of Calcutta) में इन गन्दी बस्तियों का जो वर्णन किया गया है, वह निम्नलिखित है -

"एक बस्ती में बहुत से कच्चे मकान होते हैं जिसमें सड़कों, नालियों, प्रकाश और जल की कोई व्यवस्था नहीं होती है। यह बस्तियाँ दु:ख, कुकर्म, गन्दगी, रोग और बीमारियों को जन्म देती हैं। इन बस्तियों में बहुधा हरे और दूषित जल से भरे हुए तालाब पाये जाते हैं जिनमें प्रायः वहाँ के निवासी सड़ी हुई सब्जियाँ और पशुओं का मलमूत्र फेंकते रहते हैं और यह वहाँ सड़ता रहता है। अधिकतर श्रमिक अपने दैनिक प्रयोग के लिए पानी इन तालाबों ही से प्राप्त करते हैं। इन बस्तियों में सम्पूर्ण परिवार निवास करता है। वे एक कमरे के मकान में भोजन करते हैं और रहते हैं तथा पूरे परिवार को एक नम और भीगे हुए फर्श पर चटाई बिछाकर सोना पड़ता है।"[3]

कलकत्ता कॉरपोरेशन प्रशासन ने जो प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था, उसे एक शताब्दी से भी अधिक समय हो गया है, किन्तु आज भी कलकत्ता की इन बस्तियों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है, परिवर्तन यदि हुआ भी है

NOTES

तो वह यही कि इन बस्तियों की हालत निरन्तर बद से बदत्तर होती जा रही है। स्वतंत्रता के बाद भी इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है और आज भी मानव इन बस्तियों में पतन और समाज-विरोधी कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित होता है। इधर कुछ मिल मालिकों ने श्रमिकों के आवास के लिए मकानों के निर्माण का कार्य किया है। किन्तु यह कार्य पर्याप्त नहीं है। दूसरी ओर इन बस्तियों को समाप्त करने या सुधार करने की दिशा में कोई भी महत्वपूर्ण प्रगति नहीं हुई है।

3. **आहाता** (Ahaata) - कानपुर में इन गन्दी बस्तियों को आहाता कहा जाता है। कानपुर के अधिकांश श्रमिक इन्हीं आहातों में निवास करते हैं। कानपुर में श्रमिकों तथा अन्य अनेक प्रकार के व्यक्तियों को इन आहातों में रहने के लिए बाध्य होना पड़ता है। कानपुर के आहातों में स्थित इन मकानों के कमरे अत्यन्त ही छोटे होते हैं तथा इनमें निरन्तर अंधेरा छाया रहता है। इन मकानों में पानी, प्रकाश और निजी जीवन की किसी भी प्रकार की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। इन मकानों की दशा अत्यन्त ही सोचनीय तथा भीड़-भाड़ पूर्ण होती है। कानपुर के इन आहातों के सम्बन्ध में विभिन्न प्रतिवेदनों और विद्वानों ने विचार व्यक्त किये हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं :

कानपुर श्रमिक जाँच समिति (Kanpur Labour Enquiry Committee) ने अपने प्रतिवेदन में इन आहातों के बारे में निम्नलिखित विचार व्यक्त किये हैं :

(1) "किसी अपरिचित व्यक्ति के लिए कानपुर की गन्दी बस्तियों में रात में जाना एक खतरनाक बात हो सकती है। उनके घुटने में चोट तो निश्चित रूप से लग जाएगी और किसी अंधेरे कुएँ में या किसी काफी बड़े गड्ढे में गिरकर उसकी गरदन का टूट जाना असम्भव नहीं होगा।"

(2) "यद्यपि गन्दी बस्तियों में रहने वाले व्यक्ति बम वर्षा के समय पूर्णतया सुरक्षित रहते हैं, लेकिन शान्ति के समय में मानव जाति के भयंकर शत्रु जैसे- कीड़े-मकोड़े और खटमलों के बहुत जल्दी शिकार हो जाते हैं।"

1952 में तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू कानपुर की इन बस्तियों को देखने गये, तो वे अपनी भावनाओं को दबा नहीं सके तथा क्रोध और आवेश में आकर उन्होंने कहा था कि "ये गन्दी बस्तियाँ मानवता के पतन की पराकाष्ठा की प्रतीक हैं। जो लोग इन गन्दी बस्तियों के लिए उत्तरदायी हैं इन्हें फाँसी दे दी जानी चाहिए।"

उपर्युक्त कथनों में कानपुर के इन आहातों को 'नर्क कुण्ड' की संज्ञा दी गयी है। भारत में जिस नर्कलोक की कल्पना की गयी है, वे भी इन गन्दी बस्तियों से अधिक वीभत्स और घृणास्पद नहीं होंगे। यहाँ पर व्यक्ति नारकीय जीवन व्यतीत करते हैं; छोटे से कमरे में कई परिवारों के सदस्य एक-एक साथ निवास करते हैं। इन कई परिवारों के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सभी कार्य इसी एक कमरे में ही होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति का अधोपतन होता है और वह स्वाभावत: समाजविरोधी कार्यों की ओर अग्रसर हो जाता है।

चेरी (Cherrie) - मद्रास भी इस भीषण सामाजिक समस्या से परे नहीं है। मद्रास में भी देश के अन्य नगरों की भाँति ही गन्दी बस्तियाँ हैं और वहाँ इन बस्तियों को चेरी या चेरिज (Cherrie or Cherries) के नाम से पुकारते हैं। मद्रास की इन चेरियों की दशा देश के अन्य नगरों से और भी बदतर है। मद्रास में अधिकांश चेरियाँ कूम नदी के किनारे बनी हुई हैं। इसके अतिरिक्त नगर के अन्य क्षेत्रों में भी चेरियाँ हैं। इन बस्तियों में कमरों की औसत नाप 8 × 6 होती है। यह कच्ची मिट्टी के बने मकान होते हैं, इसलिए वर्षा में इनकी हालत अत्यन्त ही खराब हो जाती है। इनमें रहने वाले व्यक्ति अत्यन्त ही दयनीय अवस्था में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। महात्मा गाँधी ने मद्रास की इन चेरियों की दशा का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया है -

"एक चेरी जिसे देखने मैं गया था, उसके चारों ओर पानी और गन्दी नालियाँ थीं। वर्षा ऋतु में मनुष्य जाने कैसे वहाँ रहते होंगे? एक बात यह है कि यह चेरियाँ सड़क के स्तर से नीची हैं और वर्षा ऋतु में उनमें पानी भर जाता है। इनमें सड़कों, गलियों की कोई व्यवस्था नहीं होती है और अधिकतर झोपड़ियों में नाममात्र के रोशनदान भी नहीं होते हैं। यह चेरियाँ इतनी नीची होती हैं कि बिना पूर्णतया झुके उनमें प्रवेश भी नहीं किया जा सकता है। यहाँ की सफाई न्यूनतम स्तर की सफाई से भी कहीं खराब होती है।"

गाँधी जी ने मद्रास की एक चेरी का जो विवरण प्रस्तुत किया है, वह वास्तव में हृदय को दहला देने वाला है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इन चेरियों की सामान्य दशाएँ कितनी अमानवीय हैं तथा इनमें इन्सान पशुओं

से भी खराब जिन्दगी व्यतीत करता है। मद्रास में अनुमानत: इन चेरियों की संख्या 200 से अधिक है। इनमें से अधिक चेरियाँ निजी स्वामित्व की हैं और बाकी सरकारी, मद्रास नगर की कारपोरेशन तथा ट्रस्टों की हैं।

भारत में ऊपर जिन चारों नगरों की गन्दी बस्तियों की चर्चा की गई है, इनके अतिरिक्त भी अनेक ऐसे नगर हैं जहाँ गन्दी बस्तियाँ विकसित हो गई हैं। इन नगरों में अहमदाबाद, इन्दौर, जबलपुर, दिल्ली आदि का नाम प्रमुख है। आज भारतीय नगरों में तीव्रता के साथ औद्योगिक विकास होता जा रहा है। इस औद्योगिक विकास के कारण अचानक एक स्थान पर बड़ी मात्रा में व्यक्तियों को निवास करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। चूँकि औद्योगीकरण के साथ ही साथ आवास-व्यवस्था का समुचित सुधार नहीं होता है, इसलिए गन्दी बस्तियाँ विकसित होती हैं।

NOTES

भारत में खानों और बागान क्षेत्रों में भी गन्दी बस्तियाँ विकसित हो गयी हैं। इसका कारण यह है कि इन क्षेत्रों में अधिक मात्रा में काम करने वाले मजदूर रहते हैं और उनके निवास आदि की उचित व्यवस्था न होने से ये गन्दी बस्तियों के रूप में परिवर्तित होते हैं।

मध्यप्रदेश में मलिन बस्तियाँ
(Slums in Madhya Pradesh)

मध्यप्रदेश यद्यपि कृषि-प्रधान प्रदेश है। अन्य प्रदेशों की तुलना में यहाँ औद्योगिक विकास भी नहीं हुआ है। प्रदेश की 20 प्रतिशत जनसंख्या आदिम जाति की है। यहाँ शिक्षा का प्रसार भी अधिक नहीं है। फिर भी यहाँ के अनेक नगरों में गन्दी बस्तियों का विकास हो गया है। मध्यप्रदेश के जिन नगरों में गन्दी बस्तियों का विकास हुआ है, उनमें इन्दौर, ग्वालियर, जबलपुर आदि प्रमुख हैं। इन नगरों की गन्दी बस्तियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है :

इन्दौर मध्यप्रदेश का सबसे बड़ा औद्योगिक नगर है। इन्दौर के सभी कारखानों में कार्यरत श्रमिकों की संख्या एक लाख से कहीं अधिक होगी। इन्दौर के जिन प्रमुख मोहल्लों में गन्दी बस्तियाँ सबसे अधिक पायी जाती हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं- परदेशीपुरा, भिण्डीखो, पंचम की फेल, बड़ी ग्वाल टोली, गोमा की फेल, कुलकर्णी भट्टा आदि। नगर में अनेक धनी व्यक्तियों ने किराये के उद्देश्य से चालों का निर्माण किया है और इन चालों में श्रमिक निवास करते हैं। ये मकान नहीं अपितु झोपड़ियों के झुण्ड होते हैं। ये झोपड़ियाँ अत्यन्त ही छोटी होती हैं। ये 5-6 फुट लम्बी और इतनी ही चौड़ी होती हैं। इन एक-एक झोपड़ियों में निवास करने वाले व्यक्तियों की संख्या 15-16 होती है। इसी 5 फुट की झोपड़ी में जीवन से लेकर मृत्यु तक के सभी कार्य सम्पादित किये जाते हैं। इनमें हवा, पानी और रोशनी की कोई व्यवस्था नहीं होती है। दरवाजे के रूप में टाट या पट्टी का एक गन्दा और फटा हुआ चिथड़ा झूलता रहता है। इन बस्तियों में रहने वाले व्यक्ति नैतिक रूप से पतित हो जाते हैं।

लश्कर ग्वालियर की गलियाँ गन्दी बस्तियों के चित्र प्रस्तुत करती हैं। इन गलियों में दोनों ओर घनी और गन्दी बस्तियाँ हैं, जहाँ रोशनी और सूर्य प्रकाश का पहुँचना असम्भव रहता है। यहाँ के लोगों का जीवन भी अत्यन्त ही अस्वास्थ्यकर है। इसी प्रकार की गन्दी बस्तियाँ जबलपुर में भी हैं। जबलपुर में इन गन्दी बस्तियों के कारण हैं- वहाँ की फैक्ट्रियाँ। जबलपुर के अतिरिक्त रायपुर, भोपाल आदि नगरों में भी न्यूनाधिक मात्रा में गन्दी बस्तियाँ पायी जाती हैं।

मलिन बस्तियों की उत्पत्ति के कारण
(Reasons for Origin of Slums)

1. **दरिद्रता** - दरिद्रता गंदी बस्तियों की उत्पत्ति और विकास का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। इन गन्दी बस्तियों में श्रमिक मजदूर और निम्न आय समूह वाले व्यक्ति निवास करते हैं। इनके सामने मौलिक समस्या 'पेट भरने और तन ढँकने' की होती है। इनके पास साधनों का भी अभाव पाया जाता है। ये रात-दिन अपनी रोजी-रोटी के लिए खून-पसीना एक करते रहते हैं, तब जाकर कहीं रोटी नसीब होती है। इनके पास इतने पैसे नहीं होते हैं कि ऊँची अट्टालिकाओं और बंगलों का खुले वातावरण में निर्माण करवा सकें। इसका परिणाम यह होता है कि इन्हें बाध्य होकर इन्हीं गन्दी बस्तियों में निवास करना पड़ता है।

2. **मकानों का अभाव** - मकानों की अपर्याप्त संख्या भी इस समस्या को प्रोत्साहित करती है। नगरों में उद्योगों और व्यवसायों की अधिकता होती है तथा अनेक अन्य आकर्षणों के कारण भी नगरीय जनसंख्या का आकार विशाल हो जाता है, भूमि की मात्रा सीमित और अपर्याप्त होती है। व्यक्तियों के पास जो भी साधन होते

हैं वे अत्यन्त ही सीमित होते हैं। अत: नगर में निवास करने वाले सभी व्यक्ति अपना मकान बनवाने में असमर्थ रहते हैं। इसके अतिरिक्त नगरों में अन्य अनेक परेशानियों के कारण भी अनेक व्यक्ति मकान निर्माण को उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। परिणामस्वरूप अधिकांश व्यक्ति किराये के मकानों में रहने को बाध्य होते हैं। इससे मकानों का अभाव हो जाता है और अनेक व्यक्तियों को विवश होकर गन्दे मकानों में निवास करना पड़ता है।

NOTES

3. **अज्ञानता** - गन्दी बस्तियों के प्रसार में 'अज्ञानता' का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ज्ञान की कमी या इसके अभाव के कारण भी गन्दी बस्तियों का विकास होता है। जो व्यक्ति इन गन्दी बस्तियों में निवास करते हैं, उनमें स्वास्थ्य सुविधाओं, सफाई, बीमारियों और उनके निदान आदि के बारे में बिल्कुल भी ज्ञान नहीं होता है। इस ज्ञान के अभाव में ये इन बस्तियों के सुधार की ओर ध्यान नहीं देते हैं और इन्हें जीवन के अंग के रूप में स्वीकार कर लेते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि गन्दी बस्तियों को प्रोत्साहन मिलता है।

4. **औद्योगिक क्रान्ति** - गन्दी बस्तियों को विकसित करने में औद्योगिक क्रांति की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। औद्योगिक क्रांति के परिणामस्वरूप नगरों में तीव्रता से कारखानों की स्थापना होने लगी तथा अनेक श्रमिक अपनी रोजी-रोटी की समस्या का समाधान करने के उद्देश्य से इन कल-कारखानों में आकर काम करने लगे। ये श्रमिक निम्न आमदनी वाले होते थे, अत: विवश होकर इन्हें गन्दी बस्तियों में निवास करना पड़ता था। यही श्रमिक झाड़-फूस की बनी झोपड़ियों में निवास करने को बाध्य होते हैं। ये झोपड़ियाँ अत्यन्त ही अस्वच्छ तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकर होती हैं।

5. **जनसंख्या में वृद्धि** - जनसंख्या में तीव्रगति से होने वाली निरन्तर वृद्धि के कारण भी गन्दी बस्तियों का विकास होता है। आज ग्रामीण जनसंख्या और नगरीय जनसंख्या दोनों में तीव्रता से वृद्धि होती जा रही है। भारत में ग्रामीण जीवन अभावों और परेशानियों से घिरा हुआ है। खेती ही आजीविका का एकमात्र साधन है। जनसंख्या में जो निरन्तर वृद्धि हो रही है, इससे भी अनेक व्यक्ति भागकर नगरों की शरण लेते हैं, जहाँ से वे कभी भी लौटने की इच्छा नहीं करते। उनके पास आर्थिक साधनों की कमी होती है, परिणामत: उन्हें गन्दी बस्तियों की शरण लेनी पड़ती है।

6. **गतिशीलता** - नगरों की तरफ 'देशांतर गमन' में आज अत्यन्त ही वृद्धि हो गई है। देशांतर गमन के साथ ही अनेक तत्व मिलकर नगरों में गन्दी बस्तियों को प्रोत्साहित करते हैं। उद्योग तथा अन्य अनेक कारण मिलकर ग्रामीण जनसंख्या को नगरों की ओर आकर्षित करते हैं। नगरों में इस प्रकार ग्रामीण जनसंख्या का दबाव बढ़ता जाता है। ग्रामीण जनसंख्या स्वास्थ्य, सफाई, अस्वास्थ्यकर पड़ौस आदि पर अपना विशेष ध्यान नहीं देती है। जिस प्रकार वे गाँवों में खेतों और खुली जगहों को शौचालय में उपयोग में लाते हैं, ठीक उसी प्रकार उनकी आदत शहरों में भी रहती है। वे जहाँ भी मौका पाते हैं, शौच के लिए बैठ जाते हैं। महत्वपूर्ण बात यह है कि गाँवों की भाँति नगरों में पर्याप्त मात्रा में खुली जगह नहीं होती है। इसका परिणाम यह होता है कि ग्रामीणों की यह आदत नगरीय जीवन को अभिशप्त कर देती है। वे आसपास की बिल्कुल चिन्ता नहीं करते हैं और पास-पड़ौस में गन्दगी फैलाना आरम्भ कर देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि गन्दी बस्तियों का विकास हो जाता है।

7. **मकान मालिकों द्वारा उपेक्षा** - नगरों में जो मकान निर्मित किये जाते हैं, उनका मौलिक उद्देश्य कम से कम स्थान (क्षेत्र) में अधिक किराये वाले मकान का निर्माण करना होता है। इससे अन्धी कोठरी जैसे मकान बना दिये जाते हैं। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह होती है कि मकान मालिक इन मकानों की मरम्मत आदि की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देते हैं। साथ ही ऐसा मनोविज्ञान विकसित होता जा रहा है कि किरायेदारों को मकान में कम से कम सुविधाएँ प्रदान की जाएँ। यदि ज्यादा से ज्यादा सुविधाएँ प्रदान की जाएँगी तो किरायेदार मकान कभी भी खाली नहीं करेंगे। इससे औसतन किराया कम मिलेगा। अनेक नगरों में जो व्यक्ति 50 वर्ष से मकान किराए पर लिए बैठे हैं उनका किराया तुलनात्मक रूप से अत्यन्त ही कम है। मकान मालिक मकानों की मरम्मत भी नहीं करवाते हैं, इससे मकान निरन्तर जीर्ण-शीर्ण होते जाते हैं तथा इसका परिणाम यह होता है कि गन्दी बस्तियाँ विकसित हो जाती हैं।

8. **ग्रामीण रोजगार का अभाव** - भारत का सबसे प्रमुख उद्योग कृषि है और अधिकांश व्यक्ति कृषि पर ही आधारित हैं। आज की बदलती हुई परिस्थितियों में यद्यपि कृषि में प्रगति हुई है किन्तु कृषकों के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी हो गई हैं। आज कृषि को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है।

आज विचारधारा बदल गयी है। भारत में जिस कृषि को सर्वोच्च महत्ता प्रदान की गयी थी, आज उसकी ओर शिक्षित जनसंख्या का बिल्कुल झुकाव नहीं है और वह इसे असभ्य और पिछड़ेपन की निशानी मानती है।

जिस नौकरी को निकृष्ट (निम्नकोटि का) माना जाता था, आज उसे सर्वाधिक महत्व प्रदान किया जा रहा है और भारत के सभी व्यक्ति चाहते हैं कि उन्हें किसी न किसी प्रकार की नौकरी मिल जाए। दु:ख की बात तो यह है कि लोग गाँवों में नौकरी भी नहीं करना चाहते हैं क्योंकि गाँवों को पिछड़ेपन का प्रतीक मानते हैं। इससे नगरीकरण में वृद्धि होती है और गन्दी बस्तियों का विकास होता है।

जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि भारतीय गाँवों में खेती के अतिरिक्त रोजगारों का नितान्त अभाव है। 4-5 माह कृषि कार्य करने के बाद ग्रामीण व्यक्ति बेरोजगार हो जाते हैं और फिर रोजगार की तलाश में गाँवों से नगरों की ओर पलायन करते हैं। नगरों में पहुँचने वाले ये व्यक्ति आवास के अभाव में झुग्गी झोपड़ियों का सहारा लेते हैं, इसका परिणाम यह होता है कि गन्दी बस्तियों का विकास होता है।

9. **प्राकृतिक विपदाएँ** - समय-समय पर पड़ने वाली प्राकृतिक विपदाएँ भी भारतीय नगरों में गन्दी बस्तियों के लिए उत्तरदायी हैं। इन प्राकृतिक विपदाओं में अकाल, बाढ़, सूखा आदि प्रमुख हैं। इन प्राकृतिक विपदाओं का सीधा प्रभाव कृषि पर होता है और कृषि पैदावार में गिरावट आती है। अनेक अवस्थाओं में कुछ ऐसी प्राकृतिक विपदाएँ, जैसे- पाला, ओला, बाढ़, सूखा आदि प्रमुख आती हैं तो लगी फसलें भी सूख जाती हैं, नष्ट हो जाती हैं और किसान का सारा जीवन संकटग्रस्त हो जाता है। भारत में प्रतिवर्ष इन प्राकृतिक विपदाओं के कारण खेती की भारी मात्रा में हानि होती है। खेती ही ग्रामीणजनों के भरणपोषण का आधार होती है। ऐसी अवस्था में ग्रामीण जन किस प्रकार से अपना जीवनयापन करें? गाँवों में अन्य उद्योग-धन्धे तो होते नहीं, जिसकी शरण में विपदाओं का शिकार ग्रामीण व्यक्ति जा सके, अत: ऐसी अवस्था में ग्रामीण व्यक्तियों को एक ही रास्ता प्रतीत होता है और वह रास्ता है- नगर की ओर पलायन करने का। व्यक्ति विवश होकर नगरों की शरण लेते हैं। आवास के अभाव में उन्हें गन्दी बस्तियों में निवास करना पड़ता है। इससे गन्दी बस्तियों को प्रोत्साहन मिलता है।

10. **नगरों में सामाजिक सुरक्षाएँ** - भारतीय ग्रामीण समाज में नगरों की तुलना में सामाजिक सुरक्षाएँ अत्यन्त ही कम हैं। उदाहरण के लिए गाँवों में चोरों, लुटेरों और आवाराओं से बचने के लिए न तो पुलिस है और न बीमारियों से बचने के लिए चिकित्सालय और डॉक्टर ही। इसके अतिरिक्त गाँवों में शिक्षा, सांस्कृतिक जीवन, मनोरंजन, संदेश और संचार के साधन आदि की सुविधाएँ भी उपलब्ध नहीं हैं। आज का ग्रामीण उपर्युक्त बातों को जीवन के लिए आवश्यक समझता है। उसका विश्वास है कि नगरों में जाकर वह इन सभी सुविधाओं को प्राप्त कर सकता है। फिर गाँवों में जाति आदि के बन्धन भी कठोर हैं। जो व्यक्ति निम्न जाति के हैं, उन्हें अत्यन्त ही कम सुविधाएँ प्राप्त हैं तथा उन्हें कठिन और निन्दनीय जीवन व्यतीत करना पड़ता है। गाँव का 'नरइना' नगर में 'नारायणदास' के नाम से परिचित होकर गर्व और प्रतिष्ठा की अनुभूति करता है। इस सबका परिणामयह होता है कि व्यक्ति गाँवों की अपेक्षा नगरों को अच्छा मानते हैं और वहाँ रहना भी पसंद करते हैं। इसका परिणाम यह भी होता है कि नगरीकरण की प्रक्रिया गतिशील हो जाती है और गन्दी बस्तियों का विकास होता जाता है।

11. **नगर-नियोजन का अभाव** - नगर नियोजन का अभाव भी भारतीय नगरों में गन्दी बस्तियों के लिए उत्तरदायी है। नगरीय जनसंख्या में जो वृद्धि हुई है वह किसी योजना के अधीन नहीं है; इससे अनेक समस्याओं का विकास होता है। इन समस्याओं में गंदी बस्तियों की समस्या एक है।

12. **अन्य कारण** - भारत में गन्दी बस्तियों के लिए उत्तरदायी जिन कारणों की विवेचना की गयी है, उनके अतिरिक्त अन्य अनेक कारण भी हैं जो नगरीकरण को प्रोत्साहित करते हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं:

(a) पारिवारिक कलह,

(b) सामाजिक बहिष्कार,

(c) रीति-रिवाज और रूढ़ियों की उपेक्षा, तथा

(d) अनाथ अवस्था और ग्रामीणों पर अत्याचार।

मलिन बस्तियों के दुष्परिणाम
(Evil Effects of Slums)

गन्दी बस्तियाँ समाज के लिए सबसे बड़े कलंक की निशानी हैं। ये उन मानव समाजों के लिए सबसे बड़ी चुनौती हैं जो अपने को सभ्य और प्रगतिशील कहते हैं। आज मानव चाँद पर पहुँच गया है और भविष्य में वह अन्य ग्रहों पर भी विचरण करेगा। विज्ञान (Science) और प्रौद्योगिकी (Technology) ने अत्यधिक मात्रा

NOTES

में प्रगति की है, किन्तु धरती पर रहने वाले इन मानवों की समस्यायें आज भी ज्यों की त्यों हैं और मर्ज और भी गम्भीर होता जा रहा है तथा मरीज की हालत और भी खराब होती जा रही है। इसलिए इस समस्या की ओर विशेष रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। इसका सामाजिक जीवन पर अत्यन्त ही बुरा प्रभाव पड़ता है। गन्दी बस्तियों के सामाजिक दुष्परिणामों को मुख्य रूप से निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. **व्यक्तिगत विघटन** - गन्दी बस्तियाँ व्यक्तिगत जीवन को विघटित कर देती हैं। इसका कारण यह है कि इनमें रहकर व्यक्ति सामान्य जीवन-यापन नहीं कर पाता है; यही कारण है कि उसे असामान्य जीवन व्यतीत करना पड़ता है। गन्दी बस्तियों में रहकर व्यक्ति जिन प्रमुख व्यक्तिगत विघटनों की ओर अग्रसर होता है, उनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं -

(a) मद्यपान (Alcoholism)

(b) मादक द्रव्य व्यसन (Drug Addiction)

(c) जुआ खेलना (Gambling) और दाँव लगाना (Betting)

(d) आत्महत्या (Suiciding)

उपर्युक्त सभी घटनाएँ मानव पतन और व्यक्तिगत विघटन की प्रतीक हैं।

2. **पारिवारिक विघटन** - गन्दी बस्तियों का दूसरा दुष्परिणाम पारिवारिक विघटन है। जैसा कि लिखा जा चुका है कि आवास समस्या की जटिलता के कारण गन्दी बस्तियों का विकास होता है। इस समस्या के कारण श्रमिक गाँवों में अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़ने के लिए बाध्य होते हैं। उनके पास इतना पैसा नहीं होता है कि नगर में अच्छा मकान लेकर अपने परिवार को उसमें रख सकें। उनके पास इतना पैसा भी नहीं होता कि माह दो माह में अपनी पत्नी और बच्चों से मिल सकें। अनेक परिस्थितियों में श्रमिक कई वर्षों तक अपनी पत्नी और बच्चों के पास नहीं जा पाते हैं। नगरों का जीवन इतना जटिल होता है तथा उन्हें इतना कठिन परिश्रम करना पड़ता है कि शाम को जब लौटते हैं तो उनका अपने शरीर और मन पर कोई नियंत्रण नहीं होता है। ऐसी अवस्था में उन्हें पारिवारिक मनोरंजन की आवश्यकता होती है, किन्तु परिवार के अभाव में वे इस सुख से वंचित रह जाते हैं तथा विवश होकर शराब पीत हैं, जुआ खेलते हैं और परिवार से दूर होने के कारण अपनी यौन तृष्णा की संतुष्टि के लिए वेश्यागमन करते हैं। ऐसा करते-करते धीरे-धीरे उनकी आदत हो जाती है और वह परिवार को भूलते जाते हैं। एक स्थिति ऐसी आती है जब व्यक्ति पूरी तरह परिवार से नाता तोड़ लेता है। इस प्रकार गन्दी बस्तियों का परिणाम पारिवारिक विघटन के रूप में होता है।

3. **सामाजिक विघटन** - गन्दी बस्तियाँ व्यक्ति और परिवार को ही विघटित नहीं करतीं, अपितु समाज और इसकी संरचना को भी विघटित करती हैं तथा अनेक सामाजिक समस्याओं को जन्म देती हैं। गन्दी बस्तियों का विकास व्यक्तिगत कार्यों की असफलता का परिणाम होता है। आज की गन्दी बस्तियाँ अपने नागरिकों पर गहरा प्रभाव डालती हैं। इसका परिणाम यह होता है- व्यक्तिगत समस्याओं का जन्म और इनके समाधान के अभाव में व्यक्ति के मस्तिष्क में उत्पन्न निराशा। इस निराशा का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति समाज की अपेक्षा अपने को अधिक महत्ता प्रदान करता है। इससे व्यक्तिवाद का विकास होता है। जब समाज में इस प्रकार की भावनाएँ विकसित हो जाती हैं तो व्यक्ति व्यक्तिगत कार्यों को सर्वोच्च महत्ता प्रदान करता है तथा सामाजिक मूल्यों और आदर्शों (सामाजिक) की उपेक्षा करता है। जब समाज के अधिकांश व्यक्तियों द्वारा सामाजिक मूल्यों और मान्यताओं की उपेक्षा की जाती है तो परम्परात्मक समाज का ढाँचा असन्तुलित हो जाता है और इस प्रकार सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है।

4. **राष्ट्रीय विघटन** - गन्दी बस्तियाँ किसी भी राष्ट्र के लिए महान चुनौती और समस्या होती हैं। गन्दी बस्तियाँ राष्ट्रीय पतन का चित्र प्रस्तुत करती हैं और इनसे किसी राष्ट्र के जीवन और चरित्र का अनुमान लगाया जाता है। जब समाज में शराब पीने वाले, जुआ खेलने वाले, पारिवारिक विघटन वाले व्यक्तियों और आत्महत्याओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है तो इससे सामाजिक विघटन को प्रोत्साहन मिलता है। यह सामाजिक विघटन राष्ट्रीय विघटन को प्रोत्साहित करता है।

5. **नैतिक पतन** - गन्दी बस्तियाँ व्यक्ति की नैतिकता को भी प्रभावित करती हैं। वह व्यक्ति जो गन्दी बस्तियों में निवास करते हैं, उनके सामने इतनी समस्याएँ हैं कि वे किसी बात पर नैतिकता, अनैतिकता की बात

नहीं करते हैं। एक छोटे कमरे में कई परिवारों के व्यक्ति निवास करते हैं। वहीं जीवन से लेकर मृत्यु तक के सभी कार्य होते हैं। खासकर यौन क्रियाओं का किशोर मस्तिष्क पर सबसे अधिक कुप्रभाव पड़ता है। अधिकांशत: पाया गया है कि गंदी बस्तियों में रहने वाले लड़के इधर-उधर घूमते रहते हैं। बीड़ी-सिगरेट उनके जीवन के सामान्य अंग होते हैं। छोटी-मोटी चोरियाँ भी इन्हीं क्षेत्रों के बालकों द्वारा की जाती हैं। यहाँ पर मद्यपान और जुआ सामान्य बात होती है। सभी व्यक्ति परम्पराओं का आदर नहीं करते हैं। यहाँ विभिन्न समुदाय, धर्म और जाति के व्यक्ति होते हैं। अत: यहाँ पर व्यक्ति के ऊपर किसी प्रकार का दबाव नहीं रहता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति नैतिक पतन की ओर अग्रसर होता जाता है।

NOTES

6. **अज्ञानता को प्रोत्साहन** - अज्ञानता भी गन्दी बस्तियों का दुष्परिणाम है। यहाँ पर रहने वाले व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती है, इससे वह बच्चों को स्कूलों तथा महाविद्यालयों में शिक्षा नहीं दे पाते हैं। पार्क और खेल के मैदानों का अभाव होता है, इससे उन्हें स्वस्थ मनोरंजन प्राप्त नहीं होता है। वाचनालय और पुस्तकालय नहीं होते हैं, जिससे ज्ञान में वृद्धि की जा सके। वे दिन भर गलियों में घूमते रहते हैं, कूड़ा- करकट के ढेर में खेलते रहते हैं, बीड़ी और सिगरेट पीते हैं, इसका परिणाम यह होता है कि उनमें अज्ञानता का विकास होता है। इस अज्ञानता के कारण इन गन्दी बस्तियों की ओर कभी सोचते ही नहीं हैं और न ही इन्हें दूर करने का प्रयास ही करते हैं।

7. **बुरा स्वास्थ्य और बीमारियाँ** - गन्दी बस्तियाँ स्वास्थ्य पर भी बुरा प्रभाव डालती हैं। गन्दी बस्तियों का वातावरण अत्यन्त ही दूषित होता है। वहाँ न तो रोशनी पहुँचती है और न ही सूर्य का प्रकाश। स्वच्छ पानी की कोई व्यवस्था नहीं होती है। नालियों के अभाव के कारण गन्दा पानी नहीं निकल पाता है और गड्ढों में सड़ता रहता है। इससे अनेक प्रकार की भयंकर बीमारियाँ फैलती हैं। गरीब होने के कारण वे इन बीमारियों का उचित इलाज भी नहीं करवा पाते हैं। वे ईश्वर की इच्छा पर ही जीते और मरते हैं। उनके विचार में बीमार होना ईश्वरीय इच्छा का परिणाम है और ईश्वर की इच्छा से ही स्वस्थ हुआ जा सकता है। वातावरण दूषित होने से बीमारियाँ तो फैलती ही हैं, इसके साथ ही इन क्षेत्रों में जो व्यक्ति निवास करते हैं, उनका स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है तथा इस प्रकार बीमारियों से ग्रस्त व्यक्ति स्वास्थ्य की दृष्टि से निर्बल हो जाता है।

अन्त में, गन्दी बस्तियों के परिणाम अत्यन्त ही बुरे होते हैं। इससे व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय विघटन को प्रोत्साहन मिलता है। इससे व्यक्ति का नैतिक पतन होता है, उसमें अज्ञानता का विकास होता है और उनके स्वास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है तथा उनमें बीमारियाँ घर किये रहती हैं अन्त: गन्दी बस्तियाँ मानवता के पतन का मार्ग प्रस्तुत करती हैं।

समस्या के समाधान हेतु सुझाव
(Suggestions to Solve the Problem)

मौलिक प्रश्न यह है कि इस समस्या का समाधान किस प्रकार किया जाए? ऐसे कौन से साधन हैं जिनकी सहायता से मानव को इस नारकीय यातना से मुक्त किया जा सके? समस्या अत्यन्त उग्र हो गयी है और गरीब अन्तिम सासें ले रहा है। समस्या बहुत गम्भीर हो गयी है अत: इसका निराकरण साधारण सी बात नहीं है। फिर भी कोई ऐसी समस्या नहीं होती है जिसका समाधान न हो सके। हाँ, इस समस्या के समाधान के लिए समस्याओं की तुलना में अधिक लगन, परिश्रम और बुद्धिमानी की आवश्यकता है। यहाँ इस समस्या के समाधान के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं :

1. **जनसंख्या वृद्धि पर रोक** - इस समस्या के समाधान का सर्वप्रथम उपाय यह है कि बढ़ती हुई जनसंख्या पर रोक लगायी जाए। जनसंख्या वृद्धि रोक लगा देने से ग्रामीण जनसंख्या में वृद्धि नहीं होगी। इससे गाँवों से नगरों की ओर भागने वाले व्यक्तियों की संख्या कम हो जाएगी।

2. **रोजगार सुविधाओं में वृद्धि** - गन्दी बस्तियों को समाप्त करने का दूसरा उपाय यह है कि गाँवों में जहाँ कृषि के अतिरिक्त अन्य कोई रोजगार नहीं है, रोजगार के अवसरों में वृद्धि की जाए। जो रोजगार नगरों में स्थापित किये जाते हैं उन्हें गाँवों में स्थापित किया जाए। साथ ही गाँवों में कुटीर उद्योगों (Cottage Industries) की स्थापना की जाए। इससे ग्रामीण जनता को साधारण प्रयासों से ही रोजगार मिल जाएगा और वे रोजगार की तलाश में नगरों की ओर नहीं भागेंगे। इससे भी गन्दी बस्तियों की समस्या का समाधान करने में मदद मिल सकती है।

3. **सामाजिक सुरक्षाओं का विस्तार** - जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि गाँवों में सामाजिक सुरक्षा और सुविधाओं की कमी है, इससे ग्रामीण व्यक्ति नगरों की ओर भागते हैं। इसलिए ग्रामीण जीवन को नगरों में

NOTES

प्राप्त सभी सुविधाओं से युक्त किया जाए। इन सुविधाओं में आवागमन और संदेशवाहन के साधन, शिक्षा, स्वास्थ्य सुविधाएँ, सुरक्षा, मनोरंजन, पानी, प्रकाश आदि प्रमुख हैं। जब गाँव में ही व्यक्ति को उपर्युक्त सारी सुविधाएँ प्राप्त हो जाएँगी तो वे नगरों की ओर आकर्षित नहीं होंगे और इस प्रकार गन्दी बस्तियों की समस्या का समाधान स्वत: हो जाएगा।

4. **कृषि की उन्नति** - जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि 'उद्योग और औद्योगीकरण ही गन्दी बस्तियों का मूल कारण है।' भारत का प्रधान उद्योग कृषि है और यहाँ की 60 प्रतिशत जनसंख्या प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि पर आधारित है। कृषि व्यवसाय तमाम भारत में फैला हुआ है। भारत में कृषि की दशा सन्तोषजनक नहीं है। मुझे ऐसा लिखते हुए अत्यन्त ही आश्चर्य हो रहा है कि 60 प्रतिशत कृषि-व्यवसाय करने वाली जनसंख्या अपने भोजन के लिए अमेरिका-जहाँ 26 प्रतिशत जनसंख्या ही कृषि पर आश्रित है, की ओर ललचायी आँखों से देखती है। कृषि में पर्याप्त पैदावार न होने के कारण ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर आकर्षित होती है, जिससे गन्दी बस्तियों का विकास होता है, अत: इस समस्या के समाधान के लिए आवश्यक है कि कृषि व्यवसाय की उन्नति की जाए। भारत में कृषि-व्यवसाय की उन्नति के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं -

(a) भूमि पर जनसंख्या के दबाव को कम किया जाय अर्थात् जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगायी जाय,

(b) कृषि की नई और कुशल रीतियों को अपनाया जाय,

(c) कृषि की भूमि के विभाजन और अपखण्डन पर रोक लगायी जाय,

(d) कृषि शिक्षा का प्रसार किया जाय,

(e) सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया जाय,

(f) कृषि अनुसंधान कार्यों को प्रोत्साहित किया जाय,

(g) शासकीय कृषि फार्मों की स्थापना की जाय और इनकी सहायता से कृषकों में जागरूकता का प्रसार किया जाय,

(h) अच्छी किस्म के बीच और खाद तथा अच्छी नस्ल के बैलों का कृषि में प्रयोग किया जाय,

(i) विनाशकारी कीड़े-मकोड़ों पर रोक लगायी जाय,

(j) भूमि के कटाव को रोका जाय और

(k) फसलों की पद्धति में आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन किया जाय।

5. **पर्याप्त मजदूरी** - गन्दी बस्तियों में अधिकांशत: वे ही श्रमिक रहते हैं जिन्हें अत्यन्त ही कम मजदूरी दी जाती है और उनसे इतना अधिक काम लिया जाता है कि वह इसके अतिरिक्त अन्य कोई कार्य नहीं कर पाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे गन्दी बस्तियों में निवास करते हैं। गन्दी बस्तियों को समाप्त करने के लिए मजदूरों को पर्याप्त मजदूरी दी जाय जिससे वे किराये से अच्छे मकान प्राप्त कर सकें।

6. **सहकारी समितियों की स्थापना** - सहकारी समितियाँ स्थापित की जाएँ। यह सहकारी समितियाँ गन्दी बस्तियों में निवास करने वाले व्यक्तियों को उचित दर पर मकान निर्माण के लिए ऋण प्रदान करें। इससे मकानों की समस्या का समाधान होगा और गन्दी बस्तियों को समाप्त करने में मदद मिलेगी।

7. **श्रमिक बस्तियों का निर्माण** - गन्दी बस्तियों में अधिकांशत: श्रमिक रहते हैं। यह श्रमिक इन गन्दी बस्तियों में इसलिए रहने के लिए बाध्य होते हैं कि जिस कारखाने में ये काम करते हैं, उसमें उनके रहने के लिए मकान नहीं होते हैं, अत: प्रत्येक उद्योग से लगी हुई श्रमिक बस्ती होनी चाहिए और उस उद्योग में काम करने वाले प्रत्येक श्रमिक के लिए मकान होना चाहिए। ऐसा करने से 'गन्दी बस्ती की समस्या का समाधान' करने में मदद मिल सकेगी।

8. **गन्दी बस्तियों की सफाई** - गन्दी बस्तियों की समस्या के समाधान के लिए इन बस्तियों की सफाई भी एक महत्वपूर्ण सुझाव है। इन गन्दी बस्तियों की सफाई दो प्रकार से की जा सकती है।

(a) **वातावरण सम्बन्धी सफाई** - इसमें गन्दी बस्तियों का जीर्णोद्धार करना तथा वहाँ नालियों आदि का निर्माण करना और पानी तथा बिजली की व्यवस्था करना आदि भी सम्मिलित है।

(b) **व्यक्ति सम्बन्धी सफाई** - केवल वातावरण को साफ करके ही गन्दी बस्तियों की सफाई नहीं की जा सकती है। इसके लिए उन व्यक्तियों की सफाई भी आवश्यक है जो इन गन्दी बस्तियों में निवास करते हैं। इन व्यक्तियों में नैतिक रूप से पतित, बीमार, विघटित व्यक्ति आदि सम्मिलित हैं।

9. **नगर नियोजन** - गन्दी बस्तियों की समस्या के समाधान का अन्तिम सुझाव है - नगर नियोजन (Town Planning)। जब नगरों का विकास नियोजित तरीकों से किया जाएगा, मकानों का निर्माण वैज्ञानिक ढंग से होगा तथा उसमें सभी आधुनिक आवासीय सुविधाएँ रहेंगी तो गन्दी बस्तियों का विकास ही नहीं होगा। इस नियोजन में निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

NOTES

(a) नियोजन वैज्ञानिक हो तथा इसे कड़ाई से लागू किया जाए,

(b) नगर और मकान आधुनिक सुविधाओं और आवश्यकताओं के अनुरूप हों,

(c) इन नगरों में जीवन सुरक्षा की गारन्टी हो,

(d) स्वच्छ पानी की पर्याप्त व्यवस्था हो,

(e) पार्क, बगीचे, खेल के मैदान और मनोरंजन के साधनों की पर्याप्त व्यवस्था हो,

(f) शिक्षा, संचार, व्यापार और बैंक व्यवस्था हो तथा

(g) सरकारी प्रबन्ध सन्तोषजनक हों।

इस प्रकार नगरों को वैज्ञानिक सुविधाओं के अनुरूप नियोजित करके गन्दी बस्तियों की समस्या को समाप्त किया जा सकता है।

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. नगरों के उद्विकास पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on evolution of cities.
2. नगरों के उद्विकास के कारणों को लिखिए।
   Write causes of evolution of cities.
3. नगरीय जीवन की विशेषताएँ लिखिए।
   Write characteristics of Urban life.
4. नगरीकरण की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए।
   Define Urbanization. Write its characteristics.
5. भारत में नगरीय विकास पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on Urban growth in India.
6. नगरीय नियोजन क्या है? इसके प्रमुख तत्व क्या हैं?
   What is Urban Planning. What are its elements.
7. नगरीय विकास के मुद्दे लिखिए।
   Write issues of Urban development.
8. नगरीय समाज में मलिन बस्तियों पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on slums in Urban society.
9. मलिन बस्तियाँ क्या हैं? इनकी प्रमुख समस्याएँ क्या हैं?
   What are slums. What are their main problems.
10. भारतीय शहरों में मलिन बस्तियों के प्रमुख कारण क्या हैं?
    What are the main causes of slums in Indian cities.
11. मलिन बस्तियों की समस्या के लिए सुझाव दीजिए।
    Give suggestions for problem of slums.

NOTES

12. मलिन बस्तियों के दुष्परिणामों को लिखिए।
Write evil effects of slums.

13. मध्यप्रदेश में मलिन बस्तियों पर एक निबन्ध लिखिए।
Write an essay on slums in Madhya Pradesh.

14. नगरीय समस्या के रूप में बसाहट की विवेचना कीजिए।
Discuss settlement as urban problem.

15. बसाहट के विभिन्न अर्थों को समझाइए।
Explain different meaning of settlements.

16. बसाहट अत्यधिक भीड़-भाड़ की समस्या का परिणाम है।
Settlement is the result of overcrowding.

17. दोषपूर्ण आवास या बसाहट के परिणामों को लिखिए।
Write consequences of defective settlement.

18. दोषपूर्ण आवास पारिवारिक विघटन का कारण है। समझाइए।
Defective settlement is the cause of family disorganization.

19. आवास समस्या के समाधान के लिए सुझाव दीजिए।
Give Suggestions for housing problems.

20. बसाहट पर एक लेख लिखिए।
Write an essay on settlement.

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

12

नगरीय स्थानीय शासन
(URBAN LOCAL ADMINISTRATION)

स्थानीय शासन
(Local Governance)

लोकतंत्र की मान्यता है कि सर्वोच्च सत्ता जनता के हाथों में निहित हो। ऐसा तभी संभव है, जब सर्वोच्च सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया जाए। इससे अधिक से अधिक व्यक्तियों को शक्ति और शासन में हिस्सा लेने का अवसर प्राप्त होगा। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के आधार स्तम्भ महात्मा गाँधी ने भारत के लिए रामराज्य की कल्पना की थी, जिसमें जनता को दैहिक, दैविक तथा भौतिक किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। उन्होंने दिल्ली की सत्ता को भारत के अत्यन्त पिछड़े गाँव तक पहुँचाने का सपना देखा था तथा सबसे गरीब व्यक्ति को प्रजातंत्र में सहभागी बनाने की कल्पना की थी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए स्थानीय शासन की व्यवस्था की गई है।

स्थानीय शासन-अर्थ और परिभाषा
(Local Governance - Meaning and Definition)

जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है यह वह शासन व्यवस्था है, जिसका संचालन स्थानीय स्तर पर होता है। इस शासन व्यवस्था को विभिन्न देशों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। इसे फ्रांस में 'प्रीफेक्ट व्यवस्था', अमेरिका में 'म्युनिसिपल शासन', ब्रिटिश शासनकाल में 'स्थानीय स्वशासन' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। भारतीय संविधान में इसके लिए 'स्थानीय शासन' शब्द का प्रयोग किया गया है। स्थानीय शासन की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं -

(1) **जी.डी.एच. कोल** - "स्थानीय शासन एक ऐसा शासन है, जो अपने सीमित क्षेत्र में प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करता है।"

(2) **डॉ. आशीर्वादम** - "स्थानीय स्वशासन केन्द्रीय सरकार के अधिनियम द्वारा निर्मित एक ऐसी प्रशासकीय इकाई है, जिसमें नगर या ग्राम जैसे एक क्षेत्र की जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि होते हैं और जो अपने अधिकार क्षेत्र की सीमाओं के भीतर प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग लोक कल्याण के लिए करते हैं।"

(3) **ब्रिटेनिका शब्दकोष** - "पूर्ण राज्य की अपेक्षा एक अन्दरूनी प्रतिबन्धित एवं छोटे क्षेत्र में निर्णय लेने तथा उनको लागू करने वाली संस्था का नाम स्थानीय शासन है।"

संक्षेप में "स्थानीय शासन का अर्थ स्थानीय स्तर की उन संस्थाओं से है, जो जनता द्वारा चुनी जाती हैं तथा जिन्हें राष्ट्रीय या प्रान्तीय शासन के नियंत्रण में रहते हुए नागरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अधिकार एवं दायित्व प्राप्त होते हैं।"

स्थानीय शासन की विशेषताएँ
(Characteristics of Local Governance)

ऊपर जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनके आधार पर स्थानीय प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) यह शासन स्थानीय निकायों से सम्बन्धित है।

(2) यह शासन राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था का एक अंग है।

(3) इन संस्थाओं को यद्यपि स्वायत्तता प्राप्त होती है, किन्तु फिर भी ये राज्य प्रशासन के प्रत्यक्ष तथा पूर्ण नियंत्रण में होती हैं।

(4) राज्य शासन अधिसूचना द्वारा इनके कार्यक्षेत्र में कोई भी परिवर्तन कर सकता है।

(5) स्थानीय शासन में जो कर्मचारी कार्य करते हैं, वे सभी लोक सेवा के सदस्य माने जाते हैं।

NOTES

(6) इन संस्थाओं पर राज्य सरकार का नियंत्रण होता है तथा सरकारी आदेशों और नियमों के अनुसार कार्य का संचालन करती हैं।

(7) सरकार का दायित्व होता है कि ये संस्थाएँ अपने कार्यों का संचालन ठीक प्रकार से करें।

(8) इन संस्थाओं में नौकरशाही प्रभावी होती है।

(9) इसमें जनता के सदस्य परामर्शदात्री समितियों के माध्यम से ही भाग लेते हैं।

(10) जन आवश्यकताओं के पूर्ति का उत्तरदायित्व इन्हीं संस्थाओं का होता है, किन्तु ये संस्थाएँ कार्यों के प्रति उदासीनता का बर्ताव करती हैं।

स्थानीय शासन का महत्व
(Importance of Local Governance)

वर्तमान जनतांत्रिक व्यवस्था में स्थानीय संस्थाओं का अत्यधिक महत्व है। इसका कारण यह है कि लोकतंत्र के लिए ये अपरिहार्य हैं। इन संस्थाओं के अभाव में लोकतंत्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। **डॉ. टाकविले** ने लिखा है कि "नागरिकों की ये स्थानीय सभाएँ स्वतंत्र राष्ट्रों की शक्ति का निर्माण करती हैं। जो महत्व विज्ञान की शिक्षा के लिए प्राथमिक शालाओं का है, वही स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाने के लिए नगर सभाओं का है। एक राष्ट्र स्वतंत्र सरकार की पद्धति को भले ही स्थापित कर ले परन्तु स्थानीय संस्थाओं के बिना उसमें स्वायत्तता की भावना नहीं आ सकती।" इस प्रकार स्पष्ट है कि स्थानीय संस्थाएँ महत्वपूर्ण हैं। इनका महत्व निम्न कारणों से है -

(1) स्थानीय शासन का सबसे बड़ा महत्व यह है कि इसके माध्यम से जनता से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि जनता अपने क्षेत्र की समस्याओं का स्वयं प्रबन्धन करती है।

(2) स्थानीय शासन का दूसरा महत्व है - विकेन्द्रीकरण। इसमें सत्ता में उन लोगों की भागीदारी सुनिश्चित रहती है, जिन पर शासन किया जाता है।

(3) स्थानीय शासन की सहायता से स्थानीय विषयों का कुशलतापूर्वक प्रबन्धन किया जा सकता है।

(4) इससे जनता में जागरूकता का विकास होता है, जिससे जनता सार्वजनिक क्षेत्रों में रुचि लेने लगती है।

(5) स्थानीय शासन से नौकरशाही की बुराइयों को दूर किया जा सकता है। इसका कारण यह है कि नौकरशाहों का जनता से सीधा तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

(6) राजनैतिक प्रशिक्षण की दृष्टि से भी स्थानीय शासन का महत्व है। लास्की ने लिखा है कि - "स्थानीय शासन की संस्था शासन के किसी भी भाग की संस्था की अपेक्षा अधिक शिक्षाप्रद है।"

प्रजातंत्र में स्थानीय शासन के महत्व की विवेचना करते हुए टाकविले ने लिखा है कि - "नागरिकों की ये स्थानीय सभाएँ स्वतंत्र राष्ट्रों की शक्ति का निर्माण करती हैं। जो महत्व विज्ञान की शिक्षा के लिए प्राथमिक शालाओं का है, वही स्वतंत्रता का पाठ पढ़ाने के लिए नगर सभाओं का है। एक राष्ट्र स्वतंत्र सरकार की पद्धति को भले ही स्थापित कर ले, परन्तु स्थानीय संस्थाओं के बिना उसमें स्वतंत्रता की भावना नहीं आ सकती।"

स्थानीय शासन के दोष
(Demerits of Local Governance)

स्थानीय शासन में अनेक गुणों के बावजूद भी इसमें कुछ दोष भी हैं। इन दोषों को मुख्य रूप से निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

1. स्थानीय शासन संकुचित और स्वार्थी प्रवृत्ति के जन्म और विकास के लिए आधार प्रस्तुत करती है।
2. स्थानीय शासन के द्वारा नौकरशाहों में अक्षमता का विकास होता है।
3. स्थानीय शासन में अपव्यय भी अधिक होता है।
4. स्थानीय शासन में पक्षपात की संभावना अधिक रहती है तथा कानूनों के हेराफेरी की संभावना भी रहती है।

सफलता के लिए सुझाव
(Suggestions for Success)

स्थानीय शासन की सफलता के लिए निम्नलिखित सुझाव महत्वपूर्ण हैं -

1. स्थानीय शासन की सफलता के लिए आवश्यक है कि जनता में सदाचार, ईमानदारी और सार्वजनिक

कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया जाए। इस प्रकार जनता में उच्च नैतिक चरित्र को विकसित किया जाये।

2. स्थानीय शासन का आधार स्वस्थ जनमत है। अत: स्वस्थ जनमत का निर्माण किया जाए। इससे रचनात्मक आलोचनाओं को स्थान मिलेगा तथा समाज प्रगति करेगा।

3. स्थानीय शासन की सफलता के लिए जनमत का उचित उपयोग भी होना चाहिए। जनता को अपने मताधिकार का सोच-समझकर उपयोग करना चाहिए। इससे अच्छे जन प्रतिनिधि आएँगे तथा स्थानीय शासन अच्छी प्रकार चलेगा।

4. स्थानीय प्रशासन की सफलता का अगला सूत्र यह है कि प्रशासकीय नियंत्रण और स्थानीय स्वतंत्रता के बीच पूरी तरह सामन्जस्य हो। इससे स्थानीय प्रशासन सफल होगा।

5. स्थानीय शासन की सफलता के लिए पैसों की भी आवश्यकता होती है। अत: स्थानीय संस्थाओं के पास काफी पैसा तो होना चाहिए, साथ ही उन्हें अपने संसाधनों का भी विकास करना चाहिए, जिससे स्थानीय योजनाओं का आसानी से संचालन हो सके।

6. स्थानीय संस्थाओं में जो लोग कार्य करते हों उनका दृष्टिकोण व्यापक और विशाल होना चाहिए। उससे समस्याओं को समझने तथा उनके समाधान में मदद मिलेगी।

NOTES

अच्छा शासन
(Good Governance)

अच्छे शासन की अवधारणा का तात्पर्य केवल इतना है कि शासन को किस प्रकार से अच्छा बनाया जाए। अच्छे शासन में जवाबदारी, सामाजिक अंकेक्षण, संस्थागत सुधार, सामाजिक सेवाएँ तथा राजनैतिक प्रक्रिया आदि को सम्मिलित किया जाता है।

लोकतांत्रिक व्यवस्थायें अब नवीन संस्थाओं और जवाबदेह प्रशासन को जनहित में सामने अपने प्रयोगार्थ विकसित करने में आगे हैं। पंचायतों का तीन स्तरीय ढाँचा अधिक से अधिक जनोन्मुखी बनता दिखता है। 73वें संविधान संशोधन को इस संदर्भ में याद किया जा सकता है। लोकतंत्र के फायदे सभी जनों तक पहुँचे यह देखने के लिये जनसहभागिता मूलक (Peoples participatory) उपायों का अवलोकन करना चाहिये। प्रशासनिक दक्षता (Capabilities), राजनैतिक प्रशिक्षण और गहरी जन सहभागिता का लगातार प्रयुक्त होना उपलब्धि है।

वैशविक एवं स्थानीय विशेषतायें, जनभागीदारी, उन्मुख प्रशासन और इसका ढाँचा पंचायती राज व्यवस्था में सही ढंग से 21वीं सदी की ओर वैज्ञानिक परिदृश्य का द्योतक होगा। अर्थशास्त्रीय दृष्टि से दक्षतायें और अधिकारिता का प्रभाव दिखाई पड़ता है। न्यायिक तंत्र में ग्राम पंचायतों की अधिकारिता सम्पन्न करना, ग्रामीण न्यायालय, जनअदालतें, उपभोक्ता अदालतें, सिविल सोसाइटी (Civil-Society) की संस्थाओं में प्रमुख है। इस विकास क्रम में बाजार संस्थाओं (Market Institutions) की पकड़ भूमण्डलीकृत व्यवस्था का विकास भी कही जा सकती है।

प्रशासन के ढाँचे में संस्थागत सुधार करना लाजिमी है जो बदलते परिवेश में 'जवाबदेही' (accountiability) तय करना सुनिश्चित करें।

गरीबी के कम होने के आँकड़े भ्रामक हैं, भ्रष्टाचार ऊपर से नीचे तक बढ़ा है। जनसेवक उदासीन और गाँवों की सभी समस्याओं से अनभिज्ञ हैं, ग्राम सम्पर्क अभियान के दौरान काम के प्रति उदासीनता से 'निलम्बन' कार्रवाई होती है। छोटे-छोटे कार्यों के लिये लोग जिला मुख्यालय में भटकते रहते हैं। यह सभी लोकतंत्र में 'कोढ़' की भाँति स्थायी मर्ज हो गये हैं। मानवीयता सरकार की कल्पना है कि वह कमजोर से कमजोर व्यक्ति के लिये सहारा बने, उसकी सहभागिता सुनिश्चित करे।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा गैर सरकारी संगठनों (NGO) को महत्व दिया गया है जो सरकार और जनता के बीच 'पुल' का कार्य करते हुये जनहितकारी लोकप्रिय योजनाओं के क्रियान्वयन पर ध्यान रखे। जनसहभागिता मूलक कार्यों का सामाजिक अंकेक्षण भी करे। राज्य के तानाशाही लक्षणों से लोकतंत्र के उद्देश्यों को भी क्षति पहुँचती रही है। पिछले पाँच दशकों में 'राज्य' की भूमिका आलोचनात्मक रही है। अच्छे प्रशासन के बजाय जनता का शोषण बढ़ा, जमीनी स्तर की संस्थायें कमजोर हुयीं और कठोर राज्य का प्रभाव दिखा, लोकतंत्र की कामयाबी के लिये 'नरम राज्य' की माँग लगातार लोगों ने उठाई और यह 'नरम राज्य' (soft state) 1990 के दशक से उदारीकरण, भूमण्डलीकरण को अपनाने की वजह रही, वैश्विक राजनीति की एक माँग रही कि जनहितकारी प्रशासन ही वैश्वीकरण को लागू कर पायेगा अत: मानवीयता पूर्ण सरकार और प्रशासन कठोर कवच से बाहर आया।

NOTES

(1) **कारगर संस्थायें** - नवीन पंचायती ढाँचे से 'जवाबदेही' और अधिकारिता के लिये नई-नई संस्थायें हैं, निष्क्रिय संस्थाओं से छुटकारा भी पाना संभव बनाये। कारगर संस्थायें अवसरों की समानता को प्रवर्तित करने के साथ नये अवसर भी पैदा करती हैं। संस्था (institution) के अन्तर्गत आते हैं। नियम, कानून प्रवर्तन संस्थायें तथा संगठन पंचायती राज का वर्तमान ढाँचा सिर्फ सरकारी प्रयासों से नहीं बना है अपितु वैचारिक प्रयासों के साथ व्यक्ति, समुदाय, स्थानीय उद्यमी, व्यावसायिक - आर्थिक बाजार, स्वैच्छिक संगठन तक शामिल हैं। भूमि सम्बन्धी वर्तमान व्यवस्था में संवैधानिक संगठन से लेकर राजस्व अभिलेखों का कम्प्यूटरीकरण और ग्राम सचिवों का प्रशिक्षण पंचायत के नये ढाँचे के अन्तर्गत प्रवर्तित हो रहा है।

(2) **राजनैतिक शक्तियाँ** - विकेन्द्रीकरण को प्रशासनिक सुगमता के लिये अपनाया जाना राजनैतिक प्रयासों से संभव हुआ। पंचायत राज के फायदे लोगों को, नेताओं को देने लगे जिससे पक्ष और विपक्ष दोनों संविधान संशोधनों के जरिये नया पंचायती राज लागू करने में सफल हुये। राजनैतिक शक्तियाँ सुगम प्रशासन के लिये अधिक से अधिक लचीला रास्ता बनाती हैं। राजनैतिक ताकत से लैस प्रशासनिक-ढाँचा अब जिला पंचायत, जिला सरकार के जरिये क्रियान्वयन को अपने विधायी अधिकारों से लागू कर रहा है।

(3) **सुगम प्रशासन पर सामाजिक दबाव** - लोकतांत्रिक देशों में आय संबंधी असमानतायें, गरीबी का प्रसार, जातीय प्रभुत्व और अराजक आतंकवाद भी प्रशासन को जवाबदेह बनाते हैं। भारत में पंचायत राज संस्थाओं को खाद्यान्न वितरण, विकास योजनायें, ऋणों की व्यवस्था हेतु 'दबाव' देते हुये चिह्नित किया गया है।

(4) **सुगम प्रशासन के सूचक** - संस्थाओं की गुणवत्ता का अध्ययन पंचायत ढाँचे की व्यवस्था की सफलताओं के लिये ध्यान देना चाहिये। कानून का शासन, भ्रष्टाचार, पारदर्शिता और न्यायिक सक्रियता (Indicial activision) सम्पत्ति संकेन्द्रण को ले सकते हैं। विश्व विकास रिर्पोट 2002 का कहना है कि असमानता (Inequality) जितनी अधिक होगी गुणवत्ता उतनी कम । प्रशासन का ढाँचा समाज के भीतर बढ़ती अमीरी-गरीबी के कारण ध्रुवीकरण होता रहता है।

(5) **सूचना, प्रवर्तन और प्रतियोगिता** - सुगम प्रशासन सामाजिक सेवायें देने में सूचना, प्रवर्तन और प्रतियोगिता घटकों पर भी आश्रित है। निर्धनता से पीड़ित जनसंख्या को सरकारी गोदामों से अनाज तो जारी होता है परन्तु यह गोदामों के बाहर काला बाजार में जाये यह प्रवर्तन का काम है और बाजार व्यवस्था।

(6) **जनसहभागिता का स्वरूप** - पंचायतों के भीतरी ढाँचे में अधिकाधिक ग्राम वासियों की सहभागिता हो यह निचले स्तर पर ग्राम सभा के गठन से संभव हुआ। स्त्रियों को 33% आरक्षण और अजा-अजजा वर्ग की अधिकाधिक सहभागिता हो, कानूनी प्रावधान 73वें संविधान संशोधन में किया गया। जनसहभागिता के माध्यम से एक पंचायत, एक तालाब, संयुक्त वन प्रबंध, वाटर शेड योजनायें अच्छे प्रशासन (good governance) का स्वरूप बनकर उभरा है। 'आपकी सरकार आपके द्वार' का नारा दिया गया। सार्थक बनकर लागू करना सरकारी एजेण्डा में सर्वोपरि रखा गया है। विश्व विकास रिपोर्ट 2002 - बाजार-सहायक संस्थाओं का निर्माण HPC, 2003.

नगरीय स्थानीय स्वशासन
(Urban Local Self-Government)

लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण पंचायती राज व्यवस्था की आत्मा है। जिस प्रकार आत्मा के अभाव में शरीर मृत हो जाता है, उसी प्रकार लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के अभाव में पंचायती राज व्यवस्था का न कोई औचित्य है और न ही कोई महत्व। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के दो पहलू हैं -

(a) सैद्धांतिक पहलू (Theoretical Aspect)

(b) व्यावहारिक पहलू (Practical Aspect)

सैद्धांतिक पहलू के अन्तर्गत लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणात्मक व्याख्या (Conceptual Description) की जाती है, जबकि व्यावहारिक पहलू के अन्तर्गत इसकी संरचनात्मक व्याख्या (Structural Description) की जाती है। भौगोलिक दृष्टिकोण से भारत को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) ग्रामीण (Rural) और (b) नगरीय (Urban)

2011 की जनगणना के अनुसार भारत में 31.16 प्रतिशत व्यक्ति शहरों में निवास करते है, जबकि 68.84 प्रतिशत व्यक्ति गाँवों में निवास करते हैं। इस प्रकार ग्रामीण शहरी जनसंख्या अनुपात 2.2 : 1 हो गया है गाँवों में लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए ग्राम पंचायतें हैं।

जबकि नगरों में लोकतांत्रिक व्यवस्था के लिए नगर पंचायतें हैं।

नगरीय निकाय
(Urban Bodies)

NOTES

जिस प्रकार ग्राम पंचायतें, जनपद पंचायतें और जिला पंचायतें गाँवों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के आधार हैं, ठीक उसी प्रकार नगरीय निकाय नगरों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के आधार हैं। नगरों का शासन संचालित करने के लिए निम्न निकायों का स्थान महत्वपूर्ण है -

नगर निगम (Municipal Corporation)

नगरों के शासन के लिए नगर निगम सर्वोच्च शहरी निकाय है। 1947 में भारत में केवल तीन नगर निगम थे - बम्बई, कलकत्ता और मद्रास। 1975 तक देश में नगर निगमों की संख्या 34 हो गई जो 1986 तक बढ़कर 68 हो गई। 1992 में इनकी संख्या 73 तक पहुँच गई है। नगर निगमों की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) नगर निगम के अन्तर्गत कानूनों को लागू करने वाली निम्न तीन संस्थाएँ होती हैं -

(a) निगम, (b) निगम आयुक्त और (c) स्थायी समिति

(2) निगम में वार्डों के द्वारा चुने हुए पार्षद होते हैं।

(3) महापौर नगर निगम के क्षेत्र में जनता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुना जाता है।

(4) नगर निगम की एक स्थायी समिति होती है। इसमें चुने हुए पार्षद होते हैं। यह नगर निगम की महत्वपूर्ण प्रबन्धकारी समिति होती है।

(5) नगर निगम में एक आयुक्त होता है। यह निगम का प्रमुख कार्यकारी सदस्य होता है। इसकी नियुक्ति राज्य शासन द्वारा होती है।

(6) निगम के कार्यों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :-

(a) अनिवार्य कार्य, (b) विवेकाधीन कार्य

(7) वित्तीय स्थिरता के लिए निगम को कर लगाने का अधिकार होता है।

नगर पालिकाएँ (Municipalities)

नगरों में लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण में नगर निगमों की भाँति ही नगर पालिकाएँ भी होती हैं। महानगरों में नगर निगम होते हैं तथा छोटे नगरों में नगर पालिकाएँ होती हैं। भारत में आजादी के पहले से ही नगरपालिकाओं का अस्तित्व था। 1971 में देश में 1493 नगर पालिकाएँ थीं, जो 1990 में बढ़कर 1770 हो गई हैं। नगर पालिकाओं का गठन नगर निगम की भाँति अधिनियम के माध्यम से होता है। भारत में नगरपालिकाओं को भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। जैसे- नगरपालिका, नगरपालिका समिति, नगरपालिका बोर्ड आदि। इनके नाम में चाहे जितनी भिन्नता क्यों न हो, इनका संचालन एक निश्चित अधिनियम के द्वारा होता है। नगर निगमों की भाँति ही नगर पालिकाएँ भी अपने-अपने क्षेत्रों में प्रशासनिक तथा वित्तीय कार्यों का संचालन और सम्पादन करती हैं। नगरपालिका के तीन प्रमुख अंग होते हैं -

(a) परिषद, (b) नगर पालिका अध्यक्ष और

(c) नगरपालिका आयुक्त।

नगरपालिका की आमदनी के मुख्य चार स्रोत हैं -

1. कर लगाना, 2. गैर कर स्रोत, 3. लाभकारी उद्यम और 4. अनुदान।

अधिसूचित क्षेत्र
(Notified Area)

जहाँ नगर निगम अथवा नगरपालिका की स्थापना संभव नहीं है तथा राज्य सरकार अनुभव करती है कि उस क्षेत्र के सुधार की आवश्यकता है तो एक अधिसूचना जारी करती है। इस अधिसूचना के द्वारा जिस क्षेत्र में यह नोटिस जारी की जाती है, उस क्षेत्र को अधिसूचित क्षेत्र कहा जाता है। इस प्रकार अल्प जनसंख्या वाले क्षेत्र

को विकास की आवश्यकता के अनुसार अधिसूचना जारी करके अधिसूचित क्षेत्र का गठन किया जाता है। इसमें दो प्रकार के सदस्य होते हैं -

(a) निर्वाचित और (b) मनोनीत

इनके वित्तीय साधन और कार्यक्षेत्र वैसे ही होते हैं, जैसे नगर निगमों और नगरपालिकाओं के होते हैं।

NOTES

छावनी बोर्ड
(Cantonment Board)

जहाँ सैनिक निवास करते हैं उसे छावनी कहा जाता है। इस क्षेत्र में निवास करने वाले नागरिकों को सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए छावनी बोर्डों की स्थापना की जाती है। ये स्वायत्त संस्थाएँ होती हैं, जिन पर सेना के अधिकारी का नियंत्रण होता है। सेना का व्यक्ति ही छावनी बोर्ड का प्रमुख होता है। इसमें भी दो प्रकार के सदस्य होते हैं-

(a) निर्वाचित तथा (b) मनोनीत

बोर्ड को कर लगाने का अधिकार होता है, जो बोर्ड की आमदनी का प्रमुख स्रोत होता है। छावनी बोर्ड वही कार्य करता है जो नगर निगम और नगरपालिकाएँ करती हैं।

74वाँ संविधान संशोधन

जिस प्रकार 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से ग्रामीण निकायों में क्रांतिकारी परिवर्तन किए गए, ठीक इसी प्रकार संविधान में 74वाँ संशोधन नगरीय निकायों में क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए किया गया है। भारत की संसद द्वारा 1992 में पारित और 1 जून, 1993 से प्रवर्तित 74वाँ संविधान संशोधन द्वारा संविधान में भाग 9 अ 'दि म्युनिसपैलिटीज' शीर्षक से नया जोड़ा गया है। इस भाग के माध्यम से देश में नगरीय निकायों को संवैधानिक मान्यता तथा संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया है। इस संविधान संशोधन की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैं -

1. **तीन प्रकार के नगरीय निकाय** - जिस प्रकार से 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से ग्रामीण निकायों (पंचायतों) को त्रिस्तरीय बनाया गया है, ठीक इसी प्रकार 74वें संविधान संशोधन के माध्यम से नगरीय निकायों को भी त्रिस्तरीय बनाया गया -

(a) **नगर पंचायत** - ये पंचायतें वहाँ स्थापित की जाएँगी, जो स्थान ग्राम से नगर बनने की संक्रमण कालीन स्थितियों में हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जो स्थान गाँव से विकसित होकर नगर बनने की ओर अग्रसर हैं।

(b) **नगर परिषद** - इन्हें म्यूनिसपल कौंसिल के नाम से भी जाना जाता है। इनका गठन छोटे नगरों में किया जाएगा।

(c) **नगर निगम** - इनका गठन विशाल तथा बड़े नगरों में किया जाएगा।

स्पष्टीकरण - इस अधिनियम के द्वारा दो निम्न चीजों का स्पष्टीकरण भी दिया गया है -

(i) राज्यपाल विधिवत आदेश प्रसारित करके किसी औद्योगिक क्षेत्र (Industrial Area) को उपर्युक्त प्रकार के निकायों के गठन से अलग कर सकते हैं।

(ii) राज्यपाल विधिवत् आदेश प्रसारित कर छोटे नगर, संक्रमणकालीन नगर और बड़े नगरों को परिभाषित कर सकेंगे।

नगर निकायों का गठन - अधिनियम में स्पष्ट उल्लेख है कि प्रत्येक नगर निकाय में स्थानों की पूर्ति उस क्षेत्र के मतदाताओं द्वारा प्रत्यक्ष चुनाव के माध्यम से की जाएगी। प्रत्येक नगरीय निकायों को वार्डों में विभक्त किया जाएगा। इन वार्डों की मतदाता सूची होगी। इस मतदाता सूची के आधार पर प्रत्यक्ष मताधिकार द्वारा प्रतिनिधियों का निर्वाचन किया जाएगा। राज्य विधान मण्डल द्वारा नियमों का निर्माण कर निम्नलिखित वर्गों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जाएगी -

1. ऐसे व्यक्ति जो नगरीय निकाय के विशेषज्ञ हों,
2. ऐसे व्यक्ति जो राज्य विधान मण्डल अथवा लोकसभा में उस क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हों,
3. क्षेत्र की मतदाता सूची में रजिस्ट्रीकृत राज्यसभा या राज्य विधान परिषद के सदस्य,
4. संविधान संशोधन अधिनियम की धारा 243 एस. की उपधारा 5 के अन्तर्गत गठित की जाने वाली समितियों के अध्यक्षों के लिए।

वार्ड समितियों का गठन - संविधान संशोधन अधिनियम में प्रावधान है कि 3 लाख या इससे अधिक की जनसंख्या वाले नगर निकायों में एक या अधिक वार्डों के लिए वार्ड समितियों का गठन किया जाएगा। इन समितियों के गठन का अधिकार राज्य विधान मण्डल को होगा।

आरक्षण - संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से आरक्षण की व्यवस्था को भी वैधानिक अधिकार प्रदान किया गया है। अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, पिछड़े वर्गों तथा महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गई है।

कार्यकाल - सामान्यतया प्रत्येक नगर निकाय का कार्यकाल 5 वर्षों का होगा।

अर्हताएँ - इन निकायों के प्रतिनिधि चुने जाने के लिए 21 वर्ष की आयु पूर्ण करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त अन्य योग्यताओं का प्रावधान राज्य विधान मण्डल द्वारा किया जाएगा।

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. स्थानीय शासन की अवधारणा को समझाइए।
   Explain the concept of local governance.
2. स्थानीय शासन की व्याख्या कीजिए। इसका महत्व लिखिए।
   Define local governance. Write its importance.
3. स्थानीय शासन के गुण-दोषों की विवेचना कीजिए।
   Discuss merits and demerits of local governance.
4. स्थानीय शासन की सफलता के लिए सुझाव दीजिए।
   Give suggestions for success of local governance.
5. अच्छे शासन पर एक निबन्ध लिखिए।
   Write an essay on good governance.
6. पंचायती राज व्यवस्था पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on Panchayati Raj System.
7. 74वें संविधान संशोधन को समझाइए।
   Explain 74th constitution Amendment.

(B) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
Write a short notes on the following–

1. नगर निगम।
   Muncipal Corporation.
2. स्थानीय शासन।
   Local Governance.
3. नगरीय निकाय।
   Urban Bodies.
4. अधिसूचित क्षेत्र।
   Notified Area.
5. छावनी बोर्ड।
   Cantonment Board.

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

13

नगरीय विकास- बाजार, प्रौद्योगिकी एवं परिवर्तन
(URBAN DEVELOPMENT- MARKET, TECHNOLOGY & CHANGE)

नगर की अवधारणा
(The Concept of City)

नगर को यदि नगरीय सामाजिक जीवन की अनुसंधानशाला कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। नगर का तात्पर्य वातावरण से तो है, किंतु यह एक "माहौल" विशेष की ओर संकेत करता है। यह माहौल नगर में रहने वाले व्यक्तियों को एक व्यक्तित्व में ढाल देता है। नगरीय वातावरण और नगरीय माहौल का अध्ययन करना नगरीय सामाजिक जीवन की मूल समस्या है। नगर की अवधारणा को व्यक्त करने के लिये विद्वानों ने इसकी कुछ परिभाषाएँ दी हैं, जो इस प्रकार हैं -

1. **बर्गेल-** "किसी एक स्थान को जिसे एक चार्टर जो उच्च अधिकारी द्वारा स्वीकृत किया गया है, के द्वारा न्यायिक रूप से नगर परिभाषित किया गया है।"

2. **सोमबार्ट-** "नगर वह स्थान है, जो इतना बड़ा है कि उसके निवासी परस्पर एक दूसरे को नहीं पहचानते हैं।"

3. **मोनियर-** "एक नगर एक पूर्ण समाज है, जिसका भौगोलिक आधार इसकी जनसंख्या के लिए विशेषत: नियंत्रित है अथवा जिसका क्षेत्रीय तत्व मानवीय तत्व की तुलना में सापेक्षत: अपर्याप्त है।"[3]

4. **बर्गेल-** "इस प्रकार हम उस बस्ती को एक नगर कहेंगे, जहाँ के अधिकांश निवासी कृषि कार्यों के अतिरिक्त उद्योगों में व्यस्त हों।"

5. **आर.ई. डिकिन्सस-** "नगर की परिभाषा मूल रूप से प्रकार्य का प्रश्न है, न कि जनसंख्या का।"

6. **प्रो. ब्लाश-** "एक नगर एक सामाजिक संगठन होता है, जिसका क्षेत्र बहुत व्यापक है। यह सभ्यता की उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करता है, जिन तक कुछ क्षेत्र नहीं पहुँच पाये हैं और जो सम्भवत: कभी पहुँच भी न सकें।"

7. **फ्रीडमैन-** "नगर की प्रकृति को केवल जनसंख्या के आँकड़ों के आधार पर पूर्णतया व्यक्त नहीं किया जा सकता है। यह जटिल संगठन है, जिसमें इसके अंतर्गत रहने वाले लोगों के जीवन तथा आस-पास के क्षेत्र में होने वाले क्रिया-कलापों के विभिन्न पक्ष सम्मिलित हैं।"

इस प्रकार "नगर मनुष्यों का एकत्रीकरण है, भौगोलिक सीमाओं द्वारा पहचाना जाता है तथा नगरीय संस्कृति पर आधारित होता है।"

नगर की विशेषताएँ
(Characteristics of City)

परिभाषाओं में नगर की अवधारणा को व्यक्त किया गया है। इन अवधारणाओं को ध्यान में रखते हुए इसकी विशेषताओं का उल्लेख किया जायेगा। सोरोकिन और सिमरमैन ने नगर की निम्न 8 विशेषताओं का उल्लेख किया है-

(1) उद्योग, (2) पर्यावरण,
(3) जनसंख्या का घनत्व, (4) समुदाय का आकार,
(5) सामाजिक विभेदीकरण और स्तरीकरण, (6) गतिशीलता,
(7) अन्त:क्रियात्मक व्यवस्था और (8) जनसंख्या की सजातीयता या विषमता

संक्षेप में नगर की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं-

1. **पारिवारिक संगठन का अभाव** (Lack of Family Organization)- नगरों में पारिवारिक एकता का अभाव पाया जाता है। परिवार के सदस्यों में अपेक्षित स्नेह और अपनत्व की भावना भी कम मात्रा में पाई जाती है। परिवार तो एक प्लेटफार्म बन जाता है, जहाँ सदस्य आयें, खाना खायें, सोयें और चलें जायें।

2. **सामुदायिक भावना का अभाव** (Lack of Community Sentiments)- नगरों में सामुदायिक भावना का अभाव पाया जाता है। इसके दो कारण हैं -

(i) नगरों में अनेक समुदाय के व्यक्ति निवास करते हैं और

(ii) नगरों में परिवार प्लेट फार्म की भाँति हो जाता है।

3. **साम्प्रदायिक विभाजन** (Communal Division)- यद्यपि नगरों में व्यक्तियों में दूरी कम पाई जाती है। अनेक धर्मों और सम्प्रदायों के व्यक्ति आस-पास रहते हैं तथा साथ-साथ काम करते और भोजन करते हैं, फिर भी वहाँ साम्प्रदायिक विभाजन पाया जाता है। नगरों में साम्प्रदायिक विभाजन के तीन कारण हैं-

(i) विभिन्न सम्प्रदायों का होना।

(ii) विभिन्न साम्प्रदायिक गतिविधियाँ।

(iii) विभिन्न साम्प्रदायिक व्यवसाय तथा रहन-सहन का स्तर।

4. **आर्थिक विषमता** (Economic Variability)-नगरों में निवास करने वाले व्यक्तियों में अत्यधिक आर्थिक विषमताएँ पाई जाती हैं। नगरों में एक ओर अट्टालिकायें तो दूसरी ओर झोपड़ी। यहाँ एक ओर कुत्ते को दूध-भात दिया जाता है, तो दूसरी ओर भूखे बालक भी हैं।

5. **व्यावसायिक तथा औद्योगिक केन्द्र** (Commercial and Industrial Centre)- नगरों में विशाल उद्योग होते हैं तथा अनेक प्रकार के व्यापार और व्यवसाय होते हैं। यही कारण है कि औद्योगीकरण को नगरीकरण का कारण माना जाता है।

6. **प्रशासकीय केन्द्र** (Administrative Centre)- नगर मानव जीवन के प्रशासनिक केन्द्र होते हैं। इसका कारण है कि नगरों में विशाल जनसंख्या निवास करती है। इसका कारण यह है कि अनेक प्रशासकीय और न्यायिक कार्यालय होते हैं।

7. **कृत्रिम जीवन** (Artificial Life)- नगरीय भौतिकता और सभ्यता के प्रतीक होते हैं। नगरीय परिस्थितियाँ और कार्य व्यक्ति को मशीन बना देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनका जीवन कृत्रिम हो जाता है और उन्हें अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों पर आश्रित रहना पड़ता है।

8. **आवास समस्या** (Housing Problem)- नगरों में जनसंख्या की विशालता के कारण आवास समस्या का जन्म होता है, जिससे गंदी बस्तियों का विकास अपने आप हो जाता है। नगरों में एक बड़ी जनसंख्या को सड़क की पटरियों के किनारे ही रात्रि गुजारनी पड़ती है।

9. **उत्तेजक वातावरण** (Exciting Atmosphere)- नगरों का वातावरण भी अत्यंत ही उत्तेजक होता है, क्योंकि यह अनेक प्रकार व्यक्तियों का केन्द्र होता है। यह सिनेमा, नाचघर, मदिरालय, क्लब, होटल, बाजार आदि की विविधता वातावरण को उत्तेजक बना देती है।

10. **नैतिकता का अभाव** (Lack of Morality)- पारिवारिक संगठन का अभाव, विविध वातावरण आदि के कारण व्यक्तियों के जीवन मूल्यों में विविधता आती है। अनेक समस्याओं के कारण परम्परात्मक नैतिक प्रतिमानों में परिवर्तन होता है और उनके स्थान में नये मूल्यों और मापदंडों की स्थापना की जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मानव का नैतिक स्तर गिर जाता है।

नगरीय वृद्धि
(Urban Growth)

नगरीय वृद्धि मानव की अनंत यात्रा का परिणाम है। मानव ने आखेट अवस्था (Hunting Stage) से अपनी यात्रा प्रारंभ की, जब वह कन्दराओं में रहता था। उस यात्रा की कड़ी में आज वह नगरीय जीवन के चरम उत्कर्ष की अवस्था में रह रहा है। मौलिक प्रश्न यह है कि गुफाओं और कन्दराओं में निवास करने वाला मानव आज नगर की चकाचौंध तक कैसे पहुँचा? इस प्रश्न का उत्तर बड़ा ही सरल तथा स्वाभाविक है। परिवर्तन प्रकृति का अटूट नियम है। नगरीय जीवन मानव समाज में परिवर्तन का परिणाम है। फिर मानव इस धरती का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। उसने सामाजिक परिवर्तन को अपनी आशाओं और आकांक्षाओं के रूप में संशोधित और परिवर्द्धित किया है। अत: नगरीय जीवन को मानव की बौद्धिक कुशलता का परिणाम माना जा सकता है। नगरीय वृद्धि मानव

की एक लम्बी यात्रा है, जो अनेक अवस्थाओं से गुजरी है। नगरीय वृद्धि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन अवस्थाओं की जानकारी अनिवार्य है। नगर गाँव से विकसित हुए हैं। अत: नगरों के विकास का अध्ययन करने के लिए पहले ग्रामीण उद्विकास का ज्ञान आवश्यक है। ग्रामीण उदविकास के बाद ही नगरों के व्यवस्थित उद्विकास का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

NOTES

नगरीय जीवन
(Urban Life)

अंग्रेजी के "अरबन" (Urban) का हिन्दी रूपांतर नगरीय होता है। नगरीय शब्द "नगर" से बना है, जिसका अर्थ होता है नगर से सम्बन्धित। नगर की पूर्ण व्याख्या असम्भव तो नहीं, किंतु कठिन अवश्य है। इसका कारण यह है कि ग्राम और नगर के बीच स्पष्ट अंतर रेखा खींचना सम्भव नहीं है। साथ ही नगर ग्राम की विशेताएँ परस्पर अंत: सम्बंधित हैं। संक्षेप में नगर वह स्थान है, जहाँ कृषि के अतिरिक्त अनेक व्यवसाय हों। नगर वह सम्पूर्ण समाज है, जहाँ पर जनसंख्या अधिक होती है, वहाँ सामुदायिक भावना जैसी चीज का अभाव होता है। विभिन्न विद्वानों ने नगर की भिन्न-भिन्न व्याख्या की है, किंतु अधिकांश समाजशास्त्रियों ने स्वीकार किया है कि व्यवसाय, पर्यावरण, जनसंख्या, गतिशीलता, अंत:क्रिया, विभेदीकरण और विषमता नगर की प्रमुख विशेषताएँ हैं। इस प्रकार निष्कर्ष रूप में ऐसा कहा जा सकता है कि नगर वह समुदाय है, जहाँ आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक विषमता, जनसंख्या का अधिक घनत्व, नियंत्रण का औपचारिक साधन दिखावा, व्यक्तिवाद, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष तथा विभेदीकरण विशिष्ट रूप से पाए जाते हैं।

नगर का उद्विकास (Evolution of City)

नगरों की उत्पत्ति कब हुई, इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। विद्वान भी अभी इस पर एक मत नहीं हैं। नगरों की उस प्रक्रिया से सम्बन्ध है, जिन स्वरों में नगर बनें। मानव समाज का उद्विकास "आखेट अवस्था" से प्रारंभ होता है और पशुपालन अवस्था से होते हुए कृषक अवस्था में गाँवों की स्थापना करता है। कृषि आविष्कार के परिणामस्वरूप जीवन कुछ स्थिर हो गया था। उसकी अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे स्थायी होती गई। कृषि के अतिरिक्त गाँवों में अन्य उद्योग-धंधों का विकास हुआ, जो कृषि आजीविका का साधन थी, उसको व्यवसाय के रूप में अपनाया गया। इस प्रकार कृषि का व्यवसायीकरण (Commercialization) हुआ। परिणामस्वरूप कृषि में नवीन यंत्रों और विधियों का प्रयोग हुआ। इस कृषि के एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने के लिए आवागमन और सन्देश वाहन के साधनों का विकास हुआ, जो उद्योग कृषि पर आधारित थे, उनका विकास हुआ। 18 वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति हुई। इसके परिणामस्वरूप उद्योगों में कई विधियों का आविष्कार हुआ। इनका बड़े पैमाने पर प्रयोग किया गया। इसमें काम करने के लिये अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता हुई जो गाँवों को छोड़कर नगरों की ओर आए और नगरीकरण हुआ। इसके साथ ही राजनैतिक और धार्मिक कारणों से भी नगरों का उद्भव हुआ।

नगरीय विकास के कारण (Factors of Development of City)

हर सभ्यता के इतिहास में ग्राम नगर की ओर प्रवास तथा नगरों का विकास देखा जाता है। मैकाइवर के अनुसार वास्तव में सभ्यता का मूल अर्थ "शहरीकरण" है। प्राचीनकाल सभ्यताओं जैसे मेसोपोटामिया, मिस्र, यूनान तथा रोम में जैसे-जैसे उनके नगरों की शक्ति और प्रभाव बढ़ा, उनकी सभ्यताएँ भी बढ़ीं। जब उन नगरों का पतन हुआ, तो उनकी सभ्यताओं का भी पतन हुआ। मैकाइवर और पेज ने नगरों के विकास के लिए तीन कारणों को उत्तरदायी माना है, जो इस प्रकार हैं।

1. **भौगोलिक कारक के रूप में अतिरिक्त साधन** (Surplus Resources as the Fundamental Factor)- जब मनुष्य जीवन की आवश्यकताओं से अधिक साधनों पर अधिकार कर लेता है तो नगर का विकास होता है। प्राचीन समय में नगरों के विकास में मानवीय शक्तियों का प्रमुख हाथ होता था। बेगार, दासता और पराधीनता की नींवों पर विशाल नगरों का निर्माण होता था। युद्ध के द्वारा यदि एक ओर साम्राज्य का अंत होता था तो दूसरी ओर नगरों का विकास भी होता था। प्रकृति पर जैसे-जैसे विजय प्राप्त कर ली जाती है, वैसे अतिरिक्त साधन अधिकाधिक मात्रा में एकत्रित हो जाते हैं। मैकाइवर के अनुसार नगरों के विकास का मौलिक कारण कृषि में क्रान्ति है। कृषि की क्रान्ति के परिणामस्वरूप अनेक व्यक्ति अन्य उद्योगों में संलग्न होने के लिए बाध्य हुए, क्योंकि कृषि में मशीनों के आ जाने से अधिक व्यक्ति बेकार हो गए। नगरीय जीवन की आवश्यकताओं में वृद्धि होती गई। खनिज पदार्थों तथा अन्य प्राकृतिक शक्तियों का ज्ञान हुआ और इन सबका परिणाम यह हुआ कि नगरों का विकास हुआ।

2. **औद्योगीकरण और व्यवसायीकरण** (Industrialization and Commercialization)-औद्योगीकरण ने नई मशीनों को जन्म दिया। इन नई मशीनों की एक जगह स्थापना की गई, वहाँ पर काम करने के लिए मजदूरों की आवश्यकता हुई। इस प्रकार नगरों के विकास की गति तीव्र हो गई। पश्चिमी देशों में भाप की शक्ति के आविष्कार में नगरों के आरंभिक विकास का क्रम पूरा किया। भारत में भी टाटानगर, मोदीनगर और जमशेदपुर का विकास औद्योगीकरण के द्वारा ही सम्भव हो सका है। औद्योगीकरण केन्द्रों में व्यापार और व्यवसाय ने भी शहरों के विकास में महत्वपूर्ण हाथ बँटाया है। औद्योगीकरण ने अधिक मात्रा में माल का उत्पादन किया, जहाँ उसकी खपत नहीं हो सकती थी। अत: यह आवश्यक हो गया कि इस माल को दूसरे स्थान पर ले जाये। इस प्रकार "माल" (Goods)का वितरण प्रारंभ हुआ, वाणिज्य सम्बन्धी संस्थाओं का विकास हुआ। प्राचीन भारत में पाटलीपुत्र, नालंदा आदि का विकास व्यापार के कारण ही हुआ था। आधुनिक भारत में भी कानपुर, अहमदाबाद आदि का विकास व्यवसाय व व्यापार के कारण ही हुआ।

3. **नगर का आर्थिक आकर्षण** (The Economic Pull of the City)- मैकाइवर के अनुसार नगरों के विकास का तीसरा और अंतिम कारण नगर का आर्थिक आकर्षण है। जनसंख्या में वृद्धि और उच्चतम जीवन स्तर की लालसा ने भी नगरों का विकास किया है। जब जीवन स्तर में वृद्धि होगी तो अनेक वस्तुओं की माँग (Demand) बढ़ेगी। माँग में वृद्धि होने से उन वस्तुओं की पूर्ति (Supply) के लिए भी प्रयास किया जायेगा। माँग और पूर्ति में वृद्धि होने से "आजीविका" (Livelihood) के साधन बढ़ जाते हैं। नगरों में आसानी से काम मिल जाने के कारण अनेक बेकार व्यक्ति इस ओर खिंचते हैं और इस प्रकार नगरों का विकास होता है। यातायात और संचार साधनों के विकास के कारण लोग शहरों में ही रहना अधिक पसंद करते हैं। इस प्रकार छोटा-सा स्थान नगर का रूप ले लेता है।

इस प्रकार मैकाइवर ने नगरों के उद्विकास के लिए तीन तत्व बतलाए हैं। इसके अतिरिक्त भी नगरों के लिए अनेक अन्य परिस्थितियों को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है जो इस प्रकार है -

4. **ग्रामीण कारक** (Rural Factors)- नगरों के विकास में एक अवस्था वह थी, जबकि व्यक्ति ने गाँवों की स्थापना की थी। ग्रामीण तत्व नगरीय विकास की आधारशिलाएँ हैं। ग्रामीण कारकों में कृषि में क्रांति (Revolution in Agriculture) सबसे महत्वपूर्ण है। आवश्यकताओं ने नये आविष्कार को जन्म दिया। उद्योगों में क्रान्ति के कारण महान सफलताएँ मिलीं। यह क्रान्ति जो अभी तक उद्योगों तक सीमित थी, कृषि के क्षेत्र में भी इसका प्रयोग किया गया। पश्चिमी देशों में कृषि में महान उन्नति हो चुकी है। भारत कृषि में क्रान्ति लाने की प्रक्रिया से गुजरने का प्रयास कर रहा है। कृषि कार्य के लिए अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। जब कृषि में मशीनों का प्रयोग किया जाता है, जैसे हल की जगह ट्रेक्टर तो 100 व्यक्तियों का काम एक व्यक्ति एक मशीन के द्वारा कर लेता है। इसका परिणाम यह होता है कि अनेक व्यक्ति बेकार हो जाते हैं, जिन्हें काम की आवश्यकता होती थी। शहरों में उद्योगों के कारण अनेक व्यक्तियों को काम मिल जाता है। इससे ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर गतिशील हो जाती है और नगरों का विकास होता है।

आज ग्रामीण जीवन में अनेक समस्याएँ (Problems) घर कर गई हैं, जैसे कृषि से सम्बन्धित समस्याएँ, जाति-पाति, ऋण समस्या, शिक्षा की समस्या, स्वच्छता और प्रकाश की समस्या, आवागमन और संदेशवाहन के साधनों की समस्याएँ, सुरक्षा की समस्याएँ आदि। इन समस्याओं के कारण आज का ग्रामीण जीवन अशांत और असुरक्षित हो गया है। वहाँ रहने वाले व्यक्तियों को अनेक प्रकार की कठिनाइयों का अनुभव होता है। इससे व्यक्ति नगरों की ओर आकर्षित होते हैं और नगरों का विकास होता है।

अनुकूल भौगोलिक पर्यावरण (Favourable Geographical Environment)के कारण ग्रामीण क्षेत्र विशाल नगरों में परिवर्तित हो गये। सभ्यताओं का विकास नदी, घाटियों के किनारे ही हुआ। इन विशाल सभ्यताओं ने अनुकूल पर्यावरण के कारण ही इतना विकास किया और विशाल नगर, विशाल भवन, सड़कें, नाली, प्रकाश आदि का समुचित विकास हुआ। विकास की प्रक्रिया में यहाँ पहले छोटा-सा गाँव रहा होगा और पर्यावरण के अनुकूल होने के कारण यह गाँव विशाल नगर में बदल गया। भारत में 1 लाख जनसंख्या के 57 नगर हैं, इनमें 33 नगर गंगा-यमुना में हैं।

5. **नगरीय कारक** (Urban Factors)- जिस प्रकार नगरों के विकास के लिये ग्रामीण कारक उत्तरदायी थे, इसी प्रकार कुछ नगरीय कारकों ने भी नगरों के विकास में योग दिया। नगर के वातावरण में व्यक्ति को कुछ ऐसी सुविधाओं का अनुभव हुआ, जिससे जीवन अधिक सुखी और व्यवस्थित महसूस हुआ। प्रमुख नगरीय कारकों में पहला था राजनैतिक कारक (Political Factor)। इतिहास इस बात का साक्षी है कि साम्राज्यों की राजधानियाँ

NOTES

हमेशा नगरों में ही थीं। गाँव में किसी साम्राज्य की राजधानी होने का किसी युग और किसी देश के इतिहास में नहीं सुना गया। राजधानी देश और प्रदेश के आकर्षण का केन्द्र रहती है। वहाँ पर अनेक देशों और प्रदेशों के प्रतिनिधि रहते हैं। महत्वपूर्ण व्यक्ति इन्हीं स्थानों पर निवास करते हैं। फिर अन्य स्थानों की तुलना में राजधानी में अन्य अनेक सुविधाएँ रहती हैं। इस कारण नगरों का आकर्षण बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक युग राजनीति का युग है और इसमें हर व्यक्ति की दिलचस्पी बढ़ती जा रही है। राजधानियाँ राजनीति का केन्द्र होती हैं। इस कारण भी राजनीतियाँ शीघ्र ही विशाल नगरों के रूप में बदल जाती हैं। भोपाल ही इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण है।

नगरों में शिक्षा (Education) की भी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं और यह शिक्षा आधुनिकतम होती है। शिक्षा की सुविधा के कारण भी लोग नगरों में बस गए। धीरे-धीरे गाँवों से उनका स्नेह भी कम हो गया। गाँवों में मुश्किल से प्राथमिक पाठशाला होती है, जबकि नगरों में सभी प्रकार की कला, विज्ञान, कृषि, चिकित्सा, यांत्रिकी, सैनिक आदि की उच्च शिक्षा की व्यवस्था रहती है।

सुरक्षा की भावना (Scope of Security) के कारण भी नगरों का विकास सम्भव हो सका। गाँवों में अनेक प्रकार की असुरक्षाएँ रहती हैं, जैसे जीवन की असुरक्षा, आजीविका की असुरक्षा, प्राकृतिक विपदाओं से उत्पन्न असुरक्षा, समाज विरोधी तत्वों से असुरक्षा तथा इसी प्रकार अन्य अनेक असुरक्षाएँ। नगरों में इन असुरक्षाओं की रोकथाम के लिए साधन उपलब्ध होते हैं। अत: व्यक्ति नगरों में अपना जीवन अधिक सुरक्षित मानते हैं। इस सुरक्षा की भावना के कारण भी नगरों का विकास हुआ।

नागरिक क्षेत्र में स्वास्थ्य और सुरक्षा के कारण जीवन की वृद्धि (Increase in life scale) हो गई है। यहाँ व्यक्ति चिकित्सा सुविधाओं के कारण से लम्बी अवधि तक जिन्दा रह सकता है। इस कारण भी नगरों का विकास हुआ।

नगरों के विकास का महत्वपूर्ण कारण मनोवैज्ञानिक (Psychological) भी है। इसे दूसरे शब्दों में नगर का चाव (Lure of City) भी कहा जा सकता है। व्यक्ति की मानसिक अवस्था कुछ इस प्रकार परिवर्तित हो रही है कि व्यक्तियों का नगरों से लगाव बढ़ता जा रहा है। आज का अशिक्षित वर्ग गाँवों में जाना नहीं चाहता है। अपने को गाँव का बताने में उसे और लज्जा का अनुभव होता है। यदि वह ऐसा कहता है कि उसके माँ-बाप खेती करते हैं और गाँवों में रहते हैं तो इससे वह अपनी प्रतिष्ठा में कमी का अनुभव समझता है। नगरों में अधिक सुख का अनुभव होता है। नगरों के प्रति बढ़ते इस चाव के कारण नगरों का विकास होता है और नागरिक जीवन में स्थिरता आती है।

नगरों में आवागमन और संदेशवाहन के साधन (Means of Transport & Communication) भी विकसित होते हैं। व्यक्ति सुविधा से एक स्थान से दूसरे स्थान कम समय में जा सकता है। साथ ही उसे एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने में असुविधा का अनुभव नहीं होता है। आवागमन और संदेशवाहन के साधनों के कारण भी नगर विकसित हुए।

इसके अतिरिक्त नगरों में चलचित्र मनोरंजन के साधनों के रूप में उपलब्ध रहता है। नगरों में सामाजिक नियंत्रण के साधन शिथिल होते हैं। जुआ (Gambling), वैश्यावृत्ति और शराब के कारण भी लोग नगरों की ओर आकर्षित होते हैं। वहाँ जाति-पाति, धर्म और गौत्र का भेदभाव नहीं होता है। विवाह और प्रेमालाप की स्वतंत्रता रहती है। ये सभी कारण नगरों के विकास में महत्वपूर्ण है।

6. **आर्थिक कारक** (Economic Factors)- अर्थव्यवस्था में क्रान्ति के कारण ही नगरों का जन्म हुआ है। औद्योगिक क्रान्ति से एक स्थान में विशाल जनसंख्या का एकत्रित हो जाना भी व्यापार, वाणिज्य और उद्योगों को उन्नति में सफलता प्राप्त करता है। बाजारों का विकास होता है, जहाँ हजारों व्यक्तियों को काम मिलता है। आविष्कारों के कारण प्रकृति पर से निर्भरता समाप्त हो जाती है। मानव अपनी शक्ति को व्यर्थ में नष्ट होने से बचा सकता है और अपने जीवन स्तर को ऊँचा बना सकता है।

जनसंख्या में वृद्धि (Growth of Population) के कारण भी नगरों का विकास हुआ। ग्रामीण बेकार आजीविका की तलाश में नगरों की ओर आये, जहाँ व्यवसायों की बहुलता है। इस कारण ग्रामीण जनता नगरों की ओर आती गई और नगर विकसित होते गए।

उद्योग-धंधे (Industry) के विकास के फलस्वरूप भी छोटे गाँव नगरों में बदल गए। वाष्प और मशीन के कारण से उद्योग में प्रगति हुई और इसके कारण भी नगरों का विकास हुआ।

नगरों के विकास में उद्योग-धंधों का विकास महत्वपूर्ण नहीं है। नगरों का विकास तो व्यापार और वाणिज्य (Trade and Commerce) के कारण हुई। व्यापार नगर के अस्तित्व के लिए उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि शरीर के लिए रक्त का संचरण। आधुनिक युग में भी व्यापार और वाणिज्य के कारण नगरों का विकास होता जा रहा है।

7. **धार्मिक कारक** (Religious Factors)- धर्म का आध्यात्मिक शक्तियों में विश्वास है। इस विश्वास के कारण भी नगरों का विकास हुआ। हिन्दुस्तान में ऐसे अनेक शहर हैं जो धार्मिक तत्वों के कारण इतना अधिक विकसित हुए हैं। जैसे वाराणसी, अयोध्या, प्रयाग (इलाहाबाद), मथुरा, गया आदि। इन स्थानों पर या तो अलौकिक शक्ति ने जन्म लिया था। यहाँ पर अपनी लीला का प्रदर्शन किया। यह स्थान अलौकिक शक्ति से संबंधित है, इसलिए पवित्र माना जाता है। अनेक व्यक्ति इन स्थानों पर स्थायी रूप से रहना पसंद करते हैं। इस कारण से होटल, धर्मशाला, व्यापार आदि का वहाँ विकास होता है और नगरों के आकार में वृद्धि ही होती है। कुछ स्थान संस्कृति और सभ्यता के केन्द्र रहे हैं और इस कारण भी धीरे-धीरे उनका पुनरुत्थान हुआ और उजाड़ जगह एक कस्बे (Town) के रूप में बदल गई। जैसे विश्व प्रसिद्ध खजुराहो।

8. **सामाजिक कारण** (Social Factors)- सामाजिक कारकों की भी नगरों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। समाज के रूप होते हैं - संगठित और विघटित। संगठित समाज में ही जीवन की बहुमुखी उन्नति होती है। सामाजिक संगठन के कारण सामाजिक मूल्यों की रक्षा होती है। मूल्यों की रक्षा करने से समाज प्रगति करता है। जीवन अधिक शांत और सुरक्षित रहता है। जहाँ का जीवन अधिक अव्यवस्थित और शांत रहेगा, वहाँ नगरों का विकास होगा। साथ ही नगरों में अनेक प्रकार की सुरक्षाएँ रहती हैं, इससे भी नगरों का विकास होता है।

9. **सैनिक कारक** (Military Factors)- नगरों के निर्माण और विकास में सैनिक छावनियाँ (Military Camps) की स्थापना का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। सैनिक छावनियों की स्थापना नगर के बाहर की जाती थी। इन छावनियों में 20-25 हजार सैनिक रहते थे। इन सैनिकों की अनेक आवश्यकताएँ होती थीं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अनेक प्रकार के उद्योग-धंधों की स्थापना की जाती थी। परिणामस्वरूप वहाँ एक विशाल नगर का निर्माण हो जाता था। उदाहरण के लिए भारत में आगरा।

नगरीय जीवन की विशेषताएँ
(Characteristics of Urban Life)

नगरीय जीवन की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) **जनसंख्या सम्बंधी विशेषताएँ**- नगरीय जनसंख्या की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं-

(i) जनसंख्या की अधिकता के कारण भीड़-भाड़ की समस्या रहती है।

(ii) जनसंख्या में विविधता पाई जाती है।

(iii) नगरीय जनसंख्या विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई होती है।

(iv) नगरीय जनसंख्या के सभी पहलुओं के समुचित विकास का प्रयास किया जाता है।

(v) नगरीय जनसंख्या में गतिशीलता की मात्रा अधिक पाई जाती है।

(vi) नगरीय जनसंख्या को भूमि का अभाव रहता है।

(2) **आर्थिक विशेषताएँ**- नगरीय जीवन की प्रमुख आर्थिक विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं-

(i) व्यवसाय नगरीय आर्थिक जीवन के आधार होते हैं तथा विविध प्रकार के व्यवसाय पाए जाते हैं।

(ii) नगरीय व्यवसाय वंशानुगत न होकर योग्यता और कार्यों पर आधारित होते हैं।

(iii) नगरीय आर्थिक जीवन अत्यंत ही जटिल और कशमकशपूर्ण होता है।

(iv) नगरीय व्यवसाय की प्रकृति अत्यंत ही जटिल होती है तथा प्रतिस्पर्धापूर्ण होते हैं।

(3) **सामाजिक विशेषताएँ**- नगरीय सामाजिक जीवन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं-

(i) नगरों में सामुदायिक जीवन का अभाव पाया जाता है।

(ii) नगरीय सामाजिक जीवन विशिष्टता लिए हुए होता है।

(iii) नगरों में पड़ोस का कोई महत्व नहीं होता है।

NOTES

NOTES

(iv) नगरीय व्यक्ति विभिन्न मतों और विचारधाराओं के होते हैं, इसलिए सदस्यों में घनिष्ठता का अभाव पाया जाता है।

(v) नगरों में सामाजिक नियंत्रण के औपचारिक साधनों का प्रयोग किया जाता है, जैसे कानून, पुलिस और न्यायालय आदि।

(vi) नगरीय जीवन में व्यक्तियों के सम्बंध अवैयक्तिक, व्यक्तिवाद से पूर्ण, असहिष्णु और प्रतिस्पर्धा पूर्ण होते हैं।

(vii) नगरों में रहने वाले व्यक्ति कर्मठ, आशावादी, कृत्रिम और प्रगतिशील विचारधाराओं वाले होते हैं।

(4) **पारिवारिक विशेषताएँ-** नगरीय परिवार की विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) नगरों में व्यक्तिगत परिवारों की अधिकता होती है।

(ii) नगरीय परिवारों में आत्मनिर्भरता का अभाव पाया जाता है।

(iii) नगरीय विवाह पवित्र बंधन की अपेक्षा स्त्री-पुरुष का एक समझौता मात्र होता है।

(iv) नगरीय परिवारों में स्त्री-पुरुषों की स्थिति में समानता रहती है।

(v) नगरीय परिवारों में शक्ति का अभाव पाया जाता है, इसलिए विघटन की प्रक्रिया तीव्र रहती है।

(5) **धार्मिक विशेषताएँ-** नगरीय जीवन की धार्मिक विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) नगरों में धर्म को कम महत्व दिया जाता है। इसके साथ ही नगरों में धर्म के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की विचारधाराएँ होती हैं।

(ii) नगरों में धार्मिक कर्मकाण्ड का अभाव पाया जाता है।

(iii) नगरीय जीवन की संस्कृति अत्यंत ही गतिशील होती है।

(iv) नगरीय संस्कृति भौतिकवादी, स्वार्थपूर्ण और परम्पराओं से परे होती है।

(6) **राजनैतिक विशेषताएँ-** नगरीय जीवन की राजनैतिक विशेषताओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(i) नगरीय जनसंख्या राजनीति में अधिक रुचि लेती है।

(ii) नगरीय राजनैतिक जीवन विविधताओं से पूर्ण होता है।

(iii) नगरीय व्यक्तियों को शासकीय विधानों का ज्ञान रहता है।

नगरीय विकास का परिणाम नगरीकरण
(Consequences of Urban Development Urbanization)

नगरीकरण शब्द "नगर" से बना है। यह शब्द उस प्रक्रिया की ओर संकेत करता है, जिसके माध्यम से नगरों का निर्माण होता है। आधुनिक युग में नगरीकरण को सबसे अधिक महत्व दिया जा रहा है। विश्व के अन्य भागों की तुलना में भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया अत्यंत ही धीमी है। इसका मौलिक कारण भारतवर्ष में औद्योगिक प्रगति की धीमी गति का होना है। नगरीकरण का मूल उद्गम स्त्रोत औद्योगीकरण है।

18वीं शताब्दी में होने वाली औद्योगिक क्रांति (Industrial Revolution) ने नगरीकरण को अत्यधिक प्रोत्साहित किया है। औद्योगीकरण का परिणाम यह होता है कि एक स्थान पर उद्योगों की स्थापना की आवश्यकता होती है। परिणामस्वरूप ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की ओर स्थानांतरण प्रारंभ हो जाता है। इस प्रकार नगरीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है और कुछ समय के भीतर एक छोटा-सा गाँव विशाल नगर के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। सरल शब्दों में जब गाँव नगरों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं और यह परिवर्तन प्रक्रिया के माध्यम से होता है तो इसी माध्यम को नगरीकरण के नाम से जाना जाता है।

नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा किसी समाज विशेष में नगरों की संख्या में वृद्धि अथवा उन स्थानों द्वारा नगरीय विशेषताओं को ग्रहण करने से लगाया जाता है जो अभी तक नगर नहीं कहे जाते थे। इस प्रकार नगरीकरण नगरीय विशेषताओं को अपनाने की प्रक्रिया है। नगरीकरण की अवधारणा सार्वभौमिक होते हुए भी निर्धारित करने वाले तत्वों को सार्वभौमिक नहीं कहा जा सकता है। इसका कारण यह है कि नगरीकरण का आधार और इसके माप के पैमानों का नितांत अभाव है। एक ही विशेषता किसी समाज में नगरीकरण की सूचक हो सकती है, जबकि दूसरे समाजों में नहीं। मात्र जनसंख्या वृद्धि को ही नगरीकरण का सूचक नहीं कहा जा सकता है।

नगरीकरण की परिभाषा
(Definition of Urbanization)

नगरीकरण को विद्वानों ने भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से समझाने का प्रयास किया है। सामान्यतया नगरीकरण की व्याख्या निम्न तीन आधारों पर की जाती है-

(1) **जनसंख्या वृद्धि और प्रवास की दृष्टि से** (From Population Growth and Migration point of View)-

किसी भी स्थान में जनसंख्या की वृद्धि और प्रवास को ध्यान में रखकर नगरीकरण की कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(i) **वर्गेल-** "ग्रामीण जनसंख्या को नागरिक क्षेत्रों में बदलने को हम नगरीकरण कहेंगे।"

(ii) **फेयरचाइल्ड-** "नगरीकरण का अर्थ नागरिक बनने की प्रक्रिया से है अर्थात् व्यक्तियों एवं प्रक्रियाओं का नगरीकरण क्षेत्रों को गमन, नागरिक प्रक्रियाओं, जनसंख्या तथा क्षेत्र में वृद्धि।"

(iii) **संयुक्त राष्ट्र संघ-** अपने सबसे सरल एवं जनांकिकीय अर्थ में नगरीकरण की एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसके द्वारा जनसंख्या एक निश्चित निर्धारित आकार से बड़े आकार समूहों में एकत्रित हो जाती है।

(2) **व्यावसायिक गतिशीलता की दृष्टि से** (From the Point of View of occupational Mobility)-

व्यावसायिक गतिशीलता की दृष्टि से नगरीकरण की प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं-

(i) **डेविस-** "नगरीकरण एक निश्चित प्रक्रिया है- परिवर्तन का वह चक्र है, जिससे कोई समाज खेतिहर से औद्योगिक में परिवर्तित होता है।"

(ii) **एण्डरसन और ईश्वरन-** "साधारणतया नगरीय वृद्धि नगरीकरण है और इसका अर्थ है -

(1) व्यक्तियों का ग्रामीण निवास से शहरी निवास की ओर गमन और

(2) लोगों का कृषि कार्य से गैर कृषि कार्यों की ओर बढ़ना।"

(iii) **थामसन-** "व्यक्तियों का मुख्य रूप से या पूर्ण रूप से कृषि कार्य में लगे हुये समुदायों से दूसरे सामान्यतया बड़े अन्य समुदायों, जिनकी क्रियाएँ मुख्य रूप से सरकार व्यापार, उत्पादन या उसी से सम्बद्ध स्वार्थों पर केन्द्रित होती है, गमन ही नगरीकरण है।"

(3) **समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से** (From Sociological Point of View)-

समाजशास्त्रीय दृष्टि से नगरीकरण की प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं -

(i) **श्रीनिवास-** "नगरीकरण से तात्पर्य केवल सीमित क्षेत्र से अधिक जनसंख्या से ही नहीं अपितु सामाजिक तथा आर्थिक सम्बंधों में परिवर्तन से भी है।"

(ii) **गेराल्ड ब्रीज-** "नगरीकरण एक प्रक्रिया है, जिसके कारण लोग नगरीकरण कहलाने लगते हैं, शहरों में रहने लगते हैं, खेती के स्थान पर अन्य व्यवसायों को अपनाते हैं जो नगर में उपलब्ध होते हैं और अपने व्यवहार प्रतिमान में अपेक्षाकृत परिवर्तन का समावेश करते हैं।"

(iii) **मैक्स बेबर-** "नगरीकरण संस्कृति का एक आश्रित कारक है।"

NOTES

(iv) **क्वीन और कारपेन्टर-** "नगरीकरण का प्रयोग एक विशिष्ट जीवन का ढंग है, जो अद्भुत रूप में नगर निवास से सम्बंधित है, को पहचानने के लिए किया जाता है।"

(v) **जी.आर. मदन-**"नगरीकरण का तात्पर्य व्यक्ति के विचारों और व्यवहारों में परिवर्तन तथा उनके सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन से है।"

इस प्रकार "नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा ग्रामीण जनसंख्या नगरीय जनसंख्या के विचारों और मूल्यों को अपनाती है।"

नगरीकरण की विशेषताएँ
(Characteristics of Urbanization)

नगरीकरण की जो परिभाषाएँ दी गई हैं, उनके आधार पर इसकी विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(1) नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का नाम है।

(2) परिवर्तन की इस प्रक्रिया के द्वारा ग्रामीण जनसंख्या नगरों की ओर हस्तांतरित होती है।

(3) नगरीकरण सामाजिक परिवर्तन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा कृषि अर्थव्यवस्था के स्थान पर व्यवसायों (उद्योगों) को प्रोत्साहन दिया जाता है।

(4) नगरीकरण एक प्रकार की मानसिकता है। इसके द्वारा व्यक्ति एक ऐसी मनोवृत्ति, विचारधारा और आदत को विकसित कर लेते हैं, जो ग्रामीण जीवन से भिन्न होते हैं।

(5) नगरीकरण विविधताओं के भी केन्द्र होते हैं। यह विविधता आचार-विचार, रहन-सहन और जीवन-यापन के तरीकों से सम्बंधित होती है।

(6) नगरीकरण की इस प्रक्रिया में गतिशीलता के लक्षण भी पाए जाते हैं। गतिशीलता का तात्पर्य निरंतर परिवर्तन से है।

(7) अन्त में नगरीकरण की इस प्रक्रिया से जो परिवर्तन होते हैं, उनसे ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या में संतुलन बना रहता है।

भारत में नगरीय विकास
(Urban Development in India)

इस शताब्दी के शुरूआत में 1901 में कलकत्ता को देश का पहला महानगर होने का गौरव प्राप्त था, तब इसकी आबादी दस लाख से कुछ ही अधिक थी। बम्बई शहर की आबादी 8.47 लाख थी। 1901 में देश की कुल जनसंख्या का 11.00 प्रतिशत भाग शहरों में निवास करता था, जो 1981 में बढ़कर 23.73 प्रतिशत हो गया है अर्थात् कुल जनसंख्या में से 15618850 व्यक्ति नगरों में निवास करते हैं। 2011 में नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 31.16 हो गया है। भारत में नगरीकरण की प्रवृत्ति को निम्नलिखित तालिका में दिखाया गया है-

जनगणना वर्ष	नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत	जनगणना वर्ष	नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत
1901	11.00	1961	18.27
1911	10.40	1971	20.22
1921	11.34	1981	23.73
1931	12.18	1991	26.13
1941	14.10	2001	27.78
1951	17.62	2011	31.16

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि भारतीय समाज नगरीय जीवन की ओर अग्रसर होता जा रहा है। 1991 की जनगणना के अनुसार 26.13 प्रतिशत लोग नगरों में निवास करते हैं। 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में जनसंख्या का प्रतिशत निम्न है -

NOTES

क्र.	भारत/राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 2011 की जनगणना	क्र.	भारत/राज्य/केन्द्र शासित प्रदेश	नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 2011 की जनगणना
1.	चंडीगढ़	97.25	18.	मध्यप्रदेश	27.63
2.	दिल्ली	97.50	19.	केरल	47.72
3.	पांडिचेरी	68.31	20.	मेघालय	20.08
4.	लक्षद्वीप	78.08	21.	उत्तरप्रदेश	22.28
5.	महाराष्ट्र	45.23	22.	सिक्किम	24.97
6.	तमिलनाडु	48.45	23.	नागालैंड	28.97
7.	दमन, दीव	75.16	24.	बिहार	11.30
8.	गुजरात	42.58	25.	उड़ीसा	16.68
9.	कर्नाटक	38.57	26.	त्रिपुरा	26.18
10.	पंजाब	37.49	27.	हिमाचल प्रदेश	10.04
11.	पश्चिम बंगाल	31.89	28.	दादरा और नगर हवेली	46.62
12.	मणिपुर	30.21	29.	अरुणाचल प्रदेश	22.67
13.	अंडमान और निकोबार द्वीप समूह	35.67	30.	उत्तराखण्ड	30.55
14.	मिजोरम	51.51	31.	जम्मू एवं कश्मीर	27.21
15.	आन्ध्रप्रदेश.	33.49	32.	आसाम	14.08
16.	हरियाणा	34.79	33.	झारखण्ड	24.05
17.	राजस्थान	24.89	34.	छत्तीसगढ़	23.24
			35.	गोआ	62.17

इस प्रकार स्पष्ट है कि केन्द्र शासित प्रदेशों में चंडीगढ़ और दिल्ली प्राय: पूरी तरह से नगरीकृत हैं। लक्षद्वीप में भी कुल जनसंख्या के आधे से अधिक व्यक्ति नगरों में निवास करते हैं। प्रदेशों में महाराष्ट्र में नगरीय जनसंख्या का सबसे अधिक प्रतिशत है। अन्य प्रदेशों में तमिलनाडु, गुजरात, कर्नाटक, पंजाब, पश्चिम बंगाल तथा मणिपुर की नगरीय जनसंख्या राष्ट्रीय औसत (27.73 प्रतिशत) से अधिक है।

भारत में नगरीकरण के अध्ययन से यह जानना रुचिकर है कि कुछ जिलों में नगरीय जनसंख्या बिल्कुल ही नहीं है। 1981 की जनगणना के अनुसार भारत में कुल ऐसे 10 जिले हैं, जहाँ नगरीय जनसंख्या नहीं है। इनका विवरण निम्नलिखित है-

क्रम संख्या	जिले का नाम	प्रदेश/केन्द्र शासित क्षेत्र
1.	दांग्स (The Dangs)	गुजरात
2.	लाहुल और स्फीति	हिमाचल प्रदेश
3.	किन्नौर	हिमाचल प्रदेश
4.	विनाड (Wynad)	केरल
5.	फेक (Phek)	नागालैंड
6.	निकोबार	अण्डमान और निकोबार द्वीप समूह
7.	तिराप (Tirap)	अरुणाचल प्रदेश
8.	पूर्वी कामेन्ग	अरुणाचल प्रदेश
9.	ऊपर सबनसिरि	अरुणाचल प्रदेश
10.	दिवांग घाटी	अरुणाचल प्रदेश।

NOTES

1981 की जनगणना में भारतीय नगरों की जनसंख्या के आधार पर निम्नलिखित 6 श्रेणियों में विभाजित किया गया है, जो इस प्रकार है-

वर्ग	जनसंख्या
1.	100000 और ऊपर
2.	50000 से 99999
3.	20000 से 49999
4.	10000 से 19999
5.	5000 से 9999
6.	5000 से कम।

नगरीय जनसंख्या का 60.37 प्रतिशत भाग उन नगरों में निवास करता है, जिनकी आबादी एक लाख से अधिक है। ऐसे नगर जिनकी जनसंख्या 5000 या इससे कम है, उनकी संख्या अत्यंत ही नगण्य है। उनका कुल जनसंख्या का मात्र 95 प्रतिशत है।

भारत में नगरीय विकास के प्रमुख लक्षण
(Main Features of Urban Development in India)

(1) **नगरीय जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि-** भारत में नगरीकरण का पहला लक्षण यह है कि जहाँ एक ओर ग्रामीण जनसंख्या में गिरावट आती जा रही है, वहीं दूसरी ओर नगरीय जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। 1901 में भारत में ग्रामीण नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत 91 में बढ़कर 23.73 से 26.13 हो गया है।

(2) **महानगरों का विकास-** 1991 की जनसंख्या से स्पष्ट है कि भारत में कुल 12 ऐसे महानगर हैं, जिनकी जनसंख्या 10 लाख से अधिक है। इनमें से निम्नलिखित 3 करोड़ से अधिक हैं।

(i) कलकत्ता 91.65 लाख (ii) बम्बई 82.02 लाख

(iii) दिल्ली 52.27 लाख

चौथे स्थान पर मद्रास के, जिसकी आबादी 47.62 लाख है। 1901 की जनगणना से लेकर 1981 तक की जनगणना में जनसंख्या की दृष्टि से भारत के जिन 10 प्रमुख शहरों का क्रमानुसार स्थान रहा है, उनका विवरण पृष्ठ 132 पर दी गई तालिका में दिखाया गया है-

1901 की जनगणना में कलकत्ता को देश का पहला महानगर होने का गौरव प्राप्त हुआ था, तब इसकी आबादी 10 लाख से कुछ ही अधिक थी। उस समय बम्बई की आबादी 8.47 लाख थी, तब से इनकी आबादी में निरन्तर वृद्धि होती रही। महानगरों की होड़ में प्रारंभ से ही इनका स्थान प्रथम एवं द्वितीय रहा है। सिर्फ 1921 एवं 1961 को छोड़कर कलकत्ता ही प्रथम स्थान पर रहा है।

10 महानगरों की जो तालिका दी गई है, उससे स्पष्ट होता है कि इस शताब्दी के प्रारंभ में जिन नगरों की जनसंख्या अधिक थी, आज महानगरों में उनका कोई अस्तित्व नहीं है। ये नगर हैं- आगरा, वाराणसी, लखनऊ और हावड़ा।

भारत में नगरीकरण की इस प्रक्रिया में जो तत्व योगदान दे रहे हैं, उनमें से कुछ प्रमुख हैं -

(1) अकेले बम्बई में प्रतिदिन दस हजार व्यक्ति रोजगार की तलाश में प्रवेश करते हैं।

(2) नगरीय जीवन की सुख-सुविधाएँ तथा उन्नत जीवन के साधन।

(3) औद्योगीकरण तथा व्यापार-व्यवसाय के लिए मुक्त समाज की सुविधाएँ।

नगरीय विकास के प्रभाव
(Impact of Urban Development)

आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं में नगरीकरण की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। नगरीकरण का प्रभाव जीवन के विविध क्षेत्रों में पड़ा है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

(A) **परम्परागत परिवार पर प्रभाव** (Impact on Traditional Family)

नगरीकरण का परम्परागत परिवारों पर प्रभावों का अध्ययन जिन प्रमुख विद्वानों ने किया है, उनका विवरण इस प्रकार है -

(a) Some Aspect of Family in Mahu (Gujrat). - Dr. I.P. Desai, 1964.

(b) Urbanization and Family Change. - Dr. M.S. Gore, 1968

(c) Article- The Indian Joint Family in Modern Industry in Structure and Change in Indian Society. - Milton Singer.

(d) Family and Marriage in India. - Dr. K.M. Kapadia.

उपर्युक्त अध्ययनों के द्वारा नगरीकरण का परम्परागत परिवारों पर जो प्रभाव पड़ा है, उसका विवरण इस प्रकार है -

(i) संयुक्त परिवारों का विघटन,

(ii) स्त्रियों में जागरूकता का विकास,

(iii) व्यक्तिवाद की भावना का विकास,

(iv) पारिवारिक संरचना में परिवर्तन "छोटा परिवार, सुखी परिवार का आधार" की धारणा का विकास।

(B) **विवाह संस्था पर प्रभाव** (Impact on Marriage Institution)-

विवाह संस्था पर नगरीकरण के प्रभावों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है -

(i) हिन्दू विवाह की परम्परागत मान्यताओं में परिवर्तन,

(ii) विवाह को धार्मिक संस्कार न मानकर सामाजिक संविदा मानना,

(iii) पति-पत्नी के सम्बंधों में परिवर्तन,

(iv) तलाक की बढ़ती मात्रा,

(v) श्राद्ध, तर्पण और यज्ञों के प्रति बढ़ती उदासीनता,

(vi) पुत्र के समान ही पुत्रियों को महत्व,

(vii) अविवाहित स्त्री-पुरुषों की संख्या में वृद्धि,

(viii) विलम्ब विवाह,

(ix) एक विवाह को महत्व,

(x) विधवा विवाह का महत्व,

(xi) अंतरजातीय विवाहों को प्रोत्साहन,

(xii) वैवाहिक विज्ञापनों का महत्व,

(xiii) प्रतिष्ठासूचक के रूप में दहेज।

(C) **जाति व्यवस्था पर प्रभाव** (Impact on Caste System)-

नगरीकरण ने भारतीय जाति व्यवस्था को विभिन्न स्वरूपों में परिवर्तन किया है, जो इस प्रकार है -

(i) जातिगत संस्तरण में परिवर्तन,

(ii) अस्पृश्यता सम्बंधी धारणा में शिथिलता,

(iii) जातिगत व्यावसायिक संरचना में परिवर्तन,

(iv) नये व्यवसायों का जन्म और विकास,

(v) भोजन सम्बंधी परम्परागत जातीय मान्यताओं में परिवर्तन,

NOTES

(vi) अन्तरजातीय विवाहों को प्रोत्साहन,

(vii) सार्वजनिक स्थानों के उपयोग की स्वतंत्रता,

(viii) जातिगत आवास व्यवस्था में परिवर्तन,

(ix) जातिगत संस्थाओं और संगठनों का जन्म विकास,

(x) राजनीति एवं प्रशासन पर प्रभाव,

(xi) जातिवाद के नये मूल्यों का जन्म और विवेचना।

डॉ. राधाकमल मुखर्जी ने अपनी पुस्तक (Caste and Social Change in India) में नगरीकरण के कारण जाति व्यवस्था पर जो प्रभाव पड़ा है, उसकी विवेचना इन शब्दों में की है "सभी प्रकार की जातियाँ पृथक रहने और सहवास के प्राचीन प्रतिबंधों को न मानती हुई बाजारों, फैक्टरियों और चाय की दुकानों में साथ-साथ काम करती हैं और खान-पान करती हैं।"

बैली (F.C. Bailey) ने अपनी पुस्तक (Tribe, Caste and Nation) में लिखा है कि "रेलों में अस्पृश्यता नहीं है, क्योंकि यह कोई नहीं जानता कि कौन अस्पृश्यामी है। जाति परम्परागत रूप से लघु स्तर के समाजों और उन्हीं स्थानों में विद्यमान हैं, जहाँ स्थानीय गतिशीलता का अभाव पाया जाता है।"

बारनावास (Barnabas) का विचार है कि "रेलों, बसों, नगरों, फैक्टरियों, होटलों, सिनेमाघरों और क्लबों के लोग बिना जाति भेदभाव के उनमें प्रवेश करते हैं।"

(D) **ग्रामीण समुदाय पर प्रभाव** (Impact on Rural Community)-

ग्रामीण समुदाय पर नगरीकरण के प्रभावों की विवेचना करते हुए **डॉ. के.एम. कपाड़िया** ने लिखा है कि "गाँव की आत्मनिर्भरता नष्ट हो गई और गाँव के प्रभावहीन सांस्कृतिक प्रतिमान पर नवीन नगरीय संस्कृति का प्रभाव लगा। आधुनिक सुविधाएँ जो अभी तक नगरों तक ही सीमित थीं, गाँवों में पहुँच गई। रहन-सहन, केश विन्यास, घर की सजावट के प्रतिमान नवीन सम्पर्क से प्रभावित हुए हैं और शिक्षा के विकास तथा मोटर यातायात के प्रारंभ होने से इस प्रक्रिया में तीव्रता आ गई है।"

(i) ग्राम, नगर सम्बंधों का विकास,

(a) आर्थिक, (b) सामाजिक,

(c) शैक्षणिक तथा (d) चिकित्सा सम्बंधी आदि।

(ii) कृषि का व्यवसायीकरण,

(iii) रहन-सहन के स्तर में वृद्धि,

(iv) ग्राम पंचायत एवं जातीय पंचायतों का घटता महत्व,

(v) नये व्यवसायों का विकास,

(vi) ग्रामीण आत्मनिर्भरता का अंत,

(vii) ग्रामीण लोगों में आधुनिक जीवन शैली को अपनाने तथा नगरीय बनने की आकांक्षाओं का विकास।

(E) **सामाजिक समस्याओं पर प्रभाव** (Impact on Social Problems)-

प्रत्येक समाज में कुछ निश्चित समस्याएँ होती हैं। नगरीकरण के परिणामस्वरूप मानव समाज में बाह्य समस्याएँ और भी जटिल तथा गंभीर हुई हैं। नगरीकरण के कारण जिन समस्याओं का जन्म और विकास हुआ है, उसका विवरण इस प्रकार है-

(i) अलगाव (Alienation) भावना का विकास,

(ii) अस्तित्व के लिए संघर्ष की प्रवृत्ति का विकास,

(iii) नगरीकरण ने वैयक्तिक विघटन की निम्नलिखित समस्याओं को विकसित किया है-

(1) आत्मकेन्द्रीयवाद (Egocentricism), (2) अपरिवारवाद (Antifamilsm),

(3) मद्यपान तथा नशीली वस्तुओं का सेवन, (4) जुआं तथा क्लब जीवन,
(5) नैतिक पारिवारिक पतन तथा अकर्मण्यता, (6) शारीरिक दुर्बलता,
(7) मानसिक हीनता, (8) असामान्य व्यक्तित्व,
(9) आत्महत्या की प्रवृत्ति।

(iv) नगरीकरण ने पारिवारिक जीवन में भी अनेक समस्याओं को विकसित किया है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

(1) पारिवारिक तनावों में वृद्धि, (2) पारिवारिक स्वच्छंदता का विकास,
(3) तलाक की प्रवृत्ति, (4) यौन व्यवहारों में स्वतंत्रता,
(5) भौतिकतावादी एवं विलासी जीवन।

(v) नगरीकरण के कारण सामुदायिक जीवन के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार की समस्याओं का विकास हो रहा है। संक्षेप में इन समस्याओं का विवरण इस प्रकार है-

(1) सामुदायिक जीवन में अलगाव, (2) स्थानमूलक गतिशीलता का विकास,
(3) बेरोजगारी, भिक्षावृत्ति एवं निर्धनता, (4) कुटिल आचरणों का विकास।

(F) **अन्य प्रभाव** (Other Impact)-

नगरीकरण ने जीवन के कुछ अन्य क्षेत्रों को भी प्रभावित किया है, जिनका विवरण इस प्रकार है-

(1) पाश्चात्य मूल्यों और मान्यताओं का आदर,
(2) फैशन और सभ्य जीवन की ओर प्रवृत्ति,
(3) धार्मिक क्रियाओं के प्रति परम्परागत मूल्यों के प्रति जागरूकता,
(4) राजनीतिकरण के प्रति जागरूकता,
(5) समय का मूल्य,
(6) जीवन व्यवहार के नए ढंग,
(7) कार्यों की अधिकता,
(8) सम्बंधों की जटिलता,
(9) जीवन में औपचारिकता का विकास,
(10) धन का मोह,
(11) स्त्री समुदायों के जीवन स्तर में वृद्धि।

नगरीय विकास एवं आर्थिक विकास
(Urban Development and Economic Development)

आर्थिक विकास और नगरीकरण अन्त:सम्बंधित हैं। एक ओर जहाँ आर्थिक विकास नगरीकरण को प्रोत्साहित करता है, वहाँ दूसरी ओर नगरीकरण से आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहन मिलता है। आर्थिक विकास का तात्पर्य उद्योग व्यवसायों की उत्पत्ति और राष्ट्रीय आय में वृद्धि से लगाया जाता है। आर्थिक विकास का तात्पर्य केवल आर्थिक सम्वृद्धि या मौद्रिक सम्पन्नता से नहीं है, अपितु इसका सीधा सम्बंध सांस्कृतिक और सामाजिक पर्यावरण में सुधार से है। इससे समाज में रहन-सहन के स्तर में वृद्धि होती है तथा शिक्षा, स्वास्थ्य और सुविधाओं का विकास किया जाता है। इसलिए आर्थिक विकास को सुखी जीवन के साथ जोड़ा जाता है। आर्थिक विकास के कारण किसी भी देश की आर्थिक दशा में सुधार होता है। इसका परिणाम यह होता है कि देश की आर्थिक दशा में सुधार होता है। आर्थिक विकास के जो प्रमुख लक्षण देश में दिखाई दे रहे हैं, वे इस प्रकार हैं -

(1) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि-** भारत में आर्थिक विकास के कारण राष्ट्रीय आय में वृद्धि हुई है, वह इस प्रकार है -

NOTES

क्रम संख्या	योजना	राष्ट्रीय आय में वृद्धि (वार्षिक प्रतिशत)
1.	प्रथम	2.3
2.	द्वितीय	3.6
3.	तृतीय	4.1
4.	एक वर्षीय 1966-67	5.1
5.	एक वर्षीय 1967-68	1.1
6.	एक वर्षीय 1968-69	7.2
7.	चतुर्थ	4.0
8.	पंचम	5.0

(2) **प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि-** राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ ही प्रति व्यक्ति आय में भी वृद्धि हुई है, जिसे निम्न तालिका में दिखाया गया है-

क्र.सं.	योजना	प्रति व्यक्ति आय
1.	प्रथम	282
2.	द्वितीय	309
3.	तृतीय	357
4.	चतुर्थ	422
5.	पंचम	520 (संभावित)

आर्थिक विकास के क्षेत्र में जो परिवर्तन हुए हैं, वे इस प्रकार हैं-

(1) रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है,

(2) व्यावसायिक विविधता का विकास हुआ है,

(3) परम्परात्मक व्यवसायों का पतन और नये व्यवसायों का जन्म और विकास हुआ है,

(4) परम्परात्मक व्यवसायों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जा रहा है। यही कारण है कि व्यवसाय के क्षेत्र में गतिशीलता का विकास हुआ है,

(5) पैदावार में वृद्धि हुई है,

(6) प्राकृतिक साधनों का अधिक से अधिक दोहन किया जा रहा है,

(7) रहन-सहन का स्तर ऊँचा हुआ है,

(8) पैसे के महत्व में वृद्धि हुई है,

(9) पैसे के मूल्य में कमी आई है।

भारत के आधुनिकीकरण में नगरीय विकास की भूमिका
(Role of Urban Development in Modernization of India)

अत्यंत संक्षेप में ग्रामों को परम्परात्मक और नगरों को आधुनिकता का प्रतीक माना जाता है। जो व्यक्ति नगर में निवास करता है, उसमें आधुनिकता पाई जाती है। भारतीय संदर्भ में नगरीकरण का आधुनिकीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका है, जो इस प्रकार है-

(1) नगरीय मस्तिष्क अधिक विकसित और जागरूक होता है। इसके कारण भी आधुनिकीकरण को प्रोत्साहन मिलता है।

(2) नगरीकरण के परिणामस्वरूप व्यावसायिक गतिशीलता (Occupational Mobility)का विकास होता है। इससे नये व्यवसायों का जन्म और विकास होता है। यह प्रक्रिया भी आधुनिकीकरण में सहायक होती है।

(3) नगरीकरण शिक्षा को प्रोत्साहित करती है तथा वहाँ विविध प्रकार की शिक्षा सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि आधुनिकीकरण में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

(4) नगरीकरण के कारण उद्योगों का विकास होता है। उद्योगों का विकास आर्थिक विकास तथा आधुनिकीकरण की आवश्यक दशा है।

(5) नगरीकरण के द्वारा आवागमन और संदेशवाहन के साधनों का विकास होता है। इन साधनों के विकसित हो जाने से भी आर्थिक विकास को प्रोत्साहन मिलता है, जो आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को गति प्रदान करते हैं।

NOTES

नगरीय समाज में श्रम बाजार एवं प्रौद्योगिकी
(Technology and Labour Market in Urban society)

आधुनिक समाज गतिशील समाज है। इस गतिशीलता का आधार है- श्रम बाजार और प्रौद्योगिकी। औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) ने दुनिया का नक्शा ही बदल दिया था। यूरोप की 18वीं सदी की क्रान्ति ने सारी दुनिया का नक्शा ही बदल दिया था। प्रौद्योगिकी ने समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन का सूत्रपात्र किया था। मानव आवश्यकताओं की उपलब्धता और इसकी पूर्ति में श्रम बाजार और प्रौद्योगिकी की अहम भूमिका रही है। क्षेत्रीय दृष्टिकोण से भारतीय संदर्भ में समाज को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(a) ग्रामीण समाज (Rural Society) और

(b) नगरीय समाज (Urban Society)

ग्रामीण समाज परम्परात्मक समाज (Traditional Society) है, जबकि नगरीय समाज आधुनिक समाज (Modern Society) है। नगरीय समाज की आधुनिकता का आधार श्रम बाजार और प्रौद्योगिकी ही है। ग्रामीण और नगरीय समाज में भिन्नता का आधार प्रौद्योगिकी ही है। प्रौद्योगिकी और श्रम बाजार किसी भी समाज की अर्थव्यवस्था के मेरूदण्ड होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रौद्योगिकी और श्रम बाजार समाज की प्रगति के आधार हैं। इस दृष्टि से बाजार अर्थव्यवस्था की नगरीय समाज में महत्वपूर्ण स्थान है।

बाजार अर्थव्यवस्था
(Market Economy)

बाजार अर्थव्यवस्था से आशय उस ऐसी अर्थव्यवस्था से है जिसमें क्रेता और विक्रेता (दोनों शक्तियाँ) से समूची अर्थव्यवस्था नियंत्रित हों। अर्थात् वस्तुओं के उत्पादन से लेकर मूल्य निर्धारण तक का कार्य क्रेताओं और विक्रेताओं के माँग और पूर्ति की स्वतन्त्र शक्तियों द्वारा निर्धारित होता हो, उस ऐसी अर्थव्यवस्था को बाजार अर्थव्यवस्था कहा जाता है। दूसरे अर्थों में 'हस्तक्षेप का पूर्ण अभाव' जिस अर्थव्यवस्था में रहता हो उस अर्थ व्यवस्था को हम बाजार अर्थ व्यवस्था कहते हैं। ऐतिहासिक अवलोकन से भी अगर हम देखें तो पूँजीवादी अर्थव्यवस्था जिसे स्वतंत्र अर्थव्यवस्था भी कहा जाता है, को बाजार अर्थव्यवस्था कहा जायेगा। इस ऐसी स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था के उत्पादन विनिमय वितरण के साथ-साथ उपयोग भी पूर्ण स्वतन्त्र होती है। इन पाँचों क्षेत्रों में किसी प्रकार का नियन्त्रण न रहना ही बाजार अर्थव्यवस्था है।

बाजार अर्थव्यवस्था को प्रो. कुर्तो ने इस प्रकार परिभाषित किया है-

"अर्थव्यवस्था में बाजार अर्थव्यवस्था से आशय किसी स्थान विशेष से सम्बन्ध नहीं रखता वरन् उस सम्पूर्ण देश या प्रदेश में रखता है जिसमें क्रेता और विक्रेता स्वतन्त्र रूप से इस प्रकार आदान प्रदान करते हैं कि वस्तुओं के मूल्य तीव्रता एवं स्वतन्त्रता के साथ समानता की ओर जाते हैं।"

बाजार अर्थव्यवस्था को परिभाषित करते हुये फारग्यूसन तथा क्रेप्स (Freguson and Kreps) ने कहा "एक बाजार अर्थव्यवस्था को परिभाषित करना कठिन है तथा उसकी व्यवस्था करना और भी कठिन है।" इस कथन की सत्यता इस बात में निहित है की एक अर्थव्यवस्था में कुछ व्यक्तिगत व्यापारियों व्यक्तिगत या असंगठित मजदूरों और उपभोक्ताओं का एक ढीला ढाला योग भी हो सकता है जैसा कि संयुक्त राज्य अमेरिका में है। इनमें से प्रत्येक अनपे सर्व-श्रेष्ठ हितों की प्राप्ति के लिये प्रयास करेगा और सरकार के नियमन को न के बराबर स्वीकार करेगा।

NOTES

बाजार अर्थव्यवस्था के कार्य (Functions of the Market Economy)

बाजार अर्थव्यवस्था द्वारा कुछ आवश्यक कार्य सम्पन्न किए जाते हैं फारग्यूसन और क्रेप्स ने कहा है कि बाजार अर्थव्यवस्था को कुछ मौलिक निर्णय लेने होते हैं। इनके मतानुसार ये निर्णय मुख्य रूप से तीन प्रकार से हैं-

(a) किसी वस्तु का उत्पादन किया जाय

(b) उसे किस प्रकार उत्पादित किया जाय और

(c) उत्पादन को कौन प्राप्त करेगा।

इस तरह तीनों निर्णयों के सम्बन्ध में बाजार अर्थव्यवस्था पूर्ण स्वतंत्र होती है। इन कार्यों का वर्णन निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

(a) **क्या उत्पादित किया जाय-** (What To Produce) बाजार अर्थव्यवस्था में सबसे पहले यह निर्णय लेना होता है कि पहले किस वस्तु का उत्पादन शुरू किया जाय। क्योंकि अर्थव्यवस्था के साधन स्त्रोत मानवीय आवश्यकताओं की तुलना में कम होते हैं अतः यह आवश्यक हो जाता है कि विभिन्न वस्तुओं और सेवाओं के संग्रह में से चयन किया जाय अतः यह आवश्यक हो जाता है कि सर्व प्रथम किस का उत्पादन किया जाय। यह निर्णय लेना बाजार अर्थव्यवस्था का प्रमुख कार्य है। यहाँ इस तथ्य को आवश्यक रूप से कहा जा सकता है कि पूर्ण स्वतन्त्र बाजार अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता चूँकि संयुक्त होता है अतः उत्पादक द्वारा यह देखा जाना आवश्यक है कि उपभोक्ता किस वस्तु के उत्पादन को वरीयता प्रदान करता है उसी के अनुरूप यह तय होगा कि किस वस्तु का उत्पादन किया जाय। क्योंकि उपभोक्ता द्वारा किस वस्तु की अधिक माँग की जायेगी उसी वस्तु के कीमत को भी बढ़ाया जा सकता है और उसी में उत्पादक का लाभ भी निहित है अतः जिस वस्तु के उत्पादन से अधिक लाभ होने की सम्भावना रहती है उसी का उत्पादन होना भी तय होता है।

अतः बाजार अर्थव्यवस्था में किस वस्तु का उत्पादन किया जाय यह उसकी कीमत पर निर्भर करता है।

(b) **कैसे उत्पादन किया जाय :-** (How To Produce It) : दूसरा प्रश्न बाजार अर्थव्यवस्था के सामने यह आता है कि इन विशेष वस्तुओं का उत्पादन किस प्रकार किया जाय। अर्थात वस्तु का उत्पादन इस प्रकार किया जाय ताकि लाभ अधिक मिले इसके लिये आवश्यक है वह यह देखें कि माँग के अनुरूप ही उत्पादन हो अधिक या कम न हो। जब तक यह निर्णय सही नहीं लिया जायेगा तब तक उसे लाभ अधिक नहीं हो पायेगा। स्वाभाविक है कि फर्में अपने लागतों से अधिक ही मूल्य निर्धारित करती है किन्तु उपभोक्ता की माँग और साधनों का कुशलतम प्रयोग से ही लागतों को कम करके अधिकतम लाभ अर्जित किया जा सकता है। अतः यहाँ बाजार अर्थव्यवस्था में उत्पादन के तरीकों को निश्चित करना मुख्य रूप से उत्पादक का ही उत्तरदायित्व बनता है। ऐसा करते समय उत्पादक वर्ग 'कीमत) प्रणाली से पूर्ण सम्पूर्ण प्रभावित होता है। क्योंकि वहाँ उत्पादक तथा व्यापारी सदैव अपने लाभ की खोज में रहते हैं और लाभ केवल उन्हीं वस्तुओं में प्राप्त हो सकता है जो लागत की अपेक्षा अधिक कीमत पर बेची जा सकती है। इसके लिये उत्पादक वर्ग उन वस्तुओं को ही उत्पादित करता है तथा उन विधियों को ही प्रयोग करता है जिन्हें उपभोक्ता अधिक चाहते हैं और जिनके उत्पादन में कम से कम लागतें आती हैं। उत्पादकों को उत्पादन के साधनों का संगठन करते समय उपभोक्ता की रुचि से अवश्य प्रभावित होना पड़ता है। उत्पादक को यदि उपभोक्ता के रुचि का ध्यान नहीं दिया जाता तो निश्चित ही उत्पादक को घाटा उठाना पड़ता है। उत्पादक को यदि घाटा हुआ तो अगले उत्पादन के साधनों की कमी होने लगती है क्योंकि वह इन साधनों का उचित भुगतान करने में असमर्थ होता है।

अतः आवश्यक है कि उत्पादक यह पूर्व में ही निश्चय करता है कि उपभोक्ता की रुचि क्या है, उत्पादन के साधनों का कुशलतम प्रयोग कैसे करें कि लागत कम से कम लगानी पड़े आदि। तभी उत्पादक को लाभ होगा।

(c) **उत्पादन को कौन प्राप्त करता है** (Who Receives the Product) : बाजार अर्थव्यवस्था में एक तीसरा प्रश्न उठता है। कि उत्पादित वस्तुओं को कौन प्राप्त करें। लगभग प्रत्येक देश में उत्पादन के साधन और उत्पादित वस्तु की मात्रा सीमित होती है। अतः यह निर्णय लेना आवश्यक हो जाता है कि उत्पादित माल और सेवाओं को कौन प्राप्त करेगा। सामान्यतया यहाँ यह कहा जा सकता है कि उत्पादन और सेवाओं का वितरण समान मात्रा में किया जाना उचित होगा अथवा आवश्यकता के अनुसार सामान दिया जाय तथा योग्यता के अनुसार कार्य लिया जाय।

किन्तु बाजार अर्थव्यवस्था में मुख्य रूप से वस्तु का वितरण कीमत तंत्र द्वारा ही किया जाना अधिक श्रेयस्कर होता है क्योंकि उत्पादन से जितनी लागतों के रूप में उत्पादक द्वारा मजदूरी के रूप में दिया जायेगा

वही एक उपभोक्ता की आय कहलायेगी और एक उपभोक्ता अपनी आय के अनुसार ही वस्तु को एक निश्चित कीमत पर क्रय करने का प्रयास करेगा। इस प्रकार वे सभी जो उत्पादन में किसी न किसी प्रकार से योगदान करते हैं आय प्राप्त करते हैं और आय के अनुसार तथा वस्तु की उपलब्धता के अनुसार एक निश्चित मूल्य पर वस्तु की बिक्री की जाती है यदि वस्तु माँग के अनुसार घट गई तो विक्रेता उस वस्तु का मूल्य बढ़ाकर वस्तु को बेचने लग जाते हैं फलस्वरूप उत्पादक अधिक बढ़ी हुई कीमत वाली वस्तु का उत्पादन कर अर्थव्यवस्था में वितरण के लिये उपलब्ध कराने का प्रयास करेगा। संक्षेप में यहाँ यही कहा जा सकता है कि उत्पादक को यह निर्णय लेना पड़ता है कि उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का वितण उत्पादन के साधनों के ही मध्य करके अधिक से अधिक लाभ कमाया जा सकता है।

इस तरह बाजार अर्थव्यवस्था में विभिन्न उपभोक्ताओं के बीच उपलब्ध वस्तुओं के वितरण करने का कार्य कीमत के माध्यम से होता है, वस्तु का अभाव उसके मूल्यों को बढ़ा देता है और ऐसी स्थिति में प्रत्येक उपभोक्ता द्वारा क्रय की जाने वाली वस्तु की मात्रा में कमी आ जाती है। जब वस्तु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है तो उसकी कीमत घट जाती है फलस्वरूप उपभोक्ता अधिक मात्रा में उसकी खरीददारी करने लग जाते हैं यह खरीददारी उस समय तक होती रहती है जब तक वस्तु समाप्त न हो जाय। अतः कीमत के आधार पर उपलब्ध वस्तुओं का आवंटन उपभोक्ताओं की बीच स्वयं हो जाता है।

बाजार अर्थव्यवस्था के गुण
(Merits of a Market Economy)

बाजार अर्थव्यवस्था अपने आप में एक पूर्ण अर्थव्यवस्था है क्योंकि इस अर्थव्यवस्था में उपयोग उत्पादन विनिमय और वितरण का कार्य स्वमेव चलता रहता है एक उत्पादक उपभोक्ता के रुचि और माँग के अनुसार अच्छी से अच्छी किस्म की वस्तु तैयार कर अर्थव्यवस्था में वितरण के लिये डालता है ताकि विनिमय से होने वाला लाभ अधिक से अधिक हो सके।

बाजार अर्थव्यवस्था के गुणों का निम्न बिन्दुओं में अध्ययन किया जा सकता है-

1. उपभोक्ता की सम्प्रभुता :- वैसे भी इस अर्थ तन्त्र के उपभोक्ता को सम्प्रभु कहा जाता है किन्तु नियन्त्रित अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता की सम्प्रभुता प्रायः समाप्त सी हो जाती है या कम हो जाती है किन्तु बाजार अर्थव्यवस्था में उपभोक्ता ही सम्प्रभु होता है उसी की रुचि और माँग के अनुसार उत्पादक वस्तु का निर्माण करते हैं ताकि उस उत्पादित वस्तु की माँग अधिक से अधिक हो और माँग को अधिक होने पर ही उस वस्तु के मूल्य को बढ़ाया जा कर उत्पादक अधिक से अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं। अर्थात् उत्पादक यह नहीं देख सकता कि उपभोक्ता की माँग उचित है अथवा अनुचित। यह विचार उत्पादक नहीं कर सकता यहाँ यदि उत्पादक उपभोक्ता के चयन की अवहेलना करता है तो उसे नुकसान अवश्य उठाना पड़ेगा क्योंकि उसकी वस्तु अन बिकी रहेगी। इस तरह हम कह सकते हैं कि उपभोक्ता सम्प्रभु होता है अर्थात् उपभोक्ता की रुचि और माँग के संकेत मात्र से समस्त अर्थव्यवस्था संचालित होती है।

2. उत्पादन कार्य में गुणवत्ता :- बाजार अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण गुण यह भी है कि निर्मित वस्तु यदि उच्च तकनीकी और उच्च गुणवत्ता वाली नहीं है तो वह अनबिकी रह जायेगी जिस कारण उत्पादक को लाभ के बजाय घाटा उठाना पड़ सकता है अतः ऐसी स्थिति में उत्पादक हर सम्भव यही प्रयास करेगा कि वस्तु का निर्माण कुशल कारीगरी और उच्च तकनीकी के प्रयोग से निर्मित की जाय ताकि उपभोक्ता अधिक से अधिक उस वस्तु की माँग करें और अधिक माँग से मूल्यों में वृद्धि की जा कर अधिक लाभ कमाया जा सके।

3. उत्पादन शक्ति एवं उत्पादन की मात्रा में वृद्धि :- बाजार अर्थव्यवस्था में उत्पादन शक्ति के साथ-साथ उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है कार्लमार्क्स से लेकर लगभग सभी अर्थशास्त्रियों ने इसे स्वीकारा है। क्योंकि व्यवसाय की स्वतन्त्रता तथा निजी लाभ की प्रेरणा कुशल एवं योग्य उद्यमीशक्ति के विकास को प्रोत्साहित करती है, जिससे नये-नये उद्योगों की स्थापना एवं उनका कुशल प्रबंधन व निर्देशन सम्भव होता है। फलस्वरूप उत्पादन की मात्रा में वृद्धि होती है। इसके और कारण हैं जैसे- तकनीकी प्रगति उद्यमी योग्यता का विकास और अधिकतम लाभ प्राप्त करने के उद्देश्यों से अधिक उत्पादन करते हैं।

4. संसाधनों का अधिकतम उपयोग :- बाजार अर्थव्यवस्था में उद्यमी सीमित संसाधनों का अधिकतम व मितव्ययिता पूर्ण उपयोग कर लागतों को कम करने का प्रयास करते हैं ताकि उनका लाभ अधिकतम हों। वे उत्पादों (By Products) का भी उचित प्रयोग करके अपने लाभ की मात्रा को बढ़ाते हैं अयोग्य व अकुशल उद्यमियों

NOTES

को अपना उद्यम बन्द करना पड़ता है। मूल्य यंत्र से वस्तुओं के उत्पादन की मात्रा व इनकी कीमत प्रभावित होती है। जिन वस्तुओं व सेवाओं की माँग कम होती है या यह माँग समाप्त हो जाती है, उनका उत्पादन भी बन्द हो जाता है। अतः बाजार अर्थव्यवस्था में प्राकृतिक व मानव संसाधनों का उपयोग अधिकतम होता है।

5. रहन-सहन के स्तर में सुधार :- जहाँ आज भी बाजार अर्थव्यवस्था है वहाँ यह देखा जा सकता है कि वहाँ के लोगों का रहन-सहन का स्तर नियंत्रित अर्थव्यवस्था के लोगों की तुलना में अधिक अच्छा है। इसका कारण प्रायः यह देखा जा सकता है कि जहाँ एक ओर व्यक्तियों के आय में वृद्धि होती है वहीं दूसरी और उनके कार्य के घण्टे कम होते हैं, साथ ही मशीनों के अधिकाधिक प्रयोग से नित नयी-नयी किस्मों में सुधार की साथ उपभोक्ताओं के रुचि के अनुसार उत्पाद बाजार में आते रहते हैं जिससे प्रति योग्यता के कारण कम से कम कीमत पर उनके जीवन से सम्बन्धित वस्तुओं की उपलब्धता बढ़ती रहती है। जिस कारण हम यहाँ कह सकते हैं कि बाजार अर्थव्यवस्था में लोगों का रहन-सहन का दर्जा बढ़ता है।

6. लोचपूर्ण अर्थव्यवस्था :- बाजार अर्थव्यवस्था हमेशा लोचपूर्ण मानी जाती है क्योंकि उसमें समय परिस्थितियों और आवश्यकता के अनुसार परिवर्तन करने की क्षमता होती है। युद्ध या शान्ति की दशाओं में अथवा तेजी या मंदी काल में इस अर्थव्यवस्था में कार्य-विधि (उत्पादन विधि) अथवा प्रबंध व्यवस्था में शीघ्रता से परिवर्तन हो जाता है। इस अर्थव्यवस्था में चूँकि स्वयं चालितता एवं स्वतन्त्रता के गुण विद्यमान होते हैं इसलिये भी यह व्यवस्था अपने आप में एक लोचपूर्ण व्यवस्था मानी जाती है।

7. कीमत में स्थायित्व :- मूल्य यंत्र के प्रभावी संचलन के कारण तथा पूर्ण प्रतियोगिता के कारण समूचे अर्थव्यवस्था में मूल्य एक समान तथा मूल्यों में स्थापित होने के गुण सदैव विद्यमान रहते हैं। यदि कोई उद्यमी चाहे भी कि हम अपने वस्तु का मूल्य बढ़ाकर बेचें तो ऐसी स्थिति में उसकी वस्तु अनबिकी रह जायेगी अर्थात् उसको प्रचलित मूल्य पर ही वस्तु को बेचने से अधिक लाभ हो सकता है न कि बढ़ाकर बेचने से। इस तरह हम कह सकते हैं कि वस्तु का मूल्य बाजार में जो प्रचलित रहेगा उसी मूल्य पर कोई भी उत्पादक अपनी वस्तु को बेचने के लिये बाध्य होगा।

8. नौकरशाही से मुक्ति :- बाजार अर्थव्यवस्था एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था है इसलिये उसमें किसी प्रकार का सरकारी नियंत्रण नहीं रहता फलस्वरूप नौकरशाही प्रवृत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता हम आज देखते हैं जहाँ नियंत्रित अर्थव्यवस्था है वहाँ अनेक प्रकार की विसंगतियाँ देखने को मिलती हैं। अतः बाजार अर्थव्यवस्था में इस तरह की विसंगति नहीं होती है।

बाजार अर्थव्यवस्था के दोष
(Demerits of Market Economy)

बाजार अर्थव्यवस्था में अनेक गुण विद्यमान हैं किन्तु कुछ दोष भी देखने को मिलते हैं जो प्रमुख रूप से इस प्रकार है-

(1) **आय एवं धन का असमान वितरण** :- बाजार अर्थव्यवस्था में प्रमुख रूप से आय और धन के वितरण की पूर्ण असमानता देखी जाती है। समाज दो वर्गों में बँट जाता है- एक ओर ऐसे व्यक्ति और परिवार होते हैं; जिनके पास किसी भी वस्तु का अभाव नहीं होता और जिनका जीवन भोग विलास में व्यतीत होता है। दूसरी ओर ऐसी भी परिवार होते हैं जिनके पास पेट भरने के लिये पर्याप्त भोजन अथवा तन ढंकने के लिये समुचित मात्रा में वस्त्र नहीं होते हैं। बाजार अर्थव्यवस्था में उद्यमियों के पास ही धन केन्द्रित होता चला जाता है यह प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। फलस्वरूप धनी और धनी होते जाते हैं और निर्धन और निर्धन होते जाते हैं इसके पीछे मूल कारण यह कहा जा सकता है कि- निजी सम्पत्ति का अधिकार उत्तराधिकार में धन और सम्पत्ति का प्राप्त होना उपक्रम की स्वतन्त्रता, निजी लाभ के लिये उत्पादन करना, प्रतियोगिता आदि। दुर्लभ वस्तुओं की कीमतें प्रायः अन्य सामान्य वस्तुओं की तुलना में अधिक होती है जिससे अन्य वस्तुओं के उत्पादकों की तुलना में इनको अधिक लाभ मिलने लगता है। फलस्वरूप यहाँ भी असमानता की प्रवृत्ति अधिक देखने को मिलती है इस कारण इस अर्थव्यवस्था में न्यायपूर्ण समाज की स्थाना नहीं हो पाती।

(2) **वर्ग संघर्ष :-** जैसा कि ऊपर देख चुके हैं कि आय की असमानता के कारण समाज दो वर्गों में (धनी और निर्धन) बँट जाता है जिससे समाज में आर्थिक असंतोष का बीज "वर्ग-संघर्ष" को जन्म देता है। ये दोनों वर्ग (धनी और निर्धन) अपने-अपने हिलों की पूर्ति चाहते हैं परिणामस्वरूप इन दोनों वर्गों में हमेशा वर्ग संघर्ष का खतरा बना रहता है।

(3) **एकाधिकारी संघों की स्थापना :-** सैद्धांतिक दृष्टि से बाजार अर्थव्यवस्था में पूर्ण प्रतियोगिता भी होनी चाहिए किन्तु व्यवहार में यह स्थिति देखने को नहीं मिलती। लाभ को अधिक बढ़ाने के उद्देश्य से उत्पादक वर्ग एक संघ बना लेते हैं जिससे कीमतों को बढ़ाने में उन्हें सहूलियत मिलने लगती है और उन्हें हानि होने की सम्भावना भी समाप्त हो जाती है। जब एकाधिकारी प्रवृत्ति अर्थव्यवस्था में आ जाती है तो वह उत्पादन की मात्रा उत्पादन की किस्म उत्पादन के वितरण में एकाधिकार कायम कर मनमाने लाभ अर्जित करने लग जाते हैं। ऐसी स्थिति में बाजार अर्थव्यवस्था की मूल विशेषता समाप्त प्रायः सी हो जाती है।

(4) **नैतिक मूल्यों का ह्रास:-** चूँकि व्यक्ति निजी स्वार्थ एवं निजी लाभ के लिये कार्य करते हैं इसलिये उनकी नैतिकता गिरने लग जाती है। ऊँचे मूल्यों के कारण समाज का अधिकांश वर्ग आवश्यक आवश्यकता सम्बन्धी वस्तुओं के उपयोग से वंचित हो जाता है। जिस कारण उनका (गरीब वर्ग) अद्योपतन होने लग जाता है। इस कारण यह कहा जा सकता है। इस अर्थव्यवस्था में समाज का नैतिक मूल्य गिर जाता है।

(5) **बेरोजगारी:-** बाजार अर्थव्यवस्था में प्रायः यह भी देखने को मिलता है कि उत्पादक वर्ग अपने लाभ को अधिकतम करने के लिये अधिक से अधिक मशीनों का प्रयोग करने लग जाते हैं परिणामस्वरूप लोगों को रोजगार मिलना दिन प्रतिदिन कम होने लग जाता है जिसके कारण बेरोजगारी अर्थव्यवस्था में अधिक होने लगती है।

(6) **संसाधनों की अपव्ययिता** :- प्रायः यह देखा जाता है कि बाजार अर्थव्यवस्था में साधनों का अपव्यय पूर्ण उपयोग किया जाता है। सभी उत्पादक अपनी वस्तु के विज्ञापन व प्रचार पर अधिक मात्रा में धन व्यय करते हैं क्योंकि उनमें अधिक प्रचार प्रसार से दूसरे प्रतियोगियों की वस्तुएँ बेकार हो जाती हैं। यह एक प्रकार का अपव्यय ही है। बेकार हुई वस्तु का व्यय भार निरर्थक हो जाने से अपव्यय और बढ़ता है।

(7) **आर्थिक शोषण:-** बाजार अर्थव्यवस्था में प्रत्येक उत्पादक अपने लाभ को अधिकतम करने के लिये लागतों को कम से कम करने का प्रयास करते हैं। लागतों को कम करने के प्रयास में मजदूरी की ही कटौती करना उत्पादकों का एक मात्र उद्देश्य होता है फलस्वरूप मजदूरों का शोषण भरपूर मात्रा में होने लगता है। इसके अतिरिक्त कच्चा माल भी कम लागत में क्रय करने का उत्पादकों का दूसरा प्रयास होता है। इस तरह समाज में शोषण की प्रवृत्ति दिनों-दिन बढ़ती ही चली जाती है। आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति से समाज में आर्थिक अस्थायित्व की स्थिति व्यापक मात्रा में बढ़ जाती है। अतः यहाँ यह कहा जा सकता है कि इन सब स्थितियों में बाजार अर्थव्यवस्था में अनेक दोषों का प्रादुर्भाव होने की सम्भावना रहती है।

श्रम बाजार की आवश्यकता
(The Concept of Labour Market)

सामाजिक श्रेणियों के आधार पर बाजार को निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है-

(a) श्रम बाजार (Labour Market)

(b) साहसी सेवाओं के लिए बाजार (The market of Enterpreneurial Services) और

(c) उपभोक्ता की वस्तुओं के लिए बाजार।

शास्त्रीय दृष्टि से श्रम बाजार का तात्पर्य श्रम का मूल्य, उसकी मांग और पूर्ति के बीच पूर्ण प्रतियोगिता है। श्रम बाजार में वर्तमान में सेवा सुरक्षा एक केन्द्रीय विचार है। श्रम की पूर्ति को आज अनेक तरीकों से नियमित किया जाता है। जी रेनाल्डस (G. Reynolds) ने अपनी पुस्तक Labour Economic and Labour Relations में श्रम बाजार में सुरक्षा पर सबसे अधिक ध्यान दिया है। इस प्रश्न के उत्तर में सामाजिक कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस दृष्टि से परिवार एक अहम् संस्था। श्रम के स्रोत में परिवार की अहम भूमिका होती है। बक्के (Bakke) ने अपनी पुस्तक Citizens without work में लिखा है कि रोजगार आय की हानि परिवार को सभी प्रकार से प्रभावित करती है। ऐसी स्थिति में आर्थिक सुरक्षा के प्रति चिन्तित होना स्वाभाविक है। इसी प्रकार श्रम की उपस्थिति भी अनेक कारकों को प्रभावित करती है। व्यापारिक सम्वृद्धि के कारण श्रम बाजार की गतिशीलता बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति एक काम को छोड़कर दूसरे काम में चले जाते हैं। युवाओं में श्रम गतिशीलता अधिक पाई जाती है, जब कि प्रौढ़ों में इस गतिशीलता का अभाव पाया जाता है। श्रम बाजार में श्रमिकों अनुपस्थितता का भी महत्व होता है। श्रमिकों की अनुपस्थितता के अनेक कारण हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं-

(a) औद्योगिक प्रतिष्ठान का आकार

NOTES

(b) औद्योगिक प्रतिष्ठान से श्रमिकों के आवास की दूरी

(c) अवकाश के समय का आकर्षण

(d) श्रमिक की आयु

(e) श्रमिक की वैवाहिक स्थिति तथा

(f) श्रमिक की अन्य पारिवारिक दशाएँ

इसके अतिरिक्त श्रम का आन्तरिक संगठन भी श्रम बाजार की दशाओं को प्रभावित करता है। यदि श्रम संगठन प्रजातांत्रिक ढांचे का है, तो उसकी श्रम बाजार की दशा कुछ और होगी और यदि किसी राजनैतिक विचारधारा से सम्बन्ध होगा या उसमें निष्ठा होगी, तो श्रमिक किसी दूसरी प्रकार से ही अपने कार्यों को सम्पादित करेगा।

नगरीय समाज के श्रम बाजार की विशेषताएँ
(Characteristics of Labour market of Urban Society)

नगरीय समाज के श्रम बाजार की प्रमुख विशेषताओं को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है।

1. नगरीय श्रम बाजार की प्रकृति गतिशील होती है। उसका तात्पर्य यह है कि नगर का श्रम बाजार परिवर्तित होता रहता है।
2. नगरीय श्रम बाजार में श्रम विभाजन (Division of Labour) और विशेषीकरण (Specialization) को अधिक महत्व दिया जाता है।
3. यह विशेषीकरण आयु (Age) लिंग (Sex) और कुशलता (Skill) पर आधारित होता है।
4. नगरीय श्रम बाजार का उत्पादन अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है।
5. नगरीय श्रम बाजार आधुनिक (Modern) होता है। यही कारण है कि उसमें विविधता पाई जाती है।
6. नगरीय श्रम बाजार में पैसा अधिक मिलता है, तथा इसमें भविष्य की संभावनाएँ भी अधिक रहती है। अर्थात इसमें सुरक्षा का तंत्र भी सम्मिलित होता है।
7. नगरीय श्रम बाजार में श्रमिकों की स्वतंत्रता, उनके संरक्षण और उनके अधिकारों को भी अधिक महत्व दिया जाता है।
8. नगरीय श्रमबाजार में कुशलता अधिक होती है। तथा इस कुशलता के नवीनीकरण के लिए निरन्तर प्रयास किए जाते हैं।
9. नगरीय श्रम बाजार के औजार (Tools) भी आधुनिक होते हैं तथा इसमें मशीनीकरण (Mechanization) का प्रभाव अधिक रहता है।
10. नगरीय श्रम बाजार पूरी तरह मुद्रा (Money) पर आधारित होता है।
11. नगरीय श्रम बाजार में शोषण (Exploitation) की संभावना कम होती है।
12. अन्त में नगरीय श्रम बाजार की प्रकृति निरन्तर परिवर्तनशील रहती है।

प्रौद्योगिकी
(Technology)

सामाजिक परिवर्तन के कारकों में प्रौद्योगिकीय कारक सबसे महत्वपूर्ण है। आज समाज में जो तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं, इन परिवर्तनों के मूल में प्रौद्योगिकीय कारक ही हैं।

प्रौद्योगिकी शब्द अंग्रेजी के 'टेक्नोलॉजी' (Technology) का हिन्दी रूपान्तर है। टेक्नोलॉजी अंग्रेजी के शब्द 'टेकनिक' (Technique) से बना है। 'टेकनिक' का अर्थ होता है तरीका, पद्धति या विधि। सामान्य लोग प्रौद्योगिकी का अर्थ यन्त्र (Tool) से लगाते हैं, किन्तु यह सही नहीं है। प्रौद्योगिकी यन्त्र नहीं है।

उपकरण वे वस्तुएँ हैं जिनका प्रयोग मनुष्य अपनी शक्ति द्वारा करता है, जैसे हथौड़ा, आरी आदि।

यन्त्र का निर्माण कई उपकरणों की सहायता से किया जाता है और यन्त्र का संचालन मशीन द्वारा होता है, जैसे कारखानों में काम करने वाली मशीन।

प्रौद्योगिकी वह ज्ञान है, जिसके द्वारा उपकरण या यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, 'मोटर' प्रौद्योगिकी नहीं है। प्रौद्योगिकी तो वह ज्ञान है, जिसके द्वारा मोटर चलाई जाती है।

प्रौद्योगिकी की परिभाषाएँ
(Definitions of Technology)

NOTES

विभिन्न विद्वानों ने प्रौद्योगिकी की जो परिभाषाएँ दी हैं, वह निम्नलिखित हैं-

(1) **कार्ल मार्क्स**-"प्रौद्योगिकी प्रकृति के साथ मनुष्य के व्यवहार करने का प्रकार और उत्पादन की उस प्रक्रिया को व्यक्त करती है जिससे वह अपना जीवन पालता है और इस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों के बनाने का प्रकार तथा उनसे उत्पन्न होने वाले प्रयत्नों के प्रकार को व्यक्त करता है।"

(2) **मेरिल**-"प्रौद्योगिकी मानव के व्यावहारिक उद्देश्य के लिये विज्ञान का प्रयोग है।"

(3) **प्रो. सरन**-"किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रत्यक्ष तथा उच्च श्रेणी के साधनों की व्यवस्था को प्रौद्योगिकी कहते हैं।"[3]

संक्षेप में, "प्रौद्योगिकी की परिभाषा उस ज्ञान के रूप में की जा सकती है जिसके द्वारा उपकरण या यन्त्रों का प्रयोग करके मानव अपनी सुख-समृद्धि में वृद्धि करता है।"

प्रौद्योगिकी की विशेषताएँ
(Characteristics of Technology)

ऊपर जो परिभाषाएँ दी गई हैं, इनके आधार पर प्रौद्योगिकी की अग्रलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

(a) प्रौद्योगिकी का सम्बन्ध ज्ञान से है, (b) यह ज्ञान व्यवस्थित होता है, (c) इस व्यवस्थित ज्ञान के आधार पर मशीनों का संचालन किया जाता है।

प्रौद्योगिकीय आविष्कार (Technological Invention)- प्रौद्योगिकी का अर्थ ज्ञान से है और आविष्कार का अर्थ नई खोज से है। प्रौद्योगिकी का अर्थ है नवीन ज्ञान की खोज। **ऑगबर्न और निमकॉफ** (Ogburn and Nimkoff) ने "*A Handbook of Sociology*" नामक पुस्तक में रेडियो के आविष्कार के 150 प्रभाव बताये हैं। इनमें से अनेक प्रभाव तो प्रत्यक्ष है और अनेक अप्रत्यक्ष। विभिन्न संस्थाओं, विचारों, सामाजिक नियमों, रहन-सहन, मनोरंजन और यातायात तथा सन्देशवाहकों पर रेडियो का प्रभाव पड़ा है। **ऑगबर्न** और **निमकॉफ** ने अपनी पुस्तक में रेडियो के प्रभाव को 10 प्रमुख भागों में बाँटा है, जो निम्न हैं-

(a) **एकरूपता और प्रसारण पर** (On Uniformity and Diffusion)-

(i) समान उत्तेजना प्राप्त होने के कारण लोगों में समानता की वृद्धि हुई,

(ii) संस्कृति में जो क्षेत्रीय अन्तर अधिक था, उसमें कमी हुई,

(iii) नगरीय कला और संगीत का गाँवों में पहुँचना सम्भव हो गया,

(iv) सामाजिक और आर्थिक वर्गों के बीच की दूरी कम हुई,

(v) वे प्रदेश जो अगम्य थे, संसार के अन्य भागों के सम्पर्क में आये,

(vi) वह वर्ग जो अशिक्षित था, उसके लिए संसार का नया द्वार खुल गया,

(vii) सांस्कृतिक प्रसार में वृद्धि हुई।

(b) **मनोरंजन पर** (On Recreation)-

(i) रेडियो की प्राप्ति से मनोरंजन के साधनों में वृद्धि हुई,

(ii) संगीत को समझने और उससे आनन्द प्राप्त करने में वृद्धि हुई,

(iii) वे गीत जो पुराने हो गये थे उनकी पुनरावृत्ति सम्भव हो सकी,

(iv) संगीत की राष्ट्रीय प्रकृति अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति में परिवर्तित हो गई,

NOTES

(v) उन व्यक्तियों के लिये मनोरंजन सम्भव हो गया,जो शारीरिक और मानसिक दृष्टि से अपंग थे।

(vi) यात्रा में मोटर, रेलगाड़ी, जहाज, वायुयान में भी मनोरंजन सम्भव हो गया।

(c) **परिवहन एवं यातायात पर** (On Transport)-

(i) वे जहाज जो समुद्र में संकट में फँस जाते हैं, सहायता की माँग कर सकते हैं,

(ii) वायुयान अधिक सुरक्षा से उतर सकते हैं,

(iii) ऋतु परिवर्तन से सम्बन्धित सूचनाएँ जहाजों और वायुयानों को सावधान कर सकती हैं,

(iv) जहाजों और वायुयानों के बीच सम्पर्क सम्भव हो गया,

(v) जहाजों और वायुयानों पर यात्रियों को सूचनाएँ प्राप्त हो सकती हैं,

(d) **शिक्षा पर** (On Education)-

(i) प्रौढ़ शिक्षा के प्रचार और प्रसार में सहायता मिली,

(ii) शिक्षा संस्थाएँ रेडियो के माध्यम से अपने पाठ्यक्रम का प्रसारण कर सकती हैं,

(iii) भाषा प्रशिक्षण में उपयोगी है,

(iv) स्वास्थ्य आन्दोलन में उन्नति हुई,

(v) सम-सामयिक और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों पर लोगों के ज्ञान में वृद्धि हुई,

(vi) गृह पत्नियों, कृषकों, बच्चों आदि में शिक्षा और ज्ञान का प्रसार हुआ।

(e) **धर्म पर** (On Religion)-

(i) पादरियों और धर्माचार्यों के भाषणों का प्रसार हो सकता है,

(ii) बिना पादरियों के गिरजाघरों का चलाना सम्भव हो गया,

(iii) धार्मिक ज्ञान का प्रचार सम्भव हो सका।

(f) **उद्योग और व्यापार पर** (On Industry and Business)-

(i) ग्रामोफोन की बिक्री कम हो गई,

(ii) तार की कीमत कम हो गई,

(iii) जहाँ तार लगाना सम्भव नहीं है, वहाँ बेतार के तार द्वारा संचार सम्भव हो सका,

(iv) रेडियो कलाकारों का जन्म हुआ,

(v) होटल और निवास-गृहों में रेडियो का होना प्राय: अनिवार्य-सा हो गया,

(vi) रेडियो द्वारा विज्ञापन सम्भव हो सका, अत: व्यापार-व्यवसाय में वृद्धि हुई,

(vii) नई पत्रिकाओं की वृद्धि हुई,

(vii) बिजली की खपत में वृद्धि हुई।

(g) **व्यवसायों पर** (On Occupations)-

(i) नये व्यवसायों का उदय हुआ, जैसे-रेडियो से सम्बन्धित व्यवसाय,

(ii) नृत्य व्यवसाय में वृद्धि हुई।

(h) **सरकार एवं राजनीति पर** (On Government and Politics)-

(i) रेडियो सेन्सर का काम सरकार के लिए बढ़ा,

(ii) भाषण और प्रचार में सुविधा हुई,

(iii) राजनीतिक नेता और अधिकारी जनता तक सरलता से पहुँच सके,

(iv) नई राजनीतिक समस्याओं का जन्म हुआ,

(v) दूसरे देशों की सरकारें भी जनता तक अपने विचार और सन्देश भेज सकने में सफल हुईं,

(vi) शीत युद्ध (Cold War) का नया रूप विकसित हुआ।

(i) **दूसरे आविष्कारों को प्रोत्साहन** (Encouragement to other Inventions)-

(i) टेलीविजन के आविष्कार को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ,

(ii) चलचित्रों में कुशलता की वृद्धि हुई,

(iii) दूध को रेडियो-लहरों द्वारा ताजा रखा जाना सम्भव हुआ,

(iv) घड़ियाँ रेडियो द्वारा मिलाई जा सकती हैं,

(j) **मिश्रित** (Miscellaneous)-

(i) लोग घर पर अधिक रहते हैं।

प्रौद्योगिकी कारक और सामाजिक परिवर्तन
(Technological Factors and Social Change)

इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार भी कहा जा सकता है, सामाजिक जीवन पर प्रौद्योगिकीय कारकों का प्रभाव। प्रौद्योगिकीय तत्वों ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया है। जिन क्षेत्रों में उसका प्रभाव सबसे अधिक पड़ा है, इन्हें निम्नांकित भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) **सामाजिक जीवन पर प्रभाव-**

प्रौद्योगिकी तत्वों ने निम्न प्रकार से सामाजिक जीवन को प्रभावित किया है-

(a) **सामुदायिक जीवन का ह्रास-** प्रौद्योगिकी के कारण नवीन ज्ञान का आविष्कार हुआ। इस नवीन ज्ञान के कारण नये-नये उद्योग- धन्धों का विकास हुआ। इन उद्योगों में अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता हुई। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या का एक स्थान पर केन्द्रीकरण होने लगा। जनसंख्या की वृद्धि में विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों ने योग दिया। व्यक्तियों की आवश्यकताएँ बढ़ीं जिनकी पूर्ति करना समुदाय के लिए असम्भव हो गया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि समुदाय के लोगों के बीच से 'हम की भावना' समाप्त हो गई।

(b) **व्यक्तिवाद की भावना का विकास-** सामुदायिक भावना के ह्रास का परिणाम व्यक्तिवाद की भावना के विकास के रूप में हुआ। धीरे-धीरे पारिवारिक और सामुदायिक प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। धन के आधार पर व्यक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। व्यक्ति के गुणों और योग्यता को महत्व दिया जाने लगा। सीमित साधनों के लिए व्यक्तियों में होड़ लग गई और प्रतिस्पर्द्धा की भावना का विकास हुआ। धीरे-धीरे सामूहिकता की भावना का लोप होता गया और व्यक्तिवाद की भावना का विकास होता गया।

(c) **सामाजिक मूल्यों के प्रभाव में कमी-** सामाजिक मूल्य समाज के वे प्रतिमान होते हैं जिनको सामने रखकर कोई भी समाज जीवन की गतिविधियाँ संचालित करता है। इन मूल्यों का समाज में अत्यन्त सम्मान होता है। जनसंख्या की वृद्धि और विविधता के साथ ज्ञान में वृद्धि और विविधता का विकास होता है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों के प्रभाव में कमी आती है।

(d) **सामाजिक नियन्त्रण में कमी-** सामाजिक मूल्यों के आधार पर समाज अपने सदस्यों पर नियन्त्रण रखता है। इन नियन्त्रणों के पीछे कानून नहीं होता, बल्कि समाज के मूल्य, प्रथाएँ, परम्पराएँ, धर्म और आदर्श होते हैं। समाज के मूल्यों में कमी आती है, समाज के सदस्य इन मूल्यों का पालन नहीं करते हैं, ऐसी स्थिति में सामाजिक नियन्त्रण शिथिल हो जाता है।

(e) **गन्दी बस्तियों का विकास-** प्रौद्योगिकी औद्योगीकरण को जन्म देती है। औद्योगीकरण से जनसंख्या एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती है। जनसंख्या के एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जाने से आवास की समस्या उत्पन्न होती है, क्योंकि जिस गति से जनसंख्या बढ़ती है, उस गति से मकानों का निर्माण नहीं होता है। इसका परिणाम यह होता है कि गन्दी बस्तियों का विकास होता है। इन बस्तियों में भयानक गन्दगी छायी रहती है। यह प्रकाश, धूप और शुद्ध हवा का अभाव रहता है। इनमें रहने वाले व्यक्ति शारीरिक और मानसिक बीमारियों से ग्रस्त रहते हैं।

NOTES

NOTES

(f) **पुरुषों की अधिकता**- औद्योगिक केन्द्रों में स्त्रियों की तुलना में निम्न कारणों से पुरुष अधिक होते हैं-

(i) आवास की समस्या के कारण श्रमिक अपने परिवार को अपने साथ नहीं रख पाते हैं,

(ii) स्त्रियों की तुलना में पुरुषों को मजदूरी शीघ्रता से मिल जाती है अत: पुरुष नगरों की ओर अधिक उन्मुख हो जाते हैं,

(iii) स्त्रियों की तुलना में पुरुष नौकरी की तलाश में भी नगरों में अधिक जाते हैं।

इसका प्रभाव यह होता है कि नगरों में नैतिक स्तर गिर जाता है। पारिवारिक जीवन के अभाव में अनेक प्रकार के व्याभिचारों को बढ़ावा मिला है। 12 घण्टे कठिन परिश्रम के बाद जब मजदूर घर लौटते हैं तो उन्हें पारिवारिक मनोरंजन नहीं मिलता। इस कारण वे वेश्यावृत्ति, मद्यपान और जुआ का सहारा लेते हैं।

(g) **विभिन्न वर्गों का विकास**- प्रौद्योगिकी का प्रभाव सामाजिक संरचना पर भी पड़ता है। इससे परम्परागत वर्गों का नाश और नवीन वर्गों का विकास होता है। आज जाति, धर्म और परम्परा के आधार पर वर्गों का निर्माण नहीं होता। आज के वर्ग आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा के होते हैं जिनमें जन्म का महत्व कम रहता है और कर्म को प्राथमिकता दी जाती है, उदाहरण के लिए, पूँजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग, नेता और वकील वर्ग आदि।

(h) **जाति-प्रथा का घटता प्रभाव**- जाति का आधार जन्मगत विशेषताएँ हैं। प्रौद्योगिकी का आधार कर्मगत विशेषताएँ हैं- वहाँ जाति का कोई स्थान नहीं है। जाति उस व्यक्ति के व्यवसाय बँटे हुए हैं और इनमें परिवर्तन सम्भव नहीं है। नगरों में जाति का प्रभाव कम होता जा रहा है और इसका स्थान वर्ग लेता जा रहा है। जाति के प्रभाव को कम करने वाले तत्वों में निम्न महत्वपूर्ण हैं-होटल और रेस्तराँ, सिनेमा, व्यवसाय, शिक्षा, फैशन, आर्थिक प्रतिष्ठा आदि। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि आज का मानव अत्यधिक व्यस्त है, साथ ही वह सभी व्यक्तियों से सम्पर्क भी स्थापित करना चाहता है। इन कारणों से भी जाति के बन्धन ढीले पड़ते जा रहे हैं।

(i) **सामाजिक विघटन**- प्रौद्योगिकी ने समाज के ढाँचे को बुरी तरह प्रभावित किया है और उसमें परिवर्तन ला दिया है। मशीनों के आविष्कार से नागरिक जनसंख्या में वृद्धि हुई है। जनसंख्या में वृद्धि होने से अनेक सामाजिक समस्याओं का उदय हुआ है। निवास की समस्या, गन्दी बस्तियों की समस्या, सामाजिक और पारिवारिक नियन्त्रण का शिथिल पड़ जाना, स्वस्थ मनोरंजन का अभाव आदि। इन सभी सामाजिक समस्याओं ने सामाजिक विघटन को जन्म दिया है और इसी का परिणाम है कि आज नगरों में अपराध, आत्महत्या, वैश्यावृत्ति, जुआ, तलाक आदि सामाजिक विघटन के विभिन्न रूप पाये जाते हैं।

(j) **सामाजिक सम्बन्धों में वृद्धि**- प्रौद्योगिकी के कारण सामाजिक सम्बन्धों में वृद्धि हुई है। अभी तक समुदाय आत्म-निर्भर थे, अत: व्यक्ति परिवार और समुदाय से ही सम्बन्धित रहता था। औद्योगीकरण से उसकी आवश्यकताएँ और समस्याएँ बढ़ गई हैं जिनकी वह अकेले पूर्ति नहीं कर सकता है। आज व्यक्ति को अनेक व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है।

(2) **पारिवारिक जीवन पर प्रभाव**-

प्रौद्योगिकी ने पारिवारिक जीवन को प्रभावित किया है। इससे परिवार के स्वरूप और कार्यों में अन्तर आया है। प्रौद्योगिकी के प्रमुख पारिवारिक प्रभाव निम्न हैं-

(a) **संयुक्त परिवार का विघटन**- कृषि अर्थ-व्यवस्था में संयुक्त परिवारों का विकास होता है क्योंकि कृषि कार्यों के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, किन्तु मशीनों के आविष्कार के परिणामस्वरूप बड़े-बड़े उद्योगों का जन्म हुआ है। व्यक्ति खेती छोड़कर कारखानों की ओर जाने लगे और इसका परिणाम यह हुआ कि संयुक्त परिवार धीरे-धीरे समाप्त होने लगे। निवास की समस्या तथा अन्य समस्याओं के कारण शहरों में संयुक्त परिवार का रहना असम्भव हो गया।

(b) **परिवार के आकार में परिवर्तन**- संयुक्त परिवारों के विघटन के अतिरिक्त प्रौद्योगिकी ने परिवार के आकार को भी प्रभावित किया है। पहले परिवार का आकार बड़ा होता था जिस औरत के जितने अधिक बच्चे होते थे, वह उतनी ही अधिक भाग्यशाली समझी जाती थी। आज का युग बच्चों के बारे में कहता है- दो या तीन बस···। इसके अतिरिक्त, आज परिवार के सम्मुख अनेक सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ हैं, ऐसा देखा जाता है कि जिसके कम बच्चे हैं वह अधिक सुखी है। इन सभी कारणों से परिवार का आकार छोटा होता जा रहा है।

(c) **पारिवारिक मूल्यों में परिवर्तन-** प्रौद्योगिकी ने परिवार के परम्परागत मूल्यों को परिवर्तित कर दिया है, आज परिवार के मूल्यों का कोई महत्व नहीं है। प्रौद्योगिकी से पूर्व व्यक्ति का पद और मूल्यों का निर्धारण परिवार के आधार पर होता था। परिवार के आधार पर उसे इज्जत और प्रतिष्ठा मिलती थी। आज परिवार की प्रतिष्ठा का कोई स्थान नहीं है। इसके अतिरिक्त, परिवार के धार्मिक और नैतिक मूल्य भी बदल गये हैं।

(d) **पारिवारिक नियंत्रण में कमी-** परिवार कोई कारखाना नहीं है जिसे नियमों के आधार पर चलाया जाता हो। परिवार तो अनुशासन और स्नेह के कठोर बन्धन पर चलता है। पिता और माता का स्नेह उनके बच्चों को अनुशासन में रखता था। पति और पत्नी का स्नेह पारिवारिक जीवन को अधिक सुखी और उन्नतिशील बनाता था, किन्तु प्रौद्योगिकी ने इस पारिवारिक नियन्त्रण को समाप्त कर दिया है। माता-पिता इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें अपने बच्चों को नियन्त्रण रखने की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं होता है, वे अपने बच्चों को स्नेह नहीं दे पाते हैं। इस कारण से आज पारिवारिक नियन्त्रण समाप्त होता जा रहा है।

(e) **स्त्रियों की स्थिति में सुधार-** मशीनों के कारण स्त्रियों के कार्यों में कमी आयी है और परिवार का वजन हल्का हो गया है। खाना बनाने, बर्तन साफ करने, कपड़ा धोने, इस्त्री करने आदि की मशीनों के कारण उन्हें पर्याप्त समय मिल जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि वे शिक्षा और व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश करने लगी हैं। शिक्षा के प्रसार से उनमें जागरूकता की भावना का विकास हुआ है और नौकरियों में हिस्सा बँटाने से वे असहाय भी नहीं रह गई हैं। अब वे आर्थिक क्षेत्र में पुरुषों का मुकाबला करने लगी हैं तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं, उनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार हो गया है। इस सुधार एवं परिवर्तन का कारण प्रौद्योगिकी ही है।

(f) **विवाह के स्वरूप में परिवर्तन-** प्रौद्योगिकी ने विवाह के स्वरूप को भी परिवर्तित कर दिया है। पहले विवाह धार्मिक (Sacramental) हुआ करते थे, आज विवाह अनुबन्ध या समझौता (Contract) मात्र रह गये हैं। पहले विवाह माता-पिता द्वारा तय किये जाते थे, आज प्रेम विवाहों की संख्या में वृद्धि हो रही है। प्रौद्योगिकी से पूर्व बाल-विवाह, जातीय-विवाह प्रचलित थे, किन्तु प्रौद्योगिकी के कारण आज देर से विवाह होने लगे हैं या विवाह की आयु अधिक हो गई है, अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं, प्रेम विवाहों की संख्या में वृद्धि हुई है और तलाकों की संख्या बढ़ रही है। व्यक्तिवादी और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के कारण आज युवक-युवतियाँ तो विवाह करना ही नहीं चाहते हैं, उनके अनुसार विवाह करना बेकार है।

(g) **विवाह के उद्देश्य में परिवर्तन-** प्रौद्योगिकी ने विवाह के स्वरूपों में ही परिवर्तन नहीं किया है अपितु विवाह के उद्देश्य भी बदल गये हैं। परम्परागत भारतीय समाज-व्यवस्था में विवाह के तीन उद्देश्य थे-धर्म, पुत्र और रति। विवाह इसलिए किया जाता था कि ऐसा करना धर्म था, पुत्र प्राप्त करना धर्म था, ताकि मानव को नष्ट होने से बचाया जा सके। प्रजाति की निरन्तरता को निरन्तर बनाये रखा जा सके और इसे प्राप्त करने का साधन रति (Sexual Satisfaction) था। आज विवाह का यह आधार बदल गया है, यह परिवार नियोजन का युग है। आज तो विवाह का उद्देश्य रति (Sexual Satisfaction) मात्र रह गया है। पुत्र प्राप्त करना तो निश्चित रूप से दुर्भाग्यपूर्ण है और इसीलिए आज तलाकों (Divorce) की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(3) **राजनीतिक जीवन पर प्रभाव-**

प्रौद्योगिकी शक्तियाँ राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित करती हैं। प्रौद्योगिकी के राजनीतिक जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव निम्न हैं-

(a) **राज्य के स्वरूप पर प्रभाव-** प्रौद्योगिकी प्रभाव राज्यों के स्वरूप और शक्तियों पर पड़ता है। प्रौद्योगिकी ने नये आविष्कारों को जन्म दिया है। युद्ध के नवीन अस्त्र-शस्त्र सामने आ गये हैं। इसका प्रभाव यह हुआ कि राज्यों की शक्तियाँ असीमित हो गई हैं। औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) सबसे पहले इंग्लैण्ड में हुई। इसीलिए इंग्लैण्ड ने इन्हीं शक्तियों के आधार पर सम्पूर्ण विश्व पर अपना आधिपत्य स्थापित किया।

(b) **सैनिक जीवन पर-** प्रौद्योगिकी ने सैनिक जीवन में भी परिवर्तन ला दिया है। प्राचीन समय में लड़ाई के लिए रथ, हाथी, घोड़ा और पैदल-चार प्रकार के सैनिक होते थे। वायु सेना और जल सेना को कोई महत्व प्राप्त नहीं था, किन्तु आज का सैनिक जीवन बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का है। वायु सेना और जल सेना का महत्व बढ़ गया है। रथ, हाथी और घोड़े पूरी तरह समाप्त हो गये हैं। आज सेना की शक्ति सिपाहियों से नहीं आँकी जाती है, बल्कि सेना की शक्ति नये अस्त्र-शस्त्र हैं।

NOTES

(c) **राज्य के कार्यों और उत्तरदायित्वों पर-** आज राज्यों का कार्य मात्र बाहरी आक्रमणों से रक्षा और आन्तरिक शक्ति और सुरक्षा नहीं रह गया है। आज राज्य प्रत्येक कार्य करता है। वह बच्चों के उत्पन्न होने और न होने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है, बच्चों के पालन और शिक्षा की व्यवस्था करता है, स्वास्थ्य और पौष्टिक भोजन की व्यवस्था करता है, यातायात और संचार के साधनों की व्यवस्था करता है, व्यक्ति को दुर्घटनाओं का हर्जाना देता है। इस प्रकार आज राज्य के कार्यों और उत्तरदायित्वों में वृद्धि हुई है।

(d) **श्रमिक संघ-** प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्क्स ने अपने घोषणा-पत्र में कहा था, 'दुनिया के मजदूरों, एक हो जाओ।' प्रौद्योगिकी के कारण औद्योगीकरण का जन्म हुआ। इन औद्योगिक समस्याओं के कारण से श्रमिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। जब श्रमिकों में जागरूकता आई और उन्होंने अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर आवाज उठाई तो श्रमिक संघ (Trade Union) का जन्म हुआ।

(e) **समाजवाद-** 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति के कारण नवीन उद्योगों का विकास हुआ। कारखाना पद्धति की स्थापना हुई जहाँ हजारों मजदूर एक साथ काम कर सकें। इसका परिणाम यह हुआ कि इनमें संगठन की भावना का विकास हुआ। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने समाजवाद और साम्यवाद का नारा लगाया। साम्यवाद में उत्पादन और वितरण के सभी साधनों पर राज्य या समाज का स्वामित्व होता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति नाम की वस्तु शेष नहीं रहती है। सभी सम्पत्ति समाज की हो जाती है। इस प्रकार की भावनाओं का विकास पूँजीवादी व्यवस्था की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। आज दुनिया के अधिकांश देशों का नारा समाजवाद बनता जा रहा है।

(4) आर्थिक जीवन पर प्रभाव-

प्रौद्योगिकी ने आर्थिक जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया है। आर्थिक जीवन के जिन पहलुओं पर प्रौद्योगिकी का प्रभाव सबसे अधिक पड़ा है, वे निम्न हैं-

(a) **ग्रामीण उद्योग-धन्धों का नाश-** भारतीय ग्राम कृषि-प्रधान हैं। कृषि सहायता के लिए अन्य उद्योगों का गाँवों में विकास हुआ था, जैसे-कपड़े बुनना, बढ़ईगिरी, लुहारगिरी आदि। प्रौद्योगिकी ने नवीन मशीनों को जन्म दिया। मशीनों की उन्नति के साथ ही ग्रामीण उद्योग-धन्धे समाप्त होने लगे। इसका कारण यह था कि एक तो हाथ से बनाई गई वस्तु मशीन से बनी वस्तु की तुलना में महँगी पड़ती थी और दूसरे यह उतनी अच्छी भी नहीं बन पाती थी, जितनी अच्छी कि मशीन से बनती थी। इस कारण ग्रामीण उद्योग-धन्धे समाप्त हो गये।

(b) **अवकाश की समस्या-** प्रौद्योगिकी का दूसरा प्रभाव अवकाश की समस्या है। कृषि अर्थव्यवस्था में लोगों के पास पर्याप्त समय रहता था किन्तु कारखाना पद्धति के उदय के साथ ही अवकाश भी समाप्त हो गया। आज मनुष्य मशीनों का दास बनता जा रहा है। उसके पास परिवार के सदस्यों के लिए, सम्बन्धियों के लिए और स्वस्थ मनोरंजन के लिए अवकाश ही नहीं है। इस अवकाश के अभाव में उसका व्यक्तिगत विघटन तो होता ही है, इसका प्रभाव परिवार, समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन पर भी पड़ता है।

(c) **कारखाना पद्धति का उदय-** जब विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन मशीनों द्वारा होने लगा तो कारखाना पद्धति का उदय हुआ। अभी तक बढ़ई और लुहार अपने-अपने घर में ही आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करते थे। नयी मशीनों के आविष्कार से इन आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन उसी स्थान पर सम्भव हो सका जहाँ मशीनें हों। मशीनें एक स्थान से दूसरे स्थान को हस्तांतरित नहीं की जाती हैं। सुविधा के लिए उन्हें एक ही स्थान पर स्थापित करना पड़ता है। इस कारण एक ही स्थान पर कारखाने स्थापित हुए। इन कारखानों में हजारों व्यक्ति एक साथ काम कर सकते हैं।

(d) **व्यापार की उन्नति-** कारखाना-पद्धति के उदय का परिणाम यह हुआ कि पर्याप्त मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन एक ही स्थान पर होने लगा। साथ ही इन वस्तुओं के मूल्य भी हाथ से बनी वस्तुओं से कम होने लगे। कारखाना पद्धति द्वारा एक ही स्थान में इतना अधिक माल तैयार हो जाता है कि वहाँ उसकी खपत ही नहीं हो पाती है। साथ ही जहाँ उस वस्तु का उत्पादन होता है उसकी आवश्यकता अधिक नहीं रहती है। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि जहाँ माल अधिक है, वहाँ से उस स्थान को माल ले जाया जाये जहाँ उस पर वस्तु की कमी है। अनेक व्यक्ति इसके अतिरिक्त माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर सस्ती कीमत पर ले जाने का प्रयास करते हैं। अनेक व्यक्तियों में इसके लिए प्रतिस्पर्द्धा होती है और व्यापार तथा वाणिज्य की उन्नति होती है।

(e) **पूँजीवाद का विकास-** किसी व्यापार और व्यवसाय के लिए अर्थशास्त्र के अनुसार पाँच बातें आवश्यक होती हैं-भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन और साहस। इन पाँचों के योग से ही उत्पादन सम्भव हो सकता है। प्रौद्योगिकी

के कारण से उत्पादन हाथ से न होकर मशीनों से होता है। मशीनें प्राय: महँगी होती हैं और सभी व्यक्ति इन्हें खरीद नहीं सकते हैं। इसके अतिरिक्त, उत्पादन के लिए कुशल संगठन और साहस की भी आवश्यकता होती है। कुशल संगठन और साहस भी सभी व्यक्तियों में नहीं होता है। फिर सभी व्यक्ति बराबर श्रम नहीं कर सकते हैं। इसका आशय यह हुआ कि कुछ ही व्यक्ति बड़े-बड़े व्यवसाय कर सकते हैं, कारखानों की स्थापना और संचालन कर सकते हैं। मार्क्स के अनुसार अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त (Theory of Surplus Value) के कारण पूँजीवाद (Capitalism) का विकास होता है। इसके अनुसार किसी वस्तु के उत्पादन में लागत 100 रूपये है वह वस्तु 150 रूपये में बेची जाती है। 50 रूपया अतिरिक्त मूल्य है जो धीरे-धीरे पूँजीपति की जेब में बढ़ता जाता है। इससे पूँजीवाद का विकास होता है।

(f) **वर्ग संघर्ष-** प्रौद्योगिकी ने दो विरोधी वर्गों को जन्म दिया-पूँजीपति और श्रमिक वर्ग। इन दोनों वर्गों के स्वार्थ अलग-अलग हैं। पूँजीपति चाहता है कि श्रमिकों को कम से कम मजदूरी देकर उनसे अधिक से अधिक उत्पादन कराया जाये, जबकि श्रमिक वर्ग अपने काम की पूरी मजदूरी लेना चाहता है। इस कारण संघर्ष होता है। इसके अतिरिक्त, दूसरा संघर्ष लाभ (Profit) को लेकर होता है। पूँजीपति यह कहता है कि उसने भूमि, पूँजी, साहस और संगठन लगाया है अत: लाभ उसे मिलना चाहिये, जबकि श्रमिक वर्ग यह कहता है कि यह लाभ उसके परिश्रम से हुआ है, अत: श्रमिकों में बाँट दिया जाना चाहिये, इन दोनों विरोधी स्वार्थों के कारण वर्ग-संघर्ष होता है। इस वर्ग-संघर्ष की बीमारी अन्य वर्गों में भी तेजी से फैलती जा रही है।

(g) **श्रम विभाजन और विशेषीकरण-** ग्रामीण उद्योग-धन्धों में एक ही व्यक्ति एक वस्तु के उत्पादन से सम्बन्धित सभी काम करता था। बढ़ई हल बनाने का काम करता था और वह हल के सभी हिस्से बनाता था, किन्तु प्रौद्योगिकी के कारण से श्रम का विभाजन हो गया है। एक व्यक्ति सभी प्रकार के कार्य नहीं कर सकता, अत: सम्पूर्ण कार्य को अलग-अलग भागों में बाँट दिया जाता है और एक व्यक्ति एक ही प्रकार का काम करता है। उदाहरण के लिए, कागज बनाने के कारखाने में कुछ व्यक्ति बाँस से सम्बन्धित काम करते हैं, कुछ व्यक्ति बाँस की लुग्दी से सम्बन्धित काम करते हैं, कुछ व्यक्ति कागज काटने से सम्बन्धित काम करते है, कुछ व्यक्ति कागज के बण्डल से सम्बन्धित काम करते हैं, कुछ व्यक्ति इन्हें बाहर भेजने से सम्बन्धित काम करते हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकृति के काम करते हैं। जब ये ही व्यक्ति अनेक वर्षों तक एक ही प्रकार का काम करते हैं तो उन्हें इस काम के विशेष ज्ञान के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रौद्योगिकी के कारण आज सम्पूर्ण समाज में श्रम का विभाजन हो गया है और इस विभाजन का आधार उनका विशेष ज्ञान है।

(h) **उच्च जीवन स्तर-** प्रौद्योगिकी के कारण व्यापार और व्यवसाय विशाल पैमाने पर होते हैं। इससे लोगों की आर्थिक दशा में सुधार होता है। सम्पन्नता के कारण लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है। प्रौद्योगिकी के कारण जीवन के लिए आवश्यक वस्तु सरलता से प्राप्त की जा सकती है।

(i) **बेरोजगारी-** प्रौद्योगिकी ने मशीन युग का सूत्रपात किया। उत्पादन मशीनों द्वारा होने लगा। जितना उत्पादन 100 व्यक्ति मिलकर 30 दिनों के अथक परिश्रम से करते थे उतना उत्पादन मशीन के द्वारा 1 व्यक्ति एक ही दिन में कर सकता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि-

(i) कारखानों से मजदूरों की छँटनी होने लगी है और

(ii) नये मजदूरों को भरती नहीं किया जाता है। इन दोनों का परिणाम यह हुआ कि बेरोजगार लोगों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

(j) **आर्थिक झगड़े, बीमारियाँ और दुर्घटनाएँ-** प्रौद्योगिकों के कारण आर्थिक झगड़ों का सूत्रपात हुआ। समाजवादी युग में भी दो वर्ग थे, किन्तु झगड़ा इतना उग्र नहीं था जितना आज के युग में है। आज का श्रमिक अत्यन्त संगठित, शिक्षित और ज्ञानी हो गया है। वह अपने शोषण को बर्दाश्त नहीं करता है, परिणाम यह होता है कि इसके लिए वह संगठित होकर संघर्ष करता है। पूँजीपति उनकी माँगों की पूर्ति शीघ्रता से नहीं करते हैं अत: ये झगड़े उग्र रूप धारण कर लेते हैं।

इसके अतिरिक्त, अनेक उद्योग ऐसे हैं जिनके द्वारा बीमारियाँ फैलती हैं और दुर्घटनाएँ होती हैं। उदाहरण के लिए, कोयला खदान पर जहाँ एक ओर तो श्रमिकों का स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित होता है तथा दूसरी ओर खदानों के गिर जाने से सैकड़ों मजदूरों की मृत्यु हो जाती है, इनकी स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं और बच्चे अनाथ हो जाते हैं। इसके कारण अनेक सामाजिक समस्याओं का जन्म होता है। अनेक मशीनें ऐसी होती हैं जिनके चलाने से भी दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं।

NOTES

(k) **सामाजिक गतिशीलता**- प्रौद्योगिकी के कारण सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) में वृद्धि हुई है। जहाँ पर उद्योगों की स्थापना होती है, वहाँ देश के अनेक भागों से आकर व्यक्ति निवास करते हैं, फिर यदि उद्योग असफल हो जाते हैं तो वहाँ के निवासी उस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनकी प्रकृति अस्थायी होती है इसके कारण भी गतिशीलता में वृद्धि होती है, जैसे- शक्कर और जूट की मिलें आदि।

(l) **सन्देशवाहन के साधनों का विकास**- प्रौद्योगिकी के कारण बड़े-बड़े व्यवसायों और उद्योगों की स्थापना हुई। व्यापार के विकास के लिये यह आवश्यक हुआ कि व्यापारियों के बीच सम्बन्ध स्थापित हों। इसकी पूर्ति के लिए डाक, तार, रेडियो, पत्र, टेलीफोन और समाचारपत्रों का विकास हुआ जिनके द्वारा घर बैठे दूर-दूर के समाचार प्राप्त हो सकें। इससे विभिन्न संस्कृतियाँ सम्पर्क में आईं।

(m) **आवागमन के साधनों का विकास**- प्रौद्योगिकी द्वारा बड़े पैमाने पर माल का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। माल की खपत के लिये यह आवश्यक हुआ कि माल उस स्थान पर ले जाया जाये, जहाँ उसकी कमी है या जहाँ उसका उत्पादन नहीं होता है। माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए सड़कों, रेलमार्गों, जलमार्गों और वायुमार्गों का विकास हुआ जिनके द्वारा माल एक स्थान से दूसरे स्थान को सुगमता से ले जाया जाने लगा। इससे व्यापार का विकास तो हुआ ही साथ ही सांस्कृतिक सम्बन्धों में भी वृद्धि हुई। लोग एक-दूसरे की संस्कृति के निकट आये।

(n) **कृषि की उन्नति**- प्रौद्योगिकी के कारण कृषि की उन्नति हुई। मशीनों का आविष्कार हुआ, रासायनिक खादों और कीटों की रोक-थाम करके खेती के उत्पादन में वृद्धि की गई। उत्तम बीजों का प्रयोग हुआ। ट्रेक्टरों ने हल और बैलों का स्थान ले लिया। बिजली के पम्पों और नहरों द्वारा सिंचाई होने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि कम परिश्रम द्वारा अधिक उत्पादन सम्भव हो सका। खेती में मशीनों का प्रयोग होने से अनेक कृषि श्रमिक बेरोजगार हो गये। वे नौकरी की तलाश में शहरों की ओर जाने लगे। इससे ग्रामीण जनसंख्या कम होने लगी और नगरों की जनसंख्या केन्द्रित होने लगी।

(o) **प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि**- प्रौद्योगिकी ने व्यापार में प्रतिस्पर्द्धा का सूत्रपात किया। ग्रामोद्योगों में प्रतिस्पर्द्धा का अभाव था, क्योंकि व्यापार और व्यवसाय वंश-परम्परा के अनुसार होते थे। प्रौद्योगिकी ने व्यापार, व्यवसाय, बाजार और उत्पादन में प्रतिस्पर्धा का सूत्रपात किया। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा अपनी चरम सीमा पर है। प्रतिस्पर्द्धा के कारण बड़े-बड़े नगरों, बाजारों का विकास हुआ। आर्थिक सम्बन्धों में इतनी वृद्धि हुई कि आज व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति के हो गये हैं। प्रतियोगिता के कारण ही उद्योगों का केन्द्रीकरण हुआ, गन्दी बस्तियों का विकास हुआ, सामाजिक समस्याओं का जन्म हुआ और समाज के विघटन को गति मिली।

परीक्षाओं के लिये महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. नगरीकरण क्या है? इसका प्रमुख लक्षण लिखिए।
   What is urbanization ? Write its chief characteristics.
2. भारत में नगरों के विकास पर संक्षिप्त निबंध लिखिए।
   Write short essay on evolution of cities in India.
3. नगरीयकरण जीवन की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए।
   Discuss the chief characteristics of urban life.
4. नगरीकरण के सामाजिक परिणामों को डालिए।
   Enunciate the social consequences of urbanization.
5. श्रम बाजार की अवधारणा को समझाइए।
   Explain the concept of labour market.
6. नगरीय समाज में श्रम बाजार पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on labour market in urban society.

7. सामाजिक परिवर्तन के प्रौद्योगिकीय कारकों की विवेचना कीजिए। आप कहाँ तक इन कारकों को सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी मानते हैं?
Discuss the technological factors of social change. How far do you regard these factors as responsible for social change?

8. ऑगबर्न के प्रौद्योगिकीय कारक और सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त को समझाइए।
Explain Ogburn's theory of technological factors and social change.

9. मार्क्स और वेबलेन के सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्तों की विवेचना कीजिए।
Discuss Marx and Veblen's theories of social change.

10. सामाजिक परिवर्तन की प्रौद्योगिकी की भूमिका को समझाइए।
Explain the role of technology in social change.

(B) लघुउत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
Write a short note on the following–

1. प्रौद्योगिकी।
Technology.

2. आविष्कार।
Invention.

3. प्रौद्योगिक प्रगति।
Technological progress.

4. श्रम बाजार।
Labour Market.

5. नगरीकरण।
Urbanization.

6. नगरों के उद्विकास के कारक।
Factors of evolution of cities.

7. नगरीय विकास एवं आर्थिक विकास।
Urban development and economic develolpment.

(C) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

1. किसने कहा "इस प्रकार हम उस बस्ती को नगर कहेंगे, जहाँ के अधिकांश निवासी कृषि कार्यों के अतिरिक्त उद्योगों में व्यस्त हों।"
(अ) सोमवाई (ब) डिकिसस (स) बर्गेल (द) फ्रीडमैन

2. किसने कहा- "ग्रामीण जनसंख्या को नागरिक क्षेत्रों में बदलने को हम नगरीकरण कहेंगे।"
(अ) बर्गेल (ब) डेविस (स) एण्डरसन (द) थामसन

3. 1901 की जनगणना के अनुसार भारत के किस शहर को महानगर का दर्जा प्राप्त था?
(अ) बम्बई (ब) चेन्नई (स) कलकत्ता (द) दिल्ली

4. 2001 की जनगणना के अनुसार देश में कितने प्रतिशत जनसंख्या नगरों में निवास करती हैं।
(अ) 26.78 (ब) 27.78 (स) 28.78 (द) 29.78

5. 2001 की जनगणना के अनुसार देश का सबसे अधिक जनसंख्या वाला नगर है
(अ) दिल्ली (ब) कलकत्ता (स) बम्बई (द) कानपुर

उत्तर- 1. (स), 2. (अ), 3. (स), 4. (स), 5. (स)

●●●

NOTES

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

14

नगरीय जीवन में परिवर्तन-जाति, वर्ग एवं शक्ति के परिवर्तित आयाम

(CHANGE IN URBAN LIFE- CHANGING DIMENSIONS OF CASTE, CLASS AND POWER)

गति और जीवन परस्पर अन्त: सम्बन्धित हैं। जीवन और समाज गतिशील है, परिवर्तनशील है, परिवर्तन ही प्रकृति है। प्रकृति का नियम ही परिवर्तन है, समाज इसी विशाल प्रकृति का एक अंग है। आज ऐसा कोई भी समाज नहीं है, जो परिवर्तन से प्रभावित न हो। सामाजिक परिवर्तन जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, वह परिवर्तन है, जिसका संबंध समाज और सामाजिक व्यवस्था में होने वाले परिवर्तन से है। परिवर्तन समाज और जीवन का आधार है। यदि दिन और रात के रूप में परिवर्तन नहीं होता, ऋतुओं में परिवर्तन नहीं होता, जीवन में बचपन, यौवनावस्था, बुढ़ापा और मृत्यु के रूप में परिवर्तन नहीं होता तो क्या समाज सुचारु रूप से चल सकता था? किंतु ऐसा नहीं होता। इसका कारण यह है कि परिवर्तन प्रकृति का आधारभूत नियम है।

समाज नदी के प्रवाह की भाँति गतिमान है, यह निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। जिस प्रकार नदी, जल उद्‌गम स्थान से निकलकर कहीं भी किसी भी अवस्था में नहीं रुकता है, ठीक उसी प्रकार समाज भी सतत् परिवर्तित होता रहता है। यदि समाज में परिवर्तन न होते तो आज मानव समाज आखेट अवस्था में ही पड़ा रहता। यह सामाजिक परिवर्तन ही है, जिसके कारण आज हम आखेट अवस्था में नहीं है, साथ ही आज जिस अवस्था में है, भविष्य में भी उसी में नहीं रहेंगे अपितु और आगे जायेंगे।

सामाजिक परिवर्तन का अर्थ
(Meaning of Social Change)

सामाजिक परिवर्तन दो शब्दों से मिलकर बना है - सामाजिक और परिवर्तन। संक्षेप में, सामाजिक का अर्थ है- समाज से सम्बन्धित, मैकाइवर ने समाज की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "समाज सामाजिक संबंधों का जाल है।" मैकाइवर ने समाज को वृहद अर्थों में प्रयुक्त किया है। समाज के निर्माण में अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं का हाथ होता है और इन्हीं के योग से समाज निर्मित होता है। सामाजिक सन्तुलन बना रहे, इसलिए सामाजिक संस्थाओं की एक व्यवस्था होती है। ये संस्थाएँ और व्यवस्था अन्त: सम्बन्धित तथा अन्त:निर्भर होती हैं।

परिवर्तन "भिन्नता" (Variation) की ओर संकेत करता है। यह भिन्नता किसी भी प्रकार की और किसी भी क्षेत्र में हो सकती है। उदाहरण के लिए चौड़ी मोहरी के पेन्ट का स्थान सँकरी मोहरी के द्वारा लिया जाना भी परिवर्तन है। लिखने में कलम का स्थान पेन के द्वारा लिया जाना परिवर्तन है। जूतों की बनावट में परिवर्तन हो जाये, साइकिल के मॉडल में अन्तर आ जाये, ये सब परिवर्तन हैं। प्रत्येक वस्तु का एक स्वरूप होता है। इस स्वरूप का निर्माण तत्कालीन परिस्थितियाँ करती हैं। यदि समय, परिस्थितियों और आवश्यकता में परिवर्तन हो जाने से उस वस्तु का स्वरूप परिवर्तित हो जाये, तो इसे भी परिवर्तन कहा जायेगा। **फिचर** ने सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा करते हुए लिखा है कि "परिवर्तन को संक्षेप में पहले की अवस्था या अस्तित्व के प्रकरण में अन्तर के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। "

परिवर्तन की विशेषताएँ
(Characteristics of Change)

परिवर्तन की भी विवेचना और परिभाषा दी गई है, इसके अनुसार परिवर्तन की निम्न विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं -

(1) परिवर्तन का तात्पर्य भिन्नता से है।

(2) यह भिन्नता आकार-प्रकार से सम्बन्धित हो सकती है।

(3) इस भिन्नता में वस्तु का पिछला आकार परिवर्तित हो जाता है।

(4) वस्तु का नया आकार पिछले को बदल देता है, यह परिवर्तन है।

NOTES

सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा
(Definition of Social Change)

विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन का प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार सामाजिक ढाँचे में होने वाला परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है। कुछ विद्वानों ने सामाजिक सम्बन्धों और सामाजिक व्यवहार में होने वाले परिवर्तन को ही सामाजिक परिवर्तन माना है। कुछ भी हो "सामाजिक परिवर्तन समाज से सम्बन्धित है। समाज सामाजिक संगठन, सामाजिक सम्बन्ध और सामाजिक ढाँचे का सम्मिलित रूप है। समाज के इन भागों में जब परिवर्तन होता है, तो इसे ही सामाजिक परिवर्तन कहा जाता है। " विभिन्न समाजशास्त्रियों ने सामाजिक परिवर्तन की जो परिभाषाएँ दी हैं, वे निम्नलिखित हैं-

(1) **डेविस-** "सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते हैं, जो सामाजिक संगठन अर्थात् समाज की संरचना और कार्यों से घटित होता है।"

(2) **गिन्सबर्ग-** "सामाजिक परिवर्तन से मैं सामाजिक संरचना में परिवर्तन समझता हूँ।"

(3) **गिलिन और गिलिन-** "सामाजिक परिवर्तन जीवन की स्वीकृत विधियों में परिवर्तन को कहते हैं।"

(4) **जेन्सन-** "व्यक्तियों के कार्य करने और विचार करने के तरीकों में होने वाले संशोधनों को सामाजिक परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। "

(5) **गर्थ तथा मिल्स-** "सामाजिक परिवर्तन के द्वारा हम उसे संकेत कहते हैं, जो समय के कार्यों, संस्थाओं अथवा उन व्यवस्थाओं में होता है जो "सामाजिक संरचना एवं उनकी उत्पत्ति" विकास एवं पतन से सम्बन्धित होता है।"

(6) **जॉन्सन-** "अपने मौलिक अर्थ में, सामाजिक परिवर्तन का तात्पर्य समाज की संरचना में होने वाले परिवर्तन से है।"

(7) **डासन और गेटिस-** "सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है, क्योंकि समस्त संस्कृति, अपनी उत्पत्ति, अर्थ और प्रयोग में सामाजिक है।"

(8) **मैकाइवर और पेज-** "समाजशास्त्री होने के नाते हमारी विशेष रुचि प्रत्येक रूप में सामाजिक सम्बन्ध से है। केवल इन सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं।"

"सामाजिक परिवर्तन की परिभाषा उन अन्तरों (Variations) और रूपान्तरों (Modifications) के रूप में की जा सकती है, जो सामाजिक संरचना में घटित होते हैं। "

सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएँ
(Characteristics of Social Change)

समाज परिवर्तनशील है, किन्तु परिवर्तन की गति में अन्तर होता है। कुछ समाज शीघ्रता से परिवर्तित हो जाते हैं, जबकि कुछ समाजों को परिवर्तित होने में पर्याप्त समय लगता है। यह सामाजिक मूल्य और मान्यताओं पर निर्भर करता है कि समाज किस गति से परिवर्तित होगा। उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर सामाजिक परिवर्तन की निम्नलिखित विशेषताएँ निर्धारित की जा सकती हैं-

(1) परिवर्तन समाज की प्रकृति में है अर्थात् यह समाज का मौलिक तत्व है। जिस प्रकार दिन के बाद रात्रि और रात्रि के बाद दिन का होना अनिवार्य है, उसी प्रकार समाज के विभिन्न पहलुओं में परिवर्तन होना अनिवार्य है। यदि समाज में परिवर्तन अनिवार्य रूप से न होता तो हम आज भी उसी आखेट अवस्था में होते, जहाँ सदियों पहले थे। व्यक्ति की आवश्यकताएँ, उसके विचार और उसकी मनोवृत्तियों में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है और इन्हीं के परिणामस्वरूप समाज में परिवर्तन होते रहते हैं।

NOTES

(2) परिवर्तन अनिवार्य होते हुए भी इसकी गति भिन्न होती है अर्थात् एक समाज में परिवर्तन की गति तेज हो सकती है, जबकि दूसरे समाज में परिवर्तन की गति धीमी हो सकती है, किंतु ऐसा कोई भी समाज नहीं है, जहाँ परिवर्तन ही न होते हों। किस समाज में परिवर्तन किस गति से होंगे, यह उस समाज के संगठन और ढाँचे पर निर्भर करता है।

(3) सामाजिक परिवर्तन की गति चाहे जो भी हो, सार्वभौमिक है। प्रत्येक देश, काल और परिस्थितियों में इसका अस्तित्व रहा है और भविष्य में भी रहेगा। चाहे आदिम समाज हो या आधुनिक सभ्य समाज हो या असभ्य, शिक्षित समाज हो या अशिक्षित, परिवर्तन सभी जगह पाया जाता है। यह प्रकृति का नियम है।

(4) सामाजिक परिवर्तन का सीधा सम्बन्ध समाज में आने वाले अन्तर से है, अर्थात् जो कल रहता है, वह आज नहीं रहता है। सामाजिक संगठन, परिवार, विवाह, प्रथा-परम्परा, रीति-रिवाज और रहन-सहन में आने वाले अन्तर (भिन्नता) का नाम ही सामाजिक परिवर्तन है।

(5) सामाजिक परिवर्तन अनिश्चित होता है। दूसरे शब्दों में, इसकी भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है। परिवर्तन कब, किस दिशा में होगा? इसके क्या परिणाम होंगे? इसका कौन-सा रूप अधिक प्रभावपूर्ण होगा? इस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि परिवर्तन निरन्तर और अनिश्चित होता है।

(6) परिवर्तन चक्रिक या एकरेखीय हो सकता है। चक्रिक का तात्पर्य उस प्रकार के परिवर्तन से है जिनकी पुनरावृत्ति हो सकती है। जैसे पेंट की मोहरी-पहले चौड़ी, फिर सँकरी और फिर चौड़ी। इसके बाद पुन: सँकरी। एकरेखीय परिवर्तन वह है जिसकी पुनरावृत्ति नहीं होती है। जैसे- कुदाली से खेती (Hoe Culture) करना, फिर हल-बैल-ट्रेक्टर से खेती करने के बाद फर कुदाली से खेती करना सम्भव नहीं है।

(7) सामाजिक परिवर्तन को नापा नहीं जा सकता है। परिवर्तन भौतिक-अभौतिक दोनों वस्तुओं में होता है। भौतिक वस्तुओं में होने वाले परिवर्तन को नापा जा सकता है, किंतु अभौतिक वस्तुओं में जो परिवर्तन होता है उसे नहीं नापा जा सकता है। व्यक्ति के आचार-विचार, रीति-रिवाज, मनोवृत्तियों आदि में किस मात्रा में परिवर्तन हो गया है, इसकी माप सम्भव नहीं है।

(8) सामाजिक परिवर्तन समाज को संगठित भी कर सकता है और विघटित भी। यह परिवर्तन की प्रकृति पर निर्भर करता है। इसीलिए यह समाज को उन्नति और अवनति दोनों की ओर ले जा सकता है।

सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन
(Social Change and Cultural Change)

प्राय: विद्वान सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन में कोई अंतर नहीं मानते हैं। **डासन** और **गेटिस** ने सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन में कोई भेद नहीं किया है। उन्होंने लिखा है कि "सांस्कृतिक परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन है, क्योंकि सम्पूर्ण संस्कृति अपनी उत्पत्ति, अर्थ और प्रयोग में सामाजिक है।" किन्तु सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन से भिन्न है। **मेरिल** ने ठीक ही लिखा है कि "सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन एक ही वस्तु नहीं है।" **मैकाइवर** ने तो बिल्कुल ही स्पष्ट कहा है कि सिर्फ उस परिवर्तन को सामाजिक परिवर्तन कहेंगे, जो सामाजिक सम्बन्धों में होता है, क्योंकि मैकाइवर मानते हैं कि समाज सामाजिक सम्बन्धों का जाल है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन में निम्न भेद हैं-

(1) संस्कृति शब्द अत्यन्त ही व्यापक है। इसमें सभी भौतिक वस्तुओं का समन्वय होता है। सांस्कृतिक परिवर्तन का सम्बन्ध इन्हीं भौतिक और अभौतिक वस्तुओं के परिवर्तन से है। सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध सामाजिक ढाँचे या सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन से है।

(2) संस्कृति में होने वाले परिवर्तन को देखा जा सकता है, जबकि सामाजिक परिवर्तन को नहीं देखा जा सकता, इसका सिर्फ अनुभव किया जा सकता है।

(3) सामाजिक परिवर्तन सांस्कृतिक परिवर्तन का एक भाग है, क्योंकि संस्कृति के अन्तर्गत जीवन के सम्पूर्ण कला-विन्यास सम्मिलित रहते हैं।

(4) जहाँ तक प्रभाव का प्रश्न है, सांस्कृतिक परिवर्तनों का जीवन पर न्यून मात्रा में प्रभाव पड़ता है, जबकि सामाजिक परिवर्तन जीवन को अधिक प्रभावशाली ढंग से प्रभावित करता है।

सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित कुछ शब्द

NOTES

सामाजिक परिवर्तन सामाजिक सम्बन्धों में आने वाले अन्तर की ओर संकेत करता है। यह अन्तर गुण और मात्रा से सम्बन्धित हो सकता है। अत: इनके नाम भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। वे शब्द जिनका सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्ध है या सामाजिक परिवर्तन की ओर संकेत करते हैं, उन्हें निम्न भागों में बाँट सकते हैं-

(1) **सामाजिक प्रक्रिया** (Social Processes),

(2) **सामाजिक उद्विकास** (Social Evolution),

(3) **सामाजिक प्रगति** (Social Progress)।

(4) **वृद्धि** (Growth) - वृद्धि की निम्न विशेषताएँ है -

(a) परिवर्तन होना चाहिए, परिवर्तन के अभाव में वृद्धि की कल्पना सम्भव नहीं है।

(b) यह परिवर्तन निरन्तर होना चाहिए।

(c) इस परिवर्तन की दिशाएँ निश्चित होनी चाहिए अर्थात एक ही दिशा में परिवर्तन हो।

(d) यह परिवर्तन मात्रा (Quantity) और आकार (Size) पर आधारित होना चाहिए अर्थात् मात्रा और आकार में वृद्धि होनी चाहिए।

(5) **क्रान्ति** (Revolution) - इसमें निम्न तत्व हैं -

(a) क्रान्ति का सम्बन्ध भी परिवर्तन से है।

(b) यह परिवर्तन अचानक होता है और इसकी गति अत्यन्त ही तीव्र रहती है।

(c) क्रान्ति नया जीवन और समाज व्यवस्था को जन्म देती है।

(d) क्रान्ति, उग्र और हिंसात्मक दोनों प्रकार की हो सकती है।

(6) **सुधार** - (Reformation) - इसमें अग्र तत्व सम्मिलित होते हैं -

(a) परिवर्तन सुधार के मूल में है।

(b) यह परिवर्तन विशिष्ट लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये किया जाता है अर्थात सुधार के पीछे उद्देश्य होना चाहिए।

(c) इसमें समाज की कमियों व कुरीतियों को समाप्त किया जाता है और नवीन आदर्श स्थापित किये जाते हैं।

(d) सुधार से सम्बन्धित जितने भी परिवर्तन किये जाते हैं, उनमें गुण-दोष का विचार रखा जाता है।

(e) सुधार का सम्बन्ध मात्रा (Quantity) और गुण (Quality) दोनों से होता है।

(7) **सामाजिक नियोजन** (Social Planning) - इसमें निम्न तत्व पाये जाते हैं-

(a) नियोजन के लिये परिवर्तन का होना अनिवार्य है।

(b) नियोजन क्रमबद्ध और योजनाबद्ध सुधार है।

(c) इसका एक निश्चित उद्देश्य होता है।

(d) इसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये निश्चित दिशा में पूर्ण योजना के अनुसार जो कार्य किया जाता है, उसे नियोजन कहते हैं।

(e) नियोजन से सम्बन्धित परिवर्तन शांत तरीकों से किया जाता है।

(f) नियोजन का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक कुरीतियों को समाप्त कर समाज का बहुमुखी विकास करना है।

सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या मैकाइवर और पेज ने तालिका द्वारा प्रस्तुत की है। उसी तालिका से सहारा लेकर सामाजिक परिवर्तन से सम्बन्धित शब्दों की निम्न व्याख्या की जा सकती है-

NOTES

(1) Change (परिवर्तन) = Variation

(2) Social Change (सामाजिक परिवर्तन) = Variation in Social Relations

(3) Social Process (सामाजिक प्रक्रिया) =
- (i) Change (परिवर्तन)
- (ii) Continuity (निरन्तरता)
- (iii) (Direction) (दिशा)

(4) Growth (वृद्धि) =
- (i) Change (परिवर्तन)
- (ii) Direction (दिशा)
- (iii) Relating to
  - (A) Quantity (मात्रा)
  - (B) Size (आकार) से सम्बन्धित

(5) Evolution (उद्विकास) =
- Change (परिवर्तन)
- (ii) Direction (दिशा)
- (iii) Qualitative (गुणात्मक)
- (iv) Structural & Functional differentiation (ढाँचे और कार्यों में अन्तर)

(6) Progress (प्रगति) =
- (i) Change (परिवर्तन)
- (ii) Direction (दिशा)
- (iii) Evoluation (मूल्यांकन)

परिवर्तन के तीन प्रतिमान
(Three Patterns of Change)

समाज में अनेक संस्थाओं का योग है। इन संस्थाओं और सम्बन्धित व्यक्तियों में समायोजन और संघर्ष होता रहता है। आज समाज में इतने तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं कि परिवर्तन की दिशा का अनुमान लगाना प्राय: असम्भव सा हो गया है। **मैकाइवर** और **पेज** ने परिवर्तन के तीन प्रतिमान बताये हैं -

(1) **औद्योगिक प्रतिमान** - मैकाइवर और पेज के अनुसार परिवर्तन के तीन प्रतिमानों में पहला प्रतिमान औद्योगिक है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें परिवर्तन की दिशा सदैव ऊपर रहती है। आज जो आविष्कार हुआ है, कल उससे अच्छा ही आविष्कार होगा। जैसे - बैलगाड़ी, साइकिल और मोटर कार। मोटरकार में भी 1996 का मॉडल 1990 के मॉडल से अच्छा ही होगा।

(2) **उत्थान और पतन** - औद्योगिकी परिवर्तन में उत्थान ही उत्थान होता है। विकास की रेखा निरंतर ऊपर की ओर ही जाती है, किंतु दूसरे प्रतिमान में परिवर्तन की रेखा ऊपर जाती है, किंतु फिर नीचे भी गिर जाती है। परिवर्तन में चरम विकास के बाद अवनति भी हो जाती है। उदाहरण के लिए आर्थिक क्रियाओं और जनसंख्या में जिस गति के बाद उन्नति होती है उसी गति से अवनति भी हो जाती है।

(3) **चक्रिक परिवर्तन** - मैकाइवर और पेज के अनुसार परिवर्तन का तीसरा प्रतिमान चक्रिक है। अर्थात् यह परिवर्तन चक्र की भाँति होता है। जिस प्रकार घड़ी की एक सुई चलती हुई बारह तक पहुँचती है और पुन: एक पर पहुँच जाती है, उसी प्रकार इस परिवर्तन में चक्र की गति की भाँति परिवर्तन होते हैं। उदाहरण के लिए, पेन्ट चौड़ी मोहरी से सँकरी मोहरी के बने फिर सँकरी के बाद चौड़ी मोहरी के इस प्रकार के परिवर्तन फैशन और संस्कृतियों के होते हैं।

नगरीय जीवन में परिवर्तन
(Change in Urban Life)

आज नगरीय जीवन में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। इसका कारण यह है कि नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र है। नगरीकरण की प्रक्रिया के कारण जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में परिवर्तन परिलक्षितज हो रहे हैं। ये परिवर्तन मुख्य रूप से दो प्रकार हैं-

(a) सकारात्मक परिवर्तन, और (b) नकरात्मक परिवर्तन

सकारात्मक परिवर्तन जहाँ एक ओर जीवन में उपलब्धियाँ लाते हैं, वहीं दूसरी ओर नकरात्मक परिवर्तन जीवन के सामने अनेक समस्याएँ खड़ी करते हैं। इस दृष्टि से परिवर्तन चाहे सकारात्मक हो या नकारात्मक, इसके नगरीय जीवन प्रभावित होता है। इस दृष्टि से नगरीय जीवन में जो परिवर्तन हो रहे हैं, संक्षेप में वे इस प्रकार हैं-

NOTES

(1) **सामाजिक जीवन में परिवर्तन -**

नगरीय तत्वों ने निम्न प्रकार से सामाजिक जीवन को प्रभावित किया है-

(a) **सामुदायिक जीवन में परिवर्तन -** नगरीकरण के करण नवीन ज्ञान का आविष्कार हुआ। इस नवीन ज्ञान के कारण नये-नये उद्योग- धन्धों का विकास हुआ। इन उद्योगों में अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता हुई। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या का एक स्थान पर केन्द्रीकरण होने लगा। जनसंख्या की वृद्धि में विभिन्न वर्गों के व्यक्तियों ने योग दिया। व्यक्तियों की आवश्यकताएँ बढ़ीं जिनकी पूर्ति करना समुदाय के लिए असम्भव हो गया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि समुदाय के लोगों के बीच से 'हम की भावना' समाप्त हो गई।

(b) **व्यक्तिवाद की भावना का विकास -** सामुदायिक भावना के ह्रास का परिणाम व्यक्तिवाद की भावना के विकास के रूप में हुआ। धीरे-धीरे पारिवारिक और सामुदायिक प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। धन के आधार पर व्यक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। व्यक्ति के गुणों और योग्यता को महत्व दिया जाने लगा। सीमित साधनों के लिए व्यक्तियों में होड़ लग गई और प्रतिस्पर्द्धा की भावना का विकास हुआ। धीरे-धीरे सामूहिकता की भावना का लोप होता गया और व्यक्तिवाद की भावना का विकास होता गया।

(c) **सामाजिक मूल्यों के प्रभाव में परिवर्तन -** सामाजिक मूल्य समाज के वे प्रतिमान होते हैं जिनको सामने रखकर कोई भी समाज जीवन की गतिविधियाँ संचालित करता है। इन मूल्यों का समाज में अत्यन्त सम्मान होता है। जनसंख्या की वृद्धि और विविधता के साथ ज्ञान में वृद्धि और विविधता का विकास होता है, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक मूल्यों के प्रभाव में कमी आती है।

(d) **सामाजिक नियन्त्रण में परिवर्तन -** सामाजिक मूल्यों के आधार पर समाज अपने सदस्यों पर नियन्त्रण रखता है। इन नियन्त्रणों के पीछे कानून नहीं होता, बल्कि समाज के मूल्य, प्रथाएँ, परम्पराएँ, धर्म और आदर्श होते हैं। समाज के मूल्यों में कमी आती है, समाज के सदस्य इन मूल्यों का पालन नहीं करते हैं, ऐसी स्थिति में सामाजिक नियन्त्रण शिथिल हो जाता है।

(e) **गन्दी बस्तियों का विकास -** नगरीकरण औद्योगीकरण को जन्म देती है। औद्योगीकरण से जनसंख्या एक स्थान पर केन्द्रित हो जाती है। जनसंख्या के एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जाने से आवास की समस्या उत्पन्न होती है, क्योंकि जिस गति से जनसंख्या बढ़ती है, उस गति से मकानों का निर्माण नहीं होता है। इसका परिणाम यह होता है कि गन्दी बस्तियों का विकास होता है। इन बस्तियों में भयानक गन्दगी छायी रहती है। यह प्रकाश, धूप और शुद्ध हवा का अभाव रहता है। इनमें रहने वाले व्यक्ति शारीरिक और मानसिक बीमारियों से ग्रस्त रहते हैं।

(f) **पुरुषों की अधिकता** - नगरीय केन्द्रों में स्त्रियों की तुलना में निम्न कारणों से पुरुष अधिक होते हैं-

(i) आवास की समस्या के कारण श्रमिक अपने परिवार को अपने साथ नहीं रख पाते हैं,

(ii) स्त्रियों की तुलना में पुरुषों को मजदूरी शीघ्रता से मिल जाती है अत: पुरुष नगरों की ओर अधिक उन्मुख हो जाते हैं,

(iii) स्त्रियों की तुलना में पुरुष नौकरी की तलाश में भी नगरों में अधिक जाते हैं।

इसका प्रभाव यह होता है कि नगरों में नैतिक स्तर गिर जाता है। पारिवारिक जीवन के अभाव में अनेक प्रकार के व्यभिचारों को बढ़ावा मिता है। 12 घण्टे कठिन परिश्रम के बाद जब मजदूर घर लौटते हैं तो उन्हें पारिवारिक मनोरंजन नहीं मिलता। इस कारण वे वेश्यावृत्ति, मद्यपान और जुआ का सहारा लेते हैं।

(g) **विभिन्न वर्गों का विकास** - नगरीकरण का प्रभाव सामाजिक संरचना पर भी पड़ता है। इससे परम्परागत वर्गों का नाश और नवीन वर्गों का विकास होता है। आज जाति, धर्म और परम्परा के आधार पर वर्गों का निर्माण नहीं होता। आज के वर्ग आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा के होते हैं जिनमें जन्म का महत्व कम रहता है और कर्म को प्राथमिकता दी जाती है, उदाहरण के लिए, पूँजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग, नेता और वकील वर्ग आदि।

NOTES

(h) **जाति-प्रथा का घटता प्रभाव** - जाति का आधार जन्मगत विशेषताएँ हैं। नगरीकरण का आधार कर्मगत विशेषताएँ हैं- वहाँ जाति का कोई स्थान नहीं है। जाति में व्यक्ति के व्यवसाय बँटे हुए हैं और इनमें परिवर्तन सम्भव नहीं है। नगरों में जाति का प्रभाव कम होता जा रहा है और इसका स्थान वर्ग लेता जा रहा है। जाति के प्रभाव को कम करने वाले तत्वों में निम्न महत्वपूर्ण हैं-होटल और रेस्तराँ, सिनेमा, व्यवसाय, शिक्षा, फैशन, आर्थिक प्रतिष्ठा आदि। इससे भी महतवपूर्ण बात यह है कि आज का मानव अत्यधिक व्यस्त है, साथ ही वह सभी व्यक्तियों से सम्पर्क भी स्थापित करना चाहता है। इन कारणों से भी जाति के बन्धन ढीले पड़ते जा रहे हैं।

(i) **सामाजिक विघटन** - नगरीकरण ने समाज के ढाँचे को बुरी तरह प्रभावित किया है और उसमें परिवर्तन ला दिया है। मशीनों के आविष्कार से नागरिक जनसंख्या में वृद्धि हुई है। जनसंख्या में वृद्धि होने से अनेक सामाजिक समस्याओं का उदय हुआ है। निवास की समस्या, गन्दी बस्तियों की समस्या, सामाजिक और पारिवारिक नियन्त्रण का शिथिल पड़ जाना, स्वस्थ मनोरंजन का अभाव आदि। इन सभी सामाजिक समस्याओं ने सामाजिक विघटन को जन्म दिया है और इसी का परिणाम है कि आज नगरों में अपराध, आत्महत्या, वैश्यावृत्ति, जुआ, तलाक आदि सामाजिक विघटन के विभिन्न रूप पाये जाते हैं।

(j) **सामाजिक सम्बन्धों में वृद्धि** - नगरीकरण के कारण सामाजिक सम्बन्धों में वृद्धि हुई है। अभी तक समुदाय आत्म-निर्भर थे, अत: व्यक्ति परिवार और समुदाय से ही सम्बन्धित रहता था। औद्योगीकरण से उसकी आवश्यकताएँ और समस्याएँ बढ़ गई हैं जिनकी वह अकेले पूर्ति नहीं कर सकता है। आज व्यक्ति को अनेक व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है।

(2) **पारिवारिक जीवन में परिवर्तन** - नगरीकरण ने पारिवारिक जीवन को परिवर्तित किया है। इससे परिवार के स्वरूप और कार्यों में अन्तर आया है।

(a) **परिवार में परिवर्तन** - कृषि अर्थ-व्यवस्था में संयुक्त परिवारों का विकास होता है क्योंकि कृषि कार्यों के लिए अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, किन्तु मशीनों के आविष्कार के परिणामस्वरूप बड़े-बड़े उद्योगों का जन्म हुआ है। व्यक्ति खेती छोड़कर कारखानों की ओर जाने लगे और इसका परिणाम यह हुआ कि संयुक्त परिवार धीरे-धीरे समाप्त होने लगे। निवास की समस्या तथा अन्य समस्याओं के कारण शहरों में संयुक्त परिवार का रहना असम्भव हो गया।

(b) **परिवार के आकार में परिवर्तन** - संयुक्त परिवारों के विघटन के अतिरिक्त नगरीकरण ने परिवार के आकार को भी प्रभावित किया है। पहले परिवार का आकार बड़ा होता था जिस औरत के जितने अधिक बच्चे होते थे, वह उतनी ही अधिक भाग्यशाली समझी जाती थी। आज का युग बच्चों के बारे में कहता है- दो या तीन बस···। इसके अतिरिक्त, आज परिवार के सम्मुख अनेक सामाजिक और आर्थिक समस्याएँ हैं, ऐसा देखा जाता है कि जिसके कम बच्चे हैं वह अधिक सुखी है। इन सभी कारणें से परिवार का आकार छोटा होता जा रहा है।

(c) **पारिवारिक मूल्यों में परिवर्तन** - नगरीकरण ने परिवार के परम्परागत मूल्यों को परिवर्तित कर दिया है, आज परिवार के मूल्यों का कोई महत्व नहीं है। प्रौद्योगिकी से पूर्व व्यक्ति का पद और मूल्यों का निर्धारण परिवार के आधार पर होता था। परिवार के आधार पर उसे इज्जत और प्रतिष्ठा मिलती थी। आज परिवार की प्रतिष्ठा का कोई स्थान नहीं है। इसके अतिरिक्त, परिवार के धार्मिक और नैतिक मूल्य भी बदल गये हैं।

(d) **पारिवारिक नियंत्रण में परिवर्तन** - परिवार कोई कारखाना नहीं है जिसे नियमों के आधार पर चलाया जाता हो। परिवार तो अनुशासन और स्नेह के कठोर बन्धन पर चलता है। पिता और माता का स्नेह उनके बच्चों को अनुशासन में रखता था। पति और पत्नी का स्नेह पारिवारिक जीवन को अधिक सुखी और उन्नतिशील बनाता था, किन्तु नगरीकरण ने इस पारिवारिक नियन्त्रण को समाप्त कर दिया है। माता-पिता इतने व्यस्त रहते हैं कि उन्हें अपने बच्चों को नियन्त्रण रखने की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं होता है, वे अपने बच्चों को स्नेह नहीं दे पाते हैं। इस कारण से आज पारिवारिक नियन्त्रण समाप्त होता जा रहा है।

(e) **स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन** - मशीनों के कारण स्त्रियों के कार्यों में कमी आयी है और परिवार का वजन हल्का हो गया है। खाना बनाने, बर्तन साफ करने, कपड़ा धोने, इस्त्री करने आदि की मशीनों के कारण उन्हें पर्याप्त समय मिल जाता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि वे शिक्षा और व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश करने लगी हैं। शिक्षा के प्रसार से उनमें जागरूकता की भावना का विकास हुआ है और नौकरियों में हिस्सा बँटाने से वे असहाय भी नहीं रह गई हैं। अब वे आर्थिक क्षेत्र में पुरुषों का मुकाबला करने लगी हैं तथा सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में पुरुषों से पीछे नहीं हैं, उनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार हो गया है। इस सुधार एवं परिवर्तन का कारण प्रौद्योगिकी ही है।

(f) **विवाह के स्वरूप में परिवर्तन** - नगरीकरण ने विवाह के स्वरूप को भी परिवर्तित कर दिया है। पहले विवाह धार्मिक (Sacramental) हुआ करते थे, आज विवाह अनुबन्ध या समझौता (Contract) मात्र रह गये हैं। पहले विवाह माता-पिता द्वारा तय किये जाते थे, आज प्रेम विवाहों की संख्या में वृद्धि हो रही है। प्रौद्योगिकी से पूर्व बाल-विवाह, जातीय विवाह प्रचलित थे, किन्तु प्रौद्योगिकी के कारण आज देर से विवाह होने लगे हैं या विवाह की आयु अधिक हो गई है, अन्तर्जातीय विवाह होने लगे हैं, प्रेम विवाहों की संख्या में वृद्धि हुई है और तलाकों की संख्या बढ़ रही है। व्यक्तिवादी और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के कारण आज युवक-युवतियाँ तो विवाह करना ही नहीं चाहते हैं, उनके अनुसार विवाह करना बेकार है।

(g) **विवाह के उद्देश्य में परिवर्तन** - नगरीकरण ने विवाह के स्वरूपों में ही परिवर्तन नहीं किया है अपितु विवाह के उद्देश्य भी बदल गये हैं। परम्परागत भारतीय समाज-व्यवस्था में विवाह के तीन उद्देश्य थे-धर्म, पुत्र और रति। विवाह इसलिए किया जाता था कि ऐसा करना धर्म था, पुत्र प्राप्त करना धर्म था, ताकि मानव को नष्ट होने से बचाया जा सके। प्रजाति की निरन्तरता को निरन्तर बनाये रखा जा सके और इसे प्राप्त करने का साधन रति (Sexual Satisfaction) था। आज विवाह का यह आधार बदल गया है, यह परिवार नियोजन का युग है। आज तो विवाह का उद्देश्य रति (Sexual Satisfaction) मात्र रह गया है। पुत्र प्राप्त करना तो निश्चित रूप से दुर्भाग्यपूर्ण है और इसीलिए आज तलाकों (Divorce) की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

(3) **राजनीतिक जीवन पर प्रभाव** - नगरीय शक्तियाँ राजनीतिक जीवन को भी प्रभावित करती हैं। जो निम्न हैं-

(a) **राज्य के स्वरूप पर प्रभाव** - नगरीकरण का प्रभाव राज्यों के स्वरूप और शक्तियों पर पड़ता है। नगरीकरण ने नये आविष्कारों को जन्म दिया है। युद्ध के नवीन अस्त्र-शस्त्र सामने आ गये हैं। इसका प्रभाव यह हुआ कि राज्यों की शक्तियाँ असीमित हो गई हैं। औद्योगिक क्रान्ति (Industrial Revolution) सबसे पहले इंग्लैण्ड में हुई। इसीलिए इंग्लैण्ड ने इन्हीं शक्तियों के आधार पर सम्पूर्ण विश्व पर अपना आधिपत्य स्थापित किया।

(b) **सैनिक जीवन में परिवर्तन** - नगरीकरण ने सैनिक जीवन में भी परिवर्तन ला दिया है। प्राचीन समय में लड़ाई के लिए रथ, हाथी, घोड़ा और पैदल-चार प्रकार के सैनिक होते थे। वायु सेना और जल सेना को कोई महत्व प्राप्त नहीं था, किन्तु आज का सैनिक जीवन बिल्कुल ही भिन्न प्रकार का है। वायु सेना और जल सेना का महत्व बढ़ गया है। रथ, हाथी और घोड़े पूरी तरह समाप्त हो गये हैं। आज सेना की शक्ति सिपाहियों से नहीं आँकी जाती है, बल्कि सेना की शक्ति नये अस्त्र-शस्त्र हैं।

(c) **राज्य के कार्यों और उत्तरदायित्वों में परितर्वन** - आज राज्यों का कार्य मात्र बाहरी आक्रमणों से रक्षा और आन्तरिक शक्ति और सुरक्षा नहीं रह गया है। आज राज्य प्रत्येक कार्य करता है। वह बच्चों के उत्पन्न होने और न होने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है, बच्चों के पालन और शिक्षा की व्यवस्था करता है, स्वास्थ्य और पौष्टिक भोजन की व्यवस्था करता है, यातायात और संचार के साधनों की व्यवस्था करता है, व्यक्ति को दुर्घटनाओं का हर्जाना देता है। इस प्रकार आज राज्य के कार्यों और उत्तरदायित्वों में वृद्धि हुई है।

(d) **श्रमिक संघ** - प्रसिद्ध अर्थशास्त्री मार्क्स ने अपने घोषणा-पत्र में कहा था, 'दुनिया के मजदूरों, एक हो जाओ।' प्रौद्योगिकी के कारण औद्योगीकरण का जन्म हुआ। इन औद्योगिक समस्याओं के कारण से श्रमिक आन्दोलनों का सूत्रपात हुआ। जब श्रमिकों में जागरूकता आई और उन्होंने अपने अधिकारों के लिए संगठित होकर आवाज उठाई तो श्रमिक संघ (Trade Union) का जन्म हुआ।

(e) **समाजवाद** - 18वीं शताब्दी में औद्योगिक क्रान्ति हुई। इस क्रान्ति के कारण नवीन उद्योगों का विकास हुआ। कारखाना पद्धति की स्थापना हुई जहाँ हजारों मजदूर एक साथ काम कर सकें। इसका परिणाम यह हुआ कि इनमें संगठन की भावना का विकास हुआ। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने समाजवाद और साम्यवाद का नारा लगाया। साम्यवाद में उत्पादन और वितरण के सभी साधनों पर राज्य या समाज का स्वामित्व होता है। व्यक्तिगत सम्पत्ति नाम की वस्तु शेष नहीं रहती है। सभी सम्पत्ति समाज की हो जाती है। इस प्रकार की भावनाओं का विकास पूँजीवादी व्यवस्था की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। आज दुनिया के अधिकांश देशों का नारा समाजवाद बनता जा रहा है।

(4) **आर्थिक जीवन में परिवर्तन**-नगरीकरण ने आर्थिक जीवन को सबसे अधिक प्रभावित किया है। आर्थिक जीवन के जिन पहलुओं पर प्रभाव सबसे अधिक पड़ा है, वे निम्न हैं-

(a) **ग्रामीण उद्योग-धन्धों का नाश**-भारतीय ग्राम कृषि-प्रधान हैं। कृषि सहायता के लिए अन्य उद्योगों का गाँवों में विकास हुआ था, जैसे-कपड़े बुनना, बढ़ईगीरी, लुहारगीरी आदि। प्रौद्योगिकी ने नवीन मशीनों को जन्म

NOTES

दिया। मशीनों की उन्नति के साथ ही ग्रामीण उद्योग-धन्धे समाप्त होने लगे। इसका कारण यह था कि एक तो हाथ से बनाई गई वस्तु मशीन से बनी वस्तु की तुलना में महँगी पड़ती थी और दूसरे यह उतनी अच्छी भी नहीं बन पाती थी, जितनी अच्छी कि मशीन से बनती थी। इस कारण ग्रामीण उद्योग-धन्धे समाप्त हो गये।

(b) **अवकाश की समस्या** - प्रौद्योगिकी का दूसरा प्रभाव अवकाश की समस्या है। कृषि अर्थव्यवस्था में लोगों के पास पर्याप्त समय रहता था किन्तु कारखाना पद्धति के उदय के साथ ही अवकाश भी समाप्त हो गया। आज मनुष्य मशीनों का दास बनता जा रहा है। उसके पास परिवार के सदस्यों के लिए, सम्बन्धियों के लिए और स्वस्थ मनोरंजन के लिए अवकाश ही नहीं है। इस अवकाश के अभाव में उसका व्यक्तिगत विघटन तो होता ही है, इसका प्रभाव परिवार, समाज, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन पर भी पड़ता है।

(c) **कारखाना पद्धति का उदय** - जब विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन मशीनों द्वारा होने लगा तो कारखाना पद्धति का उदय हुआ। अभी तक बढ़ई और लुहार अपने-अपने घर में ही आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करते थे। नयी मशीनों के आविष्कार से इन आवश्यक वस्तओं का उत्पादन उसी स्थान पर सम्भव हो सका जहाँ मशीनें हों। मशीनें एक स्थान से दूसरे स्थान को हस्तांतरित नहीं की जाती हैं। सुविधा के लिए उन्हें एक ही स्थान पर स्थापित करना पड़ता है। इस कारण एक ही स्थान पर कारखाने स्थापित हुए। इन कारखानों में हजारों व्यक्ति एक साथ काम कर सकते हैं।

(d) **व्यापार की उन्नति** - कारखाना-पद्धति के उदय का परिणाम यह हुआ कि पर्याप्त मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन एक ही स्थान पर होने लगा। साथ ही इन वस्तुओं के मूल्य भी हाथ से बनी वस्तुओं से कम होने लगे। कारखाना पद्धति द्वारा एक ही स्थान में इतना अधिक माल तैयार हो जाता है कि वहाँ उसकी खपत ही नहीं हो पाती है। साथ ही जहाँ उस वस्तु का उत्पादन होता है उसकी आवश्यकता अधिक नहीं रहती है। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि जहाँ माल अधिक है, वहाँ से उस स्थान को माल ले जाया जाये जहाँ उस पर वस्तु की कमी है। अनेक व्यक्ति इसके अतिरिक्त माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर सस्ती कीमत पर ले जाने का प्रयास करते हैं। अनेक व्यक्तियों में इसके लिए प्रतिस्पर्द्धा होती है और व्यापार तथा वाणिज्य की उन्नति होती है।

(e) **पूँजीवाद का विकास** - किसी व्यापार और व्यवसाय के लिए अर्थशास्त्र के अनुसार पाँच बातें आवश्यक होती हैं-भूमि, श्रम, पूँजी, संगठन और साहस। इन पाँचों के योग से ही उत्पादन सम्भव हो सकता है। प्रौद्योगिकी के कारण से उत्पादन हाथ से न होकर मशीनों से होता है। मशीनें प्राय: महँगी होती हैं और सभी व्यक्ति इन्हें खरीद नहीं सकते हैं। इसके अतिरिक्त, उत्पादन के लिए कुशल संगठन और साहस की भी आवश्यकता होती है। कुशल संगठन और साहस भी सभी व्यक्तियों में नहीं होता है। फिर सभी व्यक्ति बराबर श्रम नहीं कर सकते हैं। इसका आशय यह हुआ कि कुछ ही व्यक्ति बड़े-बड़े व्यवसाय कर सकते हैं, कारखानों की स्थापना और संचालन कर सकते हैं। मार्क्स के अनुसार अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त (Theory of Surplus Value) के कारण पूँजीवाद (Capitalism) का विकास होता है। इसके अनुसार किसी वस्तु के उत्पादन में लागत 100 रूपये है वह वस्तु 150 रूपये में बेची जाती है। 50 रूपया अतिरिक्त मूल्य है जो धीरे-धीरे पूँजीपति की जेब में बढ़ता जाता है। इससे पूँजीवाद का विकास होता है।

(f) **वर्ग संघर्ष** - नगरीकरण ने दो विरोधी वर्गों को जन्म दिया-पूँजीपति और श्रमिक वर्ग। इन दोनों वर्गों के स्वार्थ अलग-अलग हैं। पूँजीपति चाहता है कि श्रमिकों को कम से कम मजदूरी देकर उनसे अधिक से अधिक उत्पादन कराया जाये, जबकि श्रमिक वर्ग अपने काम की पूरी मजदूरी लेना चाहता है। इस कारण संघर्ष होता है। इसके अतिरिक्त, दूसरा संघर्ष लाभ (Profit) को लेकर होता है। पूँजीपति यह कहता है कि उसने भूमि, पूँजी, साहस और संगठन लगाया है अत: लाभ उसे मिलना चाहिये, जबकि श्रमिक वर्ग यह कहता है कि यह लाभ उसके परिश्रम से हुआ है, अत: श्रमिकों में बाँट दिया जाना चाहिये, इन दोनों विरोधी स्वार्थों के कारण वर्ग-संघर्ष होता है। इस वर्ग-संघर्ष की बीमारी अन्य वर्गों में भी तेजी से फैलती जा रही है।

(g) **श्रम विभाजन और विशेषीकरण** - ग्रामीण उद्योग-धन्धों में एक ही व्यक्ति एक वस्तु के उत्पादन से सम्बन्धित सभी काम करता था। बढ़ई हल बनाने का काम करता था और वह हल के सभी हिस्से बनाता था, किन्तु प्रौद्योगिकी के कारण से श्रम का विभाजन हो गया है। एक व्यक्ति सभी प्रकार के कार्य नहीं कर सकता, अत: सम्पूर्ण कार्य को अलग-अलग भागों में बाँट दिया जाता है और एक व्यक्ति एक ही प्रकार का काम करता है। उदाहरण के लिए, कागज बनाने के कारखाने में कुछ व्यक्ति बाँस से सम्बन्धित काम करते हैं, कुछ व्यक्ति बाँस की लुग्दी से सम्बन्धित काम करते हैं, कुछ व्यक्ति कागज काटने से सम्बन्धित काम करते हैं, कुछ व्यक्ति कागज के बण्डल से सम्बन्धित काम करते हैं, कुछ व्यक्ति इन्हें बाहर भेजने से सम्बन्धित काम करते हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्ति भिन्न-

भिन्न प्रकृति के काम करते हैं। जब ये ही व्यक्ति अनेक वर्षों तक एक ही प्रकार का काम करते हैं तो उन्हें इस काम के विशेष ज्ञान के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रौद्योगिकी के कारण आज सम्पूर्ण समाज में श्रम का विभाजन हो गया है और इस विभाजन का आधार उनका विशेष ज्ञान है।

(h) **उच्च जीवन स्तर** - नगरीकरण के कारण व्यापार और व्यवसाय विशाल पैमाने पर होते हैं। इससे लोगों की आर्थिक दशा में सुधार होता है। सम्पन्नता के कारण लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है। प्रौद्योगिकी के कारण जीवन के लिए आवश्यक वस्तु सरलता से प्राप्त की जा सकती है।

(i) **बेरोजगारी** - नगरीकरण ने मशीन युग का सूत्रपात किया। उत्पादन मशीनों द्वारा होने लगा। जितना उत्पादन 100 व्यक्ति मिलकर 30 दिनों के अथक पश्रिम से करते थे उतना उत्पादन मशीन के द्वारा एक व्यक्ति एक ही दिन में कर सकता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि-

(i) कारखानों से मजदूरों की छँटनी होने लगी है, और

(ii) नये मजदूरों को भरती नहीं किया जाता है। इन दोनों का परिणाम यह हुआ कि बेरोजगार लोगों की संख्या में वृद्धि हो रही है।

(j) **आर्थिक झगड़े, बीमारियाँ और दुर्घटनाएँ** - नगरीकरण के कारण आर्थिक झगड़ों का सूत्रात हुआ। समाजवादी युग में भी दो वर्ग थे, किन्तु झगड़ा इतना उग्र नहीं था जितना आज के युग में है। आज का श्रमिक अत्यन्त संगठित, शिक्षित और ज्ञानी हो गया है। वह अपने शोषण को बर्दाश्त नहीं करता है, परिणाम यह होता है कि इसके लिए वह संगठित होकर संघर्ष करता है। पूँजीपति उनकी माँगों की पूर्ति शीघ्रता से नहीं करते हैं अत: ये झगड़े उग्र रूप धारण कर लेते हैं।

इसके अतिरिक्त, अनेक उद्योग ऐसे हैं जिनके द्वारा बीमारियाँ फैलती हैं और दुर्घटनाएँ होती हैं। उदाहरण के लिए, कोयला खदान पर जहाँ एक ओर तो श्रमिकों का स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित होता हैं तथा दूसरी ओर खदानों के गिर जाने से सैकड़ों मजदूरों की मृत्यु हो जाती है, इनकी स्त्रियाँ विधवा हो जाती हैं और बच्चे अनाथ हो जाते हैं। इसके कारण अनेक सामाजिक समस्याओं का जन्म होता है। अनेक मशीनें ऐसी होती हैं जिनके चलाने से भी दुर्घटनाएँ हो जाया करती हैं।

(a) **सामाजिक गतिशीलता** - नगरीकरण के कारण सामाजिक गतिशीलता (Social Mobility) में वृद्धि हुई है। जहाँ पर उद्योगों की स्थापना होती है, वहाँ देश के अनेक भागों से आकर व्यक्ति निवास करते हैं, फिर यदि उद्योग असफल हो जाते हैं तो वहाँ के निवासी उस स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाते हैं। इसके अतिरिक्त, कुछ व्यवसाय ऐसे होते हैं जिनकी प्रकृति अस्थायी होती है इसके कारण भी गतिशीलता में वृद्धि होती है, जैसे- शक्कर और जूट की मिलें आदि।

(b) **सन्देशवाहन के साधनों का विकास** - नगरीकरण के कारण बड़े-बड़े व्यवसायों और उद्योगों की स्थापना हुई। व्यापार के विकास के लिये यह आवश्यक हुआ कि व्यापारियों के बीच सम्बन्ध स्थापित हों। इसकी पूर्ति के लिए डाक, तार, रेडियो, पत्र, टेलीफोन और समाचारपत्रों का विकास हुआ जिनके द्वारा घर बैठे दूर-दूर के समाचार प्राप्त हो सकें। इससे विभिन्न संस्कृतियाँ सम्पर्क में आईं।

(i) **आवागमन के साधनों का विकास** - नगरीकरण द्वारा बड़े पैमाने पर माल का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। माल की खपत के लिये यह आवश्यक हुआ कि माल उस स्थान पर ले जाया जाये, जहाँ उसकी कमी है या जहाँ उसका उत्पादन नहीं होता है। माल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए सड़कों, रेलमार्गों, जलमार्गों और वायुमार्गों का विकास हुआ जिनके द्वारा माल एक स्थान से दूसरे स्थान को सुगमता से ले जाया जाने लगा। इससे व्यापार का विकास तो हुआ ही साथ ही सांस्कृतिक सम्बन्धों में भी वृद्धि हुई। लोग एक-दूसरे की संस्कृति के निकट आये।

(ii) **कृषि की उन्नति** - नगरीकरण के कारण कृषि की उन्नति हुई। मशीनों का आविष्कार हुआ, रासायनिक खादों और कीटों की रोक-थाम करके खेती के उत्पादन में वृद्धि की गई। उत्तम बीजों का प्रयोग हुआ। ट्रेक्टरों ने हल और बैलों का स्थान ले लिया। बिजली के पम्पों और नहरों द्वारा सिंचाई होने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि कम पश्रिम द्वारा अधिक उत्पादन सम्भव हो सका। खेती में मशीनों का प्रयोग होने से अनेक कृषि श्रमिक बेरोजगार हो गये। वे नौकरी की तलाश में शहरों की ओर जाने लगे। इससे ग्रामीण जनसंख्या कम होने लगी और नगरों की जनसंख्या केन्द्रित होने लगी।

NOTES

(iii) **प्रतिस्पर्द्धा में वृद्धि** - नगरीकरण ने व्यापार में प्रतिस्पर्द्धा का सूत्रपात किया। ग्रामोद्योगों में प्रतिस्पर्द्धा का अभाव था, क्योंकि व्यापार और व्यवसाय वंश-परम्परा के अनुसार होते थे। प्रौद्योगिकी ने व्यापार, व्यवसाय, बाजार और उत्पादन में प्रतिस्पर्धा का सूत्रपात किया। आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिस्पर्द्धा अपनी चरम सीमा पर है। प्रतिस्पर्द्धा के कारण बड़े-बड़े नगरों, बाजारों का विकास हुआ। आर्थिक सम्बन्धों में इतनी वृद्धि हुई कि आज व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय प्रकृति के हो गये हैं। प्रतियोगिता के कारण ही उद्योगों का केन्द्रीकरण हुआ, गन्दी बस्तियों का विकास हुआ, सामाजिक समस्याओं का जन्म हुआ और समाज के विघटन को गति मिली।

नगरीय जीवन के उभरते प्रतिमान
(Emerging Patterns of Urban Life)

भारत में तेजी से नगरीकरण हो रहा है। 1901 में जहाँ कुल जनसंख्या का 11% भाग नगरों में निवास करता था, वहीं 2011 में इसका प्रतिशत बढ़कर 31.16 हो गया है। भारत में 1995 के बाद नगरीकरण की गति तीव्र हुई है। इसका कारण भारतीय आजादी है। आजादी के कारण राजधानियों का निर्माण तथा अन्य विकास कार्यों से ग्रामीण जनसंख्या तीव्रता से नगरों की ओर प्रवासित हुई है। इस कारण परिवर्तन ने जहाँ नगरीय समाज की संरचना को प्रभावित किया है, वहीं इसके कार्यात्मक ढाँचे में भी परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन के अतिरिक्त आज अनेक प्रतिमान (Patterns) है, जो नगरीय समाज में उभार ले रहे हैं। भारतीय नगरीय समाज में परिवर्तन के जो नए प्रतिमान उभर रहे हैं, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है-

1. **पहचान के नए प्रतिमान** (New Pattern of Indentification) :-

नगरीय समाज में परम्परात्मक पहचान आज संक्रमण के दौर में है। नगरीय समाज में परम्परात्मक पहचान आज महत्व नहीं रह गया है। एक दीवाल के इधर-उधर निवास करने वाले व्यक्ति एक दूसरे को नहीं जानते हैं। जानना भी नहीं चाहते हैं। इसका कारण यह है। कि समूहवाद समाप्त हो रहा है, और व्यक्तिवाद हावी हो रहा है। व्यक्ति अहंम से इतना ग्रस्त है कि वह दूसरे को जानना नहीं चाहता है। जाने भी क्यों? उस व्यक्ति से उसका कोई स्वार्थ सिद्ध होने वाला नहीं है। कारण नगरीय व्यक्ति केवल उसे पहचानता है, जिससे उसका कोई मतलब होता है और जैसे ही मतलब की पूर्ति होती है, पहचान समाप्त हो जाती है। इस प्रकार नगरीय समाज का व्यक्ति स्वकेन्द्रित (Selt-Centred) होता जा रहा है।

2. **भीड़भाड़** (Over-Crowding) :-

नगरीय समाज का दूसरा उभरता प्रतिमान है- भीड़भाड़। आज के नगरीय समाज को यदि भीड़ समाज (Crowd Society) कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। सड़क में भीड़भाड़, चौराहों में भीड़भाड़, कार्यालयों में भीड़भाड़, सार्वजनिक स्थानों में भीड़भाड़ नजर आएगी। इसी भीड़भाड़ में आगे कौर? आगे कौन? की संस्कृति घर करती जा रही है। व्यक्ति आगे जाना चाहता है। सभी चाहते हैं, पहले कौन? पहले कौन? इस संस्कृति के कारण व्यक्ति गुम गया है और वह मात्र भीड़ का एक सदस्य बनकर रह गया है। भीड़भाड़ की इस संस्कृति के कारण व्यक्ति समाज से कटता जा रहा है। समाज से कटते जाने के कारण उसमें निराशा घर करती जा रही है। इससे उसके जीवन और परिवार को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

3. **गन्दी बस्तियाँ** (Slums) :-

नगरों में गन्दीबस्तियों के दो प्रमुख कारण हैं-

(a) बेतहाशा नगरों की और जनसंख्या का पलायन, और

(b) नगर नियोजन का अभाव।

भारतीय गाँवों में रोजगार के कोई साधन नहीं है। कृषि की दशा में निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त कृषि की अवधारणा में भी परिवर्तन हो रहा है। आज कोई भी कृषि नहीं करना चाहता है। इसके अतिरिक्त गाँवों के परम्परात्मक व्यवसाय समाप्त हो गए हैं। नए व्यवसायों का स्थान नहीं मिल रहा है। लोगों की आकांक्षाएं उफान पर हैं और उनकी सोच में जबर्दस्त परिवर्तन आया है। इन परिवर्तनों के कारण ग्रामीण नगरों की ओर पलायन कर रहे हैं। नगरों में भीड़ के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। आखिर यह भीड़ कहाँ जाय? ऐसी स्थिति में निरन्तर गन्दीबस्तियों का विकास होता जा रहा है। ये गन्दीबस्तियाँ व्यक्ति का विघटन तो करती है, सामाजिक और राष्ट्रीय विघटन के लिए भी पृष्ठभूमि का निर्माण करती हैं।

4. पर्यावरणीय समस्याएँ (Environmental Problems) :-

नगरों में बेतहाशा जनसंख्या का दबाव, गन्दीबस्तियों का निर्माण, औद्योगिक विकास, जल-मल निकासी की समुचित व्यवस्था का अभाव, उद्योगों का विस्तार, वाहनों से निकलने वाला धुआँ, शोरशराबा, आदि अनेक कारण हैं, जो प्रदूषण की समस्या के लिए जिम्मेदार हैं। पानी जो पीने को दिया जाता है, वह भी एक समस्या है। जो सब्जियाँ उगाई जा रही हैं, उनकें उगाने का स्थान तथा दिए जाने वाला पानी दूषित होता है। इन सभी कारणों से पर्यावरण की समस्याएँ आती हैं, जिससे रोज नई-नई बीमारियों का प्रसार होता जा रहा है।

5. अतिक्रमण (Encroachment) :-

आज सभी नगरों की समस्या अतिक्रमण की है। सड़कें सिकुड़ गई हैं और इन सड़कों से निकल पाना एक समस्या है। सरकारी जमीनों पर अवैध कब्जा है। जो जमीने खाली हैं और किसी के स्वामित्व की हैं, वे सभी अतिक्रमण की चपेट में हैं। अतिक्रमण और अनियोजित विकास के कारण नगरों में चारों तरफ गन्दे पानी का बहाव देखा जा सकता है। ठेला वालों ने नगरों में कब्जा कर लिया है। सड़कों पर वाहनों से निकलना कठिन होता जा रहा है। अतिक्रमण के कारण आपस के विवाद बढ़ते जा रहे हैं, वैवनस्यता फैल रही है तथा सामाजिक सम्बन्ध प्रदूषित हो रहे हैं।

6. स्वार्थों पर आधारित सम्बन्ध (Relations based on Interest) :-

अधिकांश नगरीय समाज स्वार्थों की गिरफ्त में है। केवल उससे सम्बन्ध बनाया जाता है, जिससे स्वार्थ सिद्ध हो। अपने परिचितों से बिना स्वार्थ के नमस्ते तक नहीं किया जाता है। जैसे ही स्वार्थों की सिद्धि हो जाती है, सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। फिर उन सम्बन्धों की खोज की जाती है, जहाँ से अपना उल्लू सिद्ध कर सकें।

7. अशान्ति का वातावरण (Environment of Unvest) :-

सिविक कल्चर (Civic Culture) नगरों की पहचान थी। यहाँ सिविलियन्स रहते हैं। यह धारणा भी समाप्त हो गई है। आज नगरों में चारों और अशान्ति और अराजकता का वातावरण है। चारों और शोर शराबा है। आपाधापी की जिन्दगी है। ऐसी स्थिति में नगरीय समाज न तो 'सिविक' रह गया है और नही 'सम्मानित'।

जाति, वर्ग और शक्ति के परिवर्तित आयाम
(Changing Dimensions of Caste, Class and Power)

परिवर्तन प्रकृति का नियम है और यह सार्वभौमिक है। प्रकृति या मानव समाज का ऐसा कोई भाग नहीं है, जो परिवर्तन की प्रक्रियाओं से अछूता हो। परिवर्तन को भी प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- स्वतः परिवर्तन (Spontaneous change) और प्रायोजित परिवर्तन (Planned change) परिवर्तन चाहे जैसा भी हो यह सामाजिक संस्थाओं और इसकी संरचना में परिवर्तन लाता है। इस परिवर्तन से व्यक्ति के पद और कार्यों में परिवर्तन होता है। भारतीय संदर्भ में चाहे जीवन ग्रामीण हो या नगरीय परिवर्तन हो रहे हैं। इन परिवर्तनों के कारण ग्रामीण समाज की संस्थाएं परिवर्तित होती हैं। इसका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है और व्यक्ति की कार्यात्मक संस्कृति (Working Culture) परिवर्तित होती है।

भारतीय ग्रामीण और नगरीय जीवन के तीन प्रमुख आधार रहे हैं- जाति (Caste), वर्ग (Class) और शक्ति (Power) से तीनों आधार भारतीय समाज के स्तम्भ रहे हैं। आदिकाल से भारतीय समाज में जाति की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और यह शक्ति का स्रोत रही है। आर्थिक व्यवस्था और राज्य व्यवस्था में परिवर्तन के कारण जाति के स्थान पर वर्ग का महत्व बढ़ा है और आज वर्ग भी शक्ति संरचा का महत्वपूर्ण श्रोत बनता जा रहा है। इन संस्थाओं में परिवर्तन के क्या कारण हैं तथा परिवर्तन की क्या दिशाएँ हैं तथा इन परिवर्तनों का ग्रामीण तथा नगरीय जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है। इन तथ्यों की विवेचना आवश्यक है। इस दृष्टि से ग्रामीण तथा नगरीय समाज में जाति, वर्ग और शक्ति के परिवर्तित आयामों का अध्ययन आवश्यक है।

जाति का परिवर्तित आयाम
(Changing Dimensions of Caste)

प्रत्येक समाज में चाहे वह आदिम हो या आधुनिक, शिक्षित हो या अशिक्षित किसी न किसी प्रकार का स्तरण (Stratification) पाया जाता है। इस सामाजिक स्तरण के भिन्न-भिन्न आधार होते हैं। इन आधारों में शिक्षा, पद, आर्थिक स्थिति तथा धर्म का स्थान प्रमुख है। सामाजिक स्तरण के आधार पर सामाजिक व्यवस्था का निर्धारण तो होता ही है, साथ ही, इसके आधार पर समाज में सामाजिक सम्बन्धों की स्थापना भी होती है। प्रत्येक समाज इसी तथ्य पर

NOTES

टिका है कि सामाजिक व्यवस्था स्थायी रहे। सामाजिक व्यवस्था के स्थायी रहने के लिए यह आवश्यक है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति के पद (Status) निश्चित हों। साथ ही सभी व्यक्तियों को अपनी भूमिका (Role) की भी जानकारी हो। जाति हिन्दू समाज की वह व्यवस्था है जिसके आधार पर व्यक्तियों के पदों और कार्यों का निर्धारण होता है

NOTES

जाति की परिभाषा
(Definition of Caste)

जाति अंग्रेजी के 'कास्ट' (Caste) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। यह पुर्तगाली शब्द कास्टा (Casta) से निकला है, जिसका अर्थ 'शुद्ध जाति' होता है। इस प्रकार जाति का अर्थ एक विशेष आनुवांशिक सामाजिक समूह से लगाया जाता है, जो कि भोजन और विवाह की अपनी प्रथाओं पर आधारित है। जाति प्रणाली भारत की अद्‌भुत विशेषता है। जब सामाजिक स्तरीकरण कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर होता है तो उसे जाति कहते हैं इसकी सदस्यता जैवकीय उत्तराधिकार से निश्चित होती है, अनेक विद्वानों ने जाति की परिभाषा दी है। इन परिभाषाओं में कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं-

(1) **मजूमदार और मदन** - "जाति एक बन्द वर्ग है।"

(2) **कूले**- "जब एक वर्ग पूर्णतया वंशानुक्रमण पर आधारित होता है तो हम इसे जाति कहते हैं।

3. **हावेल** - "अन्तर्विवाह और वंशानुक्रमण द्वारा प्रदत्त पद की सहायता से सामाजिक वर्गों को जमा देना ही जाति है।"

4. **रिजले** - "यह परिवारों या परिवारों के समूहों का संकलन है जिनका एक सामान्य नाम होता है, अपने को किसी "काल्पनिक पूर्वजठ मानव अथवा दिव्य के वंशज बतलाते हैं, जो एक से आनुवांशिक व्यवसाय करने का दावा करते हैं, जो उन लोगों के द्वारा, जो अपना मत प्रदर्शित करने के योग्य हैं, एक ही समुदाय के समझे जाते हैं।"

संक्षेप में, "जाति वंशानुगत व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो परम्परागत व्यवसाय करते हैं तथा जातीय नियमों और निषेधों का पालन करते हैं।"

जाति प्रथा की विशेषताएँ
(Characteristics of Caste System)

विभिन्न विद्वानों ने जाति-प्रथा की परिभाषा करते हुए इनकी विशेषताओं का उल्लेख किया है। अनेक विद्वानों ने भारतीय जाति प्रथा का गहन अध्ययन किया है तथा इसके कार्यों, गुण और दोषों की विवेचना की है। इस विवेचना में भी जाति प्रथा की विशेषताओं का उल्लेख है। यहाँ जाति प्रथा की विशेषताओं को प्रमुख रूप से दो भागों में विभाजित किया जायेगा, जो निम्न हैं -

(1) जाति प्रथा की विशिष्ट विशेषताएँ
(Special Characteristics of Caste System)

इस शीर्षक के अन्तर्गत जाति प्रथा की उन विशेषताओं का उल्लेख किया गया है जिसका निर्धारण विशिष्ट विद्वानों ने किया है। प्रमुख विद्वानों द्वारा जाति प्रथा की निर्धारित विशेषताएँ इस प्रकार हैं -

(a) डॉ. घुरिये के अनुसार (According to Dr. Ghurye)

(i) संस्तरण व्यवस्था (ii) समाज का खण्डनात्मक विभाजन

(iii) विभिन्न जातीय वर्ग-समूहों के विशिष्ट अधिकार और उनकी अयोग्यताएँ,

(iv) सामाजिक एवं भोजन संबंधी प्रतिबन्ध (v) जातिगत व्यवसाय और

(vi) वैवाहिक प्रतिबन्ध आदि

(b) केतकर के अनुसार (According to Ketkar)

(i) जन्मजात सदस्यता और (ii) वैवाहिक प्रतिबन्ध

(c) दत्ता के अनुसार (According to Dutta)

(i) वैवाहिक प्रतिबन्ध, (ii) भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्ध,

(iii) निश्चित व्यवसायिक प्रतिबन्ध,

(iv) सामाजिक संस्तरण (इसमें ब्राह्मणों की सर्वोच्च स्थिति)

(v) जन्म पर आधारित और (vi) ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा पर आधारित एवं केन्द्रित

(2) जाति-प्रथा की सामान्य विशेषताएँ
(General Characteristics of Caste-System)

NOTES

विभिन्न विद्वानों ने जाति-प्रथा की कुछ विशिष्ट विशेषताओं का उल्लेख किया है। जाति-प्रथा की इन विशेषताओं के अतिरिक्त इसकी कुछ अन्य विशेषताएँ भी हैं इन विशेषताओं को सामान्य विशेषताओं के शीर्षक के अन्तर्गत रखा गया है। जाति प्रथा की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित है -

(1) जाति एक बन्द वर्ग होने के कारण इनमें परिवर्तन असम्भव है।

(2) जाति का आधार अन्तर्विवाह है। कोई भी व्यक्ति जाति से बाहर विवाह नहीं कर सकता है।

(3) अधिकांश जाति के निश्चित व्यवसाय होते हैं। उदाहरण के लिए चमार-जूते बनाना, कुम्हार घड़े बनाना, बढ़ई लकड़ी का कार्य अपना वंशगत व्यवसाय समझते हैं और करते हैं।

(4) जाति में श्रेणी प्रणाली अर्थात ऊँच-नीच का भाव होता है, जैसे ब्राह्मण ऊँची जाति और शूद्र निम्न जाति।

(5) शिक्षा तथा वस्त्रों आदि के पहनने आदि के संबंध में भी कुछ नियन्त्रण होते हैं, जैसे शूद्र वेद नहीं पढ़ सकते, ब्राह्मण के माथे पर चन्दन होना चाहिए। यद्यपि ये नियन्त्रण ढीले पड़ रहे हैं।

जाति की उत्पत्ति
(Origin of Caste)

जहाँ तक भारतीय जाति-प्रथा की उत्पत्ति का प्रश्न है, यह समाज में प्रचलित अनेक प्रकार की दन्तकथाओं पर आधारित है। निश्चित रूप से ऐसा कहना संम्भव नहीं है कि जाति प्रथा के प्रणेता कौन थे? जाति प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में **प्रो. सोरोकिन** (P.A.Sorokin) का विचार है कि प्रजाति, चयन और वंशगत सम्बन्धी बातें लोगों को बहुत दिनों से ज्ञात थीं। भारतीय धार्मिक ग्रन्थों में सिद्धांत रूप में इसका प्रतिपादन है कि विभिन्न जातियाँ ब्रह्मा की देह के विभिन्न अंगों से निकली हैं और उनमें मौलिक अन्तर है फलत: रक्त का सम्मिश्रण या अन्तर्जातीय विवाह या प्रजातियों के बीच किसी प्रकार का सम्पर्क सबसे बड़ा अपराध माना जाता था। प्रत्येक व्यक्ति का समाज में स्तर या दर्जों का निर्धारण माता-पिता के रक्त के आधार पर होता है। प्राचीन समाज में लोगों को प्रजनन तत्व की बातें खूब मालूम थीं और वे उस पर अमल भी करते थे।

जाति व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में **बार्न्स** और **बेकर** का विचार है कि यह महत्वपूर्ण है कि भारतीय जाति-व्यवस्था के आधार-स्तम्भ चार वर्ण है और चारों वर्णों का तात्पर्य चार रंगों से है। यह वर्ण हल्के श्वेत से लेकर गाढ़े कृष्ण तक है। इस व्यवस्था के शीर्ष पर पुरोहित (ब्राह्मण) है जो लगभग 3000 वर्ष ईसा पूर्व भारत पर आक्रमण करने वाले आर्यों के वंशज है।

वेस्टरमार्क ने भी इसी प्रकार के विचारों का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि आर्यों की विजय के पूर्व भारत ने कृष्ण वर्ण के लोगों की आबादी थी। इन कृष्ण वर्ण की वन्यजातियों के प्रति आर्यों को घोर घृणा और शत्रुता थी जिसे उन्होंने अपने तथा पराजित लोगों शूद्रों के बीच तरह-तरह की बाधाएँ खडी करके अभिव्यक्त किया है।

जाति प्रथा की उत्पत्ति को लेकर विद्वानों ने जिन प्रमुख सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, वह निम्न हैं-

(1) **परम्परागत सिद्धांत** (Traditional Theory) - जाति-प्रथा की उत्पत्ति से सम्बन्धित यह सबसे प्राचीन सिद्धांन्त है। इस सिद्धांत का प्रतिपादन जो विद्वान करते हैं उनका तर्क है कि चूँकि जाति प्रथा भारतीय समाज की विशेषता है। अत: इसकी उत्पत्ति से सम्बन्धित ज्ञान की प्राप्ति के लिए आवश्यक है कि भारतीय ग्रन्थों का अवलोकन किया जाये। इस दृष्टि से परम्परागत सिद्धांत को निम्न भागों में विभाजित करके समझा जा सकता है-

(a) **वैदिक सिद्धांत** - भारतीय साहित्य में वेदों का महत्व सबसे अधिक है। वैदिक साहित्य के अन्तर्गत चार वेद आते हैं। इनमें ऋग्वेद का महत्व सबसे अधिक है। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त मण्डल 10, सूक्त 90, मन्त्र 11-12 में जाति की विवेचना तो की गई है, किन्तु इसकी उत्पत्ति के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया है। जाति की उत्पत्ति से सम्बन्धित जो श्लोक वेदों से प्राप्त हैं, वह निम्न हैं -

'ब्राह्मणों अस्य मुखामार्सीदबाहु राजन्य: कृत:

उरू तदस्य वदवैश्य: पदभ्याम् शूद्रो अजायत ।''

NOTES

इस श्लोक का अर्थ यह है कि प्रजापति ब्रह्मा ने जातियों की उत्पत्ति की। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मणों की, भुजाओं से क्षत्रियों की, जंघा से वैश्यों की और पैर से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है। ब्रह्मा ने इन जातियों की उत्पत्ति संसार की उन्नति के लिए की है।

(b) **शतपथ ब्राह्मण** - शतपथ ब्राह्मण में जाति की उत्पत्ति के बारे निम्न दो बातें बतलाई गई हैं-

(i) जाति की उत्पत्ति "भू: भुव: स्व:ठ से हुई, और

(ii) देवताओं और असुरों के संघर्ष से वर्गों की उत्पत्ति हुई जो आगे चलकर जाति के नाम से जाने गये।

(c) **तैत्तिरीय ब्राह्मण** - तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार निम्नलिखित वेदों से वर्णों की उत्पत्ति हुई, जो आगे जाति में परिवर्तित हो गये

(i) सामवेद - ब्राह्मण (ii) यजुर्वेद - क्षत्रिय

(iii) ऋग्वेद - वैश्य

(d) **मनुस्मृति** - मनुस्मति में जाति की उत्पत्ति के लिए दो बातों का उल्लेख है -

ब्रह्मा ने अपने शरीर के दो भाग किये-पुरुष और स्त्री। इन्हीं से वर्णों और जातियों का विकास हुआ

(i) मुख - ब्राह्मण (ii) बाहु - क्षत्रिय

(iii) पेट - वैश्य (iv) जंघा - शूद्र

(e) **महाभारत** - महाभारत के शान्तिपर्व में भृगु ने जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि जातियों में कोई अन्तर नहीं है। शुरू में ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की और सभी लोग जन्मजात ब्राह्मण थे। बाद में अपने भिन्न-भिन्न कर्मों के अनुसार लोग अलग-अलग जातियों में बँट गये।

(f) **गीता** - श्रीमद्भागवत गीता के अनुसार कृष्ण भगवान ने गुण और कर्मों के अनुसार सभी लोगों को चार वर्णों में बाँट दिया, जो आगे चलकर जातियों के रूप में परिवर्तित हो गये ।

(2) **व्यावसायिक सिद्धांत** (Occupational Theory)- **नेसफील्ड** (Nesfield) ने जाति-प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में व्यावसायिक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है। जाति प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उसने लिखा है कि "कार्य और केवल कार्य ही जाति संरचना की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी है।" नेसफील्ड के अनुसार कार्य का तात्पर्य व्यवसाय से है। उसका विचार है कि जाति प्रथा का जन्म व्यवसायों की भिन्नता के कारण हुआ। नेसफील्ड के अनुसार सभ्यता के विकास के साथ ही मनुष्य ने विभिन्न व्यवसायों को अपनाया। व्यवसायों को अपनाने की यह परम्परा समाज में निरन्तर चलती रही। उसका इस सम्बन्ध में तर्क है कि सुविधा और सामाजिक व्यवस्था के कारण बाद में ये व्यवसाय परम्परागत रूप से हस्तान्तरित होने लगे और इन्हीं व्यवसायों के आधार पर जातियों का निर्माण हुआ। नेसफील्ड ने जाति की उत्पत्ति के लिए पुरोहिताई के व्यवहार का उदाहरण दिया है और इसे निम्न आधारों पर समझाने का प्रयास किया है -

(i) पहले इस पर ब्राह्मणों का एकाधिकार नहीं था,

(ii) क्षत्रिय भी इस कार्य का सम्पादन करते थे,

(iii) धीरे-धीरे मन्त्रों की जटिलता के कारण यह कार्य जटिल होता गया,

(iv) जिन्होंने इस जटिलता में विशेष योग्यता प्राप्त कर ली वे ब्राह्मण कहलाये,

(v) उन दिनों यज्ञों का महत्व होने के कारण ब्राह्मणों को प्रतिष्ठा मिली,

(vi) यह रूप आगे वंशानुगत हो गया और अन्त में।

(vii) जाति का जन्म हुआ।

(3) **प्रजातीय सिद्धांत** (Racial Theory) - जाति प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रजातीय सिद्धांत भी महत्वपूर्ण है। इस सिद्धांत का सर्वप्रथम प्रतिपादन **सर हरबर्ट रिजले** ने किया था और अनेक विद्वानों ने इसका समर्थन किया था। जाति प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में प्रजातीय सिद्धांत के जो प्रमुख विचारकों के दृष्टिकोण हैं, वे निम्नलिखित हैं -

(a) **रिजले** (Risley)- रिजले के अनुसार भारत में जातियों का जन्म निम्न कारणों से हुआ : -

(i) मूल निवासी और बाहर से आने वाले व्यक्तियों में अन्तर होने के कारण जातियों का जन्म हुआ।

(ii) आर्थिक आधार भी जातियों की उत्पत्ति का कारण है। व्यवसायों में भिन्नता के कारण जातियों का जन्म हुआ।

(iii) धर्म में भिन्नता के कारण रहन सहन और विचारों में भिन्नता आई, जिससे अनेक जातियों का जन्म हुआ।

(iv) कुछ विशेष प्रकार के चिन्हों में विश्वास के कारण भी जातियों का जन्म हुआ।

(v) एक स्थान से दूसरे स्थान में निवास करने के कारण भी जातियों का जन्म हुआ।

(vi) रीति-रिवाजों में परिवर्तन के कारण भी जातियों का जन्म हुआ।

NOTES

रिजले ने लिखा है कि भारत में आने से पहले आर्यों का समाज चार वर्गों में विभाजित था। विभाजन की यही प्रणाली भारत पर भी लागू की गई फलस्वरूप अनेक जातियों का जन्म हुआ। रिजले ने भारतवर्ष में विभिन्न जातियों की उत्पत्ति के लिये दो कारकों को उत्तरदायी माना है -

(i) प्रजातीय भिन्नता, और (ii) अनुलोम विवाह

(b) **डॉ. मजूमदार** (Dr. D. N. Majumdar)- डॉ. मजूमदार का विचार है कि प्रजातीय मिश्रण (Racial Mixture) ही भारतवर्ष में जाति प्रथा की उत्पत्ति के मूल में है। मजूमदार के अनुसार भारत में द्रविड़ रहते थे और आर्य बाहर से आये। ये आक्रमणकारी जब बाहर से आये तो निम्न परिस्थितियों ने उन्हें प्रजातीय मिश्रण के लिए प्रेरित किया -

(i) स्थायी जीवन का आकर्षण, (ii) स्त्रियों की कमी, और

(iii) विकसित द्रविड़ सभ्यता।

समाज में होने वाले सांस्कृतिक संघर्ष और प्रजातीय सम्पर्क के कारण अनेक अन्तर्विवाही समूहों का जन्म हुआ। अंतर्विवाही समूहों का उद्देश्य रक्त की शुद्धता को स्थायी रखना था और यही अन्तर्विवाही समूह कालान्तर में जातियों के रूप में परिवर्तित हो गये। मजूमदार ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि "जाति की स्थिति इस बात पर निर्भर है कि उसमें किस परिणाम तक रक्त की शुद्धता है और कहाँ तक दूसरे सामाजिक समूह में पृथक रह पाया है।"

(c) **डॉ. राधाकृष्णन** (Dr. Radha Krishnan)- "अनेक प्रजातियों के निरन्तर आक्रमण होते रहे हैं। इसकी विभिन्न प्रजातियाँ संघर्ष और सात्मीकरण की प्रक्रिया से गुजरी। प्रजातियों की भिन्नता का आधार विशेष रूप से रंग होता है। जैसे ही जैसे प्रजातियों में मिश्रण हुआ, अनेक जातियों का जन्म हुआ।"

(d) **डॉ. घुरिये** (Dr. G.S. Ghuriye)- डॉ. घुरिये का विचार है कि प्रजातीय मिश्रण नहीं अपितु प्रजातीय पृथक्करण जातियों की उत्पत्ति का प्रमुख कारण है। डॉ. घुरिये के अनुसार, इण्डो-आर्यन प्रजाति के व्यक्ति भारत में तीन वर्गों में विभक्त थे और अन्तर्विवाह के सिद्धान्तों पर आधारित थे। जो जहाँ के आदिवासी थे, उन्हें अपने से अलग रखा तथा उन्हें शूद्र कहने लगे। डॉ. घुरिये का विचार है कि "जाति प्रथा इण्डो-आर्यन संस्कृति के ब्राह्मणों का बच्चा है, जो गंगा-यमुना के मैदान में पैदा हुआ है।"

(4) **धार्मिक सिद्धांत** - जाति-प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में धार्मिक सिद्धांत भी महत्वपूर्ण है। जिन प्रमुख विद्वानों ने जाति की उत्पत्ति के सम्बन्ध में धार्मिक सिद्धांत का समर्थन किया है, वे निम्नलिखित हैं-

(a) **सेनार्ट** (Senart)- सेनार्ट के अनुसार भोजन सम्बन्धी निषेध जाति-प्रथा की उत्पत्ति के आधार में है। कुल के आधार पर एक समूह के सदस्य अपने देवता को एक विशिष्ट प्रकार का भोजन प्रदान करते थे। इससे समाज में भोजन से सम्बन्धित अनेक प्रकार के समूह बन गये। अपरिचित के साथ खान-पान पर प्रतिबन्ध लगा दिये गये और ऐसा विश्वास किया गया कि अपरिचित के साथ भोजन करने से पवित्रता समाप्त हो जाती है। अन्तर्विवाह को रक्त की शुद्धता को बनाये रखने के लिए नियम के रूप में स्वीकार किया गया। इस प्रकार रक्त की शुद्धता और धर्म की पवित्रता दो ऐसे आधार है जिनसे जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई।

(b) **होकार्ट** (Hocart) - होकार्ट के अनुसार भारत वर्ष में देवताओं को चढ़ाई जाने वाली "बलि" जाति प्रथा की उत्पत्ति का मूल कारण है। समाज का प्रत्येक व्यक्ति पशुओं की हत्या करना उचित नहीं समझता था। अत: इस कार्य के लिए दासों की सेवाएँ प्राप्त की जाती थीं। प्राचीन भारत में अनेक प्रकार के धार्मिक कार्य होते थे। इन धार्मिक कार्यों को सम्पादित करने के लिए अनेक व्यक्तियों की आवश्यकता होती थी, जैसे पुरोहित, माली, धोबी, नाई, आदि। प्राचीन काल में राजा धार्मिक कार्यों को संचालित करते थे और सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर अनेक

NOTES

व्यक्ति इस कार्य में अपनी सेवाएँ देते थे। इन्हीं सेवाओं के आधार पर समाज में व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा स्थापित होती थी जो आगे चलकर जातियों में परिवर्तित हो गई।

(c) **राइस** (Rice)- राइस का विचार है कि टोटम (Totem) के कारण भारत में विभिन्न जातियों का जन्म हुआ। एक ही टोटम में विश्वास करने वाले व्यक्तियों का समूह कालान्तर में जातियों के रूप में परिवर्तित हो गया। बाद में अनेक नियमों और निषेधों के कारण जाति की धारणा प्रबल हो गई।

(5) **राजनैतिक सिद्धांत** (Political Theory)- इस सिद्धान्त के प्रतिपादक **अबे डुबोइस** (Abbe Dubois) है। इनका कहना है कि भारत में जातियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ब्राह्मणों की राजनैतिक चाल महत्वपूर्ण है। ब्राह्मणों ने अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए एक ऐसे सामाजिक संगठन (Social organization) का निर्माण किया, जिसके द्वारा वे अन्य वर्गों का सरलता से शोषण कर सकें। यह संगठन स्थायी रहे इसके लिए क्षत्रियों की शक्ति का सहारा लिया। कालान्तर में समाज का यही संगठन जाति के रूप में परिवर्तित हो गया।

(6) **भौगोलिक सिद्धान्त** (Geographical Theory) - इस सिद्धान्त के प्रतिपादक **गिलबर्ट** (Gilbert) है। उनके अनुसार क्षेत्रफल की दृष्टि से भारत अत्यन्त ही विशाल देश है। यह विशाल देश भौगोलिक परिस्थितियों- मरूस्थल, पहाड़, नदी आदि के कारण दूसरे से पृथक मालूम पड़ता है। प्रत्येक भौगोलिक क्षेत्र में निवास करने वाले व्यक्तियों की आवश्यकताओं में भिन्नता थी और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न आर्थिक क्रियाएँ करते थे। इसी भौगोलिक पृथकता और आर्थिक भिन्नता के कारण भारतवर्ष में विभिन्न जातियों का जन्म हुआ।

(7) **सांस्कृतिक सिद्धान्त** (Cultural Theory) - जाति-प्रथा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हट्टन (Hutton) ने जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है उसे सांस्कृतिक सिद्धान्त के नाम से जाना जाता है। हट्टन का विचार है कि हम जाति प्रथा की उत्पत्ति को जानना चाहते है तो आदिम संस्कृतियों का अध्ययन करना चाहिये। आज भी हमारे देश में अनेक वन्यजातियाँ हैं, जो दुर्गम प्रदेशों में निवास करती हैं और उसके जीवन में अत्यन्त ही कम परिवर्तन हुए हैं। इसलिए इन आदिम वन्यजातियों में जाति- प्रथा की उत्पत्ति को ढूँढ़ा जा सकता है। हट्टन ने नागा वन्यजाति का उदाहरण दिया है। इस वन्यजाति में गाँवों का स्वरूप एक आर्थिक और राजनैतिक इकाई के रूप में होता है। इस वन्यजाति में यदि एक गाँवों में लोहार है, तो दूसरे में बुनकर। जब एक गाँव का व्यक्ति दूसरे गाँव में जाता है, तो उसे और भी सुविधाएँ दी जाती हैं किन्तु उसे गाँव का व्यवसाय अपनाने नहीं दिया जाता है। इस व्यक्ति को अपने गाँव का पुराना व्यवसाय करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि उसे गाँव का पुराना व्यवसाय करना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह गाँव में भिन्न परिवार बसा कर रहता है। इस प्रकार व्यवसायों की परम्परागत व्यवस्था के कारण भी जाति-प्रथा की उत्पत्ति हुई है। इस सिद्धान्त को **माना का सिद्धान्त** (Theory of Manaism) भी कहकर सम्बोधित किया जाता है।

(8) **सांस्कृतिक एकीकरण का सिद्धान्त** (Theory of Cultural Integration)- **श्री शरदचन्द्र राय** (S.C. Ray) का विचार है कि भारतवर्ष में जाति प्रथा की उत्पत्ति का प्रमुख कारण विभिन्न संस्कृतियों का मिलन और अन्त:क्रिया का परिणाम है। उनके अनुसार विभिन्न संस्कृतियों की जिन विशेषताओं से जाति-प्रथा का जन्म हुआ, वे निम्न हैं -

(a) **इण्डो-आर्यन संस्कृति की विशेषताएँ** -

(i) वर्ण व्यवस्था (ii) कर्म की प्रधानता, और

(iii) शक्ति में विश्वास

(b) **द्रविड़ संस्कृति की विशेषताएँ** -

(i) व्यावसायिक वर्ग-विभाजन, और (ii) पुरोहित वर्ग की अलौकिक शक्ति

(c) **प्राग्द्रविण संस्कृति की विशेषताएँ** -

(i) सामाजिक व्यवस्था और (ii) आत्मतत्व की प्रधानता।

इन तीनों प्रजातियों की संस्कृतियों में समन्वय का परिणाम यह हुआ कि एक सामाजिक संरचना का निर्माण हुआ। इसी संरचना को जाति के नाम से जाना गया।

(9) **उद्विकासवादी सिद्धान्त** (Evolutionary Theory) - इस सिद्धान्त के प्रमुख प्रतिपादक का नाम **डैन्जिल इबेट्सन** (Denzil Ibbetson) है। इस सिद्धान्त को प्रजातीय व्यावहारिक सिद्धान्त (Racial Functional Theory) के नाम से भी जाना जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार जाति-प्रथा की उत्पत्ति निम्न तीन कारणों से हुई है-

(a) वन्यजातीय उत्पत्ति (Tribal Origin) (b) व्यावसायिक संघ (Business Class)

(c) पुरोहित धर्म (Levitical Religion)

उपर्युक्त तीनों कारकों के संयोग से जाति प्रथा की उत्पत्ति हुई है। इस सिद्धान्त के अनुसार विकास की प्रारम्भिक अवस्था में मनुष्य घुमन्तू (Nomadic) जीवन व्यतीत करता था। इस जीवन में किसी प्रकार के व्यवसाय को अपना लिया जाता था। इससे वन्यजाति एक व्यावसायिक संघ के रूप में परिवर्तित हो जाती थी। विकास के साथ ही व्यक्ति व्यावसायिक कुशलता प्राप्त कर लेते थे और अपने व्यावसायिक रहस्य को गुप्त रखने का प्रयास करता थे। आर्थिक जीवन की सुरक्षा के लिए इन व्यावसायिक संघों में प्रभुत्व के लिए संघर्ष हुए और इस संघर्ष में पुरोहित वर्ग की विजय हुई। इस वर्ग में अन्तर्विवाह के द्वारा व्यावसायिक नियमों का कठोरता से पालन किया गया। इसका अनुसरण व्यावसायिक संघों ने भी किया और व्यावसायिक संस्तरण का विकास हुआ। कालान्तर में यही व्यावसायिक संस्तरण जाति-प्रथा के रूप में परिवर्तित हो गया।

NOTES

(10) बहुकारक सिद्धान्त (Multi Factor Theory) - भारत एक विशाल देश है और इसकी परिस्थितियों में अनेक विभिन्नताएँ हैं। इन विभिन्नताओं के कारण भारत में जाति-प्रथा की उत्पत्ति के किसी एक कारण की बात करना तर्कसंगत नहीं है। **हट्टन** का विचार है कि जाति प्रथा की उत्पत्ति किसी एक कारण से नहीं हुई है। इसकी उत्पत्ति में अनेक कारकों का योगदान रहा है। हट्टन ने लिखा है कि यह गर्व के साथ जोर देकर कहा जा सकता है कि भारतीय जाति-प्रथा भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक कारकों का स्वाभाविक परिणाम है जो सम्मिलित रूप से अन्यत्र नहीं पाये जाते हैं " हट्टन ने भारतवर्ष में जाति-प्रथा की उत्पत्ति के लिए जो अनेक कारण बताये हैं, वे निम्नलिखित हैं -

(a) भौगोलिक पृथकता,

(b) टोटम, माना, आत्मा, निषेध, आदि का विचार,

(c) वन्यजातीय व्यक्तियों की इस प्रकार की विचारधारा कि भोजन के साथ गुणों का समावेश हो जाता है,

(d) धार्मिक बलि, पवित्रता, आदि के विचार,

(e) पारिवारिक पृथकता और पूर्वजों की पूजा,

(f) कर्म और पुनर्जन्म में विश्वास,

(g) व्यवसाय आदि से सम्बन्धित जादू-टोने में विश्वास,

(h) परम्परात्मक व्यवसाय और व्यावसायिक रहस्य को गुप्त रखने का विचार,

(i) मातृात्मक और पितृसत्तात्मक संस्कृतियों में संघर्ष,

(j) प्रजातीय संघर्ष,

(k) विभिन्न सामाजिक और धार्मिक सुविधाएँ तथा इनसे निर्मित विभिन्न वर्ग,

(l) आर्थिक जीवन और संघों का निर्माण,

(m) जनजातियों की राजनैतिक पृथकता,

(n) एक बुद्धिमान समूह द्वारा अन्य समूह का शोषण करना और इसे ऐसे धार्मिक दर्शन पर आधारित करना कि सब उसे स्वीकर करें।

जाति के कार्य
(Functions of Caste)

आधुनिक भारतीय सामाजिक जीवन में जाति-प्रथा की कितनी ही आलोचना क्यों न की जाए, किन्तु इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भारत में जाति प्रथा का उद्भव और विकास कुछ निश्चित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया गया होगा। आज जाति प्रथा भले ही निरर्थक प्रतीत हो, किन्तु प्राचीन काल में वह अनेक सामाजिक कार्यों का सम्पादन करती थी तथा इससे समाज में अनेक लाभ होते थे। यही कारण है कि श्री हट्टन ने जाति प्रथा के लाभ या कार्यों की विवेचना की है। जाति प्रथा के प्रमुख लाभ या कार्यों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है -

NOTES

(1) व्यक्तिगत दृष्टिकोण से (From Individual Point of View)

श्री विल्सन ने व्यक्ति के जीवन में जाति-प्रथा की उपयोगी माना है। उनका कहना है कि जन्म से लेकर मृत्यु तक जाति प्रथा व्यक्ति के जीवन में महत्वपूर्ण कार्य करती है। इसी प्रकार हट्टन ने भी लिखा है कि जाति कुछ घटनाओं से समुदायों के लिए सामाजिक स्तर पर चढ़ने के लिए सीढ़ी का भी कार्य कर सकती है। व्यक्तिगत जीवन में जाति के प्रमुख कार्य या लाभ निम्नलिखित है -

(a) **सामाजिक सुरक्षा** - जाति प्रथा अपने सदस्यों की सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा की जिम्मेदारी लेती है। जब भी जाति के किसी सदस्य पर किसी भी प्रकार का संकट आता है तो उस जाति के अन्य सदस्य संकट की घड़ी में उस व्यक्ति की मदद करते है, जो संकटग्रस्त होते हैं। सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के कारण ही जाति-प्रथा को श्रमिक संघ (Trade Union) की संज्ञा दी गई है। इसके साथ ही जाति अनेक प्रकार के आर्थिक एवं सामाजिक सहयोग के कार्य का भी संचालन करती है। इस प्रकार एक व्यक्ति जाति का सदस्य होने के कारण सामाजिक दृष्टि से अपने को सुरक्षित समझता है।

(b) **मानसिक सुरक्षा** - व्यक्ति की दृष्टि से जाति-प्रथा का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा प्रदान करना। हट्टन ने लिखा है कि "जातिप्रथा से समाज के सभी कार्य सुचारू रूप से चलते हैं। विभिन्न जातियों के सदस्य इन कार्यों को धार्मिक कर्तव्य समझ कर करते हैं। सभी व्यक्ति यह जानते हैं कि पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार इस जन्म में उन्हें अपनी विशिष्ट परिस्थितियों के अनुसार समाज की सेवा करनी है।" जाति-प्रथा में अनेक व्यक्ति के कार्य पूर्व निर्धारित होते हैं। व्यक्ति को यह पहले से ही ज्ञात रहता है कि उसे किस समूह में विवाह करना है, कौन- कौन से संस्कारों का सम्पादन करना है तथा किस प्रकार के सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक कार्यों का सम्पादन करना है।

(c) **व्यवहारों पर नियन्त्रण** - प्रत्येक जाति के निश्चित नियम और सामाजिक निषेध होते हैं। जातीय नियम जहाँ व्यक्तियों को कुछ कार्यों को सम्पादित करने का निर्देश देते हैं, वहीं दूसरी ओर जातीय प्रतिबन्ध व्यक्ति के कर्मों को नियन्त्रित करते हैं। खानपान, धार्मिक संस्कार, सामाजिक व्यवहार तथा व्यवसाय आदि के निर्धारण में जाति की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। **श्री मजूमदार और मदान ने लिखा है कि** - "एक स्थायी वातावरण अथवा अवस्था के अन्तर्गत सामाजिक-आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए जाति व्यक्ति की प्रतिरक्षा की प्रमुख व्यवस्था है, जो उनकी परिवर्तनशील क्षमताओं पर आधारित नहीं है।"

(d) **स्थिति का निर्धारण** - प्रत्येक व्यक्ति की समाज में एक निश्चित स्थिति होती है। मुक्त समाजों में व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण कार्य के आधार पर होता है। जाति व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण जन्म के आधार पर करती है। जाति के द्वारा व्यक्ति को जो सामाजिक स्थिति प्रदान की जाती है, वह अत्यन्त ही स्थायी होती है। उदाहरण के लिए ब्राह्मण या शूद्र के परिवार में जन्म लिया व्यक्ति आजीवन ब्राह्मण या शूद्र कहलायेगा । इसका प्रमुख कारण यह है कि जाति की सदस्यता का आधार जन्म (Birth) होता है, जिसे कभी बदला नहीं जा सकता है। आधुनिक भारतीय समाज परिवर्तन की प्रक्रिया में है। इस परिवर्तन के कारण यद्यपि जन्मजात स्थिति में कुछ परिवर्तन आये हैं किन्तु आज भी जातीय स्थिति का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। हट्टन ने लिखा है कि "जाति जन्म से ही अपने सदस्यों की सामाजिक स्थिति को निश्चित करती है जिसे न सम्पत्ति, न दरिद्रता, न सफलता और न किसी प्रकार की विपदा ही हटा सकती है, जब तक वह जाति के किसी नियम को नहीं तोड़ता है।"

(e) **व्यवसाय का निर्धारण** - प्रत्येक व्यक्ति के व्यवसाय जन्म से ही निश्चित होते हैं। इसके साथ ही साथ बालक का समाजीकरण एक निश्चित व्यावसायिक पर्यावरण में होता है। इसका परिणाम यह होता है कि बालकों को एक निश्चित व्यवसाय के बारे में स्वत: जानकारी हो जाती है तथा उसे इस व्यवसाय की तकनीकी जानकारी प्राप्त करने के लिए किसी प्रशिक्षण संस्था में जाना नहीं पड़ता है। व्यवसाय की इस परम्परा प्रकृति के कारण भी थोड़ा प्रयास करने पर व्यक्ति अपने व्यवसायों में विशेष योग्यता प्राप्त कर लेते हैं।

(f) **जीवन साथी का चुनाव** - व्यक्तिगत दृष्टिकोण से जीवन साथी का चुनाव करना जाति- प्रथा का मौलिक कार्य है। जाति में वैवाहिक प्रतिबन्ध पाये जाते हैं। इन प्रतिबन्धों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जाति के अन्दर ही विवाह करने की अनुमति होती है। प्रत्येक जाति का वैवाहिक समूह निश्चित होने के कारण व्यक्ति को अपने जीवन साथी के चुनाव में काफी भाग-दौड़ नहीं करनी पड़ती है। यद्यपि आज अन्तर्जातीय विवाह हो रहे है, किन्तु इनकी संख्या अत्यन्त ही कम है ।

(2) सामुदायिक दृष्टिकोण से (From Community Point of View)

जाति प्रथम स्तर में व्यक्ति के लिए कार्य करती है। दूसरे स्तर में जाति का सामुदायिक दृष्टिकोण से महत्व है। जातीय समुदाय की दृष्टि से जाति जिन कार्यों का सम्पादन करती है, वे निम्नलिखित हैं -

(a) **संस्कृति की रक्षा- श्री हट्टन** का विचार है कि जाति संस्कृति की दृष्टि से दो महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है -

(i) प्रत्येक जाति की अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं। इसके अंतर्गत उस जाति की जीवन पति, कुशलता, ज्ञान और व्यवहार की विधियों को सम्मिलित किया जाता है, और

(ii) प्रत्येक जाति अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती है।

इस प्रकार जाति उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर जातीय समुदाय से संस्कृति की रक्षा करती है।

(b) **धर्म की रक्षा** - प्रत्येक जाति की अपनी धार्मिक भावनाएँ, विचार और धार्मिक पंक्तियां होती हैं। श्री देसाई ने लिखा है कि - "यह जाति ही है, जो जनता के धार्मिक जीवन में अपने सदस्य की स्थिति को निश्चित करती है।" जाति अपनी धार्मिक विधियों और भावनाओं की रक्षा करती है। प्रत्येक जाति के अपने धार्मिक प्रतिमान भी होते हैं, जाति इन धार्मिक प्रतिमानों की भी रक्षा करती है।

(c) **रक्त की शुद्धता** - प्रत्येक जाति अपने सदस्यों में रक्त की शुद्धता (Purity of Blood) को बनाये रखने का भी प्रयास करती है। आज के इस वैज्ञानिक युग में रक्त की शुद्धता जैसी अवधारणा का कोई मूल्य नहीं है, फिर भी जाति अपने द्रष्टिकोण से अन्य जातियों के साथ सम्मिश्रण को बचाने का प्रयास करती है। वैवाहिक दृष्टिकोण से भी जाति का अपना महत्व है। सामाजिक दृष्टिकोण से अन्य जातियों के साथ सम्मिश्रण को बचाने का प्रयास करती है। वैवाहिक प्रतिबन्धों की सहायता से जाति रक्त की शुद्धता को बनाये रखती है।

(3) सामाजिक दृष्टिकोण से (From Social Point of View)

जाति व्यवस्था सिर्फ अपने व्यक्तियों और समुदाय के लिए ही कार्य नहीं करती, अपितु सामाजिक दृष्टिकोण से भी जाति का अपना महत्व है। सामाजिक दृष्टिकोण से जाति निम्नलिखित कार्यों का सम्पादन करती है -

(a) **श्रम-विभाजन की व्यवस्था** - जाति समाज का जन्मगत विभाजन है। प्रत्येक जाति के निश्चित कार्य और व्यवहार होते हैं। जाति प्रथा कर्म की भावना के आधार पर इन कार्यों की संचालित करने में सहायक होती है। भारतीय जाति व्यवस्था से पुनर्जन्म और कर्मफल की अवधारणा को स्वीकर किया गया है। सभी व्यक्ति अपने कार्यों को अपना अनिवार्य कर्त्तव्य समझकर करते हैं। इस प्रकार श्रम विभाजन की व्यवस्था द्वारा समस्त कार्यों का संचालन होता रहता है।

(b) **सामाजिक उन्नति** - जाति व्यवस्था समाज के विकास और प्रगति में भी सहायक है। सामाजिक प्रगति की दृष्टि से जाति निम्न दो महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करती है -

(i) समाज के प्रत्येक सदस्यों के कार्यों का निर्धारण करना और इस प्रकार जातीय सदस्यों को मानसिक निराशा और अन्तर्द्वन्द्व से मुक्ति दिलाना, तथा

(ii) सामाजिक एकता और संगठन को बनाये रखना ।

(c) **समाजवादी व्यवस्था की स्थापना - डॉ. भगवानदास** ने जाति- प्रथा को अतीत काल के प्रचलित वैज्ञानिक समाजवाद की संज्ञा दी है। जाति- प्रथा सिर्फ व्यवसाय का ही निर्धारण नहीं करती, अपितु धर्म, विवाह, शिक्षा, मित्रता, व्यक्तिगत स्थान आदि का भी निर्धारण करती है। व्यक्ति को एक ओर जहाँ स्थायी संस्था का सदस्य बनाती है, वहीं दूसरी ओर उसे अपूर्ण आकांक्षा और सामाजिक ईर्ष्या जैसे सामाजिक व्याधियों (Social Pathologies) से भी मुक्ति दिलाती है। जाति के सदस्यों में सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समानताएँ पायी जाती हैं। इन समानताओं के कारण प्रजातान्त्रिक समाजवाद (Democratic Socialism) की स्थापना में मदद मिलती है।

(d) **शिक्षा और प्रशिक्षण की स्थापना** - जाति-प्रथा सामाजिक दृष्टिकोण से शिक्षा और प्रशिक्षण की व्यवस्था में सहायक है। जाति अपने सदस्यों की मनोवृत्ति (Attitudes) का निर्धारण करती है। जाति-प्रथा इस तथ्य का भी निर्धारण करती है कि व्यक्ति को किस प्रकार की शिक्षा मिलेगी। उदाहरण के लिये ब्राह्मण सन्तान को धर्म पर आधारित शिक्षा तथा वैश्य सन्तान को व्यापार और वाणिज्य पर आधारित शिक्षा की व्यवस्था करना। इसके साथ ही साथ जाति अपने सदस्यों को व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने की आधारशिला है।

NOTES

(e) **सुप्रजनन की शुद्धता** - जाति सुप्रजनन की शुद्धता (Purity of genetics) को भी निर्धारित करती है। सेजविक (Sedgwick) ने लिखा है कि जाति प्रथा में वैवाहिक निषेध पाये जाते हैं। इन वैवाहिक निषेधों के कारण किसी भी जाति के सदस्य को अपनी जाति से बाहर विवाह करने की अनुमति नहीं होती है। यही कारण है कि जाति समूह में वंशानुगत दोष नहीं हो पाते हैं ।

(f) **राजनैतिक स्थिरता** - जाति-प्रथा देश में राजनैतिक स्थिरता की स्थापना में महत्वपूर्ण कार्य करती है। यदि हम भारतीय इतिहास के पन्नों पर नजर डाले तो स्पष्ट होता है कि यहाँ अत्यन्त ही प्राचीन काल से विदेशियों के आक्रमण होते आये हैं। मुसलमान और अंग्रेज इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। भारत में इसकी संस्कृति की रक्षा करने में जाति की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इसी ने भारतीय संस्कृति को नष्ट होने से बचाया है और इस प्रकार राजनैतिक एकता को स्थायी रखने में मदद की है। अबे डुबोइस (Abbe Dubois) ने लिखा है कि जब यूरोप बर्बरता में डूबा था, उस समय भी भारत का मस्तक ऊँचा था तथा भारत ने उस समय भी कला, विज्ञान और संस्कृति का विकास तथा संरक्षण किया था। इन सबका श्रेय **श्री डुबोइस** ने भारतीय जाति-प्रथा को दिया है। इसीलिए **श्री हिल** ने "जाति-प्रथा को एक ऐसी सामाजिक प्रथा माना है, जिसका आधार दैवीय शक्ति से भी दृढ़ है।"

इस प्रकार स्पष्ट है कि जाति-प्रथा ने हिन्दू समाज के विकास और संरक्षण में महत्वपूर्ण योग प्रदान किया है। जाति-प्रथा ने विभिन्न सामुदायिक संगठनों को एक सूत्र में बाँधा, तथा सामाजिक और राष्ट्रीय एकता को स्थायी बनाया। जाति-प्रथा ने जहाँ विभिन्न समूहों को एकता के सूत्र में बाँधा वहीं जातीय प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष को भी समाप्त किया है। जाति-प्रथा ने श्रम-विभाजन को सरल बनाकर व्यक्तियों को अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों का बोध कराया है।

जाति-प्रथा के अकार्य या दोष या हानियाँ
(Dysfunctions or Demerits or Disadvantages of Caste System)

भारतवर्ष में जाति-प्रथा के भले ही अपने लाभ रहे हों तथा यह व्यक्तिगत, सामुदायिक तथा सामाजिक दृष्टि से कितनी ही उपयोगी क्यों न रही हो, वर्तमान भारत की बदलती हुई परिस्थितियों में जाति-प्रथा देश के लिए वरदान की अपेक्षा अभिशाप बन गई है। यही कारण है कि जाति-प्रथा के कारण देश को अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। **डॉ. राधाकृष्णन** ने ठीक ही लिखा है कि- दुर्भाग्यवश यही जाति-प्रथा जिसे सामाजिक संगठन को नष्ट होने से बचाने के लिए साधन के रूप में विकसित किया गया था, आज उसकी उन्नति में बाधक बन रही है।" भारतीय संविधान के निर्माता तथा स्वतन्त्र भारत के प्रथम विधिमन्त्री **डॉ. भीमराव अम्बेडकर** ने कहा है कि भारतीय सभ्यता को अत्यन्त कठिनता के साथ सभ्यता कहा जा सकता है। इसलिये **रिजले** ने जाति-प्रथा को निम्न स्तर का संगठन कहा है, जो विभक्त होकर उत्पन्न होती है विकास के प्रत्येक पग पर उन्नति की शक्ति को या उसी को या उसी कार्य शैली को जिसे वह मानने को कहती है, घटाती है।"

जाति-प्रथा के प्रमुख अकार्य, दोष या हानियाँ निम्नलिखित हैं-

(1) **सामाजिक दृष्टिकोण से** (From social point of view) -

सामाजिक दृष्टिकोण से जाति-प्रथा के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं -

(a) **सांस्कृतिक उन्नति में बाधा-** जाति-प्रथा अनेक विभाजन और ऊँच-नीच की भावना पर आधारित सामाजिक स्तरीकरण की व्यवस्था है। प्रत्येक जाति की अपनी सांस्कृतिक विशेषताएँ होती हैं। ये सांस्कृतिक विशेषताएँ एक दूसरे से भिन्न होती हैं। इस भिन्नता के कारण सांस्कृतिक एकता की स्थापना में कठिनाई होती है। इस भेदभाव और भिन्नता के कारण एक समूह दूसरे समूह से अलग हो जाता है, उनमें सामाजिक दूरी का विकास हो जाता है। अनेक अवसरों पर सांस्कृतिक समूहों से घृणा और द्वेष की भावना का विकास हो जाता है। यह भावना एक-दूसरे की संस्कृति को समाप्त करने का प्रयास करती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि देश की संस्कृति की उन्नति में बाधा उत्पन्न होती है।

(b) **धर्म-परिवर्तन-** जाति प्रथा के कारण धर्म-परिवर्तन को प्रोत्साहन मिलता है। निम्न दो कारण धर्म-परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करते हैं -

(i) कठोर जातीय प्रतिबन्ध, और (ii) उच्च जातियों का अहम तथा अत्याचार।

जाति-प्रथा ने निम्न जातियों की स्थिति को अत्यन्त ही दयनीय बना दिया है तथा उन्हें अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक अयोग्यताओं का सामना करना पड़ता है। इस कठोरता के कारण हजारों हिन्दुओं ने अपने धर्म को त्याग कर ईसाई और मुसलमान धर्म को स्वीकार कर लिया है। इससे जहाँ एक ओर जातीय संगठन शिथिल होता है, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीय एकता में भी बाधा उत्पन्न होती है।

(c) **अस्पृश्यता को प्रोत्साहन** - जाति प्रथा के कारण अस्पृश्यता को भी प्रोत्साहन मिलता है। हिन्दू समाज की यह अस्पृश्यता अत्यन्त ही अमानुषिक है जो मानव-मानव में भेद तथा शोषण पर आधारित है। अस्पृश्यता में सिर्फ छूने का ही निषेध नहीं है, अपितु इसमें अप्रवेश्यता और अदर्शनीयता के नियम भी पाये जाते हैं। जाति-प्रथा ने जिस थोड़े आदर्शों का प्रतिपादन किया है, उसने समाज के नागरिकों को अनेक अधिकारों और कर्त्तव्यों से वंचित कर दिया है। इसका परिणाम यह होता है कि मानव समाज में घृणा और द्वेष का बीजारोपण होता है।

(d) **स्त्रियों की निम्न स्थिति** - भारतीय समाज में स्त्रियों की दुर्दशा के लिए जाति-प्रथा को दोषी "हराया जा सकता है। इसका कारण यह है कि जाति प्रथा ने भारतीय समाज में नागरिकों के जीवन में अनेक कठोर प्रतिबन्धों का प्रतिपादन किया है। इन प्रतिबन्धों में बाल-विवाह, अशिक्षा, दहेज प्रथा और विधवा विवाह पर रोक आदि प्रमुख है। इन प्रतिबन्धों ने भारतीय समाज में नारी के व्यक्तित्व को कुण्ठित कर दिया है। इन प्रतिबन्धों ने जहाँ एक ओर स्त्रियों के व्यक्तित्व के विकास में बाधा उत्पन्न की है, वहीं दूसरी ओर उन्हें आर्थिक दृष्टि से परतंत्र भी बनाया है। इन प्रतिबन्धों के कारण स्त्री पति की दासी, चूल्हा फूकने वाली, घर की चारदीवारी में बन्द बच्चे पैदा करने की यन्त्र मात्र बनकर रह गयी है।

(e) **उच्च जाति की तानाशाही** - जाति प्रथा भारतीय सामाजिक स्तरीकरण की वह व्यवस्था है, जिसमें उच्च जाति के सदस्यों को अनेक प्रकार के विशेषाधिकार प्रदान किये गये हैं। समाज में जब किसी वर्ग-विशेष को विशेष अधिकार प्रदान किये जाते हैं, तो उनका परिणाम समाज के सामने निम्न वर्ग के साथ अन्याय के रूप में प्रकट होता है। जाति-प्रथा ही वह कारण है जिसने निम्न जाति के सदस्यों को पशुत्व जीवन व्यतीत करने के लिए बाध्य किया है। समाज में "देवदासी" नामक कुप्रथा का प्रचलन उच्च जाति के सदस्यों के कुकर्मों का ही परिणाम है।

(f) **भाग्यवाद को प्रोत्साहन** - जाति-प्रथा ने भाग्यवाद और कर्मफल जैसे सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके मानव समाज के एक भाग को अकर्मण्य और निठल्ला बना दिया है। यही कारण है कि भारतीय समाजवाद रूढ़िवाद, परम्परा और अन्धविश्वास का शिकार है। जाति-प्रथा में सभी व्यक्तियों के कार्य और व्यवसाय पूर्व-निर्धारित होते हैं तथा उनका एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरण होता रहता है। इस व्यवस्था में व्यक्ति के प्रयासों को कोई खास महत्व नहीं दिया जाता है। यह व्यवस्था व्यक्ति को आलसी बनाती है तथा सारा समाज भाग्यवाद के शिकंजे में जकड़ जाता है।

(g) **सामाजिक समस्याओं का जन्म** - जाति प्रथा अनेक कठोर प्रतिबन्धों पर आधारित है। इन प्रतिबन्धों में अन्तर्विवाह प्रमुख है। इस प्रतिबन्ध के कारण विवाह की अनेक समस्याओं का जन्म होता है। इस समस्याओं में बाल-विवाह, विधवा-विवाह पर रोक, कुलीन विवाह तथा दहेज-प्रथा प्रमुख है। कुलीन विवाह की प्रथा के कारण माता-पिता अपनी कन्या का विवाह कुलीन परिवार में करना चाहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि कुलीन परिवार के "वर" की माँग बढ़ जाती है। माँग अधिक हो जाने से तथा पूर्ति के साधन सीमित होने के कारण दहेज-प्रथा को प्रोत्साहन मिलता है। दहेज-प्रथा बाल-विवाह को प्रोत्साहित करती हैं। उपर्युक्त समस्याएँ अनेक सामाजिक बुराइयों को जन्म देती हैं। इन बुराइयों के कारण हिन्दू समाज में विघटनकारी शक्तियाँ क्रियाशील हो जाती हैं।

(h) **प्रगति में बाधक** - प्रजातन्त्र, समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता सामाजिक प्रगति के आधार-स्तम्भ हैं। निश्चित रूप से जाति प्रथा अप्रजातान्त्रिक व्यवस्था है, जो भेदभाव पर आधारित है। जाति प्रथा जीवन को रूढ़िवाद और परम्परा की ओर ले जाती है। इसके साथ जीवन में अनेक प्रतिबन्धों का प्रतिपादन करती है। इससे सदस्यों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण और नये जीवन आदर्शों का पालन नहीं हो पाता है। जातीय संस्तरण की व्यवस्था सदस्यों में भेदभाव को विकसित करती है। उपर्युक्त दुर्गुणों को कारण जाति प्रथा भारतीय समाज को दुर्गुणों से भर देती है। इससे समाज की प्रगति में बाधा उत्पन्न होती है।

(2) **आर्थिक दृष्टिकोण से** (From economic point of view)-

आर्थिक दृष्टिकोण से जाति प्रथा के प्रमुख दोष निम्नलिखित हैं -

(a) **कृषि की उन्नति में बाधक** - जाति प्रथा और कृषि भारतीय परम्परात्मक ग्रामीण समाज की आधारशिलाएँ हैं। जाति प्रथा की परम्परात्मक प्रकृति ने कृषि की प्राचीन पति को प्रोत्साहित किया है। खाद को अपवित्र मानकर इसका उचित रूप से उपयोग नहीं किया जाता है। इसके साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अभाव के कारण भी खेती की उन्नत विधियों को नहीं अपनाया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि कृषि की उन्नति नहीं हो पाती है। कृषि की उन्नति न होने से देश का आर्थिक विकास नहीं हो पाता है।

NOTES

(b) **श्रम की गतिशीलता मे बाधक -** जाति निश्चित व्यवसायों पर आधारित है जो परम्परात्मक रूप से एक पीढ़ी से दूसरे पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। जातीय प्रतिबन्धों के कारण व्यक्ति जातीय व्यवसायों का बहिष्कार नहीं कर सकते हैं। इसमें व्यक्ति जहाँ एक ओर गतिहीन एवं रूढ़िवादी हो जाता है, वहीं दूसरी ओर उसमें नवीन आविष्कारों के प्रति बाहरी प्रेरणा समाप्त हो जाती है। जाति व्यक्ति की योग्यता को महत्व प्रदान नहीं करती है। इसका परिणाम यह होता है कि योग्य व्यक्तियों की जीवन के प्रति उच्च आकांक्षाएँ समाप्त हो जाती हैं। इस प्रकार जाति प्रथा श्रम की गतिशीलता में सबसे बड़ी बाधा है।

(c) **श्रम की कुशलता में बाधक -** जाति प्रथा जहाँ एक ओर श्रमिकों में गतिशीलता की भावना को समाप्त करती है, वहीं दूसरी ओर श्रमिकों की व्यावसायिक कुशलता में भी बाधा उपस्थित करती है। जाति प्रथा अपने प्रतिबन्धों पर आधारित है। भारत एक निर्धन देश है। यहाँ श्रमिकों को पर्याप्त मात्रा में दूध, घी नहीं मिल पाते हैं। इसके साथ ही जाति के अनेक सदस्यों को भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्ध के द्वारा अण्डा, माँस आदि खाने पर प्रतिबन्ध लगाती है। इससे श्रमिकों का स्वास्थ्य गिर जाता है, जिससे उनकी कार्यकुशलता पर प्रतिकूल असर पड़ता है।

(d) **आर्थिक प्रगति में बाधक -** जाति प्रथा देश की आर्थिक प्रगति में सबसे बडी बाधा है। जाति प्रथा प्रतिबन्धात्मक श्रम विभाजन पर आधारित है। इसमें आर्थिक गतिशीलता एवं प्रगति को कोई स्थान नहीं है। देश कुलीन श्रमिक के श्रम से वंचित रह जाता है। जाति प्रथा ने देश को अलग - अलग समूहों में बाँट कर सामुदायिक भावना को समाप्त किया है । जाति प्रथा के कारण देश के सभी नागरिकों को एक साथ आर्थिक विकास की ओर सोचने का मौका नहीं मिलता। जातीय भावना पक्षपात और जातीय हितों को प्रोत्साहित करती है। अनेक उद्योग संस्थान ऐसे हैं, जहाँ जाति के आधार पर व्यक्तियों को नियुक्त किया जाता है। इससे आर्थिक प्रगति रूकती है तथा देश के आर्थिक विकास में बाधा उत्पन्न होती है।

(3) **राजनैतिक दृष्टिकोण से** (From Political Point of View)-

राजनैतिक दृष्टिकोण से जाति प्रथा के निम्नलिखित दोष हैं -

(a) **राष्ट्रीयता में बाधक -** जाति प्रथा में ऊँच और नीच की भावना होती है, जिससे व्यक्ति विभिन्न संस्तरणों में विभाजित हो जाते हैं। यह संस्तरण एक व्यक्ति को दूसरे से अलग कर देता है जिससे सदस्यों में भेदभाव की भावना का विकास हो जाता है। इससे सदस्यों में हम की भावना (We Feeling) का विकास नहीं हो पाता है। देश खण्डों तथा उपखण्डों में विभाजित हो जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्रीय एकता और समानता की भावना का विकास नहीं हो पाता है। यही कारण है कि जाति प्रथा सुसंगठित राष्ट्रीयता के विकास में बाधा उत्पन्न करती है।

(b) **राजनैतिक एकता में बाधक -** जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है जातिप्रथा समाज को खण्डों और उपखण्डों विभाजित कर देती है। इसका परिणाम यह होता है कि राजनैतिक एकता समाप्त हो जाती है। यही वह विभाजन था, जिसका लाभ उठाकर विदेशियों ने शताब्दियों तक देश को गुलामी की जंजीरों में जकडे रखा। आज भी भारत में जातिप्रथा के दुष्परिणामों को देखा जा सकता है।

(c) **प्रजातन्त्र के विकास में बाधक -** वास्तव में जाति प्रथा और प्रजातन्त्र दो विरोधी आदर्शों पर आधारित अवधारणाएँ हैं। प्रजातन्त्र स्वतन्त्रता, समानता और भाई-चारे पर आधारित शासन व्यवस्था है। जाति प्रथा इन आदर्शों को कोई महत्व नहीं देती है। जाति प्रथा में जहाँ एक ओर भोजन, व्यवसाय और वैवाहिक प्रतिबन्ध है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दृष्टि से असमानतायें हैं। इनसे जातीय सदस्यों के बीच घृणा और द्वेष की भावना का विकास होता है। इससे जातीय सदस्यों के बीच घृणा और द्वेष की भावना का विकास भी नहीं हो पाता है। इन परिस्थितियों में जाति और प्रजातन्त्रीय आदर्श मात्र कोरी कल्पना प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार जाति प्रथा अनेक गम्भीर बुराइयों से ओतप्रोत है। इन बुराइयों के कारण जहाँ एक ओर समाज का वातावरण दूषित होता है, वहीं दूसरी ओर सामाजिक संगठन भी शिथिल होता है। जाति प्रथा भले ही अनेक बुराइयों से परिपूर्ण हो, किन्तु इसे एक झटके में समाप्त नहीं किया जा सकता है। शायद ऐसा करना भी अत्यन्त ही कठिन कार्य होगा। जाति प्रथा में अनेक दोषों के बावजूद भी व्यावसायिक सुरक्षा तथा श्रम-विभाजन जैसे सिद्धान्तों को स्थान प्रदान किया गया है। यही कारण है कि **हट्टन** (Hutton) ने जाति प्रथा को उपयोगी कहा है। फिर भी आज इसमें अनेक बुराइयों का समावेश हो गया है, जिसको समाप्त करना देश के हर नागरिक का मौलिक कर्त्तव्य होना चाहिए तथा इस कार्य को अत्यन्त ही पवित्र भावना से सम्पादित किया जाना चाहिए।

जाति व्यवस्था में परिवर्तन
(Changes in Caste System)

अनेक शताब्दियों में जाति प्रथा भारतीय समाज और संस्कृति के आधार में रही है। इससे यह हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गयी। वर्तमान भारतीय जीवन में परिवर्तन हो रहे हैं। इस परिवर्तनों के कारण जाति प्रथा के परम्परात्मक स्वरूप में परिवर्तन हो रहा है। यही कारण है कि समकालीन भारतीय समाज में जाति प्रथा की वर्तमान प्रवृत्तियाँ परिलक्षित हो रही है। समकालीन भारतीय समाज में जाति में जो प्रमुख परिवर्तन हो रहे हैं, वे निम्नलिखित हैं -

(1) **जातीय प्रभुत्व में कमी** - जाति प्रथा जातीय प्रभुत्व पर आधारित होती है। इसमें कुछ जातियों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए भारतीय जाति संरचना में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोच्च था। भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में भले ही ब्राह्मणों की प्रभुता में कम परिवर्तन हुए हों, किन्तु नगरीय जीवन में इस प्रभुता में गिरावट आई है। समकालीन भारत में जातीय प्रभुत्व में यह कमी निम्न कारणों से आई है-

(i) औद्योगीकरण एवं नगरीकरण, (ii) प्रजातन्त्रीकरण एवं धर्मनिरपेक्षीकरण, (iii) फैशन और आधुनिकता, (iv) देश की आर्थिक संरचना में परिवर्तन तथा नये वर्गों का उदय।

(2) **जातीय प्रतिबन्धों में गिरावट** - जाति प्रथा की दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है - जाति प्रथा के प्रतिबन्धों में गिरावट का होना। जाति प्रथा के जिन प्रतिबन्धों में गिरावट आई है वे निम्नलिखित हैं -

(a) वैवाहिक प्रतिबन्धों में गिरावट-समकालीन भारतीय समाज में निम्न वैवाहिक परिवर्तन हो रहे हैं-

(i) विवाह के पवित्र आधार में परिवर्तन, (ii) अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन, (iii) प्रेम-विवाह की ओर अधिक रूझान, (iv) पुनर्विवाह में वृद्धि, (v) विलम्ब विवाह, और (vi) अविवाह की ओर प्रवृत्ति।

(b) **व्यावसायिक प्रतिबन्धों में गिरावट** - जाति का दूसरा महत्वपूर्ण प्रतिबन्ध निश्चित व्यवसाय का होना है। ये निश्चित व्यवसाय वंश-परम्परागत रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होते रहते थे। समकालीन भारतीय सामाजिक जीवन में निम्न व्यावसायिक परिवर्तन हो रहे हैं -

(i) धन के प्रति अधिक लगाव, (ii) परम्परात्मक व्यवसायों के प्रति उदासीनता, (iii) कृषि की उन्नति, (iv) नये व्यवसायों का जन्म और (v) औद्योगीकरण तथा नवीनीकरण।

व्यावसायिक संरचना में उपर्युक्त परिवर्तन के कारण व्यवसाय सम्बन्धी प्रतिमानों में परिवर्तन हो रहे हैं। व्यवसाय में इन परिवर्तनों के बावजूद भी जाति के व्यावसायिक संरचना में आमूल परिवर्तन नहीं हुए हैं। **डॉ. योगेश अटल** ने इस प्रकार का अध्ययन किया था। मध्यप्रदेश और राजस्थान के गाँवों का अध्ययन करने के बाद उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि परम्परागत व्यवसायों को छोड़ने के उदाहरण नहीं मिले हैं ।

(c) **भोजन-निषेधों में परिवर्तन** - प्रत्येक जाति के भोजन सम्बन्धी निश्चित नियम और निषेध होते थे, किन्तु समकालीन भारतीय समाज में इन निषेधों के महत्व में भी कमी होती जा रही है। नगरीकरण और औद्योगीकरण ने नई सामाजिक परिस्थितियों को जन्म दिया था। होटल और जलपान गृहों के महत्व में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है। सहभोज और प्रीतिभोज निरन्तर लोकप्रिय होते जा रहे हैं। इन परिस्थितियों के कारण जाति के भोजन सम्बन्धी निषेध भी शिथिल हो रहे हैं।

(3) **जाति पंचायत के महत्व में कमी** - भारत में प्रत्येक जाति की अपनी जातीय पंचायत होती थी। इसे "बिरादरी पंचायतठ के नाम से जाना जाता था। पंचायतें आदिकाल से जातीय झगड़ों का निपटारा करती आ रही थीं। आज जातीय पंचायतों के महत्व में कमी होती जा रही है। जातीय नियम और कानून शिथिल होते जा रहे हैं। न्यायालयों के विकास के कारण जातीय फैसलों का आज कोई महत्व नहीं रह गया है।

(4) **छुआछूत की भावना में कमी** - छुआछूत की भावना जातीय व्यवस्था का आधार था। समकालीन भारतीय समाज में निम्न परिवर्तन हुए हैं, जिनसे छुआछूत की भावना में कमी आई है -

(i) अस्पृश्यों की अयोग्यताओं का निवारण,

(ii) नौकरियों, शिक्षा तथा प्रशिक्षणों में स्थानों का संरक्षण,

(iii) धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक आन्दोलन ।

NOTES

(5) जातिवाद की भावना का विकास - जाति प्रथा की सबसे भयंकर प्रवृत्ति जातिवाद है। आज भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में जातिवाद की बीमारी के दर्शन हो रहे हैं। जहाँ एक ओर जाति की बाहरी संरचना शिथिल हुई है, वहीं दूसरी ओर जातिवाद की भावना का विकास हुआ है।

जाति प्रथा को स्थायी रखने वाले तत्व
(Factors for stability of Caste System)

जाति प्रथा के गुण-दोषों के पश्चात् यह जानना आवश्यक है कि ऐसे कौन से तत्व हैं जिनके कारण जाति प्रथा स्थायी रहती है। संक्षेप में निम्न तत्व जाति प्रथा को स्थायित्व प्रदान करते हैं-

(1) यह समाज को स्थिर रखती है, जहाँ सामाजिक परिवर्तन कम होते है वहाँ जाति प्रथा को स्थायित्व मिलता है।

(2) आवागमन के साधनों का अभाव भी जाति प्रथा को स्थिरता प्रदान करता है।

(3) भौगोलिक परिस्थितियाँ-बीहड़ जंगल, नदी-नाले आदि भी जाति व्यवस्था को स्थायी रखते हैं।

(4) उस समय में जाति व्यवस्था अधिक स्थायी रहेगी- जहाँ शिक्षा का अभाव होगा - अधिकांश जनता अशिक्षित होगी।

(5) जिन समाजों में विभिन्न प्रजाति के लोग पाये जायेंगे, तो स्वाभाविक रूप से समाज के व्यक्तियों में विभिन्न शारीरिक लक्षण होंगे। अत: जाति प्रथा को प्रोत्साहन मिलता है।

(6) जहाँ समाज का ढाँचा ग्रामीण होगा, वहाँ जाति व्यवस्था को प्रोत्साहन मिलेगा, क्योंकि ग्रामीण लोग अन्धविश्वासी होते हैं ।

जाति प्रथा के विरोधी तत्व
(Factors against Caste System)

(1) शिक्षा और बढ़ता हुआ ज्ञान जाति प्रथा को समाप्त करने में सहायक है। वास्तव में शिक्षा ही एक ऐसा तत्व है जिसने सम्पूर्ण जाति व्यवस्था में हलचल पैदा कर दी है।

(2) आवागमन और संदेशवाहन के साधनों की वृद्धि के कारण भी जाति व्यवस्था का पतन हो रहा है।

(3) औद्योगिक समाज ने कल-कारखानों की वृद्धि के साथ मानव सम्पर्क को बढ़ा दिया है, इससे जाति का महत्व कम हो गया है।

(4) विज्ञान ने जाति प्रथा के उस आधार को असत्य कर दिया जिस पर जाति प्रथा टिकी थी, उदाहरण के लिए शुद्ध रक्त का सिद्धान्त, जिससे यह सिद्ध हो गया है कि कोई रक्त शुद्ध और श्रेष्ठ नहीं है।

(5) भारतीय स्वतन्त्रता ने जाति प्रथा को समाप्त करने में योग दिया है। भारतीय संविधान के अनुसार सब नागरिक समान हैं।

(6) देशी राज्यों की समाप्ति के साथ जाति-प्रथा भी समाप्ति की ओर है।

(7) धार्मिक सुधारकों - स्वामी दयानन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, राजा राममोहन राय, स्वामी विवेकानन्द आदि ने जाति-प्रथा को व्यर्थ बताया है।

(8) आज समाज में धन का महत्व बढ़ रहा है और जैसे-जैसे धन का महत्व बढ़ रहा है जाति-व्यवस्था समाप्त होती जा रही है।

(9) महात्मा गाँधी व कांग्रेस सरकार के प्रयत्नों से भी जाति-प्रथा का महत्व कम हो गया है ।

(10) साम्यवाद के कारण भी जाति प्रथा का महत्व कम हो रहा है। पणिक्कर ने साम्यवाद की चर्चा करते हुए लिखा है कि साम्यवाद जाति प्रथा को हिन्दू धर्म में रहते हुए मिटाने की चेष्टा कर रहा है।

(11) जाति प्रथा को प्रश्रय ग्रामीण ढाँचे मे ही मिलता है। नगरीकरण के बदलते हुए चरण के कारण भी जाति प्रथा समाप्ति की ओर है।

(12) पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव से भी जाति व्यवस्था प्रभावहीन हो रही है।

(13) जाति-विरोधी प्रचार भी जाति-प्रथा की स्थिरता को समाप्त करने में सहायक है।

(14) शिक्षा और पाश्चात्य संस्कृति के परिणामस्वरूप आज प्रेम-विवाहों की संख्या में वृद्धि हो रही है, इससे भी जाति प्रथा समाप्त हो रही है।

(15) संयुक्त परिवार का विघटन भी जाति प्रथा को समाप्त करने में सहायक है।

(16) स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अनेक अधिनियमों का निर्माण किया गया। इन अधिनियमों के प्रभाव ने भी जाति प्रथा को समाप्त करने में सहायता की है। अधिनियमों में प्रमुख निम्न हैं -

NOTES

(a) विशेष विवाह अधिनियम, 1954, (b) हिन्दू विवाह तथा विवाह-विच्छेद अधिनियम, 1955, (c) हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956, (d) दहेज निरोधक अधिनियम, 1961, (e) अस्पृश्यता (अपराध) अधिनियम, 1955

जाति का भविष्य
(Future of the Caste)

चूँकि समाजशास्त्र भविष्यवाणी करने वाला विज्ञान नहीं है, अत: किसी संस्था अथवा सामाजिक घटना के बारे में भविष्यवाणी करना उचित नहीं है। जाति प्रथा भारत की विशेषता है। यह सार्वभौमिक घटना नहीं है। इस दृष्टि से भारतीय परिवेश में जाति प्रथा में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उन्हें दृष्टि में रखते हुए यह कहना उचित है कि जाति का भविष्य क्या है ?

आधुनिक भारतीय समाज तीव्र गति से बदल रहा है। नगरीकरण तथा औद्योगीकरण, संवैधानिक प्रावधान तथा प्रजातंत्रीकरण, पश्चिम का प्रभाव, आधुनिकीकरण तथा संस्कृतिकरण और इसी प्रकार संस्कृति के अनेक वाहक भारतीय जाति प्रथा को प्रभावित कर रहे हैं। इस प्रभाव के कारण जाति प्रथा में जो परिवर्तन हो रहे हैं, उन परिवर्तनों के आधार पर जाति प्रथा के बारे में भविष्यवाणी की जा सकती है।

उपर्युक्त तथ्यों के मद्देनजर यह कहा जा सकता है कि जाति की संरचना में परिवर्तन हो रहे हैं, किन्तु कार्यों में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हो रहा है। भारतीय समाज में आज भी जाति का महत्व है और यह विवाह, खानपान, आदि में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। प्रोफेसर श्रीनिवास का विचार है कि "मैं आपको स्पष्ट शब्दों में कह देना चाहता हूँ कि यदि आप सोच रहे हैं कि जाति से सरलता से मुक्ति पा सकते हैं, तो आप गंभीर त्रुटि कर रहे हैं। जाति एक बहुत ही शक्तिशाली संस्था है और यह समाप्त होने के पूर्व बहुत ही खून खराबा करेगी।"

वर्ग के परिवर्तित आयाम
(Changing Dimensions of Class)

प्रत्येक समाज चाहे वह आदिम हो अथवा आधुनिक, सामाजिक स्तरीकरण की कोई न कोई व्यवस्था पाई जाती है।

वर्ग सामाजिक स्तरीकरण की आधुनिक व्यवस्था है। यदि आधुनिक समाज को वर्ग प्रधान समाज कहा जाये तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। सामाजिक परिवर्तन एवं आधुनिकीकरण ने वर्ग व्यवस्था को प्रोत्साहित किया है। आज का युग औद्योगिक युग है। इस युग में धन का महत्व है तथा इसे ही प्रधानता दी जाती है। अत: धन तथा पद के आधार पर अनेक वर्गों का विकास हो रहा है। वर्ग की अवधारणा यद्यपि काफी प्राचीन है, किन्तु कार्ल मार्क्स ने पहली बार वर्ग सिद्धान्त की विधिवत विवेचना की है।

वर्ग की परिभाषा
(Definition of Class)

(1) **लैपियर** - सामाजिक वर्ग व्यक्तियों के एक दो या अधिक समूह है, जिन्हें समुदाय के सदस्यों द्वारा सामाजिक रूप से श्रेष्ठ एवं अश्रेष्ठ पदों में श्रेणीबद्ध किया जाता है।

(2) **मैक्सवेबर** - वर्ग व्यक्तियों के समूह है, जिन्हें सुविधाएँ प्राप्त करने के समान अवसर प्राप्त हैं तथा जिनका जीवनस्तर समान है। यह समुदाय का एक अंश या व्यक्तियों का संग्रह है, जिसके सदस्य एक दूसरे के समान हैं तथा जो समुदाय के अन्य अंशों से श्रेष्ठता एवं अश्रेष्ठता के मान्य अथवा स्वीकृत मापदण्डों के आधार पर प्रथक है। "

(3) **मैकाइवर और पेज** - "सामाजिक वर्ग की एक भिन्न प्रस्थिति -समूह के रूप में व्याख्या एक सही अवधारणा है, जो किसी स्थान पर प्रचलित सामाजिक स्तरीकरण की प्रणाली पर सामान्यतया लागू होती है।"

NOTES

(4) **आगबर्न और निमकाफ** - ''एक सामाजिक वर्ग उन व्यक्तियों का योग है, जिनकी कि किसी समाज में आवश्यक रूप से समान सामाजिक स्थिति है।''

(5) **गौल्डनर** - ''एक सामाजिक वर्ग उन व्यक्तियों अथवा परिवारों के योग से बनता है, जिनकी आर्थिक स्थिति समान होती है।''

(6) **गिन्सवर्ग** - एक सामाजिक वर्ग ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो व्यवसाय, धन, शिक्षा, जीवनयापन की विधियों, विचारों, भावनाओं, मनोवृत्तियों और व्यवहारों में एक दूसरे के समान होते हैं अथवा इनमें से कुछ आधारों पर एक दूसरे से समानता अनुभव करते हुए अपने को समूह का सदस्य समझते हैं।''

वर्ग की विशेषताएँ
(Characteristics of Class)

वर्ग की उपर्युक्त परिभाषाओं को ध्यान में रखते हुए वर्ग की निम्न विशेषताएँ निरूपित की जा सकती है-

(1) **सोपानक्रम**- प्रत्येक में एक से अधिक वर्ग होते हैं और इन सभी वर्गों का समाज में विशिष्ट स्थान होता है। विद्यार्थी वर्ग, अध्यापक वर्ग, प्रशासक वर्ग, पूँजीपति वर्ग और श्रमिक वर्ग आदि। इन सभी वर्गों का सामाजिक ढाँचे (Social Structure) में एक विशिष्ट स्थान होता है अर्थात् कोई वर्ग शिखर पर होता है तो कोई धरातल पर।

(2) **निश्चित सुविधाएं** - वर्ग के सदस्यों को कुछ निश्चित सुविधाएँ प्राप्त होती हैं, जो कि अन्य वर्ग के व्यक्तियों को नहीं प्राप्त होती हैं। उदाहरण के लिए अध्यापक वर्ग में विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को अधिक सुविधाएँ हैं बनिस्वत स्कूलों के अध्यापकों के।

(3) **श्रेष्ठता अथवा हीनता की भावना** - जैसा कि संकेत दिया जा चुका है कि समाज अनेक वर्गों का योग है और इन वर्गों में एक सोपान (Hierarchy) है। इसी सोपानक्रम के अनुसार एक वर्ग के सदस्य दूसरे वर्ग के सदस्यों के प्रति श्रेष्ठता अथवा हीनता की भावना रखते और प्रदर्शित करते हैं ।

(4) **अन्त: सम्बन्धित** - वर्गों में सोपानक्रम है, उनमें श्रेष्ठता अथवा हीनता की भावना भी पाई जाती है, इसका अर्थ यह नहीं है कि वर्गों में अन्त:सम्बन्ध नहीं है, सभी वर्ग एक दूसरे से एक निश्चित सीमा तक अन्त:सम्बन्धित होते हैं।

(5) **वर्ग चेतना**- मार्क्स कहता है कि वर्तमान युग की सामाजिक रचना की जान इसकी वर्ग चेतना है। मनुष्य जिस वर्ग या श्रेणी का हो उसकी प्रबल भावना, अनुभूति का होना वर्ग चेतना है। डॉक्टर-डॉक्टर के स्वार्थ एक हैं, उनमें वर्ग चेतना है। वकील-वकील के, व्यापारी-व्यापारी के, अध्यापक-अध्यापक के स्वार्थ एक होते हैं, इसलिए इन सबमें अपने-अपने वर्ग की चेतना, अपने वर्ग के प्रति ''हम'' की भावना पाई जाती है। वर्तमान समाज में वर्ग चेतना के दो रूप हैं :

(i) **सामूहिक वर्ग चेतना** - जाति प्रथा में जो रूप जाति चेतना (Caste Consciousness) का था, यही रूप वर्तमान समाज में सामूहिक वर्ग चेतना का है। जब व्यक्तियों का एक ही स्वार्थ होता है तो वे एक वर्ग में बँध जाते हैं और यह भूल जाते हैं कि वे स्त्री हैं, पुरुष हैं, जवान हैं, वृद्ध हैं, हिन्दू हैं, मुसलमान हैं। वे सब अपने को एक समझते हैं। कभी-कभी इन वर्गों में उपवर्ग (Sub-class) भी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए अध्यापकों का एक वर्ग है, अब इस अध्यापक वर्ग में अनेक उपवर्ग हैं, जैसे प्राइमरी स्कूल अध्यापक वर्ग, हाईस्कूल अध्यापक वर्ग, महाविद्यालय अध्यापक वर्ग और विश्वविद्यालय अध्यापक वर्ग आदि। वर्ग के व्यक्ति वर्ग के प्रति सदैव जागरूक रहते हैं, यही कारण है कि जब वर्ग के व्यक्तियों द्वारा आंदोलन आदि होते हैं तो सभी व्यक्ति हाथ बँटाते हैं।

(ii) **प्रतिस्पर्धात्मक वर्ग चेतना** - जाति के बन्धन कठोर हैं अत: जाति परिवर्तन असम्भव सा होता है, अत: प्रतिस्पर्धा का सवाल ही नहीं उठता है। चूँकि वर्ग परिवर्तन सम्भव है अत: व्यक्ति निरंतर उच्च वर्ग में पहुँचने की प्रतिस्पर्धा करना है। समाज गतिशील है और इस गतिशीलता के कारण वर्ग चेतना के साथ ही वर्ग संघर्ष भी निरन्तर चलता रहता है। वर्ग की यह चेतना आगे चलकर वर्ग संघर्ष में परिणित हो जाती है।

(6) **वर्ग संघर्ष** - जब वर्ग चेतना अपने उच्चतम रूप में पहुँच जाती है तो वर्ग संघर्ष में परिणित हो जाती है। इस संघर्ष की अवस्था में हड़तालें होती हैं, जुलूस निकाले जाते हैं, कार्य बन्द हो जाते हैं और संघर्ष उग्र हो जाता है। इसीलिए तो मार्क्स कहता है कि संसार का इतिहास वर्ग संघर्ष का इतिहास रहा है। समाज सदैव वर्गों में विभाजित रहा है और इन वर्गों में संघर्ष होता रहा है ।

(7) **रहन-सहन का स्तर** - रहन-सहन का स्तर प्रत्येक वर्ग में समान होता है, देश और काल इसके अपवाद हैं। अध्यापक वर्ग का रहन-सहन एक प्रकार का होगा, विद्यार्थी वर्ग का एक प्रकार का। पूँजीपति वर्ग के रहन-सहन का स्तर श्रमिक वर्ग के रहन सहन के स्तर से भिन्न होगा।

(8) **आधार** - वर्ग के अनेक आधार होते हैं - जैसे राजनैतिक आधार, धार्मिक आधार, शैक्षणिक आधार आदि। वर्ग में विभिन्न लिंग (Sex) और आयु (Age) के व्यक्ति भी हो सकते हैं।

(9) **उपवर्ग** - एक वर्ग में अनेक उपवर्ग भी होते हैं। जैसे अध्यापक वर्ग, मजदूर वर्ग, छात्र वर्ग- अब इनके अनेक भाग हैं।

(10) वर्ग के सभी व्यक्तियों को जीवन के अवसर (Chances of life) समाज रूप से मिलते हैं जो अन्य वर्ग के व्यक्तियों को नहीं मिलते हैं।

(11) एक वर्ग के व्यक्ति आपस में बराबरी का व्यवहार करते हैं। इसके साथ ही दूसरे वर्ग के सदस्यों के साथ उनके सामाजिक सम्बन्ध (Social relations) सीमित होते हैं।

(12) एक वर्ग में अनेक जाति के व्यक्ति होते हैं। अत: उन देशों को छोड़कर जहाँ जाति व्यवस्था है, अधिकांशत: वर्ग अन्तर्विवाह (Class endogamy) को प्रोत्साहन देते हैं।

(13) वर्ग व्यवस्था में व्यक्ति के वैयक्तिक गुणों (Personal traits) को अधिक महत्व दिया जाता है। इसका प्रमाण यह है कि व्यक्ति अपने गुणों को अधिक बढ़ाने की कोशिश करता है।

(14) इस व्यवस्था में विभिन्न वर्गों को विभाजित करने की कोई निश्चित रेखा नहीं होती है। वर्गों के दरवाजे खुले रहते हैं, इसलिए दो वर्गों के बीच भी कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो निम्न वर्ग से उच्च वर्ग में जाने का प्रयत्न करते रहते हैं और ऐसा भी होता रहता है कि कुछ व्यक्ति कुछ विशेष कर्मियों के कारण नीचे गिर रहे होते हैं। ऐसे व्यक्तियों में कुछ विशेषताएँ उस वर्ग की होती हैं जिनमें कि वे पहले में और कुछ विशेषताएँ उस वर्ग की होती हैं, जिनमें कि वे जा रहे हैं।

(15) इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि सामाजिक वर्ग की व्यवस्था अत्यन्त अस्थिर होती है। यदि स्थिरता न हो तो सामाजिक व्यवस्था ही टूट जायेगी। हाँ, जाति-प्रथा की तुलना में यह कुछ कम स्थिर है।

(16) प्रथा व्यवस्था को "मुक्त वर्ग स्तरण" (Open Class Stratification) कहा जाता है, क्योंकि इसमें सब व्यक्तियों को अपना-अपना उत्थान करने का समान अधिकार प्राप्त है। वे अपने व्यक्तिगत गुणों के कारण इस स्तर से उच्च या निम्न वर्ग में जा सकते हैं क्योंकि इसमें उत्थान या पतन व्यक्ति के अपने हाथ में है। यह खुला वर्ग है जो जब आना चाहे आ सकता है और जब जाना चाहे जा भी सकता है।

(17) एक वर्ग का अस्तित्व तभी तक है जब तक अन्य वर्ग हों, यदि समाज वर्गहीन (Classless) है, वर्ग ही नहीं है तो किसके प्रति हीनता या श्रेष्ठता की भावना प्रदर्शित की जायेगी ? इसलिए अन्य वर्ग या वर्गों की उपस्थिति किसी वर्ग के जीवन के लिए अनिवार्य है।

वर्गों का आधार
(Basis of Classes)

समाज अनेक वर्गों में विभाजित है। लेकिन सामाजिक वर्गों के विभाजन का आधार क्या है? इस सम्बन्ध में दो दृष्टिकोण महत्वपूर्ण हैं - वैषयिक (Objective) तथा प्रतीतिक (Subjective)। वैषयिक आधार आर्थिक निर्धारणवाद (Economic Determinism) पर बल देता है। उनके विचार में उत्पादन के साधन, भूमि (Land) तथा पूँजी (Capital) का स्वामित्व (Ownership) पर स्वामित्व का अभाव ही सामाजिक वर्गों का आधार है। इस प्रकार स्वभावत: समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है - (i) पूँजीपति और (ii) गैर पूँजीपति। ऐसा मार्क्स (Karl Marx) का दृष्टिकोण है ।

NOTES

मैक्स वेबर (Max Weber) ने भी वर्ग की व्यवस्था में आर्थिक आधार को सम्मिलित किया है। इसके साथ ही वेबर का विश्वास है कि सामाजिक वर्ग की अपनी शक्ति भी होती है। इस शक्ति के द्वारा सामाजिक क्रियाओं व व्यवहारों का संचालन होता है तथा सामाजिक सम्बन्धों में भी इसी शक्ति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। वेबर ने इनकी सामान्य एवं आर्थिक शक्ति में भी भेद किया है। सामाजिक भिन्नता के साथ यह देखा जाता कि किसी समाज में आर्थिक शक्ति का अधिंक महत्व है तो अन्य समाजों में सामान्य शक्ति का। अब आर्थिक और सामान्य तत्व दोनों के आधार पर वर्ग बनते हैं। सामान्य तत्व का अर्थ बादृा जीवन स्तर (External Standard of Living), संस्कृति और मनोरंजन के अवसर है।

अमेरिकन समाजशास्त्रियों ने प्रतीति (Subjective) अवसरों की प्रधानता दी है "सामाजिक वर्ग जैसी कोई वस्तु नहीं हैं, परन्तु सोचने से ही उनका जन्म होता है।" (There are no classes but thinking makes them so)। इसी प्रकार मैकाइवर के भी विचार है- "यह पद की भावना ही है जो आर्थिक, राजनैतिक अथवा गिरजाघर की शासन सम्बन्धी शक्ति और जीवनयापन के विशेषकत्व ढंग और उनसे सम्बन्धित सांस्कृतिक कार्यों से जीवित या थमी हुई है और जो कि एक वर्ग को दूसरे वर्ग से अलग करती है, एक दूसरे को सम्बोधित करती है और एक सम्पूर्ण समाज का स्तरण करती है।"

मार्टिण्डेल और मोनाकेसी ने आय (Income) को वर्ग का मुख्य आधार बताया है। उत्पादन या सेना के साधनों का आधिपत्य और इससे प्राप्त पद वर्ग के उत्पत्ति का कारण है। वस्त्र, शिक्षा, रहन-सहन का स्तर, ये सब इस बात पर निर्भर करते हैं कि समाज में उत्पादित पदार्थों का कितना भाग उसे मिलता है अथवा उसकी आय क्या है? अत: स्पष्ट है कि वर्ग ऐसे व्यक्तियों का समूह है जो एक दूसरे से इस आधार पर मिलते जुलते है कि वे उस धन का समान भाग प्राप्त करते हैं जो समाज उत्पन्न करता है क्योकि आसानी से हम देख सकते है कि व्यक्तियों की सामाजिक क्रियाओं पर इन बातों का प्रभाव पड़ता है।

बीरस्टीड (Biersted) ने वर्ग के निम्न सात आधार बलताये हैं :-

(i) सम्पत्ति, धन, पूँजी या आय, (ii) परिवार का रक्त सम्बन्धी समूह, (iii) निवास का स्थान, (iv) निवास की अवधि, (v) व्यवसाय (vi) शिक्षा, (vii) धर्म।

भारतीय दृष्टिकोण

वर्गों के सम्बन्ध में भारतीय दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न है। उसका आधार कर्म (Action) है जन्म नहीं। पाश्चात्य दृष्टिकोण अस्तित्व के लिये संघर्ष और योग्यतम की जीत (Struggle for existence and survival of Fittest) के सिद्धांत पर आधारित है, जबकि भारतीय दृष्टिकोण पारस्परिक सहायता और सहयोग (Mutual aid and Co-operation) पर आधारित है। पाश्चात्य दृष्टिकोण व्यक्ति (Individual) और समूह (Group) को पृथक-पृथक अस्तित्व के रूप में स्वीकार कर इस विवाद को बढ़ावा देते हैं कि समाज व्यक्ति के लिये हैं या व्यक्ति समाज के लिये है? लेकिन भारतीय साहित्य में व्यक्ति और समूह को एक ही सिक्के के दो पहलुओं के रूप में स्वीकार किया गया है।

भारतीय सामाजिक संगठन का दार्शनिक आधार वर्ण-आश्रम-धर्म है। सामाजिक एकीकरण (Social integration) का समन्वय का यह सिद्धांत वैदिक संहिताओं में पाया जाता है। वैदिक ऋषियों का यह विश्वास था कि समाज को नष्ट होने से बचाने का अच्छा और निश्चयात्मक (Best & Surest) साधन व्यक्तियों को कार्यों के आधार पर समूहों में विभाजित करना है। इस विभाजन का पहला वर्ग ब्राह्मणों का था जो शिक्षक और गुरू (Teachers and Priests) होते थे, उनका कर्त्तव्य सामाजिक विरासत (Social heritage) की रक्षा करना और उसे आने वाली पीढ़ी तक पहुँचाना था। विचारों की शिक्षा और अध्ययन द्वारा ज्ञान वृद्धि उनका कर्त्तव्य था। ये बुद्धिजीवी प्राणी (Man of Intellect) थे जिनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के मुख से हुई थी। दूसरा वर्ग क्षत्रियों का था। ये क्रियाशील व्यक्ति (Man of action) होते थे जो समाज का संरक्षण करते थे। उनका कर्त्तव्य समाज में शांति और व्यवस्था (Peace & Order) को बनाये रखना तथा बाहरी आक्रमणों से रक्षा करना था। उनका जीवन सेवा और त्याग (Service & Sacrifice) पूर्ण था। इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के बाहु से हुई थी। तीसरा वर्ग वैश्यों का था, ये व्यापारी (Merchants) होते थे। उनका कार्य समाज के अन्य वर्गों की जीवन के आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के जाँघों (Thighs) से हुई थी। चतुर्थ वर्ग शूद्रों का था (Service) जिनका कार्य सेवा करना था। इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से हुई थी। जिस प्रकार शरीर के लिए सभी अंग महत्वपूर्ण है, कोई कम और कोई अधिक महत्व का नहीं है, उसी प्रकार समाज में व्यक्ति भी ऊँच-नीच नहीं है, कार्यों के आधार पर विभाजन के एक अंग मात्र है।

इस विभाजन का आधार सिर्फ मनोवैज्ञानिक, नैतिक, आर्थिक और प्राणिशास्त्रीय डॉ. मोटवानी के विचार भी कुछ ऐसे ही हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भारतीय चिन्तकों ने कर्म (Action) को सामाजिक वर्ग का आधार माना है। यदि बठ्ठाहमण अपना कार्य नहीं करता, तो स्वभावत: वह निम्न वर्ग में आ जाता है क्योंकि उसका नैतिक पतन हो जाता है अर्थात अपने स्थान से गिर जाता हे। अगर कोई शूद्र उच्च कर्म करता है तो स्वाभाविक रूप से उसके वर्ग के बन्धन टूट जाते है। कबीर, रैदास ऐसे ही उदाहरण है जो शूद्र कुल में पैदा होकर आज सन्त-महात्माओं, साहित्यिकों और समाज-सुधारकों के वर्ग में शोभित हो रहे हैं।

वर्गों के भेद
(Kinds of Classes)

अभी वर्गों के वर्गीकरण के आधारों का अध्ययन किया गया - इससे स्पष्ट है कि कोई ऐसा निश्चित आधार नहीं है जिससे वर्गों में भेद किया जा सके। फिर भी वर्ग के निम्न भेद हो सकते हैं :

(i) मुक्त और अमुक्त वर्ग (Open and Closed Class)

(ii) कर्मठ और विलासी वर्ग (Active and Leisure Class)

(iii) निम्न, मध्य और उच्च वर्ग (Lower, Middle and Upper Class)

(iv) पूँजीवादी और श्रमिक वर्ग (Capitalist and Labour Class)

(i) **मुक्त और अमुक्त वर्ग** - मुक्त वर्ग का आधार कर्म होता है। व्यक्ति अपने प्रयत्नों द्वारा इसका सदस्य हो सकता है। सामाजिक पद की दृष्टि से व्यक्ति के ऊँचे से नीचे और नीचे से ऊँचे वर्ग में पहुँचने के लिये कोई प्रतिबन्ध नहीं होते। बहुत-सी घटनाओं में सामाजिक पद उदा न होकर अर्जित पद होते हैं। अर्जित पदों में शिक्षक वर्ग, विद्वान वर्ग आदि है, ये पद पैतृक या जन्मजात नहीं होते हैं। अमुक्त वर्ग में वे पद हैं जो परम्परा द्वारा प्राप्त हो जाते हैं। इसमें जन्म (Birth) का स्थान है, कर्म का नहीं। ब्राह्मण जन्म से ब्राह्मण है और क्षत्रिय जन्म से क्षत्रिय।

(ii) **कर्मठ और विलासी वर्ग** - कर्मठ व्यक्ति वे हैं जो अपने श्रम से जीवन निर्वाह करते हैं और परोपजीवी होकर नहीं रहते हैं। इस वर्ग में श्रमिक, कृषक, व्यवसायी आदि। विलासी वे हैं जो समाज के लिए मच्छर बनकर उसका रक्त चूसते हैं। इनमें क्रियाशीलता का अभाव रहता है जैसे - जमींदार, तालुकेदार, महन्त आदि।

(iii) **निम्न, मध्य और उच्च वर्ग** - समाज की आर्थिक व्यवस्था और रहन-सहन के स्तर के आधार पर समाज को तीन वर्गों में विभाजित करते हैं। इस विभाजन की कोई निश्चित रेखा नहीं है।

(iv) **पूँजीवादी और श्रमिक वर्ग** - साम्यवादी विचारधारा के अनुसार समाज को दो वर्गों में बाँटा गया है, श्रमिक और पूँजीपति। पूँजीपति वर्ग समाज का शक्तिशाली वर्ग है और श्रमिक वर्ग इसके अधीन उत्पादन कार्य करते हैं।

जाति और वर्ग में अन्तर
(Distinction between Caste and Class)

उपर्युक्त व्याख्या से जाति और वर्ग की अलग-अलग धारणा स्पष्ट हो गई है। जाति और वर्ग अपने मौलिक रूप में एक दूसरे से भिन्न हैं। इन दोनों में प्रमुख अन्तर निम्न है:-

1. जाति का आधार जन्म है, जबकि वर्ग का आधार कर्म या व्यवसाय है।
2. जाति बन्द वर्ग है, जबकि वर्ग में खुलापन होता है।
3. जाति प्रदत्त पद है जबकि वर्ग में खुलापन होता है।
4. जाति अन्तर्विवाह होते हैं, वर्ग बहिर्विवाही।
5. जाति के व्यवसाय पूर्व निश्चित होते हैं, वर्ग के नहीं।
6. जाति का आधार सामाजिक प्रतिष्ठा है जबकि वर्ग का आधार आर्थिक प्रतिष्ठा है।

NOTES

वर्ग - चेतना
(Class Consciousness)

प्रत्येक समाज में सामाजिक स्तरीकरण पाया जाता है। सामाजिक स्तरीकरण से वर्गों का निर्माण होता है। इन वर्गों के कार्य व्यवहार तथा जीवन शैली अलग- अलग होती है। कार्य व्यवहार तथा जीवन शैली के अलग होने के कारण वर्गों में चेतना का विकास हो जाता है। जब वर्गों में अपने प्रति जागरूकता की भावना विकसित हो जाती है तो इसी भावना को वर्ग चेतना कहते हैं। वर्ग चेतना की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं -

(1) **मैकाइवर** - "यह भावना है जो मानव के अपने तथा अन्य वर्गों के सदस्यों के बीच सम्बन्ध को अंकित करती है ।"

(2) **गिन्सबर्ग**- वर्ग के सदस्यों के साथ व्यवहार एवं दृष्टिकोण की समानता को अनुभव करने से सम्बन्धित हैं।

(3) **मैनहीम** - "सामाजिक अवसरों की समानता का ज्ञान है, हितों की समानता के बारे में विचार की उत्पत्ति है।"

अनुभवों की इस समानता से सम्बद्ध भावनात्मक बंधन का विकास है तथा किसी साझे सामान्य लक्ष्य की ओर साझा प्रयत्न है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि वर्ग चेतना एक प्रकार की भावना है जो अपने वर्ग के सदस्यों के प्रति आकर्षण होती है तथा दूसरे वर्ग के प्रति घृणास्पद होती है।

वर्ग चेतना की दशाएँ
(Conditions of Class Consciousness)

गिन्सबर्ग ने वर्ग चेतना की तीन शर्तों अथवा दशाओं का उल्लेख किया है -

(1) सामाजिक गतिशीलता की सुविधा और मात्रा,

(2) प्रतिस्पर्धा और संघर्ष,

(3) साझे रीति-रिवाजों का विकास।

कार्ल मार्क्स का वर्ग का सिद्धान्त (Class Theory of Karl Marx)- हीगल ने अपने द्वन्द्ववाद में विचार को महत्व प्रदान किया था। कार्ल मार्क्स ने भी द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त को स्वीकार किया है, किन्तु इस द्वन्द्ववाद में उसने विचार (Idea) के अस्तित्व को स्वीकार न करके पदार्थ (Matter) के अस्तित्व को स्वीकार किया है तथा अपने इस सिद्धान्त को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical Materialism) के नाम से सम्बोधित किया है। मार्क्स ने अपनी महान कृति "कैपिटल" में लिखा है कि - मैंने हीगल ने द्वन्द्ववाद को सिर के बल पर खड़ा पाया मैंने उसे पैरों के बल खड़ा कर दिया।" मार्क्स ने आगे लिखा है कि "यदि आप रहस्यमय खोल से तार्किक सार तत्व को ढूँढ़ निकालना चहते हैं, तो आप उसे (हीगल के द्वन्द्ववाद को) बिल्कुल ही उलट देना होगा।"

अपने संघर्ष सिद्धान्त की विवेचना करते हुए कार्ल मार्क्स ने मानव इतिहास को निम्नलिखित 5 भागों में विभाजित किया है। कार्ल मार्क्स के अनुसार इतिहास के प्रत्येक युग में वर्ग पाए जाते हैं। इन वर्गों में स्वार्थ भेद होता है। इस स्वार्थ भेद के कारण वर्गों में आपसी संघर्ष अनिवार्य हो जाता है। मार्क्स के अनुसार इतिहास की अवस्थाएँ तथा उसमें पाए जाने वाले वर्गों के अस्तित्व को निम्नलिखित तालिका में दिखाया गया है -

क्र सं	इतिहास के युग	वर्गों का अस्तित्व
1	आदिम साम्यवादी युग	वर्ग-विहीन (आदिम साम्यवाद)
2	दासत्व का युग	(अ) मालिक (आ) दास
3	सामन्तवादी युग	(अ) सामन्त (आ) सर्व-साधारण
4	पूँजीवादी युग	(अ) पूँजीपति वर्ग (आ) श्रमिक वर्ग
5	साम्यवादी युग	वर्गविहीन समाज

मार्क्स का विचार है कि समाज में वर्गों का अस्तित्व संघर्ष का कारण है। मानव का आदिम युग वर्ग विहीन था, अत: हाँ कोई संघर्ष की स्थिति नहीं थी। कालान्तर में समाज वर्गों में विभाजित होता गया। इन वर्गों में स्वार्थभेद के कारण संघर्ष अनिवार्य हो गया। समाज संघर्ष को समाप्त करने के लिए साम्यवाद अनिवार्य है, क्योंकि साम्यवाद एक ऐसे समाज का हामी है, जिसमें वर्गों का अस्तित्व नहीं होगा। कम्युनिस्ट घोषणा-पत्र में मार्क्स ने लिखा है कि-

अभी तक के सभी समाजों का इतिहास वर्ग संघर्ष का ही इतिहास है। शोषक तथा शोषित सदा एक दूसरे के विरोधी होकर कभी प्रत्यक्ष तो कभी अप्रत्यक्ष परन्तु अनवरत युद्ध करते रहे हैं। इस संघर्ष का अन्त प्रत्येक बार या तो समग्र समाज के क्रान्तिकारी पुनर्निर्माण में या संघर्षरत वर्गों की आम बर्बादी में होता है।

वर्ग संघर्ष की विवेचना करते हुए पूँजीवाद (Capitalism) का उल्लेख किया है। कार्ल मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद भी संघर्ष का कारण है। पूँजीवाद में संघर्ष का कारण उसमें विमािन अन्तर्विरोध है। मार्क्स के अनुसार पूँजीवाद में निम्न 5 अन्तर्विरोध विमािन हैं, जिनके कारण संघर्ष की स्थिति का जन्म और विकास होता है -

(a) पूँजीवाद का पहला अन्तर्विरोध यह है कि धनी व्यक्ति निरन्तर धनी और गरीब व्यक्ति निरन्तर गरीब हो जाता है।

(b) पूँजीवाद के कारण पूँजीपतियों की संख्या में निरन्तर कमी तथा मजदूरों की संख्या में निरन्तर वृद्धि होती जाती है।

(c) पूँजीवादी व्यवस्था के कारण लाखों मजदूरों को एक स्थान पर रहना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि मजदूरों में वर्ग चेतना (Class Consciousness) का विकास होता है,

(d) पूँजीवाद यातायात तथा संचार साधनों को विकसित करता है। इसका परिणाम यह होता है कि जो मजदूर संसार भर में फैले हुए हैं वे संचार साधनों के माध्यम से एकीकृत हो जाते हैं,

(e) पूँजीवादी व्यवस्था अनेक आर्थिक कठिनाइयों को जन्म देती है। नए बाजारों की खोज आदि के कारण संकट और भी व्यापक तथा गंभीर होते जाते हैं,

(f) पूँजीवाद मजदूरों में दु:ख-दारिद्र की वृद्धि करता है। इससे उनमें असन्तोष एवं विद्वेष की भावना का विकास होता है।

कार्ल मार्क्स साम्यवाद का संस्थापक था। उसने दुनिया के सर्वहारा वर्ग को सम्बोधित करते हुए लिखा था कि "दुनिया के मजदूरों एक हो। तुम्हारे पास खोने के लिए अपनी बेड़ियों के सिवाय और है ही क्या ? पर जीतने के लिए तो उनके सामने पूरी दुनियाँ है।"

शक्ति के परिवर्तित आयाम
(Changing Dimensions of Power)

शक्ति आधुनिक राजनीति विज्ञान की केन्द्रीय अवधारणा है। यही कारण है कि **वेबर** ने शक्ति और राजनीति को एक-दूसरे का प्रेरक माना है। **कैटालिन** और **लासवेल** ने एक कदम और आगे बढ़कर राजनीति को 'शक्ति का विज्ञान' (Science of Power) कहकर सम्बोधित किया है। **विलियम राब्सन** का विचार है कि राजनीति विज्ञान वह है जो समाज, उसकी प्रकृति, प्रतिक्रियाओं परिणामों से सम्बन्धित है।

शक्ति अत्यन्त प्राचीनकाल से राजनैतिक-सामाजिक दर्शन का आधार रही है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों ने शक्ति को अपने अध्ययन का केन्द्र-बिन्दु माना है। **कौटिल्य** ने तो स्पष्ट लिखा है कि 'समस्त सांसारिक जीवन का आधार दंड शक्ति ही है।' आज इस तथ्य को स्वीकार कर लिया गया है कि शक्ति के अभाव में न तो जीवन सम्भव है और न ही राजनीति। **मैकाइवर** ने लिखा है कि "समस्त गति, सभी सम्बन्ध, सभी प्रतिक्रियाएँ, समस्त व्यवस्था और प्रकृति में होने वाली प्रत्येक घटना शक्ति की अभिव्यक्ति है।"

शक्ति का सामान्य अर्थ
(General Meaning of Power)

शक्ति क्या है? अत्यन्त ही साधारण अर्थों में शक्ति का तात्पर्य 'ताकत' अथवा 'बल' से लगाया जाता है। शक्ति का तात्पर्य 'सत्ता' अथवा 'प्रभाव' से भी लगाया जाता है। **राबर्ट डाहल** तथा **लासवेल** ने शक्ति का प्रयोग 'प्रभाव' के कार्यों में किया है। **मर्गेनथाऊ** ने शक्ति का प्रयोग 'नियंत्रण' के रूप में किया है। **हाब्स** ने शक्ति को 'सामान्य प्रवृत्ति' के रूप में अभिव्यक्त किया है तथा लिखा है कि शक्ति मानव की अविच्छिन

NOTES

तथा अनवरत इच्छा है, जिसका अन्त मृत्यु से ही सम्भव है। **कौटिल्य** ने शक्ति शब्द का प्रयोग 'बल' के प्रयोग के रूप में किया है। **सामान्य बोलचाल में शक्ति व्यक्ति का वह प्रभाव है, जिससे समाज में या राजनीति में उसकी सर्वोच्चता तथा सम्प्रभुता को स्वीकार किया जाता है।**

आज विश्वभर की राजनीति, वास्तव में शक्ति की ही राजनीति है। मानव एक विचारशील प्राणी है, लेकिन सभी मानव एक ही प्रकार के विचार नहीं रखते। विचार-भिन्नता मानव समाज की एक विशेषता है। प्रत्येक मानव दूसरे मानव को अपने विचार पक्ष में लाने का प्रयास करता है और इसी प्रयास को सफल बनाने के लिए वह शक्ति का प्रयोग करता है। इसी सम्बन्ध में **बीरस्टीड** ने कहा है कि "शक्ति समाज की आधारभूत सुव्यवस्था का सहारा है। जहाँ कहीं सुव्यवस्था है वहाँ शक्ति का अस्तित्व अवश्य पाया जाता है। शक्ति प्रत्येक संगठन के पीछे और प्रत्येक संरचना को बनाए रखती है। बिना शक्ति के कोई संगठन नहीं हो सकता तथा बिना शक्ति के कोई सुव्यवस्था नहीं हो सकती।"

शक्ति की परिभाषा
(Definition of Power)

शक्ति की प्रमुख परिभाषाएँ निम्न हैं -

- **राबर्ट बीरस्टीड** - "शक्ति बल के प्रयोग की योग्यता है, न कि उसका वास्तविक प्रयोग।"
- **मैकाइवर** - "शक्ति व्यक्तियों तथा व्यवहार को नियंत्रित करने, विनियमित करने तथा निर्देशित करने की योग्यता है।"
- **काप्लान** - "शक्ति संगठित क्रिया द्वारा किसी आयोजन को पूरा करने की एक योग्यता है।"
- **मॉरगेन्थाऊ** - "राजनैतिक शक्ति से राजकीय सत्ता धारण करने वाले व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध तथा जनता के साथ उनके सम्बन्धों का बोध होता है।"
- **हॉब्स** - "शक्ति भविष्य में कुछ निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक वर्तमान साधन है।"
- **गोल्ड मेयर और शिल्स** - "एक व्यक्ति के पास शक्ति उस सीमा तक होती है जिस सीमा तक वह अपनी इच्छाओं के अनुसार दूसरों के व्यवहार को प्रभावित करता है।"
- **राबर्ट डाहल** - "शक्ति की परिभाषा प्रभाव के एक विशेष रूप में की जाती है। इस रूप में शक्ति प्राप्त करने वाले व्यक्ति की आज्ञा का पालन न करने के कारणवश बहुत हानि उठानी पड़ती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि "एक व्यक्ति की शक्ति वास्तव में उसका दूसरे व्यक्तियों के सम्बन्ध में वह प्रभाव है जो कि दूसरों पर डालने में समर्थ होता है। अत: अपने इरादों के अनुसार एक व्यक्ति जिस सीमा तक दूसरों को प्रभावित करता है, वह उसकी शक्ति है।" **राबर्ट डाहल** ने शक्ति के अर्थ को स्पष्ट करते हुए अपनी कृति (The Concept of Power) में लिखा है कि 'अ' की 'ब' पर शक्ति उसी सीमा तक कही जाएगी जिस सीमा तक वह 'ब' से उस कार्य को करवा सकता है जिसे वह अन्यथा नहीं करता। इसमें केन्द्रीय बिन्दु शक्ति रखने वाले व्यक्ति के कार्य नहीं हैं, अपितु शक्ति द्वारा प्रभावित होने वाले व्यक्ति के अपने आशय के विरोध में प्रभावक के आशय का अनुपालन है। ऐसा तभी सम्भव है जबकि प्रभावित होने वाले व्यक्ति को किसी प्रकार की अनुशास्ति का डर हो। अत: डाहल ने अनुशास्ति को शक्ति का महत्वपूर्ण लक्षण बताया है।

शक्ति की अवधारणा पर बीअर के विचार

शक्ति की अवधारणा के सम्बन्ध में प्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान सैमडल एच. बीअर का विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उन्होंने शक्ति की परिभाषा करते हुए कहा है कि "एक व्यक्ति दूसरे पर उस समय शक्ति का प्रयोग करता है जब वह जानबूझकर इस प्रकार का व्यवहार करे कि दूसरे व्यक्ति के कार्य में परिवर्तन हो जाए।" **बीअर** के इस विचार को विभिन्न उदाहरणों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। महाभारत में अर्जुन का मूल व्यवहार था कि वह अपने भाइयों और भतीजों (कौरवों) के विरुद्ध लड़ना नहीं चाहता था। कृष्ण ने गीता के सहारे अर्जुन के व्यवहार को अपनी इच्छा के अनुसार परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार कृष्ण ने अर्जुन की शक्ति का प्रयोग किया। पिता पुत्र को जब पढ़ने के लिए कहता है और पुत्र पढ़ने पर बाध्य हो जाता है तो यह भी पिता को पुत्र पर शक्ति का प्रयोग करते हुए कहा जाएगा। बीअर ने यह स्वीकारा है कि शक्ति अनेक रूपों में व्यक्त होती है। धन और

सम्पत्ति भी शक्ति के रूप हैं। एक गया-गुजरा व्यक्ति भी धन शक्ति के कारण चुनाव जीत लेता है। इसी प्रकार शिक्षा, आकर्षण व्यक्तित्व, शारीरिक बल, नैतिकता और सामाजिक स्तर आदि ऐसे तत्व हैं जिनसे शक्ति का अभ्युदय अपने आप होता रहता है और व्यक्ति शक्ति का प्रयोग करता है।

इसी प्रकार **बीअर** ने आगे कहा है कि शक्ति का प्रभाव समान रूप से नहीं पड़ता। धनी व्यक्ति की शक्ति धनी व्यक्ति पर लागू नहीं होती, परन्तु धनवान की शक्ति गरीब पर काम कर देती है। इसी प्रकार सबल व्यक्ति की शक्ति का प्रभाव निर्बल या कमजोर लोगों पर प्रभावकारी होता है। इसी प्रकार श्रीमती सोनिया गाँधी की शक्ति भारतीय राजनीति में प्रभावकारी है किन्तु यह शक्ति इटली में प्रभावकारी नहीं हो सकती है।

NOTES

शक्ति की अवधारणा में बीअर ने निम्न तत्वों को महत्वपूर्ण माना है -

(1) शक्ति एक प्रभाव है।

(2) शक्ति के द्वारा दूसरे पक्ष को प्रभावित करके अपने पक्ष में किया जाता है।

(3) शक्ति अनेक रूप धारण करती है।

(4) एक ही शक्ति का प्रभाव सभी लोगों पर समान रूप से नहीं पड़ता।

शक्ति की अवधारणा पर राबर्ट डाहल के विचार

शक्ति के सम्बन्ध में अपने विचारों का प्रतिपादन **राबर्ट डाहल** ने अपनी पुस्तक 'Modern Political Analysis' में किया है। डाहल के अनुसार "शक्ति कर्ताओं के बीच वह सम्बन्ध है, जिसके द्वारा एक कर्ता अन्य कर्ताओं को विशेष प्रकार के व्यवहार करने के लिए उकसाता है, जो अन्यथा इस प्रकार से व्यवहार न करते।" उदाहरण के लिए, स्वाधीनता आन्दोलन के समय विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने के लिए गाँधी जी ने खादी वस्त्रों अर्थात् स्वदेशी कपड़ों को पहनने के लिए भारतीयों को कहा था। इसका प्रभाव भारतवासियों पर पड़ा और अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा। यह **गाँधी जी** की शक्ति का ही प्रभाव था।

डाहल ने शक्ति की विशेषताएँ निम्न प्रकार बतलाई हैं -

(1) शक्ति मानवीय अन्त:सम्बन्धों को स्थापित करती है किन्तु जब शक्तिधारी और प्रभावित दोनों मानव हों।

(2) शक्तिधारी को योग्य और सक्षम होना चाहिए। क्षमता रहित व्यक्ति शक्तिधारी नहीं हो सकता अर्थात् शक्ति का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के पास शक्ति प्रयोग करने की क्षमता हो।

(3) शक्ति का उद्देश्य व्यवहार-परिवर्तन से है। अर्थात् प्रभावित लोगों में शक्ति के द्वारा व्यवहार परिवर्तन होना आवश्यक है। प्रभावित पक्ष के अन्तर्गत व्यक्ति, समूह, संस्था और राज्य आदि आते हैं।

शक्ति की विशेषताएँ
(Characteristics of Power)

अर्थ और परिभाषाओं के आधार पर शक्ति की विशेषताओं अथवा लक्षणों को हम निम्नलिखित प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं -

(1) शक्ति सम्बन्ध सूचक अवधारणा है। इसमें शासक और शासितों के बीच सम्बन्ध पाया जाता है। अर्थात् शासक के लिए यह आवश्यक है कि कुछ ऐसे व्यक्ति हों जिस पर वह शासन करे।

(2) शक्ति द्विपक्षीय अवधारणा है। अर्थात् जब शासित होंगे तभी शासक भी होंगे। किसी एक के अभाव में शक्ति का प्रयोग सम्भव नहीं है।

(3) व्यक्तिगत स्थिति व प्रतिष्ठा शक्ति को प्रभावित करती है। अर्थात् शक्ति परिस्थितिजन्य होती है। उदाहरण के लिए, एक उच्च पद में बैठा व्यक्ति यदि ढुलमुल चाल से प्रशासन करता है तो वह प्रशासन अस्त-व्यस्त रहता है और उसी पद पर यदि कोई दूसरा तेजस्वी व्यक्तित्व वाला आसीन होता है तो वह अच्छा शासन करता है। दोनों व्यक्ति एक ही पद पर एक ही प्रकार के अधिकारों का प्रयोग करते हैं फिर भी दोनों की शक्तियों के परिणामों में अन्तर होता है।

(4) शक्ति में पुरस्कार और दंड देने की शक्ति पाई जाती है। अर्थात् जो व्यक्ति शक्तिधारी होते हैं वे जनता के आदेशों का पालन करा सकते हैं, क्योंकि वे दंड और पुरस्कार देने की स्थिति में होते हैं।

NOTES

(5) अनेक शक्तिधारी पर्दे के पीछे रहकर शक्ति का प्रयोग करते हैं। पूँजीपति और बड़े-बड़े धार्मिक नेता राजनीति से दूर रहते हुए भी राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

यहाँ प्रश्न यह उठता है कि शक्ति किसके पास है इस सम्बन्ध में मार्क्सवादियों का विचार है कि उत्पादन के साधन जिन व्यक्तियों के पास होते हैं, उन्हीं के पास शक्ति रहती है। यद्यपि यह शक्ति आर्थिक शक्ति कही जाती है। जबकि विशिष्ट वर्ग या राजनैतिक अभिजनों का मत है कि शक्ति कुछ विशिष्ट लोगों के हाथों में केन्द्रित रहती है। ये विशिष्ट लोग प्रभावशाली नेता, पूँजीपति, उच्च प्रशासनिक अधिकारी और कुलीन परिवारों के सदस्य आदि होते हैं। राजनैतिक अभिजनों का कहना है कि "शासन का बाहरी रूप कुछ भी हो सकता है। उसे आप राजतन्त्र कहें या लोकतन्त्र, फासिस्ट सरकार मानें या कम्युनिस्ट शासन, परन्तु राजनैतिक शक्ति सदैव अल्पसंख्यकों के हाथों में रही है।"

बहुलवादियों का विचार है कि राजनीति शक्ति किसी एक स्थान या समुदाय में केन्द्रित नहीं की जा सकती। प्रजातंत्र में शक्ति धारक कोई भी हो सकता है।

शक्ति के स्त्रोत या आधार
(Sources or Basis of Power)

शक्ति अपने आप अस्तित्व में प्रतिस्थापित नहीं होती। कुछ आधार या कारण होते है, जिनके आधार पर शक्ति किसी व्यक्ति, संस्था या समूह को शक्तिशाली बना देती है। शक्ति को स्त्रोत मानने के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मदभेद पाया जाता है। शक्ति के महत्वपूर्ण अवयवों में धन, सम्पत्ति, प्राकृतिक साधन, मानव शक्ति, अस्त्र आदि को सम्मिलित किया जा सकता है। शक्ति को आँकने के लिए यह आवश्यक है कि उसका दूसरों पर किस प्रकार प्रयोग किया जा सकता है। आज के भौतिक युग में धन शक्ति का महत्वपूर्ण आधार है। धन दो प्रकार से शक्ति का स्त्रोत होता है। -

प्रथम - धन की सहायता से अस्त्रो-शस्त्रों को खरीदा जा सकता है।

द्वितीय - धन से व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित किया जा सकता है।

शक्ति के स्त्रोत के सम्बन्ध में बहुत बड़ी सूची है जिसको गिनाना सम्भव नहीं है। शक्ति के प्रमुख स्त्रोत इस प्रकार हैं -

(1) **ज्ञान** (Knowledge) - मानवीय क्षेत्र में शक्ति का पहला और प्रमुख स्त्रोत ज्ञान के द्वारा व्यक्ति अज्ञानता से प्रकाश की ओर अग्रसर होता है। ज्ञान से व्यक्ति की प्रतिभा का विकास होता है जिससे उसे शक्ति प्राप्त होती है। ज्ञानवान व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रभावशाली होता है। उसका प्रभावशाली व्यक्तित्व ही उसमें शक्ति का संचार करता है। नेतृत्व क्षमता, संकल्पशक्ति, सहन-शक्ति, अपने को अभिव्यक्त करने की शक्ति आदि ज्ञान के चमत्कार के द्वारा ही निखरती है। इसी ज्ञान के कारण गौतम बु., महावीर स्वामी और गोस्वामी तुलसीदास भगवान की श्रेणी में गिने जाते हैं। इनकी ज्ञान शक्ति के कारण ही बहुत से लोग इनके सिद्धांत मार्ग पर चलते हैं।

(2) **प्राप्तियाँ या उपलब्धियाँ** (Possessions & Achievements) - किसी व्यक्ति को कोई उपलब्धि या प्राप्तियाँ भी महान बना देती हैं। महानता में शक्ति अपने आप सन्निहित हो जाती है। इन उपलब्धियों में आर्थिक उपलब्धि, सामाजिक उपलब्धि एवं राजनैतिक उपलब्धियाँ सम्मिलित हैं। किसी व्यक्ति को धन की या भौतिक सुविधाओं की प्राप्ति उसको शक्तिशाली बना देती है। समाज में किए गए अच्छे कार्यों के कारण वह सामाजिक लोकप्रियता की प्राप्ति करता है इससे उसकी शक्ति बढ़ती है। इसी प्रकार जिला, प्रदेश, राष्ट्र व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर किए गए राजनेताओं के कार्यों की सफलता से मिली उपलब्धि भी उसे सर्वशक्तिमान बनाने में योग देती है। ये सभी प्राप्तियाँ या उपलब्धियाँ शक्ति के महत्वपूर्ण स्त्रोत कही जाती हैं।

(3) **संगठन** (Organisation) - शक्ति का तीसरा महत्वपूर्ण स्त्रोत संगठन या संस्थाएँ होती हैं। शक्ति की दृष्टि से राज्य एक बड़ा और महत्वपूर्ण संगठन होता है। चूँकि राज्य में संवैधानिक सम्प्रभुता का तत्व होता है। अत: राज्य का संगठन भी अन्य संगठनों की अपेक्षा अधिक सुदृढ़ होता है। किसी भी संख्या, समूह या समुदाय में एकता होने पर उसकी संगठनात्मक शक्ति बढ़ जाती है। श्रमिक संघ, व्यापारी संघ, छात्र संघ, प्राध्यापक संघ, उपभोक्ता संघ, विभिन्न राजनैतिक दल आदि विभिन्न संगठनों के सदस्यों में जब एकता या एक विचारधारा पाई

जाती है अथवा उनके सदस्यों में एकजुटता रहती तब ऐसे ही संगठनों में शक्ति का विकास होता है। संगठन ही शक्ति होती है यह बात शक्ति के स्रोत में अक्षरश: सत्य होती है।

(4) **आकार** (Size) - शक्ति के स्रोत के रूप में हम विभिन्न संस्थाओं के आकार को भी ले सकते हैं। जैसे बड़ी आकार वाली संस्थाएँ अधिक शक्तिशाली होती हैं तथा छोटी संस्थाओं में शक्ति कम होती है। पर यह बात सभी संगठनों के विषय में सभी परिस्थितियों में उचित प्रतीत नहीं होती। बहुत बड़ी आकार वाली संस्थाओं का यदि संरचनात्मक ढाँचा ढीला है तो वह शक्तिशाली न होकर दुर्बल ही होती है। कुछ विचारकों का इस सम्बन्ध में यह मत है कि छोटी आकार वाली संस्थाएँ अधिक शक्तिशाली होती हैं। यह इसलिए कि छोटी आकार के संगठन वाली संस्थाओं के सदस्यों में एकता और आपसी तालमेल अधिक होता है। अत: इनमें ज्यादा असरकारी शक्ति पाई जाती है। फिर भी बड़ी आकार वाली संस्थाओं की शक्ति को नकारा नहीं जा सकता है। उदाहरण के लिए, हम भारतीय राजनैतिक पार्टियों को देख सकते हैं। कांग्रेस और भारतीय जनता पार्टी बड़ी पार्टियाँ होने से भी सत्तारूढ़ हैं तथा इनमें अन्य पार्टियों की तुलना में शक्ति भी ज्यादा है; चूँकि बहुमत इनके पक्ष में होता है।

(5) **सत्ता या प्रभुता** (Authority or Domination) - जिन तत्वों के कारण शक्ति अधिक शक्तिशाली बनती है, उन्हें हम सत्ता या प्रभुत्ता कहते हैं। सत्ता प्राप्त व्यक्तियों में शक्ति का संचार हो जाता है। जैसे दो व्यक्तियों के बीच आपसी प्रतिद्वन्द्विता के कारण जब तीसरे कम प्रभुता सम्पन्न व्यक्ति को यदि सत्तासीन कर दिया जाता है तो उसमें स्वयं शक्ति आ जाती है। अत: सत्ता या प्रभुता सम्पन्न व्यक्ति के द्वारा भी शक्ति का जन्म होता है। उत्तर भारत की 'अजगर' (अ = अहीर, ज = जाट, ग = गूजर और र = राजपूत) जातियाँ प्रभुता सम्पन्न जातियाँ होने से ही उनमें शक्ति पाई जाती है।

(6) **आत्मविश्वास** (Self Confidence) - आत्मविश्वास शक्ति का महत्वपूर्ण स्रोत कहा जा सकता है। आत्मविश्वास व्यक्ति की 'हौसला-आफजाई' बढ़ाता है। व्यक्ति या संस्था चाहे कितनी ही धनवान या बलवान क्यों न हो पर यदि उनमें आत्मविश्वास नहीं है तो वह शक्तिशाली नहीं हो सकती है। फौजियों में आत्मविश्वास जगाए जाने पर ही देश के लिए उनमें मर मिटने की शक्ति पैदा हो जाती है और तब कहीं कोई शक्ति इनके सामने टिक पाती है। कई भारतीय दार्शनिकों ने भी यह बात स्वीकारी है कि व्यक्ति का आत्मविश्वास ही उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। जिस राजा में आत्मविश्वास व आत्मनियंत्रण नहीं होता; वह राज्य 'नेस्तनाबूत' हो जाते हैं। अगर किसी छात्र में यह आत्मविश्वास पैदा हो जाए कि वह स्नातक होने के बाद बहुत ही मेहनत और लगन से तैयारी करके अखिल भारतीय सेवा की परीक्षा देगा और परीक्षा में सफल होकर अगर वह छात्र जिला कलेक्टर पद पर आसीन होता है तो यह स्वाभाविक रूप से उसके आत्मविश्वास की जीत कहलाएगी।

(7) **परिस्थितियाँ** (Circumstances) - परिस्थितियाँ भी शक्ति का स्रोत कही जा सकती हैं। जैसे भारत में 'वोट की राजनीति' की परिस्थिति को देखते हुए ही कांशीराम ने 'बहुजन समाज पार्टी' का गठन किया है और यह पार्टी पूरे देश में संगठित होकर शक्तिशाली बनती जा रही है। रूस में सामाजिक, राजनैतिक परिस्थिति के कारण ही क्रांति हुई थी जिसका नेतृत्व लेनिन ने किया था, इसी से वे एक शक्तिशाली व्यक्ति बने। स्वतंत्रता आन्दोलन की परिस्थिति ने ही महात्मा गाँधी को अधिक शक्तिशाली व्यक्ति बनाया अत: परिस्थितियाँ भी शक्ति का आधार होती हैं।

(8) **विचार व कार्य** (Thoughts and Action) - व्यक्तियों व संस्थाओं के विचार व कार्य भी उनकी शक्ति के स्रोत होते हैं। 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' तिलक के इस विचार ने उन्हें अपने समय में शक्तिशाली बना दिया। इसी तरह महात्मा गाँधी ने अपने सिद्धांतों, विचारों और कार्यों के द्वारा राष्ट्रपिता का गौरव प्राप्त किया तथा उनके सत्याग्रह, अहिंसा, सर्वोदय आदि विचारों और कार्यों में अपने आप शक्ति प्रतिस्थापित हुई। वर्तमान में अनेक समाजसेवी संस्थाएँ, जैसे रेडक्रास, लायन्स क्लब, रोटरी क्लब आदि अपने कार्यक्रमों के आधार पर ही शक्तिशाली कही जाती हैं।

(9) **प्रेम और प्रभाव** (Love and Affection) - शक्ति की अभिव्यक्ति केवल ताकत या प्रत्यक्ष दबाव के माध्यम से ही नहीं होती, वरन् प्रेम व प्रभाव के प्रदर्शन से भी इसकी अभिव्यक्ति होती है।

(10) **नेतृत्व** (Leadership) - नेता और नेतृत्व भी शक्ति के स्रोत माने जाते हैं। साधारण व्यक्तियों की तुलना में नेताओं और नेतृत्व गुण प्रधान व्यक्ति के पास शक्ति अधिक मात्रा में होती है। नेतृत्व की क्षमता ही व्यक्ति को लोकप्रिय नेता (Popular Leader) बनाती है। लोकप्रिय नेता देश को शक्तिशाली बनाने की क्षमता और साहस रखता है। किसी भी क्षेत्र में अच्छा नेतृत्व अच्छी शक्ति को जन्म देती है।

NOTES

शक्ति के उपरोक्त स्रोतों के अलावा कई अनेक छोटे-बड़े आधार या तत्व होते हैं जिनसे शक्ति उत्पन्न होती है। शक्ति के विभिन्न स्रोत विभिन्न स्थानों में समान रूप से शक्तिशाली नहीं होते हैं, ये स्थान व परिस्थिति के अनुसार प्रभावशाली मान जाते हैं।

NOTES

शक्ति की माप
(Measurement of Power)

शक्ति की माप कैसे की जाए? शक्ति एक अमूर्त अवधारणा है। अत: इसकी माप करना अत्यन्त कठिन है। फिर भी शक्ति का मापन निम्न आधारों पर किया जा सकता है -

(1) **माप और वास्तविकता में अन्तर** - शक्ति को मापते समय वास्तविक शक्ति और अनुमानित शक्ति में ज्यादा अन्तर नहीं करना चाहिए।

(2) **सापेक्ष अवधारणा** - शक्ति एक सापेक्ष अवधारणा है। शक्ति की माप के लिए दूसरी शक्ति का होना अनिवार्य है। सापेक्ष के अभाव में शक्ति की माप करना कठिन है।

(3) **तुलनात्मक प्रकृति** - शक्ति को तुलना के आधार पर आसानी से नापा जा सकता है, जब हम किसी व्यक्ति अथवा राष्ट्र को शक्तिशाली कहते हैं तो हमारे मस्तिष्क में निर्बल व्यक्ति अथवा राष्ट्र का चित्र होता है।

(4) **दो शक्ति में समानता का अभाव** - शक्ति की दृष्टि से दो व्यक्ति अथवा राष्ट्र कभी भी समान नहीं हो सकते हैं। अत: शक्ति की माप में इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए।

(5) **विश्वसनीयता** - शक्ति में विश्वसनीयता का तत्व होना चाहिए। विश्वसनीयता के अभाव में भी शक्ति की माप नहीं की जा सकती है।

(6) **विशिष्टता का महत्व** - शक्ति की माप में विशिष्टता का तत्व अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है। विशिष्टता के अभाव में भी शक्ति की माप करना एक कठिन कार्य है।

(7) **परिवर्तनशीलता** - व्यक्ति की माप करते समय यह स्मरण रखना चाहिए कि इसकी प्रकृति परिवर्तनशील होती है। यह आवश्यक नहीं है कि कोई सर्वोच्च शक्तिशाली व्यक्ति या राष्ट्र हमेशा शक्तिशाली ही रहे। ऐसे राष्ट्र या शक्तिशाली व्यक्तियों का अचानक पतन भी हो जाता है।

शक्ति के प्रकार
(Kinds of Power)

शक्ति के अनेक रूप हो सकते हैं, जिनमें से प्रमुख उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है -

(1) **शारीरिक शक्ति** (Physical Power) - यहाँ शारीरिक शक्ति का दो सन्दर्भों में प्रयोग किया जाता है। जब व्यक्ति के संदर्भ में शारीरिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है तो इसका तात्पर्य शारीरिक बल से होता है। जब सामाजिक या राष्ट्रीय सन्दर्भ में शारीरिक शक्ति का प्रयोग किया जाता है तो इसका तात्पर्य सैनिक शक्ति से होता है। आज सैनिक शक्ति अनेक भागों तथा श्रेणियों में विभाजित है।

(2) **मनोवैज्ञानिक शक्ति** (Psychological Power) - **चार्ल्स शिल्चर** ने लिखा है कि "मनोवैज्ञानिक शक्ति ऐसे प्रतीकात्मक सूचकों से मिलकर बनती है जो व्यक्तियों के मस्तिष्क और भावनाओं को प्रभावित करते हैं।" यह प्रचार माध्यमों से लोगों को नियंत्रित करने का एक तरीका है। इस शक्ति का प्रयोग अत्यन्त चतुराई से किया जाता है। इस शक्ति के द्वारा दूसरों को प्रभावित करना होता है।

(3) **आर्थिक शक्ति** (Economic Power) - शक्ति का व्यावहारिक स्वरूप आर्थिक है। आर्थिक साधनों के द्वारा शक्ति अपने आप प्रवाहित होने लगती है। आज अनेक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रों पर आर्थिक रूप से निर्भर हैं। जो देश किसी भी अन्य देशों को आर्थिक सहायता प्रदान करते हैं, उनका उद्देश्य होता है कि वे देश उनके प्रभाव क्षेत्र में रहें। अनेक देश दूसरे देशों के आर्थिक दबाव के कारण अपने रूपयों का अवमूल्यन करते हैं। व्यापार की निर्भरता भी आर्थिक दबाव का कारण है।

(4) **शक्ति के अन्य प्रकार** (Others Type of Power) - शक्ति के प्रकारों के सम्बन्ध में विभिन्न विचारकों के अलग-अलग मत भी हैं। शक्ति के सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विद्वानों के वर्गीकरण को यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है -

NOTES

- **हिन्दू धर्म ग्रन्थों के अनुसार शक्ति के प्रकार** -

  (i) पाशविक शक्ति (ii) दैवी शक्ति

- **बीअर का वर्गीकरण-बीअर** ने शक्ति के सात प्रकार बतलाए हैं -

  (i) सम्पत्ति (ii) भौतिक बल (iii) सामाजिक स्तर (iv) शिक्षा

  (v) नैतिक चरित्र (vi) व्यक्तित्व का आकर्षण (vii) प्रबन्ध कला

- **डाहल का वर्गीकरण-डाहल** ने शक्ति के दो रूप बताए हैं -

  (i) उत्पीड़न (Coercion) - जो शक्ति औचित्यपूर्ण न हो उसे दमन कहा जाता है।

  (ii) सत्ता (Authority) - जो शक्ति औचित्य पूर्ण हो उसे सत्ता कहते हैं।

- **एडवर्ड मिल्स का वर्गीकरण** -

  (i) व्यवहार परिवर्तन के आधार पर शक्ति के तीन रूप हैं -

  (अ) बल, (ब) प्रभुत्व और (स) छल-योजना

  (ii) औचित्यपूर्णता के आधार

- **मैक्स वेबर का वर्गीकरण-वेबर** के अनुसार शक्ति के तीन रूप हैं -

  (i) कानूनी व वैधानिक (ii) परम्परात्मक (iii) करिश्माई शक्ति

- **बीरस्टीड का वर्गीकरण-बीरस्टीड** ने शक्ति का वर्गीकरण अनेक आधारों पर किया है -

(i) **दृश्य शक्ति** - शक्ति का प्रयोग जब प्रकट रूप से किया जाता है तो उसका रूप दृश्य शक्ति का होता है।

(ii) **अदृश्य शक्ति** - शक्ति का प्रयोग जब अप्रगट रूप से किया जाता है तो उसका रूप अदृश्य अथवा प्रच्छन्न शक्ति का होता है।

(iii) **दमनात्मक शक्ति** - जब शक्ति का प्रयोग अत्याचारपूर्ण ढंग से किया जाता है तो उसका रूप दमनात्मक होता है।

(iv) **अदमनात्मक शक्ति** - शक्ति का धारक अपनी शक्ति का प्रयोग दूसरे पक्ष को औचित्य के आधार पर अपनी ओर करने के लिए करता है तो शक्ति का रूप होता है।

(v) **औपचारिक शक्ति** - जब शक्ति का प्रयोग किसी आदेश, निर्देश अथवा अनुदेश जारी करके किया जाता है तो उसका रूप औपचारिक शक्ति होता है।

(vi) **अनौपचारिक शक्ति** - शक्ति का प्रयोग जब किसी आदेश, निर्देश व अनुदेश को जारी किए बिना किया जाता है तो उसे शक्ति का अनौपचारिक रूप कहा जाता है।

(vii) **प्रत्यक्ष शक्ति** - शक्ति के धारक द्वारा जब शक्ति का प्रयोग स्वयं किया जाता है तो उसका रूप प्रत्यक्ष शक्ति का होता है।

(viii) **अप्रत्यक्ष शक्ति** - शक्ति का प्रयोग धारक द्वारा यदि अपने-अपने अधीनस्थों या अन्य किसी के माध्यम से किया जाता है तो शक्ति का रूप अप्रत्यक्ष शक्ति का होता है।

(ix) **एक पक्षीय, द्विपक्षीय व बहुपक्षीय शक्ति** - शक्ति प्रवाह की दिशा की दृष्टि से शक्ति एकपक्षीय व बहुपक्षीय हो सकती है।

NOTES

(x) **केन्द्रित, विकेन्द्रित व व्याप्त शक्ति** - शक्ति के अधिवास के अनुसार उसके रूप केन्द्रित, विकेन्द्रित व व्याप्त शक्ति के होते हैं। एक स्थान पर स्थित शक्ति केन्द्रित, अनेक स्थानों पर वितरित शक्ति विकेन्द्रित तथा अस्पष्ट रूप से बिखरी हुई शक्ति को व्याप्त शक्ति कहते हैं।

(xi) **क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति** - क्षेत्रीयता के आधार पर शक्ति का स्वरूप क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय होता है।

शक्ति-अन्वेषण के उत्तरदायी कारक
(Factors Responsible for Power Seeking)

यहाँ महत्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि व्यक्ति शक्ति को क्यों प्राप्त करना चाहता है? वे कौन से तत्व हैं जिनके पीछे व्यक्ति शक्ति की प्राप्ति करना चाहता है? शक्ति-अन्वेषण के लिए उत्तरदायी कारक निम्न हैं -

(1) **मानव स्वभाव** - हर मानव का यह स्वभाव होता है कि वह कितना अधिक से अधिक सर्वशक्तिमान बन जाए। शक्ति चूँकि प्रतिष्ठा व सम्मान की द्योतक होती है इस कारण से व्यक्ति का स्वभाव ही ऐसा है कि वह सदैव शक्ति प्राप्त करने की इच्छा में ही रहता है। प्रशासनिक अधिकारी, पदेन कर्मचारी, राजनीतिज्ञ आदि एक बार शक्ति पाने के बाद इसीलिए उसे खोना नहीं चाहते।

(2) **सामूहिक स्वार्थ की वृद्धि** - अपने समुदाय और जाति हितों को पूरा करने के लिए भी लोग शक्ति प्राप्त करने में लगे रहते हैं। अत: सामूहिक स्वार्थों में अभिवृद्धि करना शक्ति का महत्वपूर्ण कारक है।

(3) **निजी स्वार्थ की खोज - हाब्स, बेन्थम, मार्क्स** आदि विचारकों ने यह तर्क दिया है कि "मनुष्य निजी स्वार्थ के लिए भी शक्ति में आना चाहता है, क्योंकि आत्मस्वार्थ की सचेतन खोज व्यक्तियों को शक्ति प्राप्त करने के लिए उत्प्रेरित करती है।" अत: आज का व्यक्तिवादी मानव इसी प्रकार की शक्ति के पीछे दौड़ता है।

(4) **शक्ति प्राप्ति की अचेतन इच्छा** - दार्शनिक **फ्रायड** ने कहा है कि "मनुष्य की अचेतन इच्छा मनुष्य को शक्ति-प्राप्ति के लिए उत्प्रेरित करती है। मनुष्य के अचेतन मन में शक्ति की भूख उस शेर की तरह सोई हुई है, जो जागते ही अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने लगता है।" इस प्रकार व्यक्ति अचेतन रूप से भी शक्ति प्राप्त कर लेता है।

(5) **आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए** - रोटी, कपड़ा और मकान मनुष्य की अनिवार्य आवश्यकताएँ होती हैं। इनके अतिरिक्त भी मनुष्य की अन्य सामाजिक-आर्थिक आवश्यकताएँ होती हैं। अत: सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति (जिनकी पूर्ति पूर्व में वह नहीं कर पाया है) के लिए भी वह शक्ति को पकड़ना चाहता है। उपरोक्त कारणों के अलावा भी अन्य अनेक कारण भी हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से व्यक्ति की शक्ति प्राप्ति के लिए उत्तरदायी हैं।

शक्ति और बल
(Power and Force)

सामान्यतया शक्ति और बल को समानार्थी समझा जाता है, किन्तु यह धारणा गलत है। शक्ति और बल में तात्विक अन्तर है। शक्ति और बल में निम्न अन्तर हैं -

(1) शक्ति का आधार मनोवैज्ञानिक प्रभाव है, जबकि बल हिंसा पर आधारित अवधारणा है।

(2) शक्ति अमूर्त, व अदृश्य होती है, जबकि बल का स्वरूप मूर्त होता है।

(3) शक्ति विस्तृत अवधारणा है, जबकि बल शक्ति का ही एक भाग है।

(4) शक्ति का रूप प्रगट और अप्रगट दोनों होता है, जबकि बल का प्रयोग केवल प्रगट रूप से ही किया जाता है।

(5) शक्ति एक क्षमता सम्बधी मनोभाव है, जबकि बल उसका प्रयोगात्मक व क्रियात्मक स्वरूप होता है।

शक्ति और बल के उपरोक्त अन्तर से यह निष्कर्ष निकलता है कि ये दोनों अलग-अलग अवधारणाएँ हैं फिर भी दोनों एक साथ भी क्रियाशील रहते हैं। शक्ति में बल उसी प्रकार छिपा रहता है जिस प्रकार बादल में बिजली छिपी रहती है।

शक्ति के प्रयोग की सीमाएँ
(Limitations of Excercise of Power)

शक्ति में शास्तियाँ (Sanctions) होती हैं। शक्ति धारक शक्ति का प्रयोग आदेश, निर्देश व अनुदेश आदि जारी करके करता है। इन शास्तियों के अन्तर्गत जेल में डाल देना, जुर्माना किया जाना, दंड दिया जाना, पुरस्कृत करना, आदि बातें आती हैं। यद्यपि इन शास्तियों के द्वारा ही शक्तिधारक प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से राजनैतिक व्यवस्था व प्रशासनिक व्यवस्था बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। फिर भी शक्ति धारक अपनी शक्तियों का प्रयोग अमर्यादित व अनीतिपूर्वक नहीं कर सकते हैं। शक्ति के प्रयोग की अपनी कुछ सीमाएँ होती हैं। जो निम्न प्रकार हैं -

(1) शक्ति धारक शक्ति का प्रयोग सामाजिक विरासत व परम्परा से हटकर नहीं कर सकता।

(2) राजनैतिक शक्ति का प्रयोग सामाजिक-राजनैतिक विकास के अनुकूल होने चाहिए।

(3) शक्ति धारक को शक्ति का प्रयोग किसी ऐसे कार्य के लिए नहीं किया जाना चाहिए जिससे कि प्रभावित व्यक्तियों की धार्मिक व नैतिक भावनाओं को ठेस पहुँचे।

(4) दबाव समूहों व हित समूहों के विरुद्ध भी शक्ति का प्रयोग करना एक कठिन कार्य होता है। अत: इनके हित के अनुरूप इसका प्रयोग करना चाहिए।

(5) शक्ति धारक को जनमत के विपरीत भी शक्ति का प्रयोग नहीं करना चाहिए, यदि जनमत सही है तब।

(6) शक्ति का प्रयोग परिस्थिति जन्य होता है।

(7) लोक कल्याणकारी राज्य में शक्ति का प्रयोग जनता अथवा शासित को ध्यान में रखकर किया जाता है।

(8) कोई भी शक्ति-प्रयोगकर्ता सार्वजनिक सहमति के विरुद्ध कोई निर्णय नहीं ले सकता।

उपरोक्त सीमाओं की सार्थकता के सम्बन्ध में ही **लार्ड ऐक्टन** ने कहा है कि "शक्ति मनुष्य को भ्रष्ट कर देती है और शक्ति पूर्ण रूप से भ्रष्ट करती है।" अत: व्यवहार में शक्ति का मर्यादित होना नितान्त आवश्यक है। इसी प्रकार शक्ति के दुरूपयोग-सम्बन्धी तर्क को ध्यान में रखकर ही **मॉण्टेस्क्यू** ने 'शक्ति-पृथक्करण' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

शक्ति यदि अपनी मर्यादाओं और सीमाओं के भीतर रहकर कार्य करती है तो व्यवस्था के विकास व निर्माण में इससे बड़ी कोई वस्तु नहीं है। जैसा कि **रोगा** और **लासवेल** का मत है कि शक्ति व्यक्ति को हर परिस्थिति में भ्रष्ट नहीं करती। ऐसा भी देखा गया है कि वह व्यक्ति भ्रष्ट होता है जिसके पास शक्ति का अभाव है। शक्ति को 'वितरणात्मक विचारधारा' के माध्यम से समझा जाना चाहिए।

परीक्षाओं के लिये महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या कीजिए। सामाजिक परिवर्तन और सांस्कृतिक परिवर्तन में भेद कीजिए।
Define social change. Differentiate between social change and cultural change.

2. सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक उद्विकास, सामाजिक प्रगति का अर्थ बताइए एवं इनमें भेद कीजिए।
Explain and differentiate social change, social process, social evolution and social progress.

3. सामाजिक परिवर्तन की व्याख्या कीजिए। सामाजिक परिवर्तनों के स्वरूपों का वर्गीकरण कीजिए।
Define social control. Classify and explain various processes of social change.

4. सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक नियंत्रण के सम्बंधों की विवेचना कीजिए।
Discuss the relationship between social change and social control.

5. सामाजिक परिवर्तन के प्रतिमानों की विवेचना कीजिए।
Discuss the major patterns of social change.

NOTES

6. सामाजिक गतिशीलता और सामाजिक परिवर्तन में भेद कीजिए।
Differentiate between social change and social mobility.

7. नगरीय जीवन में परिवर्तन पर एक लेख लिखिए।
Write on essay on change in urban life

8. नगरीय जीवन में परिवर्तन के विभिन्न पहलुओं की विवेचना कीजिए।
Describe different aspects of changes in Urban life.

9. जाति प्रभा के गुण-दोष को लिखिए।
Write menits and demenits of caste.

10. ग्रामीण तथा नगरीय समाज के संदर्भ में जाति प्रभा में होने वाले परिवर्तनों को लिखिए।
Write changes in caste system with reference to rural and urban society.

11. जाति के परिवर्तित आयामों को लिखिए।
Write changing dimensions of caste.

12. वर्ग की व्याख्या कीजिए। इसकी विशेषताएँ लिखिए।
Define class. Write its characteristics.

13. वर्ग सामाजिक स्तरीकरण का आधार है। समझाइये।
Class is basis of social stratification. Explain.

14. वर्ग के आधार लिखिए।
Write basis of Classes.

15. वर्गों के प्रकार लिखिये।
Write kinds of Classes.

16. भारतीय ग्रामीण तथा नगरीय समाज के संदर्भ में वर्ग के परिवर्तित आयामों को लिखिए।
Write changing dimension of caste in reference to rural and Urban Society.

17. वर्ग की व्याख्या कीजिए। वर्ग व्यवस्था में परिवर्तन के कारणों की विवेचना कीजिए।
Define Caste. Describe causes of change in class system.

18. शक्ति से आप क्या समझते हैं? इसके स्रोत को लिखिए।
What do you understand by power. Write its sources.

19. शक्ति की व्याख्या कीजिए। इसके प्रकारों को लिखिए।
Define class. Write its types.

20. भारतीय समाज के संदर्भ में शक्ति के परिवर्तित आयामों को लिखिए।
Write changing dimensions of power in reference to Indian Society.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

1. जाति के अर्थ को समझाइए।
Explain the meaning of caste.

2. जाति की कोई दो विशेषताएँ लिखिए।
Write any two characteristics of caste.

3. संक्षेप में जाति में परिवर्तन को लिखिए।
Write in brierf the changes in caste.

4. जाति की उत्पत्ति का व्यवसायिक सिद्धान्त लिखिए।
Write occupational theory of origin of caste.

5. जाति के गुणों को लिखिए।
Write merits of caste.

6. वर्ग चेतना क्या है। समझाइए।
What is class consciousness. Explain.

7. वर्ग को परिभाषित कीजिए।
Define Class.

8. सामाजिक परिवर्तन की अवधारणा।
The concept of social change.

(C) वस्तुनिष्ठ प्रश्न (Objective Questions)

NOTES

1. हिन्दु समाज की वह व्यवस्था जिसके आधार पर व्यक्तियों के पदों एवं कार्यों का निर्धारण होता है, उसे कहते हैं -
(अ) प्रजाति (ब) वर्ग (स) जाति (द) समाज

2. जाति शब्द अंग्रेजी के किस शब्द का हिन्दी रूपान्तरण है-
(अ) कास्टा (casta) का (ब) कास्ट (caste) का (स) कैस्टो (casto) का (द) कोष्ट (coste) का

3. जब सामाजिक स्तरीकरण कर्म के आधार पर न होकर जन्म के आधार पर होता है, तो उसे कहते हैं-
(अ) वर्ग (ब) धर्म (स) प्रजाति (द) जाति

4. 'जाति एक बन्द वर्ग है'। जाति की उपर्युक्त परिभाषा निम्न में से किस विद्वान की है-
(अ) रिजले की (ब) मजूमदार और मदन की
(स) सेथना की (द) ऑगबर्न और निमकॉफ की

5. "जब एक वर्ग पूर्णतया वंशानुक्रमण पर आधारित होता है तो हम उसे जाति कहते हैं" जाति की उपर्युक्त परिभाषा है-
(अ) कूले की (ब) रिजले की (स) हावेल की (द) केतकर की

6. जाति की सबसे प्रमुख विशेषता निम्न में से कौन है-
(अ) जाति का आधार जन्म होता है (ब) जाति एक बन्द वर्ग है
(स) जाति के निश्चित व्यवसाय होते हैं (द) जाति अन्तर्विवाही होती है

7. निम्न में से किस समाजशास्त्री ने जाति-प्रथा की दो विशेषताओं- (i) जन्मजात सदस्यता और (ii) वैवाहित प्रतिबन्ध का उल्लेख किया है-

8. जाति प्रथा का कार्य निम्न में से क्या है-
(अ) सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना (ब) मानसिक सुरक्षा प्रदान करना
(स) व्यवहारों का नियंत्रण रखना (द) उपर्युक्त सभी कार्य जाति के हैं

9. आधुनिक सामाजिक स्तरीकरण का आधार है-
(अ) जाति (ब) प्रजाति (स) वर्ग (द) वंश

10. कौन-सा तत्व वर्ग का आधार नहीं है-
(अ) वर्ग-चेतना (ब) ऊँच-नीच की भावना
(स) व्यक्तियों का समूह (द) व्यवसाय

उत्तर- 1. (स), 2. (ब), 3. (द), 4. (ब), 5. (अ), 5. (अ), 7. (द), 8. (द), 9. (स), 10. (ब)

●●●

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress

NOTES

15

भारत में नगरीय अध्ययन
(URBAN STUDIES IN INDIA)

नगरीय समाजशास्त्र वृहत्तर समाजशास्त्र की एक महत्वपूर्ण शाखा है, जो विगत शताब्दी से तीव्र एवं व्यापक स्तर पर समाजशास्त्र में अपनी उपादेयता को प्रमाणित कर रही है। सम्पूर्ण विश्व को औद्योगिक क्रांति ने अपने आगोश में लिया है और प्रभावित किया है। औद्योगिक क्रांति के कारण एक नई औद्योगिक एवं नगरीय संस्कृति का विकास हुआ है। यही कारण है कि नगरों का व्यापक फैलाव और निर्माण हुआ है। इन नगरों के व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक अध्ययन के लिए नगरीय समाजशास्त्र का उदय हुआ।

मानव ज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्गत नगरीय जीवन के विभिन्न पहलुओं का क्रमबद्ध और वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। नगरीय समाजविज्ञान का क्रमबद्ध और वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। नगरीय समाजविज्ञान का क्रमबद्ध और वैज्ञानिक अध्ययन कब से प्रारम्भ हुआ, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है, किन्तु नगर मानवीय जीवन की अत्यन्त प्राचीन विरासत रहे हैं और इसी आधार पर इनका अध्ययन भी अत्यन्त प्राचीन है। मानव समाज की प्राच्य सभ्यताएँ भी नगरों की कहानियाँ कहती हैं। उस अवस्था में भी मानव नगरों का निर्माण कर चुका था। यदि उपलब्ध साहित्य का अवलोकन किया जाये तो सर्वाधिक प्राचीन साहित्य 'वेद' यह बतलाते हैं कि उस समय भी नगरीय सभ्यता थी। वेदों के अतिरिक्त अन्य विश्व-साहित्य से नगरों के बारे में पर्याप्त जानकारी मिलती है। इटली के प्रसिद्ध वैज्ञानिक गिओवानी वोटरो ने 1598 में नगरों पर एक पुस्तक लिखी थी। नगरों पर लिखी जाने वाली यह अत्यन्त ही प्राचीन पुस्तक है। इसके अतिरिक्त अनेक विद्वानों ने नगरों के बारे में अनेक जानकारियाँ दी हैं, किन्तु वहाँ भी नगरीय समाजविज्ञान नामक ज्ञान की शाखा का किसी प्रकार उल्लेख नहीं किया गया है। जिन प्रमुख विद्वानों ने नगरों की पुस्तकें लिखी हैं— ग्रान्ट (Graunt), मेयर (Mayer), अडनावेबर (Adnaweber), रेबन्सटीन (Revenstein), ब्यूचर (Buecher), हर्ड (Hurd), विलकॉक्स (Wilcox) सुयान आदि। इन समस्त विद्वानों ने नगरों पर वृहद् सामग्री प्रस्तुत की थी, किन्तु किसी ने भी नगरीय समाजविज्ञान के बारे में कुछ भी नहीं लिखा था। वस्तुस्थिति यह है कि नगरों का अध्ययन तो अत्यन्त प्राचीनकाल से होता आया है, किन्तु जहाँ तक नगरीय समाजविज्ञान की बात है इसकी उपज आधुनिक युग में हुई है। बगेले ने ठीक ही लिखा है कि नगरों के बारे में वैज्ञानिक रुचि अत्यन्त प्राचीन है, किन्तु नगरीय समाजविज्ञान का ज्ञान अत्यन्त आधुनिक है।

प्रसिद्ध अमेरिकन समाजशास्त्री रॉबर्ट पार्क (Robert Park) का 1915 में अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियोलॉजी (American Journal of Sociology) में 'The City' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसके बाद 1915 में ही "The City" नामक पुस्तक का प्रकाशन किया। इस पुस्तक में उसने अपने पूर्व लेख से बहुत सी सामग्री लेकर उसे नये रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया था। इन्हीं दो महत्वपूर्ण कार्यों के कारण पार्क को नगरीय समाजविज्ञान का जनक (Father of Urban Sociology) कहा जाता है। 1926 में पार्क ने बर्गेस (Burges) के साथ नगरीय सामाजिक जीवन से सम्बन्धित 'The Urban Community' नामक पुस्तक का प्रकाशन किया था। नगरीय समाजविज्ञान के बारे में सबसे पहली पुस्तक 1922 में प्रकाशित हुई थी।

अमेरिका में नगरीय समाजविज्ञान के बारे में महत्वपूर्ण कार्य हुए, विशेषकर शिकागो नगर का अध्ययन करके विद्वानों ने नगरीय जीवन के बारे में जानकारी देने का प्रयास किया था। नगरीय समाजविज्ञान के बारे में अमेरिका में जो प्रारम्भिक कार्य हुए वह क्षेत्रीय (Ecological) स्वरूप के थे। तथ्य यह है कि नगरीय समाजविज्ञान के बारे में शिकागो विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों ने सबसे अधिक काम किया। इसलिए इन कार्यों का प्रकाशन शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस से हुआ। इस प्रेस से प्रकाशित प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार हैं:-

1. 'The Gang'- Thrasher F. L., 1927
2. 'The Hobo'- Neil Anderson, 1923
3. 'Family Disorganisation'- Mowrer, 1927
4. 'The Gold Coast and the Slums' - Zorbough, 1929
5. 'The Ghetto' - Louiswirth, 1925

6. 'The Taxi Dance Hall' - Gressey, 1932
7. 'Vice in Chicago' - Reckless, 1933

उपर्युक्त पुस्तकों के अतिरिक्त नगरीय समाजविज्ञान के बारे में कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य हुए हैं। इनमें से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं:-

1. 'Readings in Urban Sociology' Bed Ford, 1927
2. 'Urban Sociology' - Anderson & Lindenal, 1928
3. 'Rural Urban Sociology' - Sorokin and Zimerman, 1929
4. 'The Middle Town, - Lynd & Lynd, 1929
5. 'The Growth of Cities in 19th century' Adha Weber- 1899

इन पुस्तकों में नगरीयता से सम्बन्धित अध्ययन प्रस्तुत किये गये हैं इन अध्ययनों से नगरीय समाजशास्त्र के विकास को नया आयाम मिला।

नगरीय समाजशास्त्र के शैशव काल में ही महानगरों और कतिपय राजधानियों को आधार बनाकर कई अध्ययन प्रकाशित हुए। इससे नगरीय समाजशास्त्र के विकास को ठोस धरातल प्राप्त हुआ। इनमें से प्रमुख हैं:

1. Satellite Cities: A Study of Industrial Suburbs-Graham R. Taylor (1915)
2. The Twin Cities as a Metropolitan Market Mildred L. Hart Sough (1925)
3. The Government of Metropolitan Region of Chicago Merriam, Parrtt & Lepawricy (1933)
4. The Metropolitan Community. - R. D. Mechenzie
5. Social saga of the cities - Coluin F. Schmind, 1937

आज नगरीय समाजशास्त्र एक स्वतंत्र और विकसित विज्ञान का रूप ले चुका है। इस क्षेत्र में अनेक शोध कार्य हो रहे हैं अतः इसके नये आयामों का विकास हो रहा है। वर्तमान समाज औद्योगिक स्तर से आगे बढ़ता हुआ उत्तर औद्योगिक अवस्था में पहुँच रहा है। अतः नगरों के स्वरूप में तीव्र परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं यहाँ तक कि उनकी बसावट में भी संरचनात्मक स्तर पर परिवर्तन आ रहा है इस कारण नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययनों में भी नये आयाम विकसित हो रहे हैं। यही कारण है कि आज नगरीय समाजशास्त्र एक स्वतंत्र और विकसित विज्ञान का रूप ले चुका है। इस क्षेत्र में नये-नये शोध कार्य हो रहे हैं अतः इसके ज्ञान का क्षेत्र तेजी से समृद्ध हो रहा है।

भारत में नगरीय सभ्यता
(Urban Civilization in India)

भारत में नगरीय सभ्यता का विकास ईसा से 2500 वर्ष पूर्व हो चुका था, जिसे सिन्धु घाटी सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इस सभ्यता का निर्माण द्रविड़ मानव समूहों द्वारा हड़प्पा और मोहन जोदड़ों नगरों में की गई थी। आर्यों के भारत में आगमन से उत्तर भारत में अनेक नगरों का विकास हुआ। इन नगरों में तक्षशिला, इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर, कन्नौज, मथुरा, अयोध्या, काशी, कौशाम्बी, हरिद्वार, पुष्कर, प्रयाग आदि प्रमुख हैं। वर्तमान दिल्ली की नींव ईसा पूर्व 450 पाण्डवों की राजधानी के रूप में रखी गई थी, जो आज भी भारत की राजधानी है। बौद्धकाल में तक्षशिला, साँची, नालन्दा, मरहुत, राजगिरि, अजन्ता, त्रिचूर, नागार्जुन, कोण्डा, कौशाम्बी, आदि नगरों का विकास हुआ।

विम्बसार के शासनकाल में राजगिरि एक नगर के रूप में विकसित हुआ। विम्बसार के पुत्र अजातशत्रु ने पटना (पाटलिपुत्र) को अपनी राजधानी बनाया। गुप्तवंश के शासन काल में पाटलिपुत्र का एक नगर के रूप में विकास हुआ। किन्तु गुप्तकाल के पतन के बाद इस नगर का भी पतन हो गया। मौर्य सम्राज्य के शासक अशोक ने अपने विस्तृत साम्राज्य की देखभाल के लिए अपने राज्य को पाँच भागों में बाँटा- तक्षशिला, पाटलिपुत्र, उज्जैन, तोसाली, सुवर्णगिरि।

हर्षवर्धन के समय कन्नौज, कांञ्ची, थानेश्वर, अयोध्या, मालाकूट, काशी, उज्जैन, श्रीनगर, मदुरई, आदि नगरों का विकास हुआ। राजपूत काल में चित्तौड़गढ़, रणथम्भौर, कुम्मलगढ़, माण्डू, ग्वालियर, चन्देरी, बसेरगढ़, ओरछा, महोबा, कलिंजर, आदि नगरों का विकास हुआ।

NOTES

मुगलकाल में दस्तकारी, व्यापार तथा प्रशासन की दृष्टि से नगरीय सभ्यता का अधिक विकास हुआ। इस काल में जो प्रमुख नगर विकसित हुए उनमें जौनपुर, फिरोजाबाद, दौलतावाद, सहारनपुर, खुर्जा, आदि प्रमुख हैं। मुगलकाल में शासन प्रबन्ध की दृष्टि से अकबर और शेरशाह सूरी का नाम काफी प्रसिद्ध है। इन्होंने शासकीय सुविधा के लिए अपने राज्य को अनेक खण्डों में विभाजित किया और उन खण्डों के प्रशासन को संचालित करने के लिए नगरों का विकास किया। इन शासकों के शासन काल में जिन नगरों का विकास हुआ, उनमें से प्रमुख हैं- फतेहपुर सीकरी, जलालाबाद, तिलहर, अकबरपुर, जलालपुर, मुगलसराय, लखनऊ आदि। औपनिवेशिक शासन काल में आवागमन की वृद्धि हुई, व्यापार और व्यवसाय बढ़ा। शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। उस सबके कारण बम्बई, मद्रास और कलकत्ता बन्दरगाहों का विकास हुआ। इस प्रकार भारत में नगरीय सभ्यता की लम्बी विरासत है और इस विरासत के सम्बन्ध में विभिन्न युगों में अध्ययन होता रहा है।

भारत में नगरीय अध्ययन
(Urban Studies in India)

आदिकाल से मानव आवास का अध्ययन अनेक शीर्षकों के अन्तर्गत किया जाता रहा है। मानव आवास के दो प्रमुख आधार रहे हैं- गाँव और नगर। इन दोनों वर्गीकरणों का आधार जनसंख्या के घनत्व (Density of Population) को बनाया जाता रहा है। कालान्तर में अनेक आधारों पर जनसंख्या का वर्गीकरण किया जाने लगा। भारत में पहली जनगणना 1872 में हुई। इस जनगणना में ग्रामीण और नगरीय को स्पष्टः परिभाषित नहीं किया गया। ग्रामीण और नगरीय जनसंख्या को स्पष्टतः परिभाषित करने का कार्य 1901 की जनगणना में किया गया है और इस जनगणना में नगर को परिभाषित करने के लिए निम्न मापदण्डों का निर्धारण किया गया–

(i) नगर निगम,

(ii) नगर पालिका क्षेत्र,

(iii) नगर पालिका सीमाओं में असम्मिलित सभी सिविल लाइनें,

(iv) छावनी, और

(v) राज्य के अधीक्षक के निर्णय के अनुसार नगर माने जाने वाले आवासित मकानों से सटा हुआ ऐसा प्रत्येक संग्रह जिसकी आबादी 5000 से कम न हो।

इसी प्रकार 2001 तक की विभिन्न जनगणनाओं में नगरीय जनसंख्या के मापदण्ड निर्धारित किए जाते रहे, जो भारत में नगरीय अध्ययन को रेखांकित और परिभाषित किए जाते रहे हैं।

भारत में नगरीय अध्ययन का सूत्रपात अनेक विद्वानों और विषय विशेषज्ञों द्वारा किया जाता रहा है। इस क्षेत्र में भूगोल (Geography) और समाजशास्त्र (Sociology) के अतिरिक्त अन्य प्रशासकीय और नगर सुधार संस्थानों (Agencies) द्वारा नगरों के अध्ययन की एक लम्बी परम्परा रही है। भारत में नगरों के अध्ययन का पहला प्रयास विदेशी विद्वानों द्वारा किया गया है। इन विदेशी विद्वानों में **जैम्स** का प्रयास सबसे महत्वपूर्ण है। इन्होंने नगरों को विभिन्न आधारों पर वर्गीकृत करने का प्रयास किया था। इसके अतिरिक्त **किग्सले डेविस** ने भारत में नगरीय अध्ययन का प्रयास किया था और भारतीय नगरी के विभिन्न पहलुओं के आधार पर परिभाषित करने का प्रयास किया है। **क्रैन** ने भारत में नगरीकरण के विभिन्न प्रतिरूपों (Forms) का अध्ययन कर इसकी प्रक्रिया और वर्गीकरण को स्पष्ट करने का प्रयास किया था। **स्पेट** ने गंगा घाटी के पाँच नगरों का अध्ययन किया था। इस अध्ययन में उन पाँच नगरों के अतिरिक्त दिल्ली और कैनबरा नगरों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया था।

भारतीय विद्वानों में नगरीय अध्ययन के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण कार्य **प्रो. आर. एल. सिंह** का है, जिन्होंने नगरीय अध्ययनों को दिशा प्रदान की। इन्होंने अपने अध्ययन को बनारस पर केन्द्रित किया था। **जौहरी** ने पंजाब के मैदानों में नगरों के विकास और नगरीकरण की विभिन्न प्रवृत्तियों और उसके कारणों का विस्तृत अध्ययन किया था।

नगरों के प्रादेशिक अध्ययन के क्षेत्र में **मेहरोत्रा** का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने मध्यप्रदेश के संदर्भ में नगरीकरण की प्रवृत्तियों का विस्तृत अध्ययन किया है। इसी कड़ी में श्री **अहमद** ने अपने शोध प्रबन्ध के माध्यम से भारत के नगरों की विशेषताओं का विस्तृत वर्णन किया है। **अग्रवाल** ने अपने शोध पत्र के माध्यम से मध्यप्रदेश में नगरीकरण के विभिन्न पहलुओं को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अपने एक अन्य शोध पत्र के माध्यम से छत्तीसगढ़ में नगरीकरण की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है। **आशीष बोस** ने भारत के

नगरीकरण का अध्ययन किया है। इन्होंने अपने अध्ययन में नगरीकरण और औद्योगीकरण के सहसम्बन्धों की विवेचना की है तथा स्पष्ट किया है कि औद्योगीकरण वह प्रमुख कारक है जो नगरीकरण के लिए आधार प्रस्तुत करता है। **श्री आर.बी. सिंह** ने भारत में नगरीकरण और आर्थिक विकास की विस्तृत विवेचना की है। इसके साथ ही नगरीकरण की प्रवृत्तियों और योजनाओं के क्रियान्वयन के सम्बन्ध में अपने विचारों की विवेचना की है। **जैकेबसन** और **वेदप्रकाश** ने भारत में नगरीकरण के सम्बन्ध में अपने विचारों को विस्तृत रूप से रखा है।

भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया में 1951 के बाद तेजी आई। 1947 में भारत आजाद हो गया। आजादी के बाद भारत में प्रशासनिक, औद्योगिक प्रगति तथा अन्य कारणों से जनसंख्या में गतिशीलता आई। इस गतिशीलता का परिणाम यह हुआ कि गाँवों की जनसंख्या तीव्रता से नगरों की ओर प्रवासित होने लगी और इसका परिणाम यह हुआ कि नगरों का तीव्रता से विकास हुआ। **श्री आर.पी. मिश्रा** ने इसी संदर्भ में भारत में नगरों तक सीमित किया, जिनकी जनसंख्या लाखों में हो गई थी। इस सम्बन्ध में **श्री एस.एस. वर्मा** का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है, जिन्होंने रुहेलखण्ड के क्षेत्र का अध्ययन किया। यह अध्ययन सांख्यिकीय तत्वों पर आधारित था। श्री वर्मा ने अपने अध्ययन को नगरीकरण के स्तर के सम्बन्ध में प्रदेशीकरण की प्रक्रियाओं का अध्ययन प्रस्तुत किया। भारत में नगरीय अध्ययन के क्षेत्र में **श्री राम दयाल सिंह** का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। इन्होंने अपने अध्ययन के लिए दामोदर घाटी के उत्तर वेसिन का अध्ययन किया। श्री सिंह ने दामोदर वेसिन में नगरीकरण की प्रवृत्तियों और इसके कारणों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। भारत में नगरीय अध्ययन के क्षेत्र में **श्री एच.एच. सिंह** का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। इन्होंने भी अपने अध्ययन के लिए ऊपरी दामोदर घाटी को ही चुना। इन्होंने ऊपरी दामोदर घाटी में नगरीकरण का विस्तृत अध्ययन किया। इस अध्ययन में नगरीकरण का उद्भव और विकास, उसकी वृद्धि तथा उसकी प्रवृत्तियों को अपने अध्ययन में प्रस्तुत किया।

श्री खान ने भी भारत में नगरीय अध्ययन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन्होंने अलीगढ़ जिले में नगरीकरण का अध्ययन किया। जिसमें नगरीकरण की प्रवृत्ति और उसके प्रतिरूपों को अपने अध्ययन में सम्मिलित किया। **श्री सतीश राय** ने हरियाना में नगरीकरण की प्रवृत्तियों का अध्ययन किया। अपने शोध प्रबन्ध के माध्यम से इन्होंने हरियाणा के नगरीकरण के भौगोलिक क्षेत्रों का अध्ययन किया। इसी कड़ी में **श्री राना बी.पी. सिंह** का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। श्री सिंह ने अपने अध्ययन में भारत में नगरीकरण के आधुनिक प्रतिरूपों की व्याख्या की है।

आज नगरीकरण की प्रवृत्ति तीव्र है। गाँवों की जनसंख्या तीव्रता से नगरों की ओर प्रवासित हो रही है। गाँवों से नगरों की ओर जनसंख्या का प्रवास ही नगरीकरण है। इस नगरीकरण के अनेक आयाम है। इससे अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म और विकास हो रहा है। इन समस्याओं के समाधान के लिए अनेक प्रयास किए जा रहे हैं। अनेक विषयों के माध्यम से भारत में नगरों का अध्ययन किया जा रहा है। संक्षेप में भारत में नगरीय अध्ययनों की एक लम्बी परम्परा है, जो निरन्तर गतिशील है।

भारत में नगरीकरण
(Urbanization in India)

इस शताब्दी की शुरुआत में 1901 में कलकत्ता को देश का पहला महानगर होने का गौरव प्राप्त था, तब इसकी आबादी 10 लाख से कुछ अधिक थी। बम्बई शहर की आबादी 8.47 लाख थी। 1901 में देश की कुल जनसंख्या का 11.00 प्रतिशत भाग नगरों में निवास करता था, जो 2011 में बढ़कर 31.16 प्रतिशत हो गया है। भारत में नगरीकरण की इस प्रवृत्ति को निम्न तालिका में दिखाया गया है–

जनगणना वर्ष	नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत	जनगणना वर्ष	नगरीय जनसंख्या का प्रतिशत
1901	11.00	1961	18.27
1911	10.40	1971	20.22
1921	11.34	1981	23.73
1931	12.18	1991	26.13
1941	14.10	2001	28.20
1951	17.62	2011	31.16

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि भारतीय समाज नगरीय जीवन की ओर अग्रसर होता जा रहा है। 2001 की जनगणना के अनुसार 28.20 प्रतिशत लोग नगरों में निवास करते हैं।

NOTES

परीक्षाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न
(Important Questions for Examinations)

(A) निबन्धात्मक प्रश्न (Essay Type Questions)

1. नगरीय अध्ययन के ऐतिहासिक विवरण को लिखिए।
   Describe history of urban studies.
2. नगरीय अध्ययन का प्रारम्भ अमेरिका में हुआ। इस कथन को समझाइए।
   The urban studies started from America. Explain this statement.
3. भारत में नगरीय अध्ययन पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on urban studies in India.
4. भारत में नगरीय सभ्यता की विवेचना कीजिए।
   Describe urban civilization in India.
5. भारत में नगरीकरण पर एक लेख लिखिए।
   Write an essay on urbanization in India.
6. भारत में नगरीय अध्ययन में प्रमुख विद्वानों के योगदान की विवेचना कीजिए।
   Describe the contribution of Indian scholars in urban studies.

(B) लघु उत्तरीय प्रश्न (Short Answer Type Questions)

निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए–
Write a short note on the following–

1. भारतीय जनगणना में नगरीय अध्ययन।
   Urban studies in Indian census.
2. भारत में नगरीकरण।
   Urbanization in India.
3. नगरीय अध्ययन के उद्देश्य।
   Objective of Urban Studies.

•••

अपनी प्रगति की जाँच करें
Test your Progress